जातक

[द्वितीय खण्ड]

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

२०१४
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

द्वितीय संस्करण १०००



मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

प्राक्कथन

जातक के प्रथम खण्ड की वस्तु-कथा मे २३-८-४१ को लिखा था— "प्रथम खण्ड मे जातकट्ठकथा की निदान कथा और सौ कथाएँ है। दूसरे खण्ड मे (जो प्रेस मे है) दो सौ कथाएँ रहेगी। इस प्रकार प्रथम दो खण्डो मे तीन सौ कथाओ का समावेश हो जाएगा।" उक्त कथन के दस महीने बाद आज हमे जातक (द्वितीय खण्ड) को प्रकाशित होते देख विशेष प्रसन्नता हो रही है। पाठको ने प्रथम खण्ड का जो स्वागत किया और विद्वानो ने उसकी जो समालोचना की है उसने हमे उत्साहित किया। हमे आशा थी कि हम इससे भी पहले इस खण्ड को प्रकाशित देख सकेगे। किन्तु युद्ध के कारण मुद्रण साधनो की कठिनाइयाँ, विशेषकर कागज का अभाव, कुछ इतना बढ गया कि जातक के द्वितीय खण्ड के प्रकाशन के लिए हमे सम्मेलन के साहित्यमन्त्री श्री रामचन्द्र जी टडन के विशेष परिश्रम का कृतज्ञता पूर्ण उल्लेख करना ही पड रहा है। पुस्तक का बडा अंश छप चुकने के बाद जातक के लिए जो कागज की एकदम कमी पड गई उसे श्री टण्डन जी ने ही अपनी प्रत्युत्पन्नमति से दूर किया। खर्च अधिक पडा किन्तु जातक हर दृष्टि से प्रथम खण्ड जैसा ही मुद्रित हुआ। हाँ, पहले इस द्वितीय खण्ड मे जहाँ दो सौ कथाएँ देने का विचार था, पीछे डेढ सौ कथाएँ देना ही उचित जँचा। दो सौ कथाएँ देने से द्वितीय खण्ड वहुत ही वड़ा हुआ जा रहा था।

चित्र, विपय-सूची आदि सब कुछ प्रथम खण्ड की ही तरह है। प्रथम खण्ड के चित्र के लिए हम जातक के अग्रेजी अनुवाद तथा द्वितीय खण्ड के चित्र के लिए श्री० ए० फुशेर की 'बुद्धिस्ट आर्ट' के ऋणी है।

आ० धर्म्मानन्द जी कोसम्वी ने इस द्वितीय खण्ड को भी प्रथम खण्ड की तरह लगभग सारा का सारा सुन लिया है। उनकी यह कृपा सदा वनी रहे।

मूलगन्धकुटी विहार
सारनाथ
११-६-४२

आनन्द कौसल्यायन

विषय-सूची

विषय ... पृष्ठ

विषय पृष्ठ

पहला परिच्छेद

११. परोसत वर्ग

१०१. परोसत जातक

परोसतञ्चेपि समागतानं
झायेयुं ते वस्ससतं अपञ्ञा,
एकोव सेय्यो पुरिसो सपञ्ञो
यो भासितस्स विजानाति अत्थं॥

[प्रज्ञाहीन शताधिक आये-हुए मनुष्य यदि सौ वर्ष तक भी ध्यान लगाते रहें तो उनकी अपेक्षा एक प्रज्ञावान् मनुष्य जो कही हुई बात के (गम्भीर) अर्थ को जान लेता है, अच्छा है।]

कथा की दृष्टि से, व्याख्या (व्याकरण) की दृष्टि से, साराश की दृष्टि से यह जातक (कथा) परोसहस्स जातक[1] के समान ही है। इसमे केवल 'ध्यान करें' पद की विशेषता है। जिसका अर्थ है कि प्रज्ञा-रहित मनुष्य सौ वर्ष भी ध्यान करते रहें, देखते रहें, धारण करते रहे, इस प्रकार देखते हुए भी वह गूढ (अर्थ) को अथवा (असली) बात को नही देख पाते। इसलिए जो मनुष्य कही बात के अर्थ को जानता है वह प्रज्ञावान् अकेला ही अच्छा है।

---

[1] परोसहस्स जातक (९९)।

१०२. पण्णिक जातक

"**यो दुक्ख फुट्ठाय भवेय्य ताण** " आदि (की कथा) शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक दुकानदार उपासक के सम्बन्ध मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती-निवासी उपासक नाना प्रकार की जडी-बूटी तथा लौकी-कद्दू आदि बेच कर गुजारा करता था। उसकी एक लडकी थी। रूपवान, सुन्दर, सदाचारिणी तथा लज्जा-भय से युक्त, (लेकिन साथ ही) सदा हँसती रहती थी। बराबरी के कुलवालो के लडकी को व्याहने आने (की इच्छा करने) पर, वह सोचने लगा—"इसकी शादी होगी। यह सदैव हँसती रहती है। कँवारपन को नष्ट करके यदि कुमारी दूसरे कुल में जाती है, तो माता-पिता के लिये निन्दा का कारण होती है। मैं इसकी परीक्षा करूँगा कि इसका कँवारपन सुरक्षित है कि नही ?"

एक दिन उसने लडकी से टोकरी उठवा, पत्तो के लिए जगल मे जाकर, उसकी परीक्षा करने की इच्छा से, कामासक्त की भाँति हो, गुप्त बात कह उसे हाथ से धर लिया। जैसे ही उसे पकडा उसने रोते चिल्लाते हुए कहा—"तात ! यह नामुनासिब है, यह पानी से आग निकलने के सदृश है। ऐसा न करें।"

"अम्म ! मैंने केवल परीक्षा करने के लिए ही तुझे हाथ से धरा था। अब, बता कि तेरा कँवारपन (सुरक्षित) है या नही ?"

"हाँ तात ! है। मैंने राग के वशीभूत हो किसी भी पुरुष की ओर नही देखा।"

उसने लडकी को आश्वासन दे, घर ले जा, विवाह करके पराये कुल भेजा। (फिर) शास्ता की वन्दना करने की इच्छा से, गन्ध-माला आदि हाथ में ले, जेतवन पहुँच, शास्ता की वन्दना तथा पूजा करके एक ओर बैठा। "चिरकाल के बाद आये ?" पूछे जाने पर उसने भगवान को वह सब हाल कहा। शास्ता ने 'उपासक ! कुमारी तो चिरकाल से सदाचारिणी है ! लेकिन तूने न केवल अभी किन्तु, पहले भी उसकी परीक्षा की है' कह पूर्वजन्म की कथा कही—

ख अतीत कथा

पूर्वकाल मे बाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व जगल मे वृक्ष-देवता होकर उत्पन्न हुए। उस समय बाराणसी मे एक दुकानदार उपासक था इत्यादि कथा वर्तमान कथा के सदृश ही है। हाँ, परीक्षा करने के लिए उसने जब लडकी को हाथो से धरा, तो लडकी ने रोते-रोते यह गाथा कही—

यो दुक्खफुट्ठाय भवेय्य ताणं
सो मे पिता दूभि वने करोति,
सा कस्स कन्दामि वनस्स मज्झे
यो तायिता सो सहसा करोति॥

[कष्ट मे पडने पर, जिसे त्राता होना चाहिये, वही मेरा पिता जगल में विश्वास-घात कर रहा है। सो मै जगल मे किसे (सहायता के लिये) बुलाऊँ? जो त्राता है, वही दुस्साहस कर रहा है।]

यो दुक्खफुट्ठाय भवेय्य ताणं का अर्थ है कि जो शारीरिक अथवा मानसिक दु ख से पीडित का त्राण करता है, परित्राण करता है, तथा प्रतिष्ठा का कारण होता है। **सो मे पिता दूभि वने करोति** का अर्थ है कि वह दु ख से परित्राण करनेवाला मेरा पिता ही यहाँ इस प्रकार का मित्र-द्रोही कर्म करता है, अपनी निज की पुत्री (के शील) को ही लाँघना चाहता है। **सा कस्स कन्दामि** का मतलब है कि किसके पास रोऊँ? कौन मुझे बचायेगा? **यो तायिता सो सहसा करोति,** का अर्थ हुआ कि जो पिता मेरा त्राता है, रक्षक है, आश्रय दाता होने योग्य, वह पिता ही दुस्साहस कर रहा है।

तब पिता ने उसे आश्वासन देकर पूछा—"अम्म! तूने अपने आप को सुरक्षित तो रक्खा है?"

"हाँ, तात! मैने अपने आपको (सँभाल कर) रक्खा है।"

उसने उसे घर ले जा विवाह कर, पराये कुल भेज दिया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना सुना, (आर्य-) सत्यो को प्रकाशित कर, जातक का

मेल बैठाया। सत्यो (के प्रकाशन) के अंत में उपासक स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय का पिता ही इस समय का पिता, लड़की ही इस समय की लड़की है। लेकिन उस बात को प्रत्यक्ष देखनेवाला वृक्ष-देवता तो मैं ही था।

१०३. वेरी जातक

"**यत्थ वेरी निवसति** " आदि गाथा शास्ता ने जेतवन में रहते समय अनाथपिण्डिक के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

अनाथपिण्डिक ने अपने **भोग-ग्राम**[1] से लौटते हुए रास्ते में चोरो को देखकर सोचा—"रास्ते में रहना ठीक नही। श्रावस्ती ही जाकर रहूँगा।" यह सोच जल्दी जल्दी बैलो को हाँक, श्रावस्ती पहुँच, अगले दिन जब विहार गया, तो शास्ता को यह बात कही। शास्ता ने "गृहपति! पूर्व समय मे भी पण्डित-जन रास्ते मे चोरो को देखकर रास्ते मे न ठहर, अपने रहने के स्थान पर ही चले गये" कह उसके पूछने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व महासम्पत्तिशाली सेठ होकर पैदा हुआ। एक गाँव में निमन्त्रण खाकर लौटते समय रास्ते में चोरो को देख वहाँ नही ठहरा। जल्दी जल्दी बैलो को हाँक, अपने घर ही आकर नाना प्रकार के श्रेष्ठ रसो से युक्त भोजन करके महाशय्या पर लेटा। उस समय 'चोरो के हाथ

---

[1] **भोगग्राम=जमींदारी का ग्राम।**

से निकलकर भयरहित स्थान अपने घर पर आ गया हूँ' सोच, उल्लासपूर्वक यह गाथा कही—

यत्थ वेरी निवसति न वसे तत्थ पण्डितो,
एकरत्तं द्विरत्तं वा दुक्ख वसति वेरिसु॥

[जहाँ पर वैरी का निवास हो, पण्डित आदमी को चाहिए कि वहाँ निवास न करे। क्योकि वैरी के साथ एक या दो रात्रि रहनेवाला भी दु ख ही भोगता है।]

वेरी, वैर-भाव से युक्त आदमी। **निवसति,** प्रतिष्ठित रहता है। **न वसे तत्थ पण्डितो,** जहाँ वह वैरी आदमी प्रतिष्ठित होकर रहता है, पाण्डित्य से युक्त पण्डित-जन को चाहिये कि वहाँ न रहे। किस कारण से ? **एकरत्त द्विरत्त वा दुक्खं वसति वेरिसु,** वैरियो के बीच मे (केवल) एक या दो दिन रहता हुआ भी दु ख ही भोगता है।

बोधिसत्त्व इस प्रकार हर्ष-ध्वनि करके दान-आदि पुण्य-कर्म कर यथाकर्म (परलोक) सिधारे। शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, जातक का मेल बैठाया कि उस समय मैं ही वाराणसी का सेठ था।

१०४. मित्तविन्द जातक

"चतुब्भि अट्ठ ज्झगया" आदि शास्ता ने जेतवन मे रहते समय, एक दुर्भाषी भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

पहले आई **मित्तविन्द जातक** की कहानी के सदृश ही यह कहानी भी जाननी चाहिए।

ख. अतीत कथा

लेकिन यह जातक कथा है काश्यप-सम्बुद्ध के समय की। उस समय एक नरक-निवासी ने, जिसके सिर पर घूमनेवाला चक्र[1] था और जो नरक में जल रहा था, बोधिसत्त्व से पूछा—"भन्ते! मैंने क्या पापकर्म किया है?" बोधिसत्त्व ने "तूने अमुक और अमुक पापकर्म किया है" कह यह गाथा कही—

चतुब्भि अट्ठज्झगमा अट्ठाहिपि च सोळस
सोळसाहि च बत्तिंस अत्रिच्छ चक्कमासदो;
इच्छाहतस्स पोसस्स चक्कं भमति मत्थके॥

(चार से आठ, आठ से सोलह, और सोलह से बत्तीस की इच्छा करने के कारण यह सिर पर घूमनेवाला चक्र प्राप्त हुआ। क्योंकि इच्छा (लोभ) से ताडित मनुष्य के सिर पर चक्र भ्रमता है।)

चतुब्भि अट्ठज्झगमा, समुद्र में चार परियों (विमान-प्रेतनियों) को पाकर, उनसे सन्तुष्ट न हो, लोभ के कारण और आठ को प्राप्त किया। शेष दो पदों का अर्थ भी इसी प्रकार है। अत्रिच्छ चक्कमासदो इस प्रकार स्वकीय लाभ से असन्तुष्ट हो उस चीज की प्राप्ति होने पर, और और चीज की इच्छा करते हुए, अब इस उर-चक्र को प्राप्त हुए। उसके इस प्रकार इच्छाहतस्स पोसस्स से प्रताडित तेरे चक्कं भमति मत्थके, पत्थर तथा लोहे के दो प्रकार के चक्रों में से तेज धार वाला लोहे का चक्र, फिर फिर उसके माथे पर गिरने से ऐसा कहा गया।

यह कहकर (बोधिसत्त्व) स्वयं देवलोक को गये। वह नरकगामी प्राणी भी अपने पापकर्मों के क्षीण होने पर कर्मानुसार अवस्था को प्राप्त हुआ। शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला जातक का मेल बैठाया—उस समय मित्र-विन्दक (अब का) दुर्भाषी भिक्षु था, और देवपुत्र तो मैं ही था।

---

[1] उरचक्र—पालि कोष में (रा॰जडेविड्स ने) उर-चक्र का अर्थ छाती पर रखा लोहे का चक्र किया है, जो यथार्थ नहीं। 'उर' शब्द वैदिक है, जिसका अर्थ है गतिमान।

१०५. दुब्बलकट्ठ जातक

"बहुम्पेतं वने कट्ठ" आदि शास्ता ने जेतवन मे रहते समय एक भयभीत भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती-निवासी तरुण, शास्ता का धर्मोपदेश सुन, प्रव्रजित हो मरने से भयभीत रहता था। रात या दिन मे हवा के चलने पर, सूखी-डण्ठलो के गिरने पर तथा पक्षियो या चौपायो के कुछ शब्द करने पर, मरण-भय से डरकर वह ज़ोर से चिल्लाता हुआ भागता। 'मुझे भी मरना होगा', इसका उसे ध्यान तक न था। यदि वह यह जानता कि "मै मरूँगा" तो उसे मरने से डर न लगता। वह मरण-स्मृति योग-विधि (=कर्मस्थान) का अनभ्यासी होने से ही डरता था। उसकी मृत्युभय से भयभीत होने की बात भिक्षु-सघ को पता लग गई। सो एक दिन भिक्षुओ ने धर्म-सभा में वात चलाई—आयुष्मानो! अमुक मरण-भीरु भिक्षु मृत्यु से डरता है। भिक्षु को तो चाहिये कि वह 'मुझे अवश्य ही मरना है' इस मरण-स्मृति कर्मस्थान की भावना करे। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "यह बातचीत" कहने पर भगवान् ने उस भिक्षु को बुलवाया और पूछा—क्या तुझे सचमुच मरने से डर लगता है?

"भन्ते! सचमुच।"

'भिक्षुओ! इस भिक्षु से असन्तुष्ट मत होओ। यह भिक्षु केवल अब ही मरने से भयभीत नही है, पहले भी भय भीत ही रहा है" कह पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, वोधिसत्त्व हिमालय मे वृक्ष-देवता की योनि में उत्पन्न हुए। उस समय वाराणसी-नरेश ने हस्ति-शिक्षको

को अपना हाथी दिया था ताकि वे उसे निर्भय बनावें। उन्होने भाले ले, हाथी को पक्की तरह से खूँटे मे बाँध, उसे घेर, उसका डर निकालना शुरू किया। इस पीडा को न सह सकने के कारण हाथी ने खूँटा तुडा, मनुष्यो को भगा, स्वय हिमालय में प्रवेश किया। आदमी उसको न पकड सकने के कारण वापिस लौट आये। हाथी को वहाँ मरण-भय लग गया। वायु के शब्द को सुनकर, काँपता हुआ, मरने के भय से भयभीत अपनी सूड को धुनता हुआ जोर से भागता। उसको ऐसा लगता था जैसे खूँटे पर बाँध कर साधा जा रहा हो। शरीर-सुख वा मानसिक सुख एक भी नही मिलता था। काँपता हुआ भटकता था। वृक्ष-देवता ने यह देखकर वृक्ष की शाखा पर खडे होकर यह गाथा कही—

बहुम्पेत वने कट्ठ वातो भञ्जति दुब्बल,
तस्स चे भायसि नाग! किसो नून भविस्ससि।।

[जगल मे हवा से बहुत सारी दुर्बल लकडी टूटकर गिरती है। हे नाग! यदि तू इससे डरेगा, तो तू निश्चय से कमजोर हो जायगा।]

———

एत दुब्बल कट्ठ, पुरवा आदि **वातो भञ्जति**, यह इस जगल में बहुत सुलभ जहाँ तहाँ है, यदि तू उससे **भायसि**, तो ऐसा होने पर तो नित्य ही भयभीत रहने के कारण रक्त-मास क्षीण होकर **किसो नून भविस्ससि**; इस वन में तेरे भयभीत होने की बात है ही नही, इसलिये अब से मत डर।

———

इस प्रकार देवता ने उसे उपदेश दिया। वह भी उस समय से लेकर निर्भीत हो गया। शास्ता ने इस धर्मोपदेश को ला, चारो आर्य- (सत्यो) को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्य प्रकाशित होने पर वह भिक्षु स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय हाथी तो यह भिक्षु था, वृक्ष-देवता मैं ही था।

१०६. उदञ्चनि जातक

"सुखं वत म जीवन्तं" आदि शास्ता ने जेतवन मे रहते समय 'प्रौढ कुमारी के साथ आसक्ति' के सम्बन्ध मे कही।

क. वर्तमान कथा

मूल कथा (=वस्तु) तेरहवे परिच्छेद की चूल नारद काश्यप[1] जातक मे आयेगी। उस भिक्षु से शास्ता ने पूछा—"भिक्षु! क्या तू सचमुच आसक्त है?"

"भगवान्! सचमच।"

"तुझे किसमे आसक्ति हुई?"

"एक प्रौढ कुमारी मे।"

"भिक्षु! यह तेरे लिये अनर्थकारी है। पहले जन्म मे भी तू इसी के कारण सदाचार भ्रष्ट हो कॉपता हुआ भटकता था। (फिर) पडितो के कारण सुख को प्राप्त हुआ" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

"पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय" आदि पूर्व समय की कथा भी चुल्ल नारद काश्यप जातक मे ही आयेगी। उस समय बोधिसत्त्व शाम को फल फूल ले आकर पर्ण-शाला मे प्रवेश करके विचरने लगे और अपने पुत्र चुल्ल तापस को कहा—

"तात! और दिन तो तुम लकडी लाते थे, पेय तथा खाद्य-सामग्री लाते थे, आग जलाते थे। आज क्या कारण है कि कोई भी काम न करके बुरा मुह बनाये चिन्तित पडे हो?"

---

[1] चूलनारदजातक (४४७)

"तात! आप जब फल फूल लेने चले गये थे, तब एक स्त्री आई जो मुझे लुभा कर ले जाना चाहती थी। लेकिन मैं 'आपसे आज्ञा लेकर जाऊँगा' सोच नहीं गया। उसको अमुक स्थान में बिठा कर आया हूँ। तात! अब मैं जाता हूँ।"

बोधिसत्त्व ने 'यह रोका नहीं जा सकता' सोच "तो तात! जाओ! यह तुम्हें ले जाकर जब मत्स्य-मांस आदि खाने की इच्छा करेगी और घी, निमक तथा तेल आदि माँगेगी और कहेगी कि 'यह ला', 'यह ला', तब तू मुझे याद करना और भागकर यहीं आ जाना" कह चलता किया। वह उसके साथ बस्ती में गया। उसे अपने वश में कर वह 'मांस ला', 'मछली ला' जो जो चाहती, मँगाती। तब उसने 'यह तो मुझे अपने गुलाम की तरह नौकर की तरह पीडा देती है' सोच भागकर पिता के पास आ, उन्हें प्रणाम कर, खडे ही खडे यह गाथा कही—

सुखं वत म जीवन्त पचमाना उदञ्चनी।
चोरी जायप्पवादेन तेलं लोणञ्च याचति॥

[जल निकालने की मटकी सदृश "भार्य्या" रूप में यह चौरिणी, सुख पूर्वक रहते हुए मुझे मीठे शब्दो से लुभाकर नून तेल माँग माँगकर जलाती है।]

सुख वत म जीवन्तं, तात! तुम्हारे पास सुखपूर्वक रहते हुए, **पचमाना,** सतप्त करती हुई, पीडा देती हुई, जो जो खाना चाहती वह पकाती, उदक (= पानी) खींचा जाता है इसमे, अत उदञ्चनी। चाटी या कुएँ से पानी निकालने की घटी। उसे उदञ्चनी इसलिये कहा क्योंकि वह घटी (= घटिका) के पानी निकालने की तरह जो जो चाहती सो अवश्य निकालती। **चोरी जायप्पवादेन;** "नाम से तो भार्य्या" लेकिन एक चौरिणी मीठे मीठे शब्दो से मुझे लुभा वहाँ ले जाकर निमक तेल तथा और भी जो जो चाहती वह सब माँगती, जैसे दास या नौकर से वैसे मँगवाती। (यह) कह उसकी निन्दा की।

बोधिसत्त्व ने उसे आश्वासन देकर "तात! जो हुआ सो हुआ। आ अब तू मैत्री भावना कर। करुणा भावना कर" कह चारो ब्रह्मविहारो को कहा। योगक्रिया कही। वह थोडे ही समय में अभिञ्ञा तथा समापत्तियो को प्राप्त कर

ब्रह्मविहारो की भावना कर, अपने पिता सहित ब्रह्मलोक मे उत्पन्न हुआ। शास्ता ने इस धर्म्म-देशना को ला, आर्य-सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के प्रकाशित होने पर वह भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय की प्रौढ कुमारी ही आजकल की प्रौढकुमारी तथा चूलतापस ही आसक्त भिक्षु था। पिता तो मै था ही।

१०७. सालित्त जातक

"साधु खो सिप्पकं नाम" आदि शास्ता ने जेतवन मे रहते समय एक हस-मार भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्तीवासी कुलपुत्र सालित्तक शिल्प मे पारङ्गत था। सालित्तक शिल्प कहते हैं ठीकरी चलाने के हुनर को। एक दिन उसने धर्मोपदेश सुन, बुद्ध (-शासन) में श्रद्धायुक्त हो प्रव्रजित होकर उपसम्पदा प्राप्त की। लेकिन न उसे शिक्षा की इच्छा थी न उसके अनुसार आचरण करने की। एक दिन वह एक छोटे भिक्षु को साथ ले अचिरवती (नदी) पर गया। वहाँ स्नान करके खडा था, कि, उसी समय आकाश मे दो सफेद हसो को उडते देखा। उसने छोटे भिक्षु से कहा—

"इनमे जो पिछला हस है, उसकी आँख को ककर से बीधकर हस को अपने पैरो में गिराता हूँ।"

"कैसे गिरायेगा? मार ही न सकेगा।"

"इधर की ऑख रहे। मै इसकी उधर की ऑख मे मारूँगा।"

"असम्भव बात कहते हो?"

"तो देख" कह उसने एक तीखी ठीकरी ले उँगली से तान उस हस के पीछे फेंकी। ठीकरी ने 'रूँ' करके आवाज की। हस "खतरा होगा" सोच, रुककर शब्द

सुनने लगा। उसने उसी समय एक गोल ककर ले, रुककर देखते हुए हस के दूसरी ओर की आँख मे मारा। ककर दूसरी ओर की आँख बीधता गया। हस चिल्लाता हुआ पैरो मे आकर गिरा।

भिक्षुओ ने इधर उधर से आकर उसकी निन्दा की कि "तू ने नामुनासिब किया" और शास्ता के पास ले जाकर कह दिया कि 'इसने यह यह किया।' शास्ता ने उसकी निन्दा करते हुए "भिक्षुओ! न केवल अभी यह इस हुनर मे हुशियार है, वल्कि पहले भी हुशियार ही था" कह पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व उसके आमात्य (होकर उत्पन्न हुए) थे। राजा का तत्कालीन पुरोहित बडा बुलक्कड था—वोलना आरम्भ करता तो किसी दूसरे को वोलने का मौका ही न मिलता। राजा सोचने लगा—"इसका मुह वन्द करनेवाला कोई कब मिलेगा?" और तब से ऐसे आदमी की खोज मे रहने लगा।

उन दिनो वाराणसी में एक कुवडा ककर फेंकने के हुनर मे पारगत था। गाँव के लडके वाले उसे ठेले (रथक) पर चढा खीच कर, वाराणसी नगर के दरवाजे पर शाखाओ से युक्त एक महान्‌न्यग्रोध (वृक्ष) के नीचे ले आते, और उसे घेर कर तथा कौडी आदि दे कहते "हाथी की शकल वनाओ। घोडे की शकल वनाओ।" वह ककर चला चलाकर न्यग्रोध के पत्तो मे भिन्न भिन्न तरह की शक्लें वनाता। सभी पत्तो मे छेद हो गये।

वाराणसी नरेश सैर को जाते समय उस जगह आये। भगा दिये जाने के भय से लडके वाले भाग गये। कुवडा वही पड़ा रहा। राजा ने न्यग्रोध वृक्ष के नीचे रथ पर वैठे ही वैठे, छिद्रित पत्तो के कारण धूप-छनी छाया देख, सभी पत्तो को छिद्रित पा पूछा—"ऐसा किसने किया?"

"देव! कुवडे ने।"

'यह ब्राह्मण का मुह वन्द कर सकेगा' सोच राजा ने पूछा—"कुवडा कहाँ है?"

खोज करनेवालो ने कुवडे को वृक्ष की जड मे पडे देख कहा "देव! यहाँ है।"

राजा ने उसे बुलवा, लोगो को दूर हटवा, उस से पूछा—"हमारे यहाँ एक बुलक्कड ब्राह्मण है, क्या तू उसे निश्शब्द कर सकेगा ?"

"देव ! यदि नलकी भर बकरी के मेंगन मिले तो कर सकूगा ।"

राजा कुबडे को घर ले गया, और कनात के भीतर बैठाया । (फिर) कनात में एक छेद कर ब्राह्मण के बैठने का आसन उस छेद की ठीक सीध मे बिछवाया । नलकी भर बकरी की सूखी मीगन कुबडे के पास रखवा दी । जिस समय ब्राह्मण हजूरी में आया, उसे उस आसन पर बिठवा, राजा ने बातचीत चलाई । किसी दूसरे को बोलने का अवसर न दे, ब्राह्मण ने राजा से बोलना शुरू किया । कनात के छेद मे से मक्खी डालने की तरह वह कुबडा एक एक मीगन ब्राह्मण के तालु के अन्दर गिराता रहा । नलिका मे तेल डालने की तरह ब्राह्मण जो जो मीगनें आती उन्हें निगल जाता । सब खतम हो गईं । उसके पेट मे गई नलकी भर बकरी की मीगनें आधे आळ्हक[1] भर थी । राजा ने उन्हे खतम हुआ जान कहा—"आचार्य्य ! अति बुलक्कड होने के कारण आपको नलकी भर बकरी की मीगनें निगल जाने पर भी पता नही लगा । अब इससे अधिक हजम न कर सकोगे । जाओ कगनी का पानी पीकर इन्हे निकाल अपने को स्वस्थ करो ।"

उस दिन से मानो ब्राह्मण का मुख सिल गया । बातचीत करने वाले के साथ भी बातचीत न करता । 'इसने मुझे कर्ण-सुख दिया है' सोच राजा ने कुबडे को चारो दिशा मे लाख की आमदनी के चार गाँव दिये । बोधिसत्त्व ने राजा के पास जा 'देव ! बुद्धिमान् आदमी को हुनर सीखना चाहिए । कुबडे ने केवल ककर फेकने (की कला से) भी सम्पत्ति पैदा कर ली' कह, यह गाथा कही—

साधु खो सिप्पकं नाम अपि यादिसकीदिस,
पस्स खञ्जप्पहारेन लद्धा गामा चतुद्दिसा ॥

[जैसा कैसा भी हो, हुनर सीखना अच्छा है । देखो ! कुबडे ने (मीगनो के) फेकने (के हुनर) से ही चारो दिशाओ में गाँव पा लिये ।]

---

[1] १६ पसत=एक आळ्हक ।

पस्स खञ्जप्पहारेन महाराज ! देखो इस कुबडे ने बकरी की मीगन के निशाने लगाने मात्र से ही चारो दिशाओ मे चारो गाँव पा लिये। अन्य शिल्पो की महिमा का तो क्या ही कहना—इस प्रकार हुनर सीखने की महिमा का वर्णन किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, जातक का मेल बैठाया। उस समय का कुबडा यह भिक्षु है। राजा आनन्द है। और पडित मन्त्री तो मै ही था।

---

१०८. बाहिय जातक

"सिक्खेय्य सिक्खितब्बानि . ." को शास्ता ने वेशाली के आश्रित महावन की कूटागार शाला में रहते समय एक लिच्छवि के सम्बन्ध मे कहा।

क. वर्तमान कथा

वह लिच्छवि राजा श्रद्धाप्रसन्न था। उसने भिक्षुसघ सहित बुद्ध को अपने घर निमन्त्रित कर महादान दिया।

उसकी भार्य्या मोटी, सूजी हुई सी थी और उसको सलीके से रहने का शऊर नही था। शास्ता भोजनोपरान्त दानानुमोदन कर, विहार जा भिक्षुओ को उपदेश दे, गन्धकुटी मे प्रविष्ट हुए। धर्मसभा मे भिक्षुओ ने बातचीत चलाई—"आयुष्मानो ! वह लिच्छवि-नरेश तो इतना सुन्दर है, लेकिन उसकी भार्य्या मोटी, सूजी हुई सी है तथा उसे सलीके से रहने का शऊर नही। राजा उसके साथ कैसे रहता है?" शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?"

"यह बातचीत" कहने पर शास्ता ने "भिक्षुओ ! न केवल अभी, किन्तु पहले भी यह मोटे शरीरवाली स्त्री के साथ ही रहता था" कह, उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

"पूर्व समय में बाराणसी में जब ब्रह्मदत्त राज्य करता था, उस समय बोधि-सत्व उसके आमात्य थे। मुफस्सल की एक स्थूल शरीर स्त्री जिसे सलीका नही था, मजदूरी करती थी। राजाङ्गन से थोड़ी दूर पर जाते हुए उसे शौच की हाजत हुई। जो वस्त्र पहने हुए थी, उसी से शरीर को ढक कर बैठ गई और हाजत रफा कर तुरन्त उठ खडी हुई। झरोखे से राजाङ्गण देखते हुए बाराणसी राजा की उस पर नजर पडी। वह सोचने लगा—"इस प्रकार के (खुले) आङ्गन मे बिना लज्जा को छोडे वस्त्र से ढके ही ढके शौच फिरकर यह जल्दी से खडी हो गई। यह निरोग होगी। इसकीकोख अ ति परिशुद्ध होगी। परिशुद्ध-कोख से उत्पन्न हुआ पुत्र भी अति पवित्र तथा पुण्यवान् होगा। मुझे चाहिए कि मै इसे अपनी पटरानी बनाऊँ।"

यह मालूम करके कि वह कँवारी है, राजा ने उसे मँगवाकर अपनी पटरानी बनाया। वह राजा को प्रिय थी, मन भाती थी। थोडी ही देर में उससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका वह पुत्र चक्रवर्ती राजा बना।

बोधिसत्त्व ने उसका यह (पुत्र-) धन देख, मौका मिलने पर राजा से कहा—"देव! सीखने योग्य शिल्प क्यो न सीखा जाय? इस पुण्यवान् ने, बिना लज्जा त्यागे, वस्त्र से ढके ही ढके शौच फिर कर तुम्हें प्रसन्न करके इस प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त की।" इस प्रकार सीखने योग्य बात को सीखने का महत्व बताते हुए यह गाथा कही—

सिक्खेय्य सिक्खितब्बानि सन्ति सच्छन्दिनो जना,
बाहियापि सुहन्नेन राजानमभिराधयि॥

[सीखने योग्य बातो को सीखे। कदरदान लोग है। उस मुफस्सल की स्त्री ने राजा को ढग से शौच फिरने (मात्र) से प्रसन्न कर लिया।]

सन्ति सच्छन्दिनो जना, शिल्प-विशेषो मे रुचि रखनेवाले लोग है। **बाहिया**—बाहर मुफस्सल में पैदा हुई तथा पली स्त्री। **सुहन्नेन,** बिना लज्जा छोडे वस्त्र से ढके ढके शौच फिरने को 'सुहन्न' कहते है, सो वैसे शौच फिरने से। **राजानमभिराधयि** देव को प्रसन्न करके, यह सम्पत्ति प्राप्त की।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने सीखनेयोग शिल्पो (के सीखने) का महात्म्य कहा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय के पति-पत्नी ही अब के पति-पत्नी। पण्डित आमात्य तो मैं ही था।

१०९. कुण्डकपूव जातक

"यथन्नो पुरिसो होति" यह शास्ता ने श्रावस्ती मे रहते समय, एक महा दरिद्र (मनुष्य) के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती मे कभी एक ही परिवार बुद्ध तथा उसके सघ को दान देता, कभी तीन चार परिवार एक में मिलकर, कभी एक गण, कभी एक गली के लोग, कभी सारे नगर के लोग मिलकर। उस समय एक गली के लोग मिलकर दान दे रहे थे। मनुष्य वुद्ध तथा सघ को यवागु परोसकर कहने लगे "खाजा लाओ।"

उस गली मे रहने वाले, दूसरो की मजदूरी करके जीनेवाले, एक दरिद्र मनुष्य ने सोचा—"मै यवागु नही दे सकता। खाजा दूगा।" (यह सोच) उसने चावल की बहुत बारीक कनखी ले, छाज से फटक कर, पानी से भिगो, आक के पत्तो मे रख, आग में पकाया। फिर 'यह वुद्ध को दूगा' सोच उसे ले जाकर शास्ता के सामने खडा हुआ। (लोगो ने) 'खाजा लाओ' पहली बार कहा ही था कि उसने सबसे पहले जाकर शास्ता के सामने वह पूडा रख दिया। शास्ता ने औरो के दिये हुए खाजो को अस्वीकार कर उसी पूडे-खाजे को ग्रहण किया। उसी समय सारे नगर मे एक शोर मच गया कि सम्यक् सम्बुद्ध ने उस महादरिद्र का खाना बिना घृणा के खाया।

राजा, राजा के महामन्त्री आदि, और तो और द्वारपाल तक आकर शास्ता को प्रणाम कर उस महादरिद्री से कहने लगे—"भो! सौ लेकर, दो सौ लेकर वा

पाँच सौ लेकर हमारा भी हिस्सा रक्खो ।" उसने 'शास्ता से पूछकर जानूगा' सोच शास्ता के पास जाकर वह बात कही । शास्ता ने उत्तर दिया "धन लेकर या बिना लिये जैसे भी हो सब प्राणियो को हिस्सेदार बनाओ ।" उसने धन लेना आरम्भ किया । मनुष्यो ने दुगुना, चौगुना, आठ गुना आदि दे देकर नौ करोड सोना दिया । शास्ता दानानुमोदन कर विहार चले गये । फिर भिक्षुओ के अपना अपना कर्तव्य करने पर शास्ता ने उन्हे उपदेश दे गन्धकुटी मे प्रवेश किया ।

शाम को राजा ने उस महादरिद्री को बुलवाया और श्रेष्ठी बना उसका सत्कार किया । धर्म-सभा मे भिक्षुओ ने बातचीत चलाई—"आयुष्मानो ! महान् दरिद्री के दिये पूए, शास्ता ने बिना घृणा प्रगट किये ऐसे खाये जैसे अमृत । महान् दरिद्री भी बहुत सा धन और सेठ का पद प्राप्त कर बहुत सम्पत्तिशाली हो गया ।" शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ ! बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?"

"अमुक बातचीत" कहने पर "भिक्षुओ ! न केवल अभी मैंने बिना घृणा दिखाये उसके पूए खाये बलिक पहले जब मैं वृक्ष-देवता था तब भी खाये थे" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य के समय बोधिसत्त्व अरण्डी के एक वृक्ष-देवता होकर पैदा हुए । उस गाँवडे के मनुष्य तब देवता-विश्वासी[१] थे । एक त्योहार आने पर उन्होने अपने अपने वृक्ष-देवताओ को बलि दी । एक दरिद्री मनुष्य ने लोगो को वृक्ष-देवताओ की सेवा करते देख स्वय एक अरण्ड-वृक्ष की सेवा की । मनुष्य अपने अपने देवताओ के लिये नाना प्रकार के माला, गन्ध, लेपन आदि और खाद्य-भोज्य लेकर गये । लेकिन वह ले गया चूरे के पूए और कडछी में पानी । अरण्ड वृक्ष के समीप पहुँचा तो सोचने लगा—"देवता दिव्य-भोजन करते हैं । मेरे देवता यह चूरे का पूआ नही खायेंगे । इसे व्यर्थ क्यो नष्ट करूँ ? मै ही इसे खा लूगा ।" यह सोच वही से लौट पडा ।

बोधिसत्त्व ने वृक्ष की शाखा पर खडे होकर कहा—"भो ! यदि तुम धनी

---

[१] देवता-मंगलिका, जिनका विश्वास हो कि देवताओ की पूजा करने से कल्याण होगा ।

होते तो मुझे मधुर खाजा देते, लेकिन तुम दरिद्र हो। मैं तुम्हारा पूआ न खाकर और क्या खाऊँगा? मेरे हिस्से को नष्ट न करो।"

इतना कह यह गाथा कही—

यथन्नो पुरिसो होति तथन्ना तस्स देवता,
आहरेत फणं पूव मा मे भागं विनासय॥

[जैसा आदमी, वैसा देवता। इस चूरे के पूए को ला। मेरे हिस्से को नष्ट मत कर।]

यथन्नो, जैसा भोजन **तथन्ना**, उस आदमी का देवता भी वैसे ही भोजन का खानेवाला होता है। **आहरेत कलं पूवं**—इस चूरे के पके पूए को ला। मेरे हिस्से को नष्ट न कर।

उसने वापिस लौट बोधिसत्त्व को देख बलि दी। बोधिसत्त्व ने उसमें से सार ग्रहणकर पूछा—"भले आदमी! तू किसलिये मेरी सेवा करता है?"

"स्वामी! मैं दरिद्र हूँ! चाहता हूँ कि दरिद्रता से मुक्त हो जाऊँ। इसीलिये सेवा करता हूँ।"

"भले आदमी! चिन्ता मत कर। तूने जो सेवा की है वह कृतज्ञ की, कृत-उपकार को न भूलनेवाले की की है। इस अरण्ड के चारों ओर खजाने से भरे घड़े गर्दन से गर्दन मिलाकर रक्खे हैं। तू राजाको कह, गाडियों में धन लदवाकर राजा-ङ्गण में डलवा। राजा प्रसन्न होकर तुझे श्रेष्ठी का पद दे देगा।"

यह कहकर बोधिसत्त्व अन्तर्धान हो गये। उसने वैसा ही किया। राजा ने उसे सेठ के पद पर नियुक्त किया। इस प्रकार वह बोधिसत्त्व (की कृपा) से महासम्प-त्तिशाली हो स्वकर्मानुसार परलोक गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, जातक का मेल बैठाया। उस समय जो दरिद्र था, वही इस समय दरिद्र। अरण्ड-वृक्ष का देवता तो मैं ही था।

११०. सब्बसंहारक पञ्हो जातक

"सब्ब संहारको नत्थि"—यह सब्बसंहारकपञ्ह (जातक) सारी की सारी उम्मग जातक[1] में प्रगट होगी।

[1] महाउमग्ग जातक (५४६)।

पहला परिच्छेद

१२. हंसी वर्ग

१११. गद्रभ पञ्हो जातक

"हंसी त्व मञ्ञसि" यह गद्रभपञ्ह (जातक) भी उम्मग्ग जातक[1] में ही आयेगी।

११२. अमरादेवी पञ्ह जातक

"येन सत्तुविलेङ्ग च" यह अमरादेवी पञ्ह (जातक) भी वही (उम्मग्ग जातक में) आयेगी।

११३. सिगाल जातक

"सद्दहासि सिगालस्स ."यह गाथा शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे मे कही।

---

[1]उम्मग्ग जातक (५४६)।

क. वर्तमान कथा

उस समय धर्म-सभा में बैठे हुए भिक्षु बातचीत कर रहे थे—"आयुष्मानो! देवदत्त पाँच सौ भिक्षुओ को लेकर गयाशीर्ष चला गया। वहाँ जाकर उसने उन भिक्षुओ को कहा कि श्रमण गौतम, जो करता है वह धर्म नही है बल्कि जो मैं करता हूँ वह धर्म है। इस प्रकार उन्हे अपने मत का बना, यथास्थान झूठा आचरण कर सघ में फूट डाल एक सीमा[1] में दो उपोसथ[2] (-गृह) बना दिए।" यूँ वे देवदत्त के दोष कह रहे थे। भगवान् ने आकर पूछा— "यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?"

"यह बातचीत।"

"भिक्षुओ! देवदत्त केवल अभी झूठ वोलनेवाला नही। यह पूर्व-जन्म मे भी झठ वोलनेवाला ही रहा है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व श्मशान-बन मे एक वृक्ष-देवता होकर उत्पन्न हुए। उस समय बाराणसी में नक्षत्र की घोषणा हुई। मनुष्यो ने यक्षो को बलि देने की इच्छा से चौराहो और दूसरे रास्तो पर मत्स्य-मास आदि बिखेर कर खप्परो मे शराब रक्खी।

एक गीदड आधी रात के समय चुपके से नगर में दाखिल हुआ। मत्स्य-मास और शराब पीकर व पुन्नाग-वृक्षो के बीच जाकर सो रहा। सोते सोते सूर्य निकल आया। आँख खोलने पर प्रकाश हुआ देख उसने सोचा—"अब मैं नगर से निकल नही सकता।" इसलिए वह रास्ते के पास जाकर छिपकर लेट रहा। दूसरे मनुष्यो को आते जाते देख वह कुछ नही बोला, लेकिन एक ब्राह्मण को मुँह धोने के लिये जाते देख उसने सोचा—"ब्राह्मण धन के लोभी होते है। मैं ऐसा उपाय करूँ कि यह ब्राह्मण मुझे अपनी चादर मे छिपा, गोद मे ले जाकर नगर से बाहर कर दे।" उसने मनुष्य भाषा में कहा—"ब्राह्मण।"

---

[1] सीमित-प्रदेश।

[2] जहाँ भिक्षु एकत्र हो सांघिक-कृत्य करते है।

ब्राह्मण ने लौटकर कहा—"मुझे कौन बुला रहा है ?"

"ब्राह्मण ! मै।"

"किस कारण ?"

"ब्राह्मण, मेरे पास दो सौ कार्षापण है। यदि मुझे गोद मे ले चादर से ढक जिसमे कोई न देखे, इस प्रकार नगर से निकल सके, तो मै तुझे वह कार्षापण दे दूँगा।"

धन के लोभ से ब्राह्मण 'अच्छा' कह स्वीकार कर उस गीदड को वैसे ले नगर से निकल थोडा आगे गया। गीदड ने पूछा—"ब्राह्मण यह कौन सी जगह है ?"

"अमुक जगह।"

"और भी थोडा आगे तक ले चल।"

इस प्रकार बार बार कहकर उसे महाश्मशान तक ले जा, वहाँ पहुँचकर कहा—"मुझे यहाँ उतार दे।" ब्राह्मण ने उसे उतार दिया।

"अच्छा तो ब्राह्मण चादर फैला।"

ब्राह्मण ने धन-लोभ से चादर फैला दी।

'तो इस वृक्ष की जड में खोद' कह गीदड ब्राह्मण को जमीन खोदने में लगा, उसकी चादर पर चढ उसके चारो कोनो तथा बीच में—पाँच जगहो पर पाखाना कर, उसे लवेड श्मशान-वन में दाखिल हो गया।

बोधिसत्त्व ने वृक्ष की शाखा पर खडे हो यह गाथा कही—

सद्दहासि सिगालस्स सुरापीतस्स ब्राह्मण,
सिप्पिकानं सतं नत्थि कुतो कंससता दुवे॥

[ब्राह्मण ! तू शराब पिए हुए गीदड का विश्वास करता है। उसके पास सौ सीपियाँ भी नही, दो सौ कार्षापण तो कहाँ होगे।]

सद्दहासि या सद्दहेसि। इसका मतलब है कि विश्वास करता है। **सिप्पिकानं सतं नत्थि**—इसके पास सौ सीपियाँ भी नही है। **कुतो कंससता दुवे** दो सौ कार्षापण तो कहाँ होगे।

बोधिसत्व यह गाथा कह 'हे ब्राह्मण ! जा अपनी चादर धोकर, स्नान करके अपना काम कर' कह अन्तर्धान हो गए।

ब्राह्मण वैसा कर 'हाय ठगा गया' सोचता हुआ चला गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, जातक का मेल बैठाया।

उस समय गीदड़ देवदत्त था। हाँ, वृक्ष-देवता मैं ही था।

११४. मितचिन्ती जातक

"बहुचिन्ती अप्पचिन्ती च" यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय दो वृद्ध स्थविरों के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उन्होंने एक जनपद के जंगल में वर्षा-काल बिताकर सोचा कि अब शास्ता के दर्शन के लिए जायेंगे, रास्ते के लिये आवश्यक सामग्री तैयार कर 'आज जाते हैं, कल जाते हैं' करते करते एक मास बिता दिया। फिर दुबारा सामग्री तैयार कर 'आज जाते हैं, कल जाते हैं' करते करते एक मास और बिता दिया। इसी प्रकार अपने आलस्य और निवास-स्थान से मोह होने के कारण तीसरा महीना भी बिता दिया। तीन महीने गुजारकर जेतवन पहुँच, अपने योग्य-स्थान पर पाँच चीवर रख बुद्ध के दर्शनों को गए। भिक्षुओं ने पूछा—"आयुष्मानो ! आप बुद्ध की सेवा में बहुत दिन के बाद उपस्थित हुए। इतनी देर क्यों हुई ?" उन्होंने कारण बताया। उनका वह आलस्य तथा सुस्ती करने का स्वभाव भिक्षुओं पर प्रगट हो गया। भिक्षुओं ने धर्म सभा में उन स्थविरों के आलसी स्वभाव की चर्चा चलाई। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बात कर रहे थे ?" "यह बातचीत" कहने पर उन स्थविरों को बुलवाकर पूछा—

"भिक्षुओ, क्या तुम सचमुच आलसी हो ?"

"भन्ते ! सचमुच।"

"भिक्षुओ ! न केवल अभी आलसी हो, पूर्वजन्म में भी आलसी ही थे और निवास-स्थान के प्रति मोह था" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वाराणसी नदी में तीन मच्छ थे। उनके नाम थे वहुचिन्ती, अल्प-चिन्ती और मित-चिन्ती। वे जगल (की नदी) मे वस्ती के पास आ गए। मितचिन्ती ने वाकी दोनो को कहा—"यह वस्ती है। यहाँ सशकित रहने की तथा भयभीत रहने की जरूरत है। मछुवे लोग नाना प्रकार के मछली पकडने के जाल आदि फेंककर मछलियाँ पकडते है। हम जगल को ही चलें।"

वाकी दोनो जनो ने आलस्य के कारण और लोभ के कारण 'आज चले, कल चले' कहते हुए तीन महीने गुजार दिए। मछुओ ने नदी में जाल फेंका। वहुचिन्ती और अल्प-चिन्ती खाने की चीज को ग्रहण करते हुए आगे आगे जाते थे। वे अपनी मूर्खता के कारण जाल की गन्ध का ख्याल न कर जाल में ही जा फँसे। मितचिन्ती ने पीछे आते हुए जाल की गन्ध सूघकर समझ लिया कि वे दोनो जाल में जा फँसे। उसने सोचा—इन दोनो आलसी तथा मूर्खों को जीवन-दान दूँ। यह सोच वह वाहर की तरफ से जाल में घुस जाल फाड कर निकलते हुए की तरह पानी को आलोडते हुए जाल के आगे गिरा। फिर पिछली तरफ से फाड़कर निकलते हुए की तरह पानी को आलोडते हुए पिछली तरफ गिरा। मछुओ ने यह समझकर कि मच्छ जाल फाडकर निकल गए जाल के सिरो को खोल फेंक दिया। वे दोनो मच्छ जाल से छूटकर पानी में जा पडे। इस प्रकार मितचिन्ती ने उनके प्राण वचाए।

शास्ता ने पूर्व-जन्म की यह कथा कह वुद्ध होने पर यह गाथा कही—

वहुचिन्ती अप्पचिन्ती च उभो जाले अवज्झरे
मितचिन्ती अमोचेसि उभो तत्थ समागता॥

[वहुचिन्ती और अप्पचिन्ती दोनो जाल मे फँस गए। मितचिन्ती ने दोनो को छुडा दिया। वे दोनो उसके साथ आ गए।]

वहुचिन्ती, वहुत चिन्तन करनेवाला होने से अथवा वहुत सकल्प-विकल्प वाला होने से वहुचिन्ती नाम हुआ। वाकी दोनो भी इसी प्रकार है। उभो तत्थ

समागता, मितचिन्ती के कारण प्राण बचाकर वे दोनो फिर पानी में मितचिन्ती के साथ आ गए।

इस प्रकार शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-) सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। (आर्य-) सत्यो की समाप्ति पर स्थविर भिक्षु स्रोतापन्न हुए।

उस समय के बहुचिन्ती और अल्प-चिन्ती यह दोनो थे, मितचिन्ती तो मैं ही था।

११५. अनुसासिक जातक

"यायञ्ञमनुसासति ." यह गाथा शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक उपदेश देनेवाली भिक्षुणी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह श्रावस्ती-निवासिनी एक कुल मे उत्पन्न हुई थी। जिस समय से प्रव्रजित होकर उपसम्पन्न हुई, उस समय से लेकर वह श्रमण-धर्म मे न लग चीजो की लोभी होने से नगर के एक ऐसे हिस्से मे जहाँ दूसरी भिक्षुणियाँ नही जाती थी, भिक्षा मांगने जाती। मनुष्य उसे बढिया भोजन देते। उसने रस-तृष्णा के कारण सोचा, यदि दूसरी भिक्षुणियाँ भी उसी ओर भिक्षा मागने जाएँगी, तो मेरी प्राप्ति मे फरक पडेगा। इसलिए मुझे ऐसा करना चाहिए, जिससे दूसरी भिक्षुणियाँ उधर भिक्षा मागने न जाएँ।

वह भिक्षुणियो के निवास-स्थान पर गई और बोली—"बहनो! अमुक जगह पर चण्ड-हाथी है, चण्ड-घोडा है, चण्ड-कुत्ता है। वह खतरनाक जगह है। वहाँ पिण्ड-पात के लिए मत जाएँ।" उसकी बात सुन एक भिक्षुणी ने भी उधर गर्दन निकालकर नही देखा।

उसके एक दिन उधर भिक्षा माँगने के समय, जब वह जल्दी से एक घर मे घुसने जा रही थी एक मरखने मेढे ने उसे टक्कर मारकर उसकी जाँघ की हड्डी तोड दी। मनुष्यो ने दौडकर उस दो टुकडे हुए जाघ की हड्डी को एक मे बाँधा और उसे चारपाई पर लिटाकर भिक्षुणी-आश्रम लाए। 'यह दूसरी भिक्षुणियो को उपदेश देती थी, स्वय उधर जाकर जाँघ की हड्डी तुडाकर आई है' कह भिक्षुणियो ने हँसी उडाई। यह बात शीघ्र ही भिक्षु-सघ तक पहुँच गई।

एक दिन धर्म-सभा मे बैठे हुए भिक्षु उसकी निन्दा कर रहे थे—आयुष्मानो! दूसरो को उपदेश देनेवाली भिक्षुणी स्वय उधर जाकर मरखने मेढ़े से जाँघ की हड्डी तुडा लाई है।

शास्ता ने आकर पूछा—'भिक्षुओ, बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?' 'यह बातचीत' कहने पर 'भिक्षुओ, केवल अब ही नही, पहले भी यह दूसरो को तो उपदेश देती रही है, लेकिन स्वय तदनुसार आचरण न करने के कारण दु ख भोगती रही है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व जंगल में पक्षी की योनि मे जन्म ग्रहण कर बडे होने पर सैकड़ो पक्षियो को ले हिमालय को गए। उनके वहाँ रहते समय चण्ड-स्वभाव की एक चिडिया राज-मार्ग मे जाकर पडी रहती, वहाँ उसे गाडियो पर से गिरे हुए धान मूंग आदि के दाने मिलते। उन्हे पाकर वह सोचती कि अब ऐसा उपाय करूँ जिससे दूसरे पक्षी इधर न आयें। वह पक्षियो को उपदेश देती—'राज-मार्ग बडा खतरनाक है। हाथी, घोडे और मरखने बैलोवाली गाडिया आती जाती है। शीघ्रता से उडा भी नही जा सकता। वहाँ नही जाना चाहिए।' पक्षियो ने उसका नाम अनुशासिका रख दिया।

एक दिन वह राजपथ पर चुग रही थी। जोर से आती हुई गाडी के शब्द को सुन उसने पीछे मुँह कर देखा। 'अभी दूर है' सोच, चुगती ही रही। हवा की गति से गाडी शीघ्र ही आ पहुँची। वह उड न सकी। पहिये से उसके दो टुकडे हो गए।

बोधिसत्त्व ने पक्षियो के लौटने पर उनकी गिनती करते समय उसे न देख कर कहा—अनुशासिका दिखाई नही देती, उसे खोजो। पक्षियो ने खोज करते

हुए, उसे राजपथ पर दो टुकडे हो पडे देखा। बोधिसत्त्व से आकर निवेदन किया। 'वह दूसरो को जाने से रोकती थी लेकिन स्वय वहाँ चुगने जाकर दो टुकडे हुई' कह यह गाथा कही—

यायञ्ञमनुसासति सय लोलुपचारिणी,
साय विपक्खिका सेति हता चक्केनसाळिका॥

[जो दूसरो को उपदेश देती थी लेकिन स्वय थी लोभी, वह यह चिडिया पहिये के नीचे आकर पख-रहित होकर मरी पडी है।]

"यायञ्ञमनुसासतीति इसमे 'य' केवल दो पदो की सन्धि के कारण है। अर्थ है, जो दूसरों को उपदेश देती है। सयं लोलुप्पचारिणी, अपने लोभी स्वभाव वाली साय विपक्खिका सेति, वह पखरहित होकर राजपथ पर पडी है। हता चक्केन साळिका, गाडी के पहिये से मारी गई चिडिया।

शास्ता ने यह धर्म्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय उपदेश देनेवाली चिडिया यह उपदेश देनेवाली भिक्षुणी ही थी। ज्येष्ठ-पक्षी तो मै ही था।

११६. दुब्बच जातक

"अतिकरमकराचरिय" यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक बात न माननेवाले भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह कथा नवे निपात मे गिज्झ जातक[1] में आयेगी। शास्ता ने उस भिक्षु को बुला, 'भिक्षु, तू केवल अभी बात न माननेवाला नही है; बल्कि पहले भी तूने

---

[1] गिज्झ जातक—नौवें निपात की पहली जातक।

पण्डितो का कहना न करके शक्ति के आघात से जान गँवाई' कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने **लंघटन**[1] के घर में जन्म लिया। बड़े होने पर वह बुद्धिमान तथा व्यवहारकुशल हुआ। वह एक नट से शक्ति लाँघने की कला सीखकर आचार्य के साथ हुनर दिखाते हुए घूमता था। बोधिसत्त्व का उस्ताद चार ही शक्तियो के लाँघने का हुनर जानता था, पाँच के लाँघने का नही।

एक दिन उसने एक गामडे में तमाशा दिखाते समय शराब के नशे में मस्त होकर, 'पाँच शक्तियो को लाघूँगा' कह, उन्हें क्रम से रखा। बोधिसत्त्व ने कहा—"आचार्य, आप पाँच शक्तियो के लाँघने का हुनर नही जानते, इसलिए एक शक्ति को हटा दें। यदि पाँचो को लाघेंगे तो पाँचवी शक्ति से विधकर मरेंगे।"

आचार्य उस समय विलकुल मदहोश था। इसलिए उसने कहा—"तू मेरी सामर्थ्य को नही जानता।" इस प्रकार बोधिसत्त्व के उपदेश का अनादर कर, चार शक्तियो को लाँघ पाँचवी को लाँघते समय डण्ठल से महुए के फूल के गिरने की तरह, चीखता हुआ गिरा। उसे देख बोधिसत्त्व ने कहा—"यह पण्डितो का कहना न कर इस आपत्ति में पडा।" इसके वाद यह गाथा कही—

अतिकरमकराचरिय ! मय्हम्पेत न रुच्चति,
चतुत्ये लंघयित्वान पचमियास्मि[2] आवुतो॥

[आचार्य, आज तुमने अति कर दी। मुझ तक को यह अच्छा नही लगा। चारो लाँघकर पाँचवी में गिर पडे।]

अतिकरमकराचरिय, आचार्य, आज तुमने अति कर दी। अर्थात् अपनी शक्ति से वाहर काम किया। मय्हम्पेतं न रुच्चति, मुझ आपके शिष्य तक को यह अच्छा नही लगा। इसीलिए मैंने पहले कह दिया था। चतुत्येलघयित्वान, चौथे शक्ति-

---

[1] लघटन=वाजीगर।

[2] 'पञ्चमायसि' पाठ भी है।

फलक पर बिना गिरे लाँघकर, **पंचमियांस्मि आवुतो,** पण्डितो की बात न मानकर पाँचवी शक्ति पर गिर पड़े।

इतना कह आचार्य को शक्ति पर से उठा, जो करना उचित था, किया।

शास्ता ने इस पूर्व जन्म की कथा को ला जातक का मेल बैठाया—उस समय का आचार्य, यह बात न माननेवाला भिक्षु था, शिष्य तो मै ही था।

११७. तित्तिर जातक

"अच्चुग्गता अतिबलता   "यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय कोकालिक[1] के बारे में कही थी।

क. वर्तमान कथा

उसकी वर्तमान कथा तेरहवे निपात की तक्कारिय जातक[2] में प्रगट होगी। शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, न केवल अभी कोकालिक अपनी वाणी के कारण नष्ट हुआ है, पहले भी नष्ट हुआ है।

इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने उदीच्य ब्राह्मण कुल मे जन्म ग्रहण कर बडे होने पर तक्षशिला जा सब विद्याएँ सीखी। फिर काम-भोग के जीवन को छोड ऋषि-प्रब्रज्या के अनुसार प्रब्रजित हो पाँच अभिज्ञा

---

[1] कोकालिक देवदत्त के पक्ष का एक संघ-भेदक था।

[2] तक्कारिय जातक (४८१)।

तथा आठ समापत्तियो को प्राप्त किया। हिमवन्त प्रदेश के सभी ऋषियो ने उन्हें अपना उपदेशक-आचार्य बनाया और उनके आस-पास रहने लगे। वे भी पाँच सौ ऋषियो के उपदेशक-आचार्य बन ध्यान मग्न हो हिमवन्त मे रहते थे।

उस समय पाण्डु-रोग से पीडित एक तपस्वी कुल्हाडी लेकर लकडियाँ फाड़ रहा था। उसके पास बैठे एक वाचाल तपस्वी ने 'यहाँ पर मारें, यहाँ पर मारें' बार बार कहकर उस तपस्वी को क्रोधित कर दिया। उसने क्रोध मे आकर कहा, 'तू मुझे अब लकडी चीरना सिखाना चाहता है', और अपनी तेज कुल्हाडी उठा उसे एक ही प्रहार मे मार डाला।

बोधिसत्त्व ने उसका शरीर-कृत्य किया।

उसी समय आश्रम से कुछ ही दूर वल्मी पर एक तित्तिर रहता था। वह सुबह शाम वल्मी के ऊपर खडा हो बडे ज़ोर से आवाज लगाता। उसे सुन एक शिकारी ने सोचा कि तित्तिर होगा और शब्द के पीछे पीछे जा, उसे मार कर ले गया।

बोधिसत्त्व ने उसकी आवाज न सुनाई देती देख तपस्वियो से पूछा—उस जगह एक तित्तिर रहता था। उसकी आवाज नही सुनाई देती? उन्होंने बोधिसत्त्व को सब हाल कहा। बोधिसत्त्व ने ऊपर की दोनो बातो को मिला ऋषियो के सामने यह गाथा कही—

अच्चुग्गता अतिबलता अतिवेलं पभासिता,
वाचा हनति दुम्मेध तित्तिर वातिवस्सित॥

[अति-ऊँची, अति जोर से अत्यधिक देर तक बोली गई वाणी मूर्ख आदमी को वैसे ही मार डालती है जैसे जोर से चिल्लाने से तित्तिर मारा गया।]

अच्चुग्गता, अति उद्गता। अतिबलता, बार बार बोलने से बहुत बलशाली हो गई। अतिवेल पभासिता उचित से बहुत ज्यादा देर तक भाषित। तित्तिरं वातिवस्सित, जैसे बहुत बोलने से तित्तिर मारा गया, वैसे ही इस प्रकार की वाणी मूर्ख आदमी को मार गिराती है।

इस प्रकार वोधिसत्त्व ऋषियो को उपदेश दे चारो ब्रह्म-विहारो की भावना कर ब्रह्मलोक गामी हुए।

शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी कोकालिक अपनी वाणी के कारण विनष्ट हुआ, किन्तु पहले भी नष्ट हुआ' कहा, और यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय दुर्वचन बोलनेवाला तपस्वी कोकालिक हुआ। ऋषिगण बुद्ध-परिषद। और ऋषि-गण का शास्ता तो मै था ही।

११८. वट्टक जातक

"नाचिन्तयन्तो पुरिसो "यह गाया शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय उत्तर नाम के श्रेष्ठि के पुत्र के वारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती मे उत्तर श्रेष्ठि महाधनवान था। उसकी भार्य्या की कोख में एक बालक पैदा हुआ। वह पुण्यवान् था, ब्रह्मलोक से च्युत होकर यहाँ जन्म ग्रहण किया था। वड़ा होने पर वह ब्रह्मा की तरह सुन्दर वर्ण को हुआ।

एक दिन श्रावस्ती मे कार्तिक महोत्सव की घोषणा होने पर सभी लोग उत्सव मनाने मे मस्त थे। उस तरुण के मित्रो—सभी दूसरे श्रेष्ठि-पुत्रो की पत्नियाँ थी। उत्तर श्रेष्ठि पुत्र बहुत समय तक ब्रह्मलोक में रहा था, इसलिए उसकी कामभोग में आसक्ति न थी।

उसके मित्रो ने सोचा कि उत्तर श्रेष्ठि पुत्र के लिए भी एक स्त्री लाकर उत्सव मनाएँगे। वे उसके पास जाकर बोले "सौम्य ! इस नगर मे कार्तिक रात्रि का उत्सव घोषित हुआ है। तुम्हारे लिए भी एक स्त्री लाकर उत्सव मनाएँ ?"

'मुझे स्त्री की आवश्यकता नही है' कहने पर भी वार वार आग्रह करके स्वी-

कार करवा लिया। तव एक वेश्या को सव अलकारो से सजा, उसके घर ले जाकर उसे श्रेष्ठिपुत्र का सोने का कमरा दिखाकर कहा कि तू श्रेष्ठिपुत्र के पास जा। उसे कमरा दिखा वे स्वय चले गए।

उसके शयनागार मे प्रविष्ट होने पर भी श्रेष्ठिपुत्र ने न उसकी ओर देखा न वातचीन की। उसने सोचा यह मेरे जैसी सुन्दर उत्तम-विलास-युक्त स्त्री की ओर न देखता है, न वातचीत करता है। इसे अव स्त्री-लीला मे देखने पर मजवूर करूँगी तव वह स्त्री लीला दिखाते हुए प्रसन्न-मुख की भाँति आगे के दाँत निकालकर मुस्कराई। श्रेष्ठिपुत्र ने देखा, तो दाँतो की हड्डियाँ उसके लिए ध्यान का विषय हो गई। उसमें अस्थि-सञ्ज्ञा पैदा हुई। उसे वह सारा शरीर हड्डियो के पञ्जर की तरह मालूम देने लगा। उसकी मजदूरी दे, उसने कहा 'जाओ'।

उसके घर से निकलने पर वीच-वाजार मे खडा देख एक ऐश्वर्य्यशाली आदमी उसे खर्चा दे अपने घर ले गया। सप्ताह वीतने पर उत्सव समाप्त हुआ। वेश्या की माता ने जव देखा कि लडकी नही आई तो वह श्रेष्ठिपुत्रो के पास गई और पूछा कि वह कहाँ है? उन्होने उत्तर श्रेष्ठिपुत्र के यहाँ जाकर पूछा कि वह कहाँ है? उसने कहा "उसी समय खर्चा देकर विदा कर दिया।" उसकी माँ रोने लगी। 'मै अपनी लडकी को नही देखती। मेरी लडकी लाओ' कहते हुए वह उत्तर-श्रेष्ठिपुत्र को ले राजा के पास गई।

राजा ने मुकद्दमे का फैसला करते हुए पूछा—

"इन श्रेष्ठिपुत्रो ने तुझे वेश्या लाकर दी?"

"देव! हाँ।"

"अव वह कहाँ है?"

"नही जानता हूँ। उसी समय उसे विदा कर दिया था।"

"अव उसे लिवा आ सकता है?"

"देव! नही सकता हूँ।"

"यदि नही ला सकता है, तो इसे राज-दण्ड दो।"

उसके हाथ पीछे की तरफ वाँध राज-दण्ड देने के लिये उसे पकडकर ले गए। वेश्या को न ला सकने के कारण राजा श्रेष्ठिपुत्र को राज-दण्ड दे रहा है, सुन सारे नगर में हल्ला मच गया। लोग छाती पर हाथ रखकर 'स्वामी! यह क्या आपके योग्य है?' कहते हुए रोने लगे। सेठ भी रोता पीटता पुत्र के पीछे पीछे जा

रहा था। श्रेष्ठिपुत्र सोचने लगा, 'यह जो मुझे इस प्रकार का दु ख हुआ, यह घर मे रहने ही के कारण हुआ, यदि मै इससे मुक्त हुआ तो गौतम सम्यक् सम्बुद्ध के पास प्रव्रजित होऊँगा।'

वेश्या ने हल्ला सुना तो पूछा यह क्या हल्ला है? समाचार मालूम होने पर वह जल्दी मे उतर "स्वामी! हटें हटें" मुझे राज-पुरुषो को देखने दे कहती हुई राज-पुरुषो के पास पहुँची। राज-पुरुषो ने उसे देख माता को सौंपा और श्रेष्ठि-पुत्र को मुक्त कर चले गए।

श्रेष्ठिपुत्र मित्रो सहित नदी पर गया। वहाँ सिर से स्नान कर, घर जा, प्रात-राशन कर, माता पिता को प्रव्रज्या की बात जता, चीवर-वस्त्र ले बडी भारी मण्डली के साथ बुद्ध के पास जा प्रणाम कर प्रव्रज्या की याचना की। प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा प्राप्त कर वह योगाभ्यास मे लग विपश्यना की वृद्धि कर थोडी ही देर में अर्हत्व मे प्रतिष्ठित हुआ।

एक दिन धर्म-सभा मे इकट्ठे हुए भिक्षु श्रेष्ठिपुत्र की प्रशसा कर रहे थे—"आयुष्मानो! श्रेष्ठिपुत्र अपने पर आई आपत्ति देख बुद्ध-शासन की महिमा जान 'इस दु ख से मुक्त होने पर प्रव्रजित होऊँगा' सोच, उस सुचिन्तन के फलस्वरूप मुक्त हो, प्रव्रजित हो अर्हत्व मे प्रतिष्ठित हुआ।" शास्ता ने आकर पूछा—'भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?'

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ! केवल श्रेष्ठिपुत्र ही अपने पर आपत्ति पडने पर इस उपाय से इस दु ख से मुक्त होऊँगा" सोच मृत्यु-भय से मुक्त नही हुआ, पूर्व समय मे बुद्धिमान लोग भी अपने पर आपत्ति पडने पर 'इस उपाय से इस दु ख से मुक्त होगे' सोच मृत्यु-भय के दु ख से मुक्त हुए। (यह कह) पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय जन्म-मरण के चक्कर मे पडे हुए बोधिसत्त्व एक बार बटेरे के जन्म मे पैदा हुए।

उस समय बटेरो का एक शिकारी जगल से बहुत से बटेरे पकड़ ले जाकर, घर मे रख उन्हें दाना खिला, खरीदारो से मूल्य ले उनके हाथ बेच अपनी जीविका चलाता था। वह एक दिन बहुत से बटेरो के साथ बोधिसत्त्व को भी पकड़ लाया।

बोधिसत्त्व ने सोचा—यदि मैं इसका दिया हुआ चोगा खाऊँगा पीऊँगा तो यह मुझे आये हुए मनुष्यो के हाथ बेच देगा। यदि नही खाऊँगा तो मैं कुम्हला जाऊँगा। मुझे कुम्हलाया हुआ देखकर मनुष्य नही खरीदेंगे। इस प्रकार मेरा कल्याण होगा। मैं यही उपाय करूँगा।

उसने वैसा ही किया, जिससे वह सूखकर केवल हड्डी और चमडी मात्र रह गया। मनुष्य उसे देखकर नही खरीदते थे। बोधिसत्त्व को छोड शेष बटेरो के समाप्त हो जाने पर, चिडीमार पिंजरे को ला दरवाजे पर रख (उसमे से) बोधिसत्त्व को हाथ पर ले देखने लगा कि इस बटेरे को क्या हुआ ? उसे असावधान देख बोधिसत्त्व ने पख फैलाए और उडकर जगल जा पहुँचा।

बटेरो ने बोधिसत्त्व को देखकर पूछा—"पता नही रहा कि कहाँ गए थे ?"

"मुझे चिडीमार ने पकड लिया था।" "कैसे मुक्त हुए ?" पूछने पर बोधिसत्त्व ने कहा मैंने उसका दिया हुआ दाना-पानी नही ग्रहण किया, और मुक्त होने का तरीका सोचकर छूट गया। (इतना कह) यह गाथा कही—

नाचिन्तयन्तो पुरिसो विसेसमधिगच्छति,
चिन्तितस्स फल पस्स मुत्तोस्मि वधवन्धना॥

[जो आदमी विचार नही करता, वह विशेप (=मोक्ष) को प्राप्त नही होता। विचार करने के फल को देखो मैं मरण-वन्धन से मुक्त हो गया।]

साराश यह है। **पुरिसो,** दु ख मे पड़कर मैं इस उपाय से मुक्त होऊँगा, इस प्रकार न विचार करनेवाला अपने दु ख से मुक्ति स्वरूप **विसेस नाधि गच्छति।** अब मैंने जो विचार से काम लिया, उसके फल को देखो। उसी उपाय से मैं **मुत्तोस्मि वधवन्धना,** मैं मरण से तथा वन्धन से मुक्त हुआ।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने अपनी कृति का बखान किया।

शास्ता ने इस धर्मदेशना को ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मरने से मुक्त हुआ बटेर मैं ही था।

११९. अकालरावी जातक

"अमातापितरि संवद्धो" यह धर्मदेशना शास्ता ने जेतवन मे रहते समय एक असमय शोर करनेवाले भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस श्रावस्ती-निवासी तरुण ने (वुद्ध-) शासन मे प्रव्रजित हो, न कर्तव्य सीखे न शिक्षा ग्रहण की। वह नही जानता था कि इस समय मुझे (झाड़ू लगाना आदि) काम करने चाहिए, इस समय मुझे सेवा के काम करने चाहिए, इस समय पाठ करना चाहिए। पहले याम में भी, बीच के याम मे भी और पिछले याम मे भी जब जब आँख खुलती, वह शोर करता था। भिक्षुओ को नीद न आती। धर्मसभा मे एकत्र हुए भिक्षु उसकी निन्दा करते—"आयुष्मानो! वह भिक्षु इस प्रकार के रतन[1] शासन मे प्रव्रजित हो कर भी, न कर्तव्य जानता है, न शिक्षा जानता हे, न समय जानता है और न असमय जानता है।"

शास्ता ने आकर पूछा "भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या वातचीत कर रहे हो?" "अमुक वातचीत" कहने पर कहा—"भिक्षुओ! यह केवल अभी असमय शोर मचाने वाला नही है, पहले भी असमय हल्ला करनेवाला ही रहा है। समय असमय न जानने के कारण ही इसकी गरदन मरोडी जाकर यह मृत्यु को प्राप्त हुआ।"

इतना कह पूर्व जन्म की वात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उदीच्य ब्राह्मण-कुल मे जन्म ग्रहण कर सयाने होने पर, सव शिल्पो मे पारङ्गत हो, चारो दिशाओ मे प्रसिद्ध आचार्य वन पाँच सौ शिष्यो को शिल्प वँचवाते (सिखाते) थे।

---

[1] वुद्ध, धर्म तथा सघ तीन रत्न है।

उन शिष्यो के पास समय पर बोलनेवाला एक मुर्गा था। वे उसके बाँग देने पर उठकर शिल्प सीखते थे। वह मर गया। तब वे कोई दूसरा मुर्गा ढूँढते फिरते थे। एक शिष्य ने श्मशान वन में लकडी इकट्ठी करते समय एक मुर्गे को देख, उसे लाकर पिंजरे में बन्द कर, पाला। वह श्मशान मे बडा हुआ होने मे यह न जानता था कि किस समय बोलना चाहिए। कभी आधी रात को बोलता, कभी अरुण उदय होने पर। शिष्य उसके बहुत रात रहते बोलने पर उसी समय शिल्प सीखना आरम्भ करने के कारण अरुणोदय तक न सीख सकते थे। नीद के मारे सीखा हुआ भी भूल जाते। बहुत प्रभात होने पर बोलने के समय पाठ करने का अवकाश ही न रहता।

शिष्यो ने सोचा, यह या तो बहुत रात रहने पर बोलता है, या बहुत दिन चढने पर। इस (की मदद) से हमारा शिल्प (सीखना) समाप्त न होगा। यह सोच उसकी गर्दन मरोड उसे मार डाला। फिर आचार्य के पास जाकर कहा कि हमने असमय शोर मचानेवाले मुर्गे को मार डाला।

आचार्य्य ने कहा कि वह अशिक्षित ही वृद्धि को प्राप्त हुआ था। इसी से मरा। इतना कह यह गाथा कही—

अमातापितरि सवद्धो अनाचरियकुले वसं,
नाय काल अकालं वा अभिजानाति कुक्कुटो॥

[न माता-पिता से शिक्षा ग्रहण करते हुए बढा, न आचार्य्य-कुल में ही रहा। यह मुर्गा न समय जानता था, न असमय।]

अमातापितरि संवद्धो, माता पिता के पास उनका उपदेश न ग्रहण करता हुआ बढा। अनाचरि कुले वस, कुल में भी न रहकर आचार्य-शिक्षा न ग्रहण करने के कारण असयमी। काल अकाल वा इस समय बोलना चाहिए, इस समय नही बोलना चाहिए, इस प्रकार यह मुर्गा समय असमय नही जानने के कारण ही मृत्यु को प्राप्त हुआ।

यह कथा सुना बोधिसत्त्व यावत आयु जीवित रहकर कर्मानुसार परलोक सिधारे। शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय असमय शोर मचानेवाला मुर्गा यह भिक्षु ही था। शिष्य बुद्ध-परिषद हुए। आचार्य्य तो मैं था ही।

१२०. बन्धनमोक्ख जातक

"अबद्धा तत्थ बज्झन्ति" यह (धर्मोपदेश) शास्ता ने जेतवन मे रहते समय चिञ्चमाणविका के बारे में कहा। उसकी कथा बारहवे निपात मे महापदुम जातक[1] में आएगी। उस समय शास्ता ने 'भिक्षुओ! चिञ्चमाणविकाने न केवल अभी मुझ पर झूठा इल्जाम लगाया है, पहले भी लगाया है,' कह पूर्व-जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व पुरोहित के घर मे जन्म ग्रहण कर सयाना होने पर पिता के मरने के बाद उसी राजा का पुरोहित हो गया।

उस राजा ने अपनी पटरानी को वर दिया था कि जो इच्छा हो माँग ले। उसने कहा, मुझे और वर दुर्लभ नहीं है, मैं यही चाहती हूँ कि अब इसके बाद आप किसी दूसरी स्त्री को कामुक-दृष्टि से न देखें। राजा ने अस्वीकार कर, लेकिन फिर फिर जोर देने से उसके कथन को अस्वीकृत न कर सकने के कारण स्वीकार कर लिया। उसके बाद राजा ने सोलह हजार नर्तकियो में से किसी एक स्त्री की ओर भी कामुक-दृष्टि से नही देखा।

उस समय राजा के इलाके मे बगावत फैली। इलाके के योधाओ ने विद्रोहियो (चोरो) के साथ दो तीन लडाइयाँ लड (राजा के पास) पत्र भेजा कि इसके आगे हम न लड सकेंगे। राजा ने वहाँ जाने की इच्छा से सेना एकत्र कर देवी को बुलवा

---

[1] महादुम जातक (४७२)।

कर कहा—"भद्रे ! मै इलाके मे जाता हूँ। वहाँ नाना प्रकार के युद्ध होते है। जय-पराजय भी अनिश्चित रहती है। वैसी जगहो में स्त्रियो को साथ ले चल सकना कठिन है। तू यही रह।" उसने कहा "देव ! मै यहाँ नहीं रह सकती।" राजा के वार वार मना करने पर बोली "अच्छा ! तो एक एक योजन पर पहुँच कर मेरा कुशल-समाचार जानने के लिए एक एक आदमी भेजना होगा।" राजा ने "अच्छा" कह स्वीकार किया।

वोधिसत्त्व को नगर मे छोड, वडी भारी सेना के साथ नगर से निकल राजा जाते हुए एक एक योजन पर एक एक आदमी को भेजता कि जाओ हमारा कुशल समाचार कह रानी के दु ख-सुख की खवर लाओ। वह हर आनेवाले आदमी से पूछती 'राजा ने तुझे किस लिए भेजा है?' 'तुम्हारा कुशल-समाचार जानने के लिए' कहने पर 'तो आओ' कह उसमें सहवास करती। राजा ने वत्तीस योजन मार्ग जाते हुए वत्तीस जनो को भेजा। उसने उन सभी के साथ वैसे ही किया। राजा ने इलाके को दवा, लोगो को निश्चिन्त कर लौटते समय भी उसी तरह वत्तीस आदमी भेजे। उसने उन वत्तीसो के साथ भी वैसे ही दुष्कर्म किया।

राजा ने (राजधानी मे) पहुँच विजय-पडाव[1] पर रुक वोधिसत्त्व को सूचना भेजी 'नगर को (स्वागत के लिए) तैयार करे।' वोधिसत्त्व सारे नगर के साथ राज-महल को भी तैयार कराते हुए रानी के निवास-स्थान पर गया। उसने वोधिसत्त्व का सुन्दर शरीर देख सयम न कर सकने के कारण कहा—"ब्राह्मण ! शय्या पर आ।" वोधिसत्त्व ने उत्तर दिया—"ऐसा मत कह। मेरे मन में राजा का गौरव भी है और मै पाप-कर्म से डरता भी हूँ। मै ऐसा नही कर सकता।"

"उन चौसठ सदेश-वाहको को तो न राजा का गौरव था, न वह पाप से डरते थे, तुझे ही राजा का गौरव है और तू ही (एक) पाप से डरनेवाला है?"

"हाँ, यदि उनको भी ऐसा होता, तो वह भी ऐसा न करते। मै तो जान वूझकर ऐसा दुस्साहस नही करूँगा।"

"वहुत क्यो वकवाद करता है, यदि मेरा कहना नही करेगा तो तेरा सिर कटवा दूँगी।"

---

[1] इलाके को जीतकर आने पर नगर से वाहर जो पडाव डाला जाता था, उसे 'जय खन्धावार' कहते थे।

"एक जन्म के सिर की बात क्या, यदि हजार जन्मो मे हर बार भी सिर कटे तो भी मैं ऐसा नही कर सकता ।"

"अच्छा देखूँगी" कह बोधिसत्त्व को डरा रानी अपने कमरे मे गई । वहाँ अपने शरीर पर नाखून की खरोंट के निशान बना, बदन पर तेल मल, मैले कुचैले कपडे पहन बीमारी का बहाना बना कर लेट रही और दासियो को आज्ञा दी कि जब राजा पूछे 'देवी कहाँ है ?' तो उत्तर देना 'बीमार है ।'

बोधिसत्त्व राजा की अगवानी के लिए गए । राजा ने नगर की प्रदक्षिणा कर प्रासाद पर चढ रानी को न देख पूछा—"देवी कहाँ है ?" "देव ! बीमार है ।" राजा ने रानी के कमरे मे प्रवेश कर उसकी पीठ मलते हुए पूछा "भद्रे ! तुझे क्या कष्ट है ?" रानी चुप रही । तीसरी बार (पूछने पर) राजा की ओर देखते हुए बोली—"राजन् ! तुम भी जीते हो ? मेरे जैसी स्त्री को भी स्वामी-वाली कहा जा सकता है ?"

"भद्रे ! बात क्या है ?"

"तुमने जिस पुरोहित को नगर की रक्षा का भार सौंपा, वह राजमहल मे तैयारी के काम से यहाँ आया और अपना कहना न करने वाली मुझे मारकर अपने मन की करके गया ।"

जिस प्रकार आग मे नमक तथा शक्कर डालने पर चट चट शब्द होता है, उसी प्रकार राजा क्रोध से चटचटाता हुआ रानी के कमरे से निकला और द्वारपालो तथा परिचारको को बुलवाकर आज्ञा दी—"अरे ! जाओ, पुरोहित की बाहे पिछली तरफ बाँधकर, उसे वध करने योग्य मनुष्य की तरह नगर से बाहर वध करने के स्थान पर ले जाकर उसका सिर काट दो ।"

उन्होने जल्दी से जाकर उसकी बाँहे पिछली तरफ करके बाँध, वध-भेरी बजवा दी । बोधिसत्त्व ने सोचा "उस दुष्ट देवी ने राजा को पहले से ही फोड लिया । अब मैं आज अपने बल से ही अपने को मुक्त करूँगा ।" उसने उन लोगो से कहा—

"भो ! तुम मुझे मारते हो, तो एक बार राजा के पास ले चल कर मारना ।"

"किसलिए ?"

"मैं राज कर्मचारी हूँ । मैंने बहुत कार्य्य किए है । मै अनेक गडे हुए खजानो को जानता हूँ । मै ही राज्य-सम्पत्ति की देखरेख करता रहा हूँ । यदि मुझे राजा को न

दिखाओगे, तो बहुत धन का नाश हो जाएगा। मुझे राजा को उसके धन की सूचना दे लेने पर, फिर जो करना हो करो।"

वे उसे राजा के पास ले गए। राजा ने उसे देखते ही कहा—"अरे ब्राह्मण! तूने मेरी भी शरम नहीं रक्खी? तूने क्यों ऐसा पापकर्म किया?"

"महाराज! मैं श्रोत्रिय कुल मे पैदा हुआ हूँ। मैंने कभी च्यूटी तक की भी जान नही ली। मैंने कभी तिनके की भी चोरी नही की। मैंने कभी कामुक दृष्टि से किसी की स्त्री की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। मैंने कभी हँसी मे भी झूठ नही बोला। मैंने कभी कुशाग्र से भी मद्य नही पिया। मैंने तुम्हारा कुछ अपराध नही किया। उस मूर्खा ने मुझे हाथ मे पकडा। मेरे इनकार करने पर वह अपना किया पाप प्रगट कर, मुझे कह कमरे मे चली गई। मै निरपराधी हूँ। हाँ, पत्र लेकर आने वाले चौसठ आदमी अपराधी है। देव! उन्हे बुलवा कर पूछे कि उन्होंने उसका कहना किया अथवा नही किया?"

राजा ने उन चौसठ जनो को बँधवा कर देवी को बुलवाकर पूछा—"तूने इनके साथ पाप किया या नही किया?"

"देव! किया" कहने पर उसे पीछे हाथ करके बँधवा आज्ञा दी "इन चौसठ जनो के सीस काट डालो।"

बोधिसत्त्व ने कहा—"महाराज! इनका दोप नहीं। रानी ने अपनी मरजी करवाई। यह निरपराध है। इसलिए इन्हे क्षमा करे। उसका भी दोप नही। स्त्रियो की मैथुन मे सन्तुष्टि नही होती। यह इनका जातीय स्वभाव है। जो होना है, वही होना है। इसलिए इसे भी क्षमा करे।"

यूं राजा को समझाकर, उन चौसठ जनो तथा उस मूर्खा को छुडवा कर, उनको उन उन का पद दिलवा दिया। इस प्रकार उन सब को मुक्त करवा, (उनको) अपनी अपनी जगह पर प्रतिष्ठित करवा बोधिसत्त्व ने राजा से कहा—"महाराज! अन्धे मूर्खा के झूठ कहने के कारण न बाँधने योग्य पण्डितजन पीछे हाथ करके बाँधे गए, और पण्डितो के सहेतुक कथन से पिछली तरफ हाथ बाँधे मनुष्य भी मुक्त हुए। इस प्रकार मूर्ख जो बाँधने के योग्य नहीं हैं, उन्हें भी बँधवा देते है और पण्डित बँधे हुओं को भी मुक्त करा देते है।" (इतना कह) यह गाथा कही—

अबद्धा तत्थ बज्झन्ति यत्थ बाला पभासरे,
बद्धापि तत्थ मुच्चन्ति यत्थ धीरा पभासरे॥

[जहाँ मूर्ख आदमी वोलते है, वहॉ मुक्त भी वँध जाते है, और जहाँ पण्डित-जन वोलते है, वहॉ वँधे हुए भी मुक्त हो जाते है ।]

अबद्धा, जो वँधे हुए नही है । **पभासरे**, भापण करते है, वोलते है, कहते है ।

इस प्रकार वोधिसत्त्व ने इस गाथा द्वारा राजा को धर्मोपदेश दे राजा से कहा—"मैने जो यह दु ख भोगा, वह गृहस्थ जीवन मे रहते भोगा। अब मुझे गृहस्थ रहने की जरूरत नही है। देव ! मुझे प्रव्रजित होने की आज्ञा दे।"

राजा से प्रव्रजित होने की आज्ञा ले रोते हुए रिश्तेदारो, तथा वहुत सी सम्पत्ति को छोड ऋपियो के क्रम से प्रव्रज्या ग्रहण कर वोधिसत्त्व हिमालय मे रहते हुए अभिञ्ञा और समापत्तियॉ प्राप्त कर ब्रह्मलोक-गामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल वैठाया। उस समय दुष्टदेवी चिञ्चमाणविका थी। राजा आनन्द था। पुरोहित तो मै ही था।

पहला परिच्छेद

१३. कुसनालि वर्ग

१२१. कुसनालि जातक

"करे सरिक्खो" यह धर्मोपदेश शास्ता ने जेतवन में रहते समय अनाथ पिण्डिक के स्थिर-मित्र के बारे मे दिया।

क. वर्तमान कथा

अनाथ पिण्डिक के मित्र, सुहृद, रिश्तेदार और बन्धु इकट्ठे होकर उसे बार बार मना करते थे—"महासेठ! यह न जाति में, न गोत्र मे, न धन-धान्य मे ही तेरे समान है, और न तुझसे बढकर ही है। तू इसके साथ क्यो मित्रता करता है? इसके साथ मित्रता मत कर।" अनाथ पिण्डिक का ख्याल था कि दोस्ती अपने से छोटे से, बराबरवाले से और श्रेष्ठतर से—सभी से करनी चाहिए, इसलिए उसने उनका कहना नहीं माना। अपनी जमींदारी के गांव[1] पर जाते समय वह उसे अपनी सम्पत्ति की देखभाल करने के लिए नियुक्त कर गया। आगे की कथा कालकण्णिकथा[2] के अनुसार ही समझनी चाहिए। लेकिन इस कथा मे अनाथ पिण्डिक के अपने घर का समाचार कहने पर शास्ता ने कहा—"हे गृहपति! मित्र कभी तुच्छ नहीं होता। मित्र-धर्म की रक्षा कर सकने का सामर्थ्य ही असल मे होना चाहिए। मित्रता अपने से छोटे से भी करनी चाहिए, बराबरवाले से भी और श्रेष्ठ से भी।

---

[1] भोग गाँव; जिस गाँव से गाँव का स्वामी पैदावार के रूप में अथवा अन्य किसी रूप में वसूली करता था।

[2] कालकण्णि जातक (८३)।

सभी अपने सिर पर आ पडे भार का वहन करते है। अब तो तू अपने स्थिर-मित्र के कारण वन का स्वामी हुआ। पुराने समय मे पक्के-दोस्त के कारण विमान के स्वामी हुए।"

इतना कह, पूछने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व राजा के उद्यान मे एक कुशा-घास के झुड मे के देवता हुए। उसी वाग मे मगल-शिला के सहारे सीधे तनेवाला और चारो तरफ शाखाओ तथा पत्तो से घिरा हुआ, राजा द्वारा आदृत राजा का प्रिय-वृक्ष[1] था। उसे मुक्खक भी कहते थे। उसमे एक बडा प्रतापी देवराज पैदा हुआ। वोधिसत्त्व से उसकी दोस्ती हो गई।

उस समय राजा एक खम्भे वाले प्रासाद मे रहता था। खम्भा फटने लगा। राजा को इसकी सूचना दी गई। राजा ने वढइयो को बुलवाकर कहा "तात! मेरे एक खम्भे वाले मगल प्रासाद का खम्भा जा रहा है। एक सारवान् खम्भा ला कर उस खम्भे को स्थिर करे।" उन्होने 'देव! अच्छा' कह राजा के वचन को स्वीकार कर उसके अनुरूप वृक्ष ढूँढना आरम्भ किया। वृक्ष न पा, राजा के उद्यान में जा उस मुक्खक वृक्ष को देख राजा के पास गए। राजा ने पूछा—

"तात! क्यो उसके अनुरूप वृक्ष देखा?"

"देव! देखा, लेकिन उसे काट नही सकते?"

"क्यो?"

"और कही वृक्ष न दिखाई देने पर हम उद्यान मे गए। वहाँ मगल-वृक्ष को छोड और कोई वृक्ष नही दिखाई दिया। उसे मगल-वृक्ष होने के कारण नही काट सकते।"

"जाओ, उसे काट कर प्रासाद को मजवूत करो। हम दूसरा मगल-वृक्ष कर लेगे।"

वे 'अच्छा' कह 'वलि' ले उद्यान गए और वहाँ अगले दिन काटने के लिए 'वलि' चढाई। वृक्ष-देवता को जब यह पता लगा कि कल मेरा निवास-स्थान[2]

---

[1] 'रुचरुक्खो' कुछ अस्पष्ट है।

[2] विमान।

नष्ट कर देंगे, तो वह सोचने लगी कि बच्चो को लेकर कहाँ जाऊँगी ? जब कोई जाने की जगह न दिखाई दी, तो पुत्रो को गले से लगाकर रोने लगी। उसके देखे-सुने परिचित वृक्ष-देवता और वन-देवताओ ने आकर पूछा—"क्या हुआ ?" समाचार जान स्वय भी कोई ऐसा उपाय न कर सकने के कारण जिससे बढई वृक्ष को न काटें, उन्होंने गले मिलकर रोना आरम्भ किया।

उसी समय बोधिसत्त्व वृक्ष-देवता से मिलने आए। वह समाचार सुन बोधिसत्त्व ने कहा—"होने दो। चिन्ता न करो। मैं बढइयो को वृक्ष काटने न दूँगा। कल बढइयो के आने के समय मेरा करतब देखना।" उस देवता को आश्वासन दे अगले दिन बोधिसत्त्व बढइयो के आने के समय गिरगिट का रूप बना बढइयो के आगे से गुजर मगल-वृक्ष की जड में प्रवेश कर, उसमें खोखले वृक्ष की तरह ऊपर चढ, स्कन्ध के बीच में से सिर निकाल उसे कँपाते हुए पड रहे।

प्रधान बढई ने उस गिरगिट को देख वृक्ष को हाथ से ठोक कर कहा—'यह खोखला है। निस्सार है। कल बिना विचार किए ही 'बलि' चढाई।' इस प्रकार वे उस ठोस महावृक्ष की निन्दा करते हुए चले गए।

बोधिसत्त्व की सहायता से वृक्ष-देवता विमान की स्वामिनी हुई। उसके देखे-सुने परिचित बहुत से देवता उसे मुबारकबाद देने के लिए इकट्ठे हुए। वृक्ष-देवता ने 'मुझे विमान मिल गया' सोच प्रसन्न हो उन देवताओ के सम्मुख बोधिसत्त्व की प्रशसा करनी शुरू की—"हे देवताओ ! हम ऊँचे कुल वाले होकर भी बुद्धि की कमी के कारण इस उपाय को न जानते थे। कुशा ग्रास के देवता ने अपने बुद्धिबल से हमें विमान का स्वामी बनाया। मित्रता अपने जैसे से भी, छोटे से भी, श्रेष्ठ से भी करनी ही चाहिए। सभी अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार मित्रो पर आई आपत्ति दूर कर उन्हें सुखी बनाते हैं।" इस प्रकार मित्र-धर्म की प्रशसा करते हुए यह गाथा कही—

करे सरिक्खो अथवापि सेट्ठो
निहीनको चापि करेय्य एको,
करेय्युं ते व्यसने उत्तमत्थ
यथा अह कुसनाळी रुचायं ॥

[अपने समान, अपने से श्रेष्ठ अथवा अपने से कम (दर्जे वाले) के साथ भी

मित्रता करे। जैसे कुशा-ग्रास (वाले) ने मुझ रुच-वृक्ष (के देवता) का (उपकार किया), उसी प्रकार वे भी विपत्ति आ पडने पर उपकार करते है।]

करे सरिक्खो—जाति आदि मे जो अपने बराबर हो, उससे भी मित्रता करे। **अथवापि सेट्ठो,** जाति आदि मे जो श्रेष्ठ हो, अधिक हो उससे भी (मित्रता) करे। **निहीनको चापि करेय्य एको** जाति आदि से नीच से भी मित्र-धर्म करे। इस प्रकार इन सभी को मित्र बनाना चाहिए, यह स्पष्ट करता है। क्यो? **करेय्युं ते व्यसने उत्तमत्थं,** यह सभी मित्र पर दु ख आ पडने पर अपने अपने कर्तव्य-भार को वहन करते हुए उपकारी होते है, अर्थात् उस मित्र को शारीरिक तथा मानसिक दु ख से मुक्त करते है। इसलिए अपने से छोटे से भी मित्रता करनी चाहिए, दूसरो की तो बात ही क्या? यहाँ यह उपमा है। **यथा अहं कुसनाळी रुचाय,** जैसे मै रुच मे पेदा हुआ देवता और यह कुशा-ग्रास का देवता, हमने भी मित्रता की। उसमे मै ऊँचे कुल वाला होकर भी अपने पर आई विपत्ति को मूर्खता के कारण उपाय न जानने के कारण दूर नही कर सका; इस छोटे दर्जे वाले पण्डित-देवता की सहायता से दु ख से मुक्त हुआ। इसलिए और भी जो दु ख से मुक्त होना चाहे उन्हें भी चाहिए कि बराबरी अथवा श्रेष्ठता का ख्याल न कर कम दर्जे वाले से भी मित्रता करें।

रुच देवता देवता-समूह को इस गाथा द्वारा धर्मोपदेश कर आयुपर्य्यन्त, जीवित रह कुसनाळी देवता के साथ कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का साराश निकाला। उस समय रुच-देवता आनन्द था। कुसनाळी-देवता तो मै था ही।

१२२. दुम्मेध जातक

"यसं लद्धान दुम्मेधो" यह (धर्म-देशना) बुद्ध ने वेळुवन में रहते समय देवदत्त के बारे में की।

क. वर्तमान कथा

धर्म-सभा में बैठे भिक्षु देवदत्त को दोष दे रहे थे—"आयुष्मानो! तथागत का पूर्ण-चन्द्र सदृश शोभा वाला मुख है। वे अस्सी अनु-व्यञ्जनो तथा बत्तिस महापुरुष लक्षणो से युक्त हैं। उनके चारो ओर व्याम-भर प्रभा है। उनके शरीर से घूम घूमकर दो दो करके घनी बुद्ध-रश्मियाँ निकलती हैं। उनका शरीर अत्यन्त शोभा सम्पन्न है। ऐसे सुन्दर रूप को देखकर, देवदत्त चित्त को प्रसन्न नही कर सकता, ईर्षा ही करता है। 'बुद्ध का ऐसा शील है, ऐसी समाधि है, ऐसी प्रज्ञा है, ऐसी विमुक्ति है, ऐसा विमोक्ष-ज्ञान-दर्शन है' इस प्रकार प्रशसा करने पर देवदत्त उनकी प्रशसा नही सह सकता, ईर्षा ही करता है।"

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "अमुक बातचीत" कहने पर "भिक्षुओ! न केवल अभी मेरी प्रशसा होने पर देवदत्त ईर्षा करता है, वह पहले भी करता रहा है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में मगध देश के राजगृह नगर में एक मगध-नरेश के राज्य करते समय बोधिसत्त्व हाथी की योनि में पैदा हुए। उनका सारा शरीर एक दम श्वेत था और उनकी शोभा ऊपर वर्णन की गई शोभा की ही तरह थी। 'यह लक्षणो से युक्त है' देख उस राजा ने बोधिसत्त्व को मगल-हाथी बनाया।

एक दिन किसी उत्सव के अवसर पर राजा सारे नगर को देवनगर की तरह अलकृत करा, सब अलकारो से सजे हुए मगल-हाथी पर चढ, बडी राजकीय शान

के साथ नगर मे घूमने के लिए निकला। लोग जहाँ तहाँ खडे होकर मगल हाथी के अति सुन्दर शरीर को देख मगल-हाथी की ही प्रशसा करने लगे—"ओह! क्या रूप है! ओह! क्या चाल है! ओह! कैसा ढग है! ओह! कैसे लक्षण हैं! इस प्रकार का सर्वश्रेष्ठ हाथी चक्रवर्ती राजा के योग्य है।"

राजा ने मगल हाथी की प्रशसा सुन उसे न सह सकने के कारण, ईर्षा के वशीभूत हो सोचा, "आज ही इसे पर्वत-प्रपात से गिरवा कर मरवा डालूँगा।" फिर हथवान को बुलवा कर पूछा—

"तूने इस हाथी को क्या (खाक) सिखाया है?"

"देव! अच्छी तरह से सिखाया है।"

"नही, अच्छी तरह से नही सिखाया, खराब सिखाया है।"

"देव! अच्छी तरह से सिखाया है।"

"यदि अच्छी तरह से सीखा, तो क्या तू इसे वेपुल्ल पर्वत के ऊपर चढा ले जा सकता है?"

"देव! हाँ।"

"अच्छा, तो आ" कह अपने उतर हथवान को हाथी पर चढा पर्वत के पास जा, हथवान के हाथी की पीठ पर बैठे ही हाथी को पर्वत के ऊपर चढा ले जाने पर, आमात्यो के साथ स्वय भी पर्वत के शिखर पर चढ, हाथी का मुँह प्रपात की ओर करवा कहा—"तू कहता है, कि मैंने इसे अच्छी तरह सिखाया है। इसे तीन ही पैरो से खडा कर।"

हथवान ने पीठ पर बैठे ही बैठे हाथी को अकुश द्वारा इशारा किया, 'भो! तीन पैरो से खडे हो जाओ।' वह तीन पैरो से खडा हो गया। तब राजा बोला—"आगे के दो पैरो के भार खडा करा।" बोधिसत्त्व पिछले दोनो पैर उठा कर अगले पैरो पर खडे हुए। "पिछले ही पैरो पर" कहने पर आगे के दोनो पैर उठा कर पिछले ही पैरो पर खडे हो गए। 'एक ही पैर से' भी कहने पर तीनो पैर उठा एक ही पैर से खडे हो गए। उसे न गिरता देख राजा ने कहा—"यदि कर सको, तो इसे आकाश मे खडा करो।"

हथवान ने सोचा सारे जम्बूद्वीप में इस हाथी के समान सुशिक्षित हाथी नही है। निस्सशय यह राजा इसे प्रपात में गिरवाकर मरवाना चाहता है। उसने हाथी के कान मे कहा—"तात! यह राजा तुझे प्रपात मे गिराकर मार डालना चाहता

है। तू इसके योग्य नही है। यदि तुझमें आकाश-मार्ग से जाने का बल है, तो जैसे मैं बैठा हूँ वैसे ही मुझे ले आकाश में उड वाराणसी चल।"

पुण्य-ऋद्धि से युक्त वह हाथी उसी समय आकाश में खडा हो गया। हथवान ने कहा—'महाराज! यह हाथी पुण्य-ऋद्धि से युक्त है। यह तेरे जैसे पुण्य-रहित दुर्बुद्धि के योग्य नही है। यह (किसी) पुण्यवान् पण्डित राजा के योग्य है। तेरे सदृश अपुण्यवान् इस प्रकार का वाहन पा उसके गुणो को न पहचान उस वाहन को तथा सारी सम्पत्ति को नष्ट ही कर डालते है।' इतना कह हाथी के कन्धे पर बैठे ही बैठे यह गाथा कही—

यस लद्धान दुम्मेधो अनत्थं चरति अत्तनो,
अत्तनो च परेसं च हिंसाय पटिपज्जति॥

[मूर्ख आदमी सम्पत्ति को प्राप्त हो अपनी हानि करता है। वह अपनी और दूसरो की हिसा करता है।]

यह सक्षिप्तार्थ है—महाराज! उस प्रकार का **दुम्मेधो,** प्रज्ञाहीन आदमी परिवार-सम्पत्ति पाकर **अत्तनो अनत्थ चरति**। क्यो? वह सम्पत्ति के मद में बेहोश हो, कुछ न जानने के कारण **अत्तनो च परेस च हिंसाय पटिपज्जति,** हिंसा का अर्थ है क्लेश, दु ख देना, वही करता है।

इस प्रकार इस गाथा से राजा को धर्मोपदेश दे 'अब तू यहाँ रह' कह आकाश में उडकर वाराणसी जाकर राजा के आँगन में आकाश में रुका। सारे नगर में एक हल्ला हो गया—हमारे राजा के पास आकाश से एक श्वेत-श्रेष्ठ हाथी आकर राजागन पर ठहरा है। जल्दी से राजा को भी खबर दी गई। राजा ने निकल कर कहा—यदि मेरे उपयोग के लिए आया है, तो ज़मीन पर उतर। बोधिसत्त्व जमीन पर उतरे। हथवान ने उतरकर राजा को प्रणाम किया। राजा ने पूछा "तात! कहाँ से आया है?" "राजगृह से" कह सब समाचार सुनाया।

राजा बोला—'तात! यहाँ आकर तूने अच्छा किया।' फिर प्रसन्न हो नगर सजवा हाथी को मगल-हाथी घोषित किया। सारे नगर के तीन हिस्से कर, एक हिस्सा बोधिसत्त्व को दिया, एक हथवान को और एक स्वय लिया।

बोधिसत्त्व के आने के समय से ही सारे जम्बूद्वीप का राज्य राजा को हस्तगत हो गया। वह जम्बूद्वीप का महाराज हो दान आदि पुण्य कर्म कर कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय मगध नरेश देवदत्त था। वाराणसी का राजा सारिपुत्र था। हथवान आनन्द था। और हाथी तो मै ही था।

१२३. नंगलीस जातक

"असब्बत्थगामिं वाच" यह (धर्म-देशना) शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय लाळुदायि स्थविर के बारे मे कही—

क. वर्तमान कथा

वह धर्मोपदेश देते समय यहाँ यह कहना चाहिए, यहाँ यह न कहना चाहिए, योग्य अयोग्य नही जानता था। मङ्गल (बात) कहने की जगह अमङ्गल बात कहकर (दान-)अनुमोदन करता था, जैसे **तिरोकुड्डे तिट्ठन्ति सन्धिसिघाटकेसु च**[1] अमङ्गल अनुमोदन करने की जगह **बहू देवा मनुस्सा च मगलानि अचिन्तयु**[2] कह 'इस प्रकार के मङ्गल-कार्य सैकडो हजारो करने का सामर्थ्य पैदा करो' कहता।

एक दिन धर्मसभा मे बैठे हुए भिक्षुओ ने चर्चा चलाई—"आयुष्मानो! लाळुदायि उचित अनुचित नही जानता। सर्वत्र न कहने योग्य सर्वत्र कहता है।

---

[1] तिरोकूड्ड सुत्त, खुद्दकपाठ (खुद्दक निकाय) की पहली पक्ति जिसका मतलब है कि प्रेत लोग आकर दीवारो के बाहर, खिडकियो में और चौरस्तो में खडे होते हैं।

[2] मगल सूत्र, बहुत से देवताओ और मनुष्यो ने मगलो को सोचा।

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ ! बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?" "अमुक बातचीत" कहने पर शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ, लाळुदायि न केवल अभी अपनी जडता के वशीभूत हो बोलता हुआ उचित अनुचित नही जानता। पहले भी ऐसा ही था। यह सदा ही मूर्ख रहा।"

यह कह पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व एक महाऐश्वर्यशाली ब्राह्मण कुल मे पैदा हो सयाने होने पर तक्षशिला मे सब विद्याएँ (शिल्प) सीखकर वाराणसी मे प्रसिद्ध आचार्य्य हो पाँच सौ शिष्यो को शिल्प सिखाने लगा।

उस समय उन शिष्यो मे एक जड-मूर्ख शिष्य धम्म-अन्तेवासिक[1] होकर विद्या सीखता था। जडता के कारण वह कुछ न सीख सकता था। लेकिन था बोधिसत्त्व की बहुत सेवा करने वाला। दास की तरह सब काम करता था।

एक दिन बोधिसत्त्व शाम का भोजन करके लेटे थे। वह विद्यार्थी हाथ, पैर, पीठ दबा कर जा रहा था। बोधिसत्त्व ने कहा—"तात ! चारपाई के पायो को सहारा दे कर जा।" विद्यार्थी को एक पाये का सहारा मिला, दूसरे का न मिला। उसने उस एक पाये को अपनी जाँघो मे कर सारी रात बिता दी। बोधिसत्त्व ने प्रात काल उठ उसे देख पूछा—"तात ! क्यो बैठा है ?" "आचार्य्य ! चारपाई के पाये का सहारा न मिलने से, जाँघ में करके बैठा हूँ।"

बोधिसत्त्व का दिल भर आया। वे सोचने लगे यह मेरी बहुत सेवा करता है। लेकिन इतने विद्यार्थियो में यही मन्दमति है, शिल्प नही सीख सकता। मै इसे कैसे पण्डित बनाऊ ? तब उन्हें सूझा—एक उपाय है। मै इस विद्यार्थी को लकडियाँ और पत्ते लेने के लिए भेजकर, आने पर पूछूँगा—आज तूने क्या देखा ? क्या किया ? तब यह मुझे बताएगा कि आज यह देखा, यह किया। तब मै इसे पूछूँगा कि जो तूने आज देखा किया, वह कैसा है ? वह 'ऐसा है' मुझे उपमा देकर, बातो मे समझाएगा।

---

[1] जो शिष्य आचार्य्य-दक्षिणा देने में असमर्थ होता था, वह आचार्य्य की सेवा करता हुआ विद्या सीखता था।

इस प्रकार इससे नई नई उपमाएँ और बातें कहलवाकर मैं इसे इस उपाय से पण्डित बना दूँगा।

तब उन्होंने उसे बुलवाकर कहा—तात! माणवक! अब से तू जहाँ लकड़ी लेने या पत्ता लेने जाए वहाँ जो देखे, जो सुने, जो खाए, पीए, वह आकर मुझे कहा कर। उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

एक दिन वह विद्यार्थियों के साथ लकड़ी लेने जंगल गया। वहाँ उसने एक साँप देखा। आकर आचार्य्य से कहा—आचार्य्य, मैंने साँप देखा।

"तात! साँप कैसा होता है?"

"हल की फाल की तरह।"

"तात! बहुत अच्छा। तूने सुन्दर उपमा दी। साँप हल की फाल की ही तरह होते हैं।"

बोधिसत्त्व ने सोचा—विद्यार्थी को अच्छी उपमा सूझी है। मैं इसे पण्डित बना सकूँगा।

विद्यार्थी ने फिर एक दिन जंगल में हाथी देख आकर कहा—आचार्य्य, मैंने हाथी देखा।

"तात! हाथी कैसा होता है?"

"हल की फाल की तरह।"

बोधिसत्त्व सोचने लगे—हाथी की सुण्ड तो हल की फाल की तरह होती है, लेकिन उसके दाँत आदि तो ऐसे ऐसे होते हैं। मालूम होता है यह अपनी मूर्खता के कारण पृथक् पृथक् करके वर्णन नहीं कर सकता। वे चुप रहे।

एक दिन निमन्त्रण में ऊख पाकर कहा—

"आचार्य्य! आज हमने ऊख खाया।"

"ऊख कैसा होता है?"

"हल की फाल की तरह।"

थोड़ी सीधी बात कहता है, सोच आचार्य्य चुप रहे। फिर एक दिन निमन्त्रण में कुछ विद्यार्थियों ने दही के साथ गुड़ खाया, कुछ ने दूध के साथ। उसने आकर कहा—आज! हमने दही दूध के साथ खाया।

"दूध दही कैसा होता है?"

"हल की फाल की तरह।"

आचार्य्य ने सोचा—इस विद्यार्थी ने साँप की हल की फाल से उमपा दी, सो तो ठीक रहा। हाथी की हल की फाल से उपमा दी, वह भी सुण्ड का ख्याल करके कहा, इससे कुछ ठीक रहा। ऊख को हल की फाल के सदृश कहा, उसमें भी खैर कुछ ठीक है। लेकिन दूध दही तो सफेद होते हैं, जैसा बरतन होता है वैसा ही उनका आकार हो जाता है। यहाँ तो उपमा सर्वथा गलत है। इस मूर्ख को न सिखा सकूँगा। यह कह, यह गाथा कही—

असब्बत्थगामिं वाचं
बालो सब्बत्थ भासति,
नाय दधिं वेदि न नगलीस
दधिम्पय मञ्ञाति नगलीस॥

[मूर्ख सब जगह ठीक न बैठनेवाली बात सब जगह कहता है। न यह दही को जानता है, न हल की फाल को। यह दही को भी हल की फाल समझता है।]

संक्षिप्तार्थ यू है—जो वाणी उपमा रूप से सर्वत्र लागू नहीं होती, वह **असब्बत्थ गामिं वाच बालो** जड आदमी **सब्बत्थ भासति**। दधि कैसा होता है पूछने पर कहता है जैसे हल की फाल। इस प्रकार कहता हुआ **नायं दधिं वेदि न नगलीस**। क्यो? **दधिम्पय मञ्ञाति नगलीस**, यह दही को भी हल की फाल मानता है। अथवा दधि कहते हैं दही को। पय कहते हैं दूध को। दधि और पय दधिम्पय, यह दही और दूध को भी हल की फाल मानता है, ऐसा है यह मूर्ख। इससे क्या होगा? अपने शिष्यो को गाथा कह, उसे खर्चा दे विदा किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का साराश निकाला। उस समय मूर्ख विद्यार्थी लाळुदायि था। चारो दिशाओं मे प्रसिद्ध आचार्य्य तो मैं ही था।

१२४. अम्ब जातक

"वायमेथेव पुरिसो" यह धर्मोपदेश बुद्ध ने जेतवन में रहते समय एक कर्तव्य-निष्ठ ब्राह्मण के सम्बन्ध में दिया।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती-निवासी तरुण बुद्ध शासन में बडी श्रद्धा से प्रव्रजित हो बहुत कर्तव्य-परायण था। आचार्य्य, उपाध्याय की सेवा का कार्य्य; पीने का पानी तथा खाद्य सामग्री आदि तैयार रखने का कार्य्य, उपोसथ-घर[1] तथा जन्ताघर[2] आदि साफ रखने का कार्य्य—सभी अच्छी तरह से करता। चौदह बड़े कर्तव्यो और अस्सी छोटे छोटे कर्तव्यो—सभी को पूरा करता। विहार में झाड़ू लगाता। परिवेण में झाड़ू लगाता। घूमने फिरने की जगह[3] मे झाड़ू लगाता। विहार जाने के रास्ते को साफ रखता। मनुष्यो को पानी देता।

लोगो ने उसकी कर्तव्य-निष्ठा पर प्रसन्न हो, उसे पाँच सौ स्थिर निमन्त्रण दिए। बहुत लाभ-सत्कार की प्राप्ति हुई। उसके कारण बहुतो को सुख मिला। धर्मसभा में बैठे हुए भिक्षुओ ने बात चलाई—आयुष्मानो! उस भिक्षु ने अपनी कर्तव्य-निष्ठा से बहुत लाभ-सत्कार प्राप्त किया। इस एक के कारण बहुतो को सुख मिला।

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" 'यह बातचीत' कहने पर "भिक्षुओ, केवल अभी नही, पहले भी यह भिक्षु कर्तव्य-निष्ठ

---

[1] जहाँ भिक्षु एकत्र होकर उपोसथ करते हैं।

[2] अग्नि-शाला, जिसमें आग तपाकर पसीना बहाया जाता है।

[3] सिंहल प्रति में 'विक्कम-मालक' का 'वितक्कमालक' है; जो अशुद्ध प्रतीत होता है।

रहा है। इस अकेले के कारण पाँच सौ ऋषि फल-फूल के लिए न जाकर इस एक के द्वारा मँगवाए गए फलो से ही गुज़ारा चलाते रहे है।" यह कह पूर्वजन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उदीच्य ब्राह्मण कुल मे पैदा हो सयाने होने पर ऋषियो के प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रजित हो पाँच सौ ऋषियो के साथ पर्वत के नीचे रहने लगे। उस समय हिमालय प्रदेश मे बडी गर्मी पडी। जहाँ तहाँ पानी सूख गया। पशु पानी न मिलने से कष्ट पाने लगे।

उन तपस्वियो मे से एक तपस्वी ने उन (पशुओ) के प्यास-कष्ट को देख एक वृक्ष काट, उसमे से एक द्रोणि वना, पानी उलीच कर द्रोणि भर, उन्हें पानी दिया। वहुत से पशुओ के इकट्ठे होकर पानी पीने लगने पर तपस्वी को फल-मूल लाने के लिए जाने का समय न मिला। वह निराहार रह कर भी पानी पिलाता ही रहा।

पशुओ ने सोचा यह हमें पानी पिलाने के कारण फल-मूल के लिए जाने का समय नही पाता। निराहार रहने के कारण वहुत कष्ट पाता है। हम लोग एक निर्णय करे। उन्होंने सलाह की कि इसके वाद जो पानी पीने आए वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार कुछ फल-मूल अवश्य लाए।

उसके वाद प्रत्येक पशु अपनी अपनी शक्ति के अनुसार मीठे मीठे आम, जामुन, कटहल आदि अवश्य लाता। उसके लिए लाया हुआ फल ढाई गाडियाँ भर होता। पाँच सौ तपस्वी उसे ही खाते। अधिक होता, छोड देते।

वोधिसत्त्व ने यह देख कहा—एक कर्तव्य-निष्ठ आदमी के कारण इतने तपस्वियो का विना फल-मूल के लिए गए गुजारा चलता है। प्रयत्न करना ही चाहिए। इतना कह यह गाथा कही—

वायमेथेव पुरिसो न निब्बिदेय्य पण्डितो,
वायामस्स फल पस्स भुत्ता अम्बा अनीतिह॥

[आदमी को चाहिए कि प्रयत्न अवश्य करे। पण्डित आदमी विमुख न हो। प्रयत्न के फल को देखो—आम प्रत्यक्ष खाने को मिले।]

———

सक्षिप्तार्थ—**पण्डितो**, अपने कर्तव्य की पूर्ति में **वायमेथेव**, विमुख न हो। क्यो ? प्रयत्न के कभी निष्फल न होने के कारण। बोधिसत्त्व ने 'प्रयत्न सफल होता ही है' ऋषियो को इस प्रकार सम्बोधन करते हुए कहा **वायामस्स फलं पस्स** कैसा ? **भुत्ता अम्वा अनीतिह**, अम्ब, कहने के लिए है, मतलब है नाना प्रकार के फल लाए गए, आम उनमे श्रेष्ठ होने से **अम्ब** कहा गया। यह जो पाँच सौ ऋषियो ने स्वय जगल न जा एक के लिए आए फलो को खाया, सो यह प्रयत्न का ही फल है। और वह अनीतिह। इति ह (आस) इतिहास से। इतिहास से ही ग्रहण करना नही होता, उस फल को प्रत्यक्ष देखो।

बोधिसत्त्व ने ऋषियो को उपदेश दिया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, जातक का मेल बैठाया। उस समय का कर्तव्य-निष्ठ तपस्वी यह भिक्षु था। गण-शास्ता मैं ही था।

१२५. कटाहक जातक

"**बहुम्पि सो विकत्थेय्य** " यह (धर्मोपदेश) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक शेखी बघारने वाले भिक्षु के बारे में कहा। उसकी कथा पूर्वोक्त सदृश ही है[1]।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व महाधन-शाली सेठ हुए। उसकी भार्य्या ने पुत्र को जन्म दिया। उसकी दासी ने भी उसी दिन पुत्र उत्पन्न किया। वे दोनो साथ साथ बढने लगे। सेठ के लडके के लिखना सीखते

---

[1] भीमसेन जातक (८०)।

समय, दास ने भी उसकी तख्ती ढोते हुए जाकर उसी के साथ लिखना सीखा, गिनना सीखा। दो तीन भाषाएँ (वोहार) सीखी। क्रम से बढकर वह वचन-कुशल, भाषाविद्, सुन्दर तरुण हुआ। उसका नाम था कटाहक।

सेठ के घर में भण्डारी का काम करते हुए वह सोचने लगा कि यह लोग मुझसे हमेशा भण्डारी का काम नही लेंगे। कुछ भी दोष देखेंगे, तो ताडेंगे, बाँध कर दाग देंगे और दास बनाकर काम लेंगे। इलाके में सेठ का मित्र एक सेठ है। क्यो न मैं सेठ की तरफ से एक चिट्ठी लेकर, वहाँ पहुँच 'मैं सेठ का लडका हूँ' कह उस सेठ को धोका दे, उसकी लडकी से शादी कर सुखपूर्वक रहूँ।

उसने कागज ले उस पर अपने ही लिखा—मैं अमुक नाम का (सेठ) अपने पुत्र को तुम्हारे पास भेजता हूँ। मेरा तुम्हारे और तुम्हारा मेरे साथ शादी का सम्बन्ध करना योग्य है। इसलिए आप इस लडके को अपनी लडकी देकर वही बसा लें, मैं भी समय मिलने पर आऊँगा।

फिर इस चिट्ठी पर सेठ की अँगूठी की मुहर लगा इच्छानुसार मार्ग-व्यय तथा सुगन्धियाँ और वस्त्रादि ले प्रत्यन्त देश में जा सेठ के यहाँ पहुँच प्रणाम किया।

सेठ ने उसे पूछा—तात, कहाँ से आया है?

"वाराणसी से।"

"किसका पुत्र है?"

"वाराणसी सेठ का।"

"किस प्रयोजन से आया है?"

कटाहक ने कहा—यह पत्र देखकर जान लें।

सेठ ने पत्र वाँच प्रसन्न हो 'अब मेरा जीवन सफल हुआ' कह उसे लडकी दे प्रतिष्ठित किया।

कटाहक का बडा परिवार था। वह यवागु-खाद्य अथवा वस्त्र गंध आदि के लाने पर झिडकता था—'इस तरह भी कही यवागु पकाया जाता है? इस तरह भी कही खाद्य पकाया जाता है। और इस तरह भात? ओह! यह प्रत्यन्त देश के रहनेवाले! शहरी न होने से ही यह लोग न कपडो पर स्त्री करना जानते है, न सुगन्धित पदार्थों को पीसना और न फूलो को गूथना?'—इस प्रकार वह दर्जियो आदि की निन्दा करता।

बोधिसत्त्व ने दास को न देख पूछा—'कटाहक नहीं दिखाई देता। कहाँ गया?'

फिर उसे ढूढने के लिए आदमियो को चारो ओर भेजा। एक आदमी ने वहाँ जा उसे देख, पहचान अपने आपको छिपाए रख लौटकर बोधिसत्त्व से कहा। बोधिसत्त्व वह वृत्तान्त सुन, 'उसने अनुचित किया, जाकर उसे लेकर आता हूँ' सोच राजाज्ञा ले बहुत से लोगो को साथ ले चले।

सेठ प्रत्यन्त देश को जा रहे है, यह बात सब जगह फैल गई।

कटाहक ने जब यह सुना कि सेठ आ रहा है, तो सोचा कि वह और किसी कारण से नही आ रहा है। मेरे ही कारण वह आ रहा है। यदि मै अब भाग जाऊँ तो फिर नही आ सकूगा। इसलिए एक यही उपाय है कि मै आगे जाकर स्वामी की सेवा कर उसे प्रसन्न करूँ।

उस समय से वह लोगो मे बैठकर इस प्रकार बाते बनाने लगा—दूसरे मूर्ख लोग मातापिता के किए उपकार को भूल, उनके भोजन करने के समय उनके प्रति अपने कर्त्तव्य को पूरा न कर उनके साथ ही भोजन करने बैठ जाते है। हम तो मातापिता के भोजन करने के समय पानी का बर्तन ले जाते है, थूकने का बर्तन ले जाते है, (दूसरे) पात्र ले जाते है, पानी और पखा लेकर खडे रहते है। शौच के लिए जाते समय परदे की जगह तक पानी का बरतन लेकर जाते है। इस प्रकार स्वामी के प्रति जो जो दास के कर्तव्य होते है, उन सबको प्रगट किया।

इस तरह लोगो को समझा बोधिसत्त्व के प्रत्यन्त देश के समीप पहुँच जाने के समय अपने श्वसुर से कहा—"तात ! मेरे पिता आपके दर्शन के लिए आ रहे है। आप खाद्य भोज तैयार कराएँ। मै भेट लेकर आगे जाता हूँ।" उसने "तात ! अच्छा" कह स्वीकार किया।

कटाहक ने बहुत सी भेट ले जाकर बहुत से लोगो के साथ जा बोधिसत्त्व को प्रणाम कर भेट अर्पण की।

बोधिसत्त्व ने भेट स्वीकार कर कुशल समाचार पूछ हाजरी के समय तम्बू लगवा शौच के लिए परदे की जगह मे प्रवेश किया। कटाहक ने अपने अनुयायियो को पीछे छोडा। पानी ले बोधिसत्त्व के पास पहुँचे। वहाँ उनके पानी छू चुकने पर पैरो मे गिर कर कहा—'स्वामी मै आपको जितना चाहे उतना धन दूँगा। मुझे बदनाम न करे।' बोधिसत्त्व उसकी सेवा से प्रसन्न हो बोले—'मत डरो। मुझसे तुम्हे कुछ हानि न होगी।' इस प्रकार उसे तसल्ली दे प्रत्यन्त-नगर मे प्रवेश किया। बडा आदर-सत्कार हुआ।

कटाहक दास की तरह से उसकी सब प्रकार की सेवा करता रहा।

एक वार जब वोधिसत्त्व सुखपूर्वक वैठे हुए थे प्रत्यन्त-देश के सेठ ने कहा—"महासेठ! मैंने तुम्हारे पत्र को देखकर ही तुम्हारे लडके को अपनी लडकी दे दी।" वोधिसत्त्व ने कटाहक को पुत्र ही बना उस (अवसर) के योग्य प्रिय वचन कह सेठ को सन्तुष्ट किया। लेकिन फिर उसके वाद से वह कटाहक का मुँह नही देख सका।

एक दिन वोधिसत्त्व ने सेठ की लडकी को बुलाकर कहा—अम्म! आ! मेरे सिर में जुएँ है, उन्हें चुग। उसके आकर जुएँ चुगती हुई खडी होने पर पूछा—"अम्म! क्या मेरा पुत्र तेरे दु:ख-सुख में आलस्य रहित हो साथ देता है? दोनो जने मिलकर प्रसन्नता-पूर्वक रहते हो न?"

"तात! सेठ के पुत्र में और कोई दोष नही। केवल आहार की निन्दा करता है।"

"अम्म! वह सदैव से दु:ख देनेवाला है। लेकिन मै तुझे उसका मुँह वन्द करने का मन्त्र देता हूँ। तू उसे अच्छी तरह सीख। मेरे पुत्र के भोजन की निन्दा करने के समय, जैसे सीखा वैसे ही उसके सामने खडी होकर कहना"—इस प्रकार एक गाथा सिखा कुछ दिन रह वाराणसी चले गए।

कटाहक भी वहुत सा खाद्य-भोज्य ले, उनके पीछे पीछे जा वहुत सा धन देकर लौट आया।

वोधिसत्त्व के जाने के वाद से कटाहक और भी अभिमानी हो गया। एक दिन जब सेठ की लडकी नाना प्रकार के अच्छे अच्छे भोजन ले कडछी से परोस रही थी उसने भोजन की निन्दा आरम्भ की। सेठ की लडकी ने जैसे वोधिसत्त्व से सीखी थी, उसी प्रकार यह गाथा कही—

वहुम्पि सो विकत्थेय्य अञ्ञं जनपदं गतो,
अन्वागन्त्वान दूसेय्य भुञ्ज भोगे कटाहक॥

[दूसरे देश मे जाकर वह वहुत वकता है। फिर आकर उसे दोषी ठहरा दे, (इसका ख्याल कर) कटाहक जो भोग मिल रहा है, उसका उपभोग कर।]

वहुम्पि सो विकत्थेय्य अञ्ञं जनपदं गतो, जो अपने जन्म-स्थान से किसी ऐसे दूसरे देश मे गया रहता है, जहाँ उसकी जाति नही जानते, वह वहुत वकता है।

धोका देने की ठगने की बात करता है। **अन्वागन्त्वान दूसेय्य,** इस बार स्वामी की अगवानी करके दास कर्म करने के कारण चाबुक से पीटे जा कर पीठ की चमड़ी उधेडी जाने से और दाग दिये जाने से बच गया । यदि अनाचार करेगा तो दुबारा आने पर तेरा स्वामी तुझे दोषी ठहरायेगा, इस घर मे आकर चाबुक से सजा देगा। दाग देकर तथा तेरी जाति प्रकट करके तुझे खराब करेगा, पीटेगा। इसलिए इस अनाचार को छोड **भुञ्ज भोगे कटाहक !** फिर बाद मे अपना दासत्व प्रगट कराकर मत पछताना, यही यहाँ सेठ के कहने का मतलब है।

सेठ की लडकी यह सब नही जानती थी। वह जैसे सीखा था वैसे शब्द-मात्र कहती थी।

कटाहक ने सोचा, निश्चय से सेठ ने मेरा नाम बताकर इसे सब कह दिया होगा। उसके बाद से फिर उसकी भोजन की निन्दा करने की हिम्मत न हुई। मान-मर्दित होकर वह यथा-प्राप्त भोजन करता हुआ कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय कटाहक बकवादी भिक्षु था। वाराणसी सेठ तो मै ही था।

१२६. असिलक्खण जातक

"**तथेवेकस्स कल्याणं**" यह (धर्मोपदेश) शास्ता ने जेतवन मे रहते समय कोशल-नरेश के तलवार के लक्षण कहनेवाले ब्राह्मण के बारे में दिया।

क. वर्तमान कथा

वह (ब्राह्मण) राजा के पास लोहारो के तलवार लाने के समय तलवार को सूघकर तलवार का लक्षण बताता था। जिनके हाथ से कुछ प्राप्त हो जाता उनकी

तलवार को वह सुलक्षण और माङ्गलिक कहता, जिनके हाथ से कुछ न मिलता उनकी तलवार को अमाङ्गलिक बता निन्दा करता।

एक शिल्पी तलवार बना उसके म्यान में मिर्चों का बारीक चूर्ण भर राजा के पास तलवार लाया। राजा ने ब्राह्मण को बुलवाकर कहा—तलवार की परीक्षा करें।

जब ब्राह्मण तलवार निकालकर सूघने लगा तो मिर्चो के चूर्ण के उसकी नाक को लगने से उसे छीक आई। छीक आने से उसकी नाक तलवार से लगी, और उसके दो टुकडे हो गए।

उसकी इस तरह नाक कटने की बात भिक्षु-सघ में प्रकट हो गई। एक दिन धर्म-सभा में बैठे हुए भिक्षुओ ने बात चलाई—आयुष्मानो! राजा के तलवार का लक्षण बतानेवाले ने तलवार का लक्षण बताते हुए नाक कटवा ली।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर 'भिक्षुओ, इस ब्राह्मण ने न केवल अभी तलवार सूघते हुए नाक कटवाई, पहले भी कटवाई है' कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, उसके यहाँ तलवार का लक्षण कहनेवाला एक ब्राह्मण था। (इसके आगे की सारी कथा 'वर्तमान-कथा' की तरह ही है।) राजा ने उसे वैद्य के पास भेजकर उसकी नाक की चिकित्सा कराई। फिर लाख से उसकी नाक के सदृश ही एक नाक बनवाकर उसे फिर अपनी सेवा में नियुक्त किया।

वाराणसी नरेश को कोई पुत्र न था। एक लडकी और एक भानजा था। उन दोनो को भी उसने अपने पास ही रख कर पाला था। एक साथ रहने के कारण वह परस्पर प्रेम में बँध गए।

राजा ने आमात्यो को बुलाकर सलाह की कि मेरा भानजा राज्य का उत्तराधिकारी है ही, इसे ही लडकी देकर इसका राज्याभिषेक कर दिया जाए। लेकिन फिर सोचा, भानजा तो हर तरह से आत्मीय है ही, इसके लिए कोई दूसरी राजकुमारी लाकर दी जाए। फिर इसका अभिषेक किया जाए। और अपनी लड़की किसी दूसरे राजा को दी जाए। इस प्रकार हमारे रिश्तेदार बहुत होगे, और हम ही दोनो राज्यो

के स्वामी होंगे। उसने मन्त्रियो की सलाह से निश्चय किया कि दोनो को पृथक पृथक रखना चाहिए, एक को एक घर मे दूसरे को दूसरे मे रक्खा। सोलह वर्ष की अवस्था होने पर उनका परस्पर का आकर्षण और भी वढ गया।

राजकुमार सोचने लगा कि किस उपाय से मामा की लडकी को राज-घर से निकलवाया जा सकता है? उसे एक उपाय सूझा। एक भाग्य वतानेवाली को बुलवाकर उसने उसे एक हजार मुद्राएँ दी। भाग्य वतानेवाली ने पूछा—"मै क्या कर सकती हूँ?"

"अम्म! तेरे करने से सफलता निश्चित है। कोई वात कहकर ऐसी विधि लगा जिससे मेरा मामा राज-कन्या को घर से वाहर लाए।"

"स्वामी, अच्छा मै राजा के पास जाकर कहूँगी कि तुम्हारी कन्या पर ग्रह है। इतने समय के वाद नही रहेगा। मै अमुक दिन राज-कन्या को रथ पर चढाकर हथियारवन्द वहुत से आदमियो को साथ ले, अनेक अनुयायियो सहित श्मशान मे जाऊँगी। वहाँ मण्डल-चौकी के नीचे श्मशानशय्या पर मुर्दे को लिटा, ऊपर की शय्या पर राज-कन्या को विठा सुगन्धित जल के एक सौ आठ घडो मे स्नान करवा कर ग्रह उतारूँगी, ऐसा कह कर मै राज-कन्या को श्मशान ले जाऊँगी। तू हमारे वहाँ जाने के दिन हमसे भी पहले ही थोडा मिर्चों का चूर्ण लेकर, हथियारवन्द अपने आदमियो के साथ रथ पर चढकर श्मशान-भूमि मे जाना। वहाँ पहुँच रथ को श्मशान-द्वार पर ही एक तरफ छोड, हथियारवन्द आदमियो को श्मशान-वन मे छिपा, स्वय श्मशान मे जाकर वहाँ मण्डलपीठ के पास मुर्दे की तरह पट पड रहना। मै वहाँ आकर तेरे ऊपर मञ्च विछा राजकन्या को उठा उस पर सुलाऊँगी। तू उस समय मिर्च-चूर्ण को दो तीन वार नाक पर लगा छीकना। तेरे छीकने के समय हम लोग राजकन्या को छोड कर भाग जाएँगे। तव आकर राजकन्या को सिर से नहला, अपने भी नहा उसे लेकर घर जाना।" उसने अच्छा कह स्वीकार किया।

राजा को जाकर जव उसने सव वात कही, तो राजा ने भी स्वीकार किया। राजकन्या से भी वह रहस्य कहा तो वह भी मान गई। उसने वाहर निकलने के दिन राजकुमार को सूचना दे अनेक अनुयायियो के साथ जाते हुए पहरेदार आदमियो को डराने के लिए कहा—

मेरे, राजकन्या को चारपाई पर लिटाने के समय चारपाई के नीचे पडा हुआ

मुर्दा छीकेगा, और छीकने के वाद चारपाई के नीचे से निकल जिसे पहले देखेगा उसे ही पकडेगा। इसलिए होशियार रहना।

राजकुमार पहले ही पहुँचकर जैसे कहा गया था, वैसे ही लेट रहा। भाग्य वतानेवाली ने राजकन्या को मण्डलपीठ की जगह पर जाते हुए 'डर मत' इशारा कर चारपाई पर लिटाया।

उसी समय कुमार ने मिर्च-चूर्ण नाक पर फेंक छीक मारी। उसके छीक मारते ही (वह) भाग्य वतानेवाली राज कन्या को छोड वडा शोर मचाती हुई सवसे पहले भागी। उसके भागने पर एक भी न ठहर सका। जिसके पास जो शस्त्र थे उन्हें छोड सभी भाग गए।

राजकुमार जैसे निश्चय किया गया था उसके अनुसार सव करके राजकन्या को अपने घर ले गया। भाग्य वतानेवाली ने जाकर राजा को सव हाल कहा। राजा ने स्वीकार किया, वोला—यूँ भी मैंने उसे उसी के लिए पाला था। दूध में घी पडने जैसा हुआ। आगे चलकर भानजे को राज्य दे अपनी कन्या को उसकी पटरानी वनाया। वह उसके साथ मेल से रहता हुआ धर्म-पूर्वक राज्य करता रहा।

वह तलवार के लक्षण वतानेवाला भी उसी की सेवा में रहता था। एक दिन राज्य-सेवा मे आ सूर्य के सामने खडे हो सेवा-कार्य्य करते हुए उसकी नाक की लाख पिघल गई। नकली नाक जमीन पर गिर पडी। वह शर्म के मारे सिर नीचा करके खडा हुआ।

राजा ने हँसते हुए कहा—आचार्य्य सोच मत करो। छीकना एक के लिए कल्याणकर होता है, दूसरे के लिए वुरा। तुम्हारे छीकने पर नाक पृथक हो गई; लेकिन हमने छीका तो हमे मामा की लडकी और राज्य मिला। इतना कह यह गाथा कही—

तथेवेकस्स　कल्याण　तथेवकस्स　पापक,
तस्मा सव्व न　कल्याण　सव्व　वापि　न पापक ॥

[वही किसी के लिए कल्याणकारक है, वही किसी के लिए वुरा। इसलिए न सव कल्याणकारक ही है, न सव वुरा ही है।]

तथेवेकस्स तदेवेकस्स—यह भी पाठ है। दूसरे पद में भी ऐसे ही।

इस प्रकार इस गाथा द्वारा उसने वह बात कही। फिर दान आदि पुण्यकर्म करके यथाकर्म परलोक सिधारा।

शास्ता ने इस धर्मोपदेश द्वारा लोक मे जो बहुत सी अच्छी बुरी मान्यताएँ है उन सबका अनेकाशिक होना प्रकाशित करके जातक का मेल बैठाया।

उस समय का तलवार के लक्षण पढनेवाला तो यह अब का तलवार के लक्षण पढनेवाला ही था। हाँ भानजा-राजा मै ही था।

१२७. कलाण्डुक जातक

"ते देसा तानि वत्थूनि   " यह (धर्मदेशना) शास्ता ने जेतवन मे रहते समय एक बकवादी भिक्षु के बारे मे कही। दोनो कथाएँ (अतीत कथा तथा वर्तमान कथा) कटाहक जातक[1] की कथा की तरह ही है।

हाँ, इस जातक मे बाराणसी के सेठ का नाम कलण्डुक था। उसके भाग कर प्रत्यन्त सेठ की लडकी से विवाह कर बडे ठाट-बाट के साथ रहने के समय, बाराणसी के सेठ के उसे ढुंढवाने पर भी उसके न मिलने पर, बाराणसी सेठ ने अपना पाला-पोसा एक तोते का बच्चा भेजा कि जा कलण्डुक को खोज। तोते का बच्चा इधर-उधर घूमता हुआ उस नगर में पहुँचा।

उस समय कलण्डुक जल-क्रीडा करने की इच्छा से बहुत सारे माला-गन्ध-विलेपन तथा खाद्य-भोज्य ले नदी पर जा सेठ कन्या के साथ एक नौका पर बैठ पानी में खेलता था। उस देश में ऐश्वर्य्यशाली लोग जब जल-क्रीडा करते तो कोई तेज औषध मिला हुआ दूध पीते थे। उससे उनके सारा दिन भी जल में क्रीडा

---

[1] कटाहक जातक (१२५)।

करते रहने पर उन्हें शीत नही लगता था। यह कलण्डुक उस दूध से मुँह भर उससे कुरला कर उसे थूक देता, लेकिन उसे जल में न थूककर उस सेठ-कन्या के सिर पर थूकता था।

उस तोते के वच्चे ने भी नदी के किनारे एक गूलर की शाखा पर वैठ कलण्डुक को पहचान लिया और देखा कि वह सेठ-कन्या के सिर पर थूक रहा है। उसने कहा—"अरे! कलण्डुक! दास! अपनी जाति और (पूर्व) निवास-स्थान को याद कर। दूध से मुँह भर, उसका कुरला कर ऊँची जातिवाली सुख मे पली हुई सेठ की कन्या के सिर पर मत थूक। तू अपनी हैसियत को नही देखता?" फिर यह गाथा कही—

ते देसा तानि वत्थूनि अहञ्च वनगोचरो,
अनुविच्च खो तं गण्हेय्युं पिव खीरं कलण्डुक॥

[वह देश और वस्तुएँ (=कोख)। मै वनचर पक्षी। तुझे पहचान कर पकड लेंगे। कलण्डुक दूध पी।]

ते देसा तानि वत्थूनि, यह माता के कोख के बारे मे कहा है। भावार्थ यह है—जहाँ तू रहा है वह क्षत्रिय कन्या आदि की कोख नही रही है, अथवा जहाँ तू प्रतिष्ठित रहा है वह भी क्षत्रिय कन्या आदि की कोख नही रही है। तू दासी की कोख में रहा और प्रतिष्ठित हुआ। **अहञ्च वनगोचरो**—मैं तिरश्चीन योनि मे पैदा होकर भी यह सव जानता हूँ, यह प्रकट करता है। **अनुविच्च खो त गण्हेय्युं**, इस प्रकार अनाचार करते हुए को देख जव मैं जाकर कहूँगा तो पहचान कर वह तेरे स्वामी आकर तुझे ताड कर और दाग देकर पकड कर ले जायँगे। इसलिए अपनी हैसियत देखकर सेठ की लडकी के सिर पर विना थूके हुए **पिव खीरं कलण्डुक**; नाम मे सम्बोधन करता है कि (हे कलण्डुक दूध पी)।

कलण्डुक ने भी तोते के वच्चे को पहचानकर 'यह मुझे प्रकट कर रहा है' सोच भयभीत हो कहा—आइए! स्वामी! कव आए? तोते के वच्चे ने सोचा यह मेरा हितचिन्तक होकर नही वुला रहा है। यह मेरी गरदन मरोडकर मार डालना चाहता है। यह समझकर कहा कि मुझे तुझसे काम नही है।

तब वह उड कर वाराणसी गया और जैसे जैसे देखा था सेठ को विस्तार-पूर्वक सब कहा ।

सेठ बोला—उसने अनुचित किया। और आज्ञा दे उसे वाराणसी मँगवा दास बना कर रक्खा ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का कलण्डुक यह भिक्षु था। वाराणसी सेठ तो मैं ही था।

१२८. बिळारवत जातक

"**यो वे धम्मं धजं** कत्वा " यह शास्ता ने जेतवन मे रहते समय एक ढोंगी भिक्षु के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने उसके ढोंग की चर्चा चलने पर 'भिक्षुओ, केवल अब ही नहीं , पहले भी यह ढोंगी ही रहा है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने चूहे का जन्म ग्रहण किया। बडे होने पर वह बढकर सूअर के बच्चे की तरह हो अनेक सौ चूहो के साथ जगल मे रहने लगा।

इधर उधर घूमते हुए एक शृगाल ने उस चूहे के समूह को देखकर सोचा कि इन चूहो को ठग कर खाऊँगा। यह सोच वह चूहो के बिल से थोडी ही दूर पर सूर्य्याभिमुख हो, मुँह खोल, हवा पीते हुए की तरह एक ही पाँव से खडा हुआ।

इधर उधर भोजन के लिए घूमते हुए बोधिसत्त्व ने उसे देख सोचा, यह सदाचारी होगा और उसके पास जाकर पूछा—

"आपका, भन्ते ! क्या नाम है ?"

"मेरा नाम है धार्मिक।"

"चारो पैर पृथ्वी पर न रख, एक ही पैर से क्यो खडे है ?"

"मेरे चारो पैर पृथ्वी पर रखने से पृथ्वी के लिए दूभर होगा, इसलिए एक ही पैर से खडा होता हूँ।"

"मुँह खोले क्यो खडे है ?"

"हम हवा के अतिरिक्त और कुछ नही खाते ?"

"सूर्य्य की ओर मुँह कर के क्यो खडे है ?"

"सूर्य्य को नमस्कार कर रहा हूँ।"

बोधिसत्त्व ने सोचा यह सदाचारी है। उसके बाद से चूहो के समूह के साथ प्रात साय उसकी सेवा मे जाने लगा।

उसकी सेवा कर लौटने के समय शृगाल सबसे पिछले चूहे को पकडकर मास खा, निगल कर, मुँह पोछ खडा हो जाता। क्रम से चूहो का दल कम पड गया। चूहे सोचने लगे कि पहले हमे यह बिल पर्य्याप्त न होता था, सट सट कर खडे होते थे, अब खुल कर खडे होते है तब भी बिल नही भरता। क्या मामला है ? उन्होने बोधिसत्त्व से सारा हाल कहा।

बोधिसत्त्व ने 'चूहे किस कारण कम हो गए' सोचते हुए शृगाल पर शक किया। फिर जाँच करने के लिए (शृगाल की) सेवा (से लौटने) के समय बाकी चूहो को आगे कर स्वय पीछे रहा। शृगाल उस पर उछला। अपने को पकडने के लिए शृगाल को उछलता देख बोधिसत्त्व ने रुककर कहा—

"भो शृगाल ! तेरा यह व्रत धार्मिक नही है। तू दूसरो की हिंसा करने के लिए ही धर्म को आगे करके कहता है।" इतना कह यह गाथा कही—

यो वे धम्म धज कत्वा निगूळ्हो पापमाचरे
विस्सासयित्वा भूतानि विळार नाम त वत॥

[जो धर्म की ध्वजा बनाकर, प्राणियो में विश्वास उत्पादन कर छिप कर पाप करता है, उसका व्रत बिल्ला-व्रत है।]

यो वे, क्षत्रिय आदियो मे कोई भी। **धम्मं धजं कत्वा,** दस कुशल धर्मों की ध्वजा बनाकर, उन्हे करता हुआ उठाकर दिखाता हुआ, **विस्सासयित्वा,** यह सदाचारी है, ऐसा विश्वास पैदा करके **बिळारं नाम त वतं,** इस प्रकार धर्म की ध्वजा वना कर छिपकर पाप करने वाले का व्रत ढोग कहलाता है।

चूहो के राजा ने इस प्रकार कहते ही कहते उछलकर उसकी गरदन पर चढ, ठोडी के नीचे की अन्दर की गले की नली को डसकर गले की नली को फाड मार डाला। चूहो के दल ने रुक कर शृगाल को मुर मुर करके खा डाला। पहले आए हुओ को ही शृगाल का मॉस मिला, पीछे आए हुओ को नही मिला। उसके बाद से चूहो का दल निर्भय हो गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का शृगाल यह ढोगी भिक्षु था। चूहो का राजा तो मै ही था।

१२९. अग्गिक जातक

"**नायं सिखा पुञ्ञहेतु** " यह (गाथा) भी शास्ता ने जेतवन मे रहते समय एक ढोगी भिक्षु के ही बारे मे कही—

ख. अतीत कथा

पुराने समय मे बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व चू ा के राजा हो जगल मे रहते थे।

एक शृगाल जगल मे आग लगने पर जब भागने में असमर्थ रहा, तो एक वृक्ष से सिर टिकाकर खडा हो गया। उसके सारे शरीर के बाल जल गए। वृक्ष से लगे हुए सिर पर शिखा की तरह से कुछ बाल बच गए। उसने एक दिन एक पर्वतीय तालाब में पानी पीते हुए अपनी छाया के साथ शिखा को देखकर सोचा अब मुझे

पूजी मिल गई। फिर जगल में घूमते हुए चूहो के बिल को देख 'इन्हें धोखा देकर खाऊँगा' सोच उक्त प्रकार से ही कुछ दूर पर जाकर खडा हो गया।

चारे के लिए घूमते हुए बोधिसत्त्व ने उसे देखकर सोचा—यह शीलवान है। और पास जाकर पूछा—

"तुम्हारा क्या नाम है?"

"मेरा नाम है अग्नि-भारद्वाज।"

"तू किस लिए आया है?"

"तुम्हारी रक्षा करने के लिए।"

"तू हमारी रक्षा कैसे करेगा?"

"मैं उँगलियो पर गिनना जानता हूँ। तुम्हारे प्रात काल निकल कर भोजन खोजने के लिए जाते समय 'इतने है' गिनकर फिर लौटने के समय गिनूँगा। इस प्रकार प्रात साय गिनता हुआ रक्षा करूँगा।"

"अच्छा तो मामा रक्षा कर।"

उसने स्वीकार कर उनके निकलने के समय एक, दो, तीन गिनकर फिर लौटने के समय उसी तरह गिनकर सबसे अन्तिम चूहे को खाना आरम्भ किया। शेष (कथा) पहले ही की तरह है। इस (कथा) में चूहो के राजा ने रुक कर कहा भो अग्नि भारद्वाज! तूने जो यह माथे पर शिखा रक्खी है, यह धर्म के लिए नही रक्खी। यह पेट के लिए रक्खी है। इतना कह यह गाथा कही—

नाय सिखा पुञ्ञहेतु घासहेतु अयं सिखा,
नगट्ठगणन याति अल ते होतु अग्गिक॥

[यह शिखा पुण्य के लिए नही है; पेट के लिए है। तेरी गणना उँगलियों पर पूरी नहीं उतरती। अग्गिक! अब तेरी गणना बस करे।]

नगट्ठगणन याति, नङ्गुट्ठ गणना का मतलब है उँगलियो की गणना। यह चूहो का दल उँगलियों की गणना पर नही जाता है, नही प्राप्त होता है, नही पूरा उतरता है, क्षय को प्राप्त होता है। **अल ते होतु अग्गिक** शृगाल को नाम से बुलाता है कि इतने तेरे लिए पर्य्याप्त हो। अब इससे आगे तू चूहे न खा पाएगा। अथवा

हमारे साथ तुम्हारा रहना बन्द हुआ ; अब हम साथ न बसेंगे। शेष पहले ही की तरह से है।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय भी शृगाल यही भिक्षु था। चूहो का राजा तो मैं ही था।

१३०. कोसिय जातक

"यथावाचाय भुञ्जस्सु. . ." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय श्रावस्ती-निवासी एक स्त्री के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह एक श्रद्धालु ब्राह्मण उपासक की ब्राह्मणी थी, बहुत दुश्चरित्र, पापिन। रात को दुराचार करती। दिन मे कुछ न कर रोग का बहाना बना बडबडाती हुई लेट रहती।

वह ब्राह्मण उससे पूछता—"भद्रे! तुझे क्या कष्ट है?"

"मुझे वायु बीधती है।"

"तो तुझे क्या क्या चाहिए?"

"चिकने, मीठे, अच्छे, स्वादिष्ट यागु-भात-तैल आदि।"

जो जो वह इच्छा करती, ब्राह्मण ला-लाकर देता। दास की तरह सब काम करता। लेकिन वह ब्राह्मण के घर आने के समय लेट रहती, बाहर जाने के समय जारो के साथ गुजारती। ब्राह्मण सोचता कि इसके शरीर मे चुभनेवाली वायु का अन्त ही होता दिखाई नही देता।

एक दिन वह गन्ध-माला आदि ले जेतवन जा शास्ता की वन्दना तथा पूजा कर एक ओर बैठा। शास्ता ने पूछा—"क्यो ब्राह्मण दिखाई नही देता?"

"भन्ते ! मेरी ब्राह्मणी के शरीर को वायु वीधती है। सो मै उसके लिए घी-तेल तथा अच्छे अच्छे भोजन खोजता हूँ। उसका शरीर मोटा गया है। चमडी निखर आई है। लेकिन वात-रोग का अन्त होता नही दिखाई देता। मै उसकी सेवा में ही लगा रहता हूँ। इसीलिए यहाँ आने का अवकाश नही मिलता।"

शास्ता ने ब्राह्मणी के दुश्चरित्र होने की वात जान कहा—"ब्राह्मण ! इस प्रकार पडी हुई स्त्री के रोग के न शान्त होने पर पूर्व-जन्म में भी तुझे वुद्धिमानो ने वताया था कि यह-यह ओषधि करनी चाहिए, लेकिन वह पूर्व-जन्म की वात होने के कारण तू उस पर ध्यान नही देता।"

उस ब्राह्मण के पूछने पर शास्ता ने पूर्व जन्म की वात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व ब्राह्मणो के एक वडे कुल में पैदा हुए। सयाने होने पर तक्षशिला जा, वहाँ सव विद्याएँ सीख लौटकर वनारस मे प्रसिद्ध आचार्य्य हुए। एक सौ राजधानियो के क्षत्रिय ब्राह्मण कुमार प्राय उसी के पास विद्याएँ सीखते।

एक जनपदवासी ब्राह्मण ने वोधिसत्त्व से तीनो वेद और अट्ठारह विद्याएँ सीखी। वह वाराणसी में ही वस कर प्रतिदिन दो तीन वार वोधिसत्त्व के पास आता। उसकी ब्राह्मणी दुश्चरित्र थी, पापिन थी। शेप सारी कथा वर्तमान कथा ही की तरह है। हाँ, वोधिसत्त्व ने यह सुन कि 'इस कारण से उपदेश सुनने आने का समय नही मिलता' और यह समझकर कि वह लडकी उसे धोखा देकर लेट रहती है, उसके अनुकूल ओषधि वताने का विचार कर कहा—

"तात ! अव से तू उसे दूध, घी, रस आदि मत दे। गोमूत्र में त्रिफला आदि और पाँच प्रकार के पत्ते रखकर, उनका काढा वनाकर, औषधि में ताँवे की गन्ध आने तक ताँवे के नए वर्तन मे रख, रस्सी, जोत या किसी वृक्ष की ही लता ले, उसे जाकर कहना—यह तेरे रोग के लिए उचित दवाई है। या तो इसे पी, नही तो जो भोजन तू करती है उसके अनुसार काम कर। और यह गाथा भी कहना। यदि दवाई न पीए तो उसे रस्सी से वा जोत से अथवा लता से कुछ प्रहार लगाकर, केशो से पकडकर, खीचकर कोहनी से पीटना। उसी समय उठकर वह काम करने लगेगी।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार कर कथनानुसार औषधि बना कहा—"भद्रे ! यह औषधि पी।"

"यह औषधि तुझे किसने कही?"

"आचार्य्य ने, भद्रे!"

"इसे ले जाओ, नही पीऊँगी।"

ब्राह्मण ने कहा, तू स्वेच्छा से नही पीएगी। रस्सी लेकर बोला, या तो रोग के अनुसार दवाई पी अथवा यवागु-भात के अनुसार काम कर।

इतना कह यह गाथा कही—

यथावाचाव भुञ्जस्सु यथाभुत्तञ्च व्याहर
उभयं ते न समेति वाचा भुत्तञ्च कोसिये॥

[जैसे कहती है, वैसे दवाई पी, अथवा जैसे खाती है वैसे काम कर। कोसिये! तेरी वाणी और तेरे भोजन का मेल नही बैठता।]

———

यथावाचाव भुञ्जस्सु जैसे तू कहती है वैसे खा। तू कहती है कि मुझे बात बीधता है तो उसके अनुसार खा। **यथा वाचं वा,** यह भी पाठ ठीक बैठता है। यथा वाचाय, यह भी पाठ है। अर्थ सर्वत्र यही है। **यथा भुत्तञ्च व्याहर,** जैसे खाया है उसके अनुसार काम कर। 'मै अरोगी हूँ' कहके घर के काम कर। **यथा-भुतञ्च,** यह भी पाठ है। मै निरोग हूँ यह सत्य बात कहकर भी काम कर। **उभयं ते न समेति वाचा भुत्तञ्च कोसिये,** यह जो तेरी वाणी है कि मुझे वात बीधता है और यह जो तू अच्छे-अच्छे भोजन खाती है, यह दोनो तेरे लिए ठीक नही है। इस-लिए उठकर काम कर। **कोसिये,** उसे गोत्र से सम्बोधन करता है।

ऐसा कहने पर कोसिय ब्राह्मणी ने सोचा कि अब आचार्य्य का ध्यान आकृष्ट हो गया है। अब मै इसे धोका नही दे सकती। अब मैं उठकर काम करूँगी। वह उठकर काम करने लगी। आचार्य्य ने मेरी दुश्चरित्रता जान ली। अब मै ऐसा नही कर सकती। आचार्य्य के प्रति गौरव होने से उसने पाप-कर्म करना छोड़ दिया और शीलवान् हो गई।

उस ब्राह्मणी ने भी सोचा कि अब मुझे सम्यक् सम्बुद्ध ने जान लिया। उसने फिर शास्ता के प्रति गौरव का भाव होने से दुराचार नही किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय के पति-पत्नी अब के पति-पत्नी थे। आचार्य्य मैं ही था।

पहला परिच्छेद

१४. असम्पदान वर्ग

१३१. असम्पदान जातक

"असम्पदानेनितरीतरस्स " यह (गाथा) शास्ता ने वेळुवन मे रहते समय देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय भिक्षु धर्मसभा में बैठे बातचीत कर रहे थे—आयुष्मानो! देवदत्त अकृतज्ञ है। तथागत के सद्‌गुणो को नही जानता। शास्ता ने आकर पूछा—

"भिक्षुओ! अब बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?"

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ, देवदत्त केवल अभी अकृतज्ञ नही है, पहले भी अकृतज्ञ ही रहा है।"

—इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में मगधदेश के राजगृह नगर मे किसी मगधनरेश के राज्य करते समय बोधिसत्त्व उस (राजा) के ही सेठ थे। उनके पास अस्सी करोड धन था। नाम था सङ्खसेठ। वाराणसी में भी पिळिय सेठ नामक सेठ था। उसके पास भी अस्सी करोड धन था। वे दोनो परस्पर मित्र थे।

उनमें से वाराणसी के पिळिय सेठ को किसी कारण से कोई खतरा आ पडा। तमाम जायदाद नष्ट हो गई। वह दरिद्र हो गया। आश्रयरहित रह गया। तब वह अपनी स्त्री को ले, सङ्खसेठ के पास आने के विचार से वाराणसी से निकल पैदल ही राजगृह पहुँच सङ्खसेठ के घर गया।

उसने उसे देखते ही 'मेरा मित्र आया है' पहचान गले मिल आदर सत्कार करवाया। फिर कुछ दिन बिताकर पूछा—"मित्र कैसे आए ?"

"सौम्य, मुझ पर खतरा आ पड़ा। मेरा सब धन नष्ट हो गया। मुझे सहारा दें।"

"मित्र, अच्छा डरें मत" कह उसने खजाना खुलवा, चालीस करोड हिरण्य दिलवा, उसके साथ अपने पास जो कुछ भी वस्त्र आदि तथा जानदार और बेजान वस्तु थी सभी बाँटकर आधी-आधी दी। वह उस धन को ले फिर वाराणसी लौट रहने लगा।

आगे चलकर सङ्घसेठ पर भी वैसा ही खतरा आ पडा। उसने अपने लिए सहारा ढूंढते हुए सोचा—मैंने अपने मित्र का बहुत उपकार किया। आधी जायदाद दे दी। वह मुझे देखकर त्यागेगा नही। मैं उसके पास चलूँ।

उसने अपनी स्त्री के साथ पैदल ही वाराणसी पहुँचकर कहा—"भद्रे, तेरे लिए यह अच्छा नही है कि तू मेरे साथ गली-गली भटके। मैं जाकर सवारी भेजूंगा, तू पीछे उस पर बडे ठाट मे आना।" उसे एक शाला मे बिठा स्वय नगर मे दाखिल हुआ। सेठ के घर पहुँच सूचना भिजवाई कि राजगृह से तुम्हारा मित्र आया है। सेठ बोला—"आ जाए।" उसे देखकर न वह आसन से उठा न स्वागत ही किया, केवल इतना पूछा—"क्यो आया है ?"

"तुम्हें देखने आया हूँ।"

"निवास स्थान कहाँ ठीक किया है ?"

"अभी कही ठीक नही हुआ है। सेठानी को शाला मे बिठाकर आया हूँ।"

"यहाँ तुम्हारे ठहरने को जगह नही। सीधा लेकर किसी जगह पका खाकर चले जाओ। फिर मेरे पास न आना"—इतना कह अपने एक दास को आज्ञा दी कि मेरे मित्र के पल्ले में एक तूम्बा भर भूसा बाँध दो।

उसी दिन उसने एक हजार गाडी लाल चावल छटवाकर कोठे भरे थे। चालीस करोड धन लेकर आए अकृतज्ञ महाचोर ने,मित्र को केवल एक तूम्बा भर भूसा दिलवाया। दास एक टोकरी मे तूम्बा भर भुस डाल बोधिसत्त्व के पास गया।

बोधिसत्त्व ने सोचा—यह असत्पुरुष मेरे पास से चालीस करोड धन पाकर अब तूम्बा भर भूसा दे रहा है। इसे लूँ अथवा न लूँ ? उसे विचार हुआ—यह

तो अकृतज्ञ है, मित्रद्रोही है, कृत उपकार को भूलकर इसने मेरे साथ मैत्री-सम्बन्ध तोड डाला है। यदि मैं इसका दिया तूम्वा भर भूसा बुरा होने के कारण नही ग्रहण करता हूँ, तो मै भी मैत्री-सम्बन्ध को तोडनेवाला होता हूँ। इसलिए मै इसके दिए तूम्बा भर भूसे को ग्रहण कर अपनी ओर से मैत्री-भाव की प्रतिष्ठा करूँगा।

उसने तूम्बा भर भूसे को अपने पल्ले मे बाँध लिया और महल से उतर शाला को गया।

स्त्री ने पूछा—आर्य्य, तुम्हे क्या मिला?

"भद्रे! हमारे मित्र पिळिय सेठ ने हमें तूम्वा भर भूसा दे आज ही बिदा कर दिया।"

उसने रोना आरम्भ किया—आर्य्य! इसे लिया ही क्यो? क्या चालीस करोड धन का बदला यही है?

वोधिसत्त्व ने कहा—भद्रे, रो मत। मैंने अपनी ओर से मैत्री-सम्बन्ध न टूटने देने के लिए, अपनी ओर से उसे बनाए रखने के लिए, ग्रहण किया है। तू क्यो सोच करती है।

—इतना कह यह गाथा कही—

असम्पदानेनितरीतरस्स
बालस्स मित्तानि कली भवन्ति,
तस्मा हरामि भुस अड्ढमानं
मा मे मित्ति जीयित्थ सस्सतायं॥

[ऐसी वैसी वस्तु स्वीकार न करने से मूर्ख आदमी के मित्र मित्र नही रहते। इसलिए मै अर्धमान भूसा ले आया हूँ। मेरा मैत्री-सम्बन्ध न टूटे। वह शाश्वत बना रहे।]

असम्पदानेन, परस्वर का लोप होकर सन्धि हुई है, अर्थ है ग्रहण न करने से। **इतरीतरस्स** जिस किसी अच्छी वुरी चीज के। **बालस्स मित्तानि कली भवन्ति,** मूढ, अप्रज्ञावान् के मित्र स्खलित हो जाते है, मनहूस से हो जाते है, मतलब टूट जाते है। **तस्मा हरामि भुसं अड्ढमानं,** इसी कारण से प्रकट करता है कि मै मित्र का दिया हुआ तूम्बा भर भुस ले आया हूँ। आठ नाळि को **मान** कहते है। चार

नाळियो को **अर्ध-मान**, और चार ही नाळियो को तूम्वा, इसीलिए कहा तूम्वा भर भूसा। **मा मे मित्ति जीयित्थ सस्सताय,** मेरे मित्र से मेरा मैत्री-भाव न टूटे। हमेशा वना रहे।

ऐसा कहने पर भी सेठानी रोती ही रही। उसी समय सङ्खसेठ द्वारा पीळिय सेठ को दिया गया एक दास शाला के दरवाजे के पास से गुजर रहा था। उसने सेठानी के रोने की आवाज सुनी। अन्दर जाकर जव उसने देखा कि उसके स्वामी है तो पैरो पर गिर पडा और रोने-चिल्लाने लगा। उसने पूछा—"स्वामी! यहाँ कैसे आए?" सेठ ने सव हाल कह दिया। दास वोला —स्वामी, हो, चिन्ता न करे। इस प्रकार दोनो को दिलासा दे अपने घर ले गया। वहाँ सुगन्धित जल से नहलाया, खिलाया। फिर अन्य सव दासो को खवर कर दी कि स्वामी आए है। कुछ दिन विताकर सभी दासो को साथ ले वह राजा के यहाँ पहुँचा और शोर किया।

राजा ने वुलवाकर पूछा—यह क्या है?

उन्होने वह सव हाल राजा को कह दिया। राजा ने उनकी वात सुन दोनो सेठो को वुलवा सङ्खसेठ को पूछा—

"महासेठ! क्या तूने सचमुच पिळिय सेठ को चालीस करोड धन दिया?"

"महाराज! मेरी आशा लगा जव मेरा मित्र मेरे पास राजगृह आया तो मैंने उसे न केवल चालीस करोड धन ही दिया वल्कि जितना भी मेरे पास धन था, चाहे जानदार चाहे वेजान सभी के दो वरावर हिस्से कर एक हिस्सा दिया।"

राजा ने पिळिय सेठ से पूछा—क्या यह सच है?

"देव! हाँ ठीक है।"

"तेरी ही आशा लगाकर तेरे पास आने पर तूने भी इसका कोई सत्कार सम्मान किया?"

वह चुप रहा।

"तूने तूम्वा भर भूसा इसके पल्ले में डलवाकर दिया है?"

इसे भी सुनकर वह चुप ही रहा।

राजा ने मन्त्रियो के साथ सलाह करके कि क्या करना चाहिए, सेठ की निन्दा कर आज्ञा दी—जाओ, पिळिय सेठ के घर में जितना धन है, वह सव सङ्खसेठ को दे दो।

बोधिसत्त्व ने कहा—महाराज! मुझे पराया धन नही चाहिए। जितना धन मैंने दिया है, उतना ही दिलवा दें।

राजा ने बोधिसत्त्व का धन दिलवा दिया।

बोधिसत्त्व ने अपना दिया हुआ सब धन ले, दास-समूह सहित राजगृह जाकर कुटुम्ब बसाया। फिर दान आदि पुण्य कर्म करते हुए कर्मानुसार परलोक सिधारे।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय पिळिय सेठ देवदत्त था। सङ्खसेठ तो मै ही था।

१३२. पञ्चगरुक जातक

"कुसलूपदेसे धितिया दळ्हाय च ..." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय अजपाल न्यग्रोध (वृक्ष) के नीचे मार-कुमारियो द्वारा प्रलोभित किए जाने के सूत्र के बारे मे कही। भगवान् आरम्भ से ही ऐसे थे—

दद्दल्लमाना आगञ्छुं तण्हा च अरती रगा,
ता तत्थ पनुदी सत्था तुलं भट्ठंव मालुतो॥[1]

[तण्हा, अरति और रगा (मारकन्याएँ) प्रकाश फैलाती हुई आई। शास्ता ने उनको ऐसे दूर भगा दिया जैसे हवा उडती हुई रुई को।]

इस प्रकार उस सूत्र को अन्त तक कहने के समय धर्म-सभा में एकत्र हुए भिक्षुओ ने बातचीत चलाई—आयुष्मानो, सम्यक् सम्बुद्ध के पास मारकन्याएँ सैकडो प्रकार के दिव्य रूप बनाकर लुभाने के लिए आई। लेकिन उन्होने आँख खोलकर भी नही देखा। अहो! बुद्ध-बल अद्भुत है। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने

---

[1] संयुत्त-निकाय, मार-संयुत्त।

कहा—"भिक्षुओ, इस समय मेरे सभी आश्रवो को नष्ट कर सर्वज्ञता प्राप्त किए रहने पर मारकन्याओ के न देखने में कुछ भी आश्चर्य्य नही है। पूर्व समय में वुद्धत्व-प्राप्ति की खोज में लगे हुए रहने पर, चित्त-मैल के रहते हुए भी निर्मित दिव्य-रूप को आँख उघाडकर कामुक भाव से न देख, जाकर महाराज्य प्राप्त किया था। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व सौ भाइयो में सवसे छोटे थे। सारी कथा उपरोक्त **तक्कसिला जातक**[1] के अनुसार विस्तारपूर्वक कहनी चाहिए।

उस समय तक्षशिला नगर निवासियो ने नगर के वाहर शाला में (वैठे हुए) वोधिसत्त्व के पास जा, स्वीकृति ले उन्हें राज्य का भार सौंप अभिषेक किया। फिर उन्होंने नगर को देवनगर की तरह तथा राजभवन को इन्द्रभवन की तरह अलकृत किया।

उस समय वोधिसत्त्व नगर में प्रविष्ट हो राजभवन के महल के ऊँचे तल पर श्वेत-छत्र के नीचे श्रेष्ठ रतन-सिंहासन पर चढ देवेन्द्र की तरह वैठे। आमात्य, ब्राह्मण, गृहपति आदि तथा सभी अलकारो से अलकृत क्षत्रियकुमार उसे घेर कर खडे थे। देव-अप्सराओ के समान नृत्य-गीत तथा वाद्य में कुशल, उत्तम हाव-भाव वाली, सोलह हजार नर्तकियो ने गाना वजाना किया। गाने वजाने के शब्द से सारा राजभवन ऐसा गूँज गया जैसे मेघ के शब्द से महासमुद्र की कोख भर जाए।

तव वोधिसत्त्व को विचार हुआ—यदि मै उन यक्षिणियो के वनाए हुए दिव्य-रूप को देखता तो मै मृत्यु को प्राप्त होता और मुझे यह वैभव न देखना मिलता। प्रत्येक-वुद्धो के उपदेशानुसार चलने से मुझे इसकी प्राप्ति हुई। इस प्रकार सोच उल्लास-वाक्य कहते हुए यह गाथा कही—

कुसलूपदेसे धितिया दळ्हाय च
अवत्थितत्ताभयभीरुताय च,

---

[1] तक्कसिला=तेलपत्त जातक (९६)

न रक्खसीनं वसमागमिम्हा
स सोत्थिभावो महता भयेन मे॥

[सदुपदेश पर दृढता पूर्वक स्थिर रहने से तथा भय भीरुता को मन में स्थान न देने से हम राक्षसियो के वश मे नही आए। मै बडे भारी भय से बच गया (सकुशल रहा)।]

कुसलूपदेसे; समर्थ लोगो के उपदेश से; प्रत्येक-बुद्धो के उपदेशानुसार (चलकर)। **घितिया दळ्हाय च,** दृढ धृति से वा स्थिर अखण्डित वीर्य्य से। **अवत्थितत्ताभयभीरुताय च,** भय-भीरुता को मन मे स्थान न देने से, भय कहते है चित्त का डर मात्र और भीरुता शरीर को कँपा देनेवाला भय। यह दोनो बोधिसत्त्व को यह देखकर भी कि यक्षिणियाँ मनुष्यो को खा जाती है—इस भय के कारण के उत्पन्न होने पर भी नही हुए। इसीलिए कहा है **अवत्थितत्ताभयभीरुताय च।** भयभीरुता के न होने से अर्थात् भयभीरुता का कारण उपस्थित होने पर भी पीछे न लौटने से। **न रक्खसीनं वसमागमिम्हा,** यक्ष-कान्तार मे उन राक्षसियो के वश मे नही आया। क्योकि सदुपदेश मे हमारी स्थिति स्थिर और दृढ थी। भयभीरुता के न होने से पीछे न लौटने वाले हुए, इसलिए राक्षसियो के वश मे नही आए—यही भाव है। **स सोत्थिभावो महता भयेन मे** सो आज मुझे यह बड़े भारी भय से, राक्षसियो से प्राप्त होनेवाले दु ख दौर्मनस्य से छुटकारा मिला, कल्याण हुआ, प्रीतिसौमनस्य-भाव पैदा हुआ।

इस प्रकार बोधिसत्त्व इस गाथा से धर्मोपदेश कर धर्मानुसार राज्य कर दानादि पुण्य करते हुए कर्मानुसार परलोक गए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। मै उस समय तक्षशिला जाकर राज्य प्राप्त करनेवाला कुमार था।

१३३. घतासन जातक

"खेम यहिं " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह भिक्षु बुद्ध से कर्मस्थान ग्रहण कर, प्रत्यन्त-देश मे जा, एक गाँव के पास एक आरण्यक निवासस्थान में रहने लगा। पहले ही महीने में जब वह भिक्षा माँगने गया था, उसकी पर्णकुटी में आग लग गई। निवासस्थान के अभाव में कष्ट पाते हुए उसने उपस्थापकों से कहा। वे बोले—'अच्छा, भन्ते पर्णशाला बनाएँगे। अभी तो हल जोत रहे है। अभी बो रहे है।' इस प्रकार कहते-कहते उन्होंने तीन महीने बिता दिए।

निवासस्थान की अनूकूलता न होने से वह भिक्षु कर्मस्थान को पूरा नही कर सका। उसे निमित्त[1] तक प्राप्त नही हुआ। वर्षावास की समाप्ति पर वह जेतवन गया और वहाँ शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठा। शास्ता ने उसके साथ बातचीत करते हुए पूछा—क्यो भिक्षु! तेरा कर्मस्थान सफल हुआ? उसने आरम्भ से लेकर प्रतिकूलता की सब बात कही। शास्ता ने कहा—भिक्षु! पूर्व समय में जानवरो ने भी अपनी अनुकूलता प्रतिकूलता देख, अनुकूल रहने पर उस जगह रह, प्रतिकूल प्रतीत होने पर उसे छोड दिया और दूसरी जगह चले गए। तूने क्यों अपनी अनुकूलता प्रतिकूलता न समझी? फिर उसके पूछने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

---

[1] ध्यान के विषय (object) का आँख बन्द कर लेने पर दिखाई देने वाला आकार।

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व पक्षी होकर पैदा हुए। बडे होने पर सौभाग्यशाली पक्षि-राजा हो एक जगल मे, एक तालाब के किनारे शाखा-प्रशाखाओ से युक्त तथा वहुत पत्तोवाले एक महान्-वृक्ष पर अनेक अनुचरो सहित रहने लगे। वहुत से पक्षी पानी पर फैली हुई शाखाओ पर रहते हुए अपनी बीट पानी मे गिरा देते थे।

उस तालाव मे एक प्रचण्ड नाग-राज रहता था। उसके मन में आया कि यह पक्षिगण मेरे निवासस्थान तालाव मे बीट गिराते है। मै पानी मे से आग पैदा कर इस वृक्ष को जला इन्हे यहाँ से भगाऊँ। उसने क्रुद्ध हो रात को जिस समय सव पक्षिगण इकट्ठे हो वृक्ष की शाखाओ पर सो रहे थे, पहले चूल्हे पर रक्खे पानी की तरह वुलवुले पैदा कर, दूसरी वार धुआँ उठा, तीसरी वार ताड के वृक्ष जितनी ऊँची ज्वाला उठाई। वोधिसत्त्व ने कहा—"पक्षिगण! आग से जलने पर पानी से वुझाया जाता है, लेकिन अव पानी ही जलने लगा है इसलिए यहाँ नही रह सकते। अन्यत्र चलें।" इतना कह, यह गाथा कही—

खेमं यहि तत्थ अरी उदीरितो
उदकस्स मज्झे जलते घतासनो,
न अज्ज वासो महिया महीरुहे
दिसा भजव्हो सरणज्ज नो भयं॥

[जहाँ कल्याण था, वही शत्रु पैदा हो गया। पानी में आग जलने लगी। आज पृथ्वी से उगे वृक्ष पर रहना नही होगा। (किसी दूसरी) दिशा को चलो। जिस जगह हमने शरण ली थी वही से भय पैदा हो गया।]

खेमं यहि तत्थ अरी उदीरितो, जिस पानी मे हमारा कल्याण था, जहाँ निर्भयता थी, वही से विरोधी, शत्रु पैदा हो गया। **उदकस्स,** पानी के, **घतासनो,** अग्नि। वह घृत खाती है, इसीलिए घतासन कहलाई। **न अज्ज वासो,** आज हमारा रहना नही है। **महिया महीरुहे,** महीरुह कहते है वृक्ष को, उस इस पृथ्वी में से पैदा

हुए वृक्ष मे। **दिसा भजव्हो**, दिशाओ में जाओ। **सरणज्ज नो भयं**, आज हमारे शरणस्थान से ही भय पैदा हो गया। प्रतिशरणस्थान ही भय का जनक हो गया।

ऐसा कह वोधिसत्त्व अपना कहना मानने वाले पक्षियो को लेकर अन्यत्र चले गए। वोधिसत्त्व का कहना न मान जो पक्षिगण वही रहे वह मर गए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, चार आर्य-सत्यो को प्रकाशित कर, जातक का मेल वैठाया। आर्य-सत्यो के प्रकाशन के अत मे वह भिक्षु अर्हत् हो गया।

उस समय वोधिसत्त्व का कहना मानने वाले पक्षिगण, वुद्ध-परिषद हुई। पक्षि-राजा तो मैं ही था।

१३४. झानसोधन जातक

"ये सञ्ञिनो " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय संड्करस नगर-द्वार पर सक्षेप से पूछे गए प्रश्न की धर्मसेनापति (सारिपुत्र) द्वारा विस्तृत व्याख्या के वारे मे कही। अतीत कथा इस प्रकार है—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व ने एकान्त जगल मे मृत्यु को प्राप्त होते समय शिष्यो के पूछने पर सक्षेप से उत्तर दिया—नेवसञ्ञानासञ्ञी तपस्वियो को ज्येष्ठ-शिष्य की वात समझ में नही आई। वोधिसत्त्व ने आभास्वर (-लोक) से आ आकाश में ठहर यह गाथा कही—

ये सञ्ञिनो तेपि दुग्गता
येपि असञ्ञिनो तेपि दुग्गता,
एत उभयं विवज्जय
त समापत्तिसुखं अनंगणं॥

[जो सञ्ञि हैं, उनकी भी दुर्गति है। जो असञ्ञि हैं, उनकी भी दुर्गति है। इन दोनो को छोडकर समापत्ति सुख दोष रहित है।]

ये सञ्ञिनो, नेवसञ्ञानासञ्ञी प्राणियो को छोड शेष चित्त वाले प्राणियो से मतलब है। **तेपि दुग्गता**, उस समापत्ति के न होने से वह भी दुर्गति-प्राप्त हैं। **येपि असञ्ञिनो**, असञ्ञा-भव मे पैदा होने वाले चित्त-रहित प्राणियो से मतलब है। **तेपि दुग्गता**, वे भी इसी समापति को प्राप्त किए न रहने से दुर्गति-प्राप्त हैं। **एत उभयं विवज्जय।** इन दोनो सञ्ञि-भाव तथा असञ्ञिभाव को छोड, त्याग—यह शिष्यो को उपदेश देता है। **त समापत्ति सुख अनगणं**—नेवसञ्ञानासञ्ञायतन को प्राप्त करने वालो के शान्त होने के कारण उसे सुख कहा, ध्यान-सुख अङ्गण-रहित, दोष-रहित होता है। चित्त की वहुत एकाग्रता होने से भी वह अङ्गण-रहित कहलाया।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने धर्मोपदेश दिया। फिर शिष्य की प्रशसा कर ब्रह्म-लोक गए। तब वाकी के तपस्वियो की ज्येष्ठ-शिष्य के प्रति श्रद्धा वढी।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल वैठाया। उस समय ज्येष्ठशिष्य सारिपुत्र था, महाब्रह्मा तो मैं ही था।

१३५. चन्दाभ जातक

"**चन्दाभं** " यह (गाथा) भी शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय **संकस्स** नगर के द्वार पर स्थविर की प्रश्न-की-व्याख्या के ही बारे में कही—

पूर्व समय मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व ने एकात जगल मे मृत्यु को प्राप्त होने के समय शिष्यों के पूछने पर **चन्दाभं सुरियाभं** कहा।

वह मरकर आभस्वर-लोक में उत्पन्न हुए। तपस्वियो ने ज्येष्ठशिष्य की बात पर विश्वास नही किया। बोधिसत्त्व ने आकर आकाश में उपस्थित हो यह गाथा कही—

चन्दाभं सुरियाभञ्च योध पञ्ञाय गाधति,
अवितक्केन झानेन होति आभस्सरूपगो॥

[जो प्रज्ञा से सूर्य्याभा तथा चन्द्राभा पर स्थिर होता है, वह वितर्क-रहित ध्यान से आभस्वर-लोक में उत्पन्न होता है।]

चन्दाभं का मतलब है **श्वेत-कसिण**। **सुरियाभं** का पीत-कसिण। **योध पञ्ञाय गाधति,** जो आदमी इस ससार में इन दोनो **कसिनो** की प्रज्ञा से भावना करता है, उन्हें आलम्बन बनाकर उनमें प्रवेश करता है, उनमें प्रतिष्ठित होता है। अथवा **चन्दाभं सुरियाभञ्च योध पञ्ञाय भावति,** जहाँ तक सूर्य्य तथा चन्द्रमा की आभा फैली है, उस सारे स्थान में **परिभाग-कसिन**[1] को बढाकर उसी को आलबन बनाकर ध्यान का अभ्यास करनेवाला दोनो आभाओ की प्रज्ञा से भावना करता है। इसलिए यह भी ठीक अर्थ है। **वितक्केन झानेन होति आभस्सरूपगो,** वह मनुष्य वैसा अभ्यास करने से द्वितीय-ध्यान को प्राप्त हो,आभस्वर-ब्रह्मलोक को प्राप्त होता ही है।

इस प्रकार बोधिसत्त्व तपस्वियो को समझाकर तथा ज्येष्ठशिष्य की प्रशसा कर ब्रह्मलोक गए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय ज्येष्ठशिष्य सारिपुत्र थे और महाब्रह्मा तो मैं ही था।

---

[1] परिभाग-कसिण=पटिभाग-निमित्त (अभिधम्मत्थ संगहो ९।१८)

१३६. सुवण्णहंस जातक

"यं लद्ध तेन तुट्ठब्बं " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय थुल्ल-नन्दा भिक्षुणी के बारे मे कही—

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती मे एक उपासक ने भिक्षुणी सघ को लहसुन लेने का निमन्त्रण दिया और अपने खेत वाले को आज्ञा दी कि यदि भिक्षुणियाँ आएँ तो एक एक भिक्षुणी को दो तीन गाठ लहसुन दे। उसके वाद से भिक्षुणियाँ उसके घर भी और खेत पर भी लहसुन के लिए जाने लगी।

एक उत्सव के दिन उस (उपासक) के घर मे लहसुन समाप्त हो गया। थुल्लनन्दा भिक्षुणी औरो को साथ ले घर गई और वोली—आयुष्मानो, लहसुन की आवश्यकता है।

—आर्ये, लहसुन नही है। लाया हुआ समाप्त हो गया। खेत पर जाएँ।

वह खेत पर गई और वेअदाज लहसुन लिवा लाई।

खेत वाला खीझा—यह क्या है कि भिक्षुणियाँ अन्दाज न कर वे-अदाज लहसुन ले जाती है।

उसे यह कहता सुन जो अल्पेच्छ भिक्षुणियाँ थी वह असतुष्ट हुई और उनसे सुनकर भिक्षु भी असतुष्ट हुए। उन्होने खीझकर भगवान् से यह वात कही। भगवान् ने थुल्लनन्दा भिक्षुणी की निन्दा कर कहा—

"भिक्षुओ, लालची (=महेच्छ) आदमी जिस माँ ने जन्म दिया है, उसके लिए भी अप्रिय हो जाता है। वह अप्रसन्नो को प्रसन्न नही कर सकता। प्रसन्नो को अधिक प्रसन्न नही कर सकता। अप्राप्त वस्तु को प्राप्त नही कर सकता। प्राप्त वस्तु को सँभाल कर नही रख सकता। अल्पेच्छ आदमी अप्रसन्नो को प्रसन्न कर सकता है। प्रसन्नो को अधिक प्रसन्न कर सकता है। अप्राप्त वस्तु को प्राप्त

कर सकता है। प्राप्त वस्तु को बनाए रख सकता है।"—इस प्रकार भिक्षुओ को उनके योग्य उपदेश दे फिर कहा 'भिक्षुओ, थुल्लनन्दा अभी लोभी नही है, पहले भी लोभी ही रही है।' इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व एक ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। उनके वडे होने पर उनके समान जाति-कुल से उन्हें एक भार्य्या ला दी गई। उससे उसे नन्दा, नन्दवती और नन्दसुन्दरी तीन लडकियाँ हुईं। उनका विवाह होने से पूर्व ही वोधिसत्त्व मर कर स्वर्णहस होकर पैदा हुए। उन्हें पूर्व-जन्म-स्मृति का ज्ञान भी रहा।

उसने वडे होने पर सोने के परो से ढके हुए परम सौभाग्यवान् अपने शरीर को देखकर विचार किया कि मै कहाँ से मरकर यहाँ पैदा हुआ हूँ ? उसे मालूम हुआ कि मनुष्य-लोक से। फिर विचार किया कि ब्राह्मणी और लडकियो का जीवन-यापन कैसे होता है ? उसे पता लगा कि दूसरो की मजदूरी करके वडे कष्ट से जीवन-यापन करती है। तव उसने सोचा कि मेरे सोने के पर ठोस[1] हैं। इनमें से मै एक एक पर उन्हें दूं। इससे मेरी भार्य्या और लडकियाँ सुखपूर्वक जीएँगी। वह वहाँ पहुँच घर के शहतीर के एक सिरे पर वैठे।

ब्राह्मणी और लडकियो ने वोधिसत्त्व को देखकर पूछा—स्वामी, कहाँ से आए ?

"मै तुम्हारा पिता हूँ। मरकर स्वर्ण-हस होकर पैदा हुआ हूँ। तुम्हें देखने के लिए आया हूँ। इसके वाद तुम्हें दूसरो की मजदूरी करते हुए कष्ट-पूर्वक जीवन-यापन करने की जरूरत नही है। मै तुम्हें अपना एक एक पर दिया करूँगा। उसे वेच-वेच कर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करना।"

इतना कह वह एक पर देकर उड गया। इसी प्रकार वह वीच वीच में आकर एक एक पर देता। ब्राह्मणियाँ धनी और सुखी हो गईं।

एक दिन उस ब्राह्मणी ने लडकियो से वुलाकर सलाह की —'अम्म ! जान-

---

[1] कूटे और रगड़े जा सकते हैं।

वरो के दिल का पता नही। हो सकता है कि कभी तुम्हारा पिता न आए। इसलिए उसके इस बार आने पर हम उसके सभी पर उखाड लें।'

उन्होने अस्वीकार किया। वे बोली—इस प्रकार हमारे पिता को कष्ट होगा।

ब्राह्मणी ने लालची होने के कारण फिर एक दिन स्वर्ण-राजहस के आने पर कहा—स्वामी आएँ।

जब उसने देखा कि वह उसके पास आ गया है, तो दोनो हाथो से पकडकर उसके सब पर नोच लिए। सभी पर बोधिसत्त्व की इच्छा के विना जबर्दस्ती लिए जाने के कारण बगुले के पख सदृश हो गए।

अब बोधिसत्त्व पख पसारकर उड न सके। उसने उन्हे मटके मे रखकर पाला। उनके जो नए पर निकले वह श्वेत ही निकले। पख निकलने पर वह उडकर अपने स्थान पर चले आए, और फिर वहॉ नही गए।

शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात सुनाकर कहा—भिक्षुओ, थुल्लनन्दा अभी लालची नही रही है। पहले भी लालची रहीं है। लालच के ही कारण स्वर्ण से हाथ धोया। अब अपने लालच के कारण लहसुन से भी हाथ धोएगी। इसके बाद अब लहसुन खाना न मिलेगा। जैसे थुल्लनन्दा को वैसे ही उसके कारण दूसरी भिक्षुणियो को भी। इस लिए बहुत मिलने पर भी अपना अन्दाजा जानना चाहिए। थोडा मिलने पर जितना मिले उसी से सन्तोष करना चाहिए। अधिक की इच्छा नही करनी चाहिए।

इतना कह यह गाथा कही—

यं लद्धं तेन तुट्ठब्बं अतिलोभो हि पापको,
हंसराजं गहेत्वान सुवण्णा परिहायथ॥

[जो मिले उससे सतुष्ट रहना चाहिए। अतिलोभ करना पाप हैं। हसराज को पकडकर स्वर्ण से हाथ धोया।]

तुट्ठब्बं का मतलब है सतोष करना चाहिए।

इतना कह शास्ता ने अनेक प्रकार से निन्दा कर नियम बना दिया कि जो भिक्षुणी लहसुन खाए उसे पाचित्तिय (-दोष) लगे[1]।

फिर जातक का मेल बैठाया। उस समय की ब्राह्मणी यह थुल्लनन्दा हुई। तीन लडकियाँ इस समय की तीन बहनें। स्वर्ण-राजहस तो मै ही था।

१३७. बब्बु जातक

"यत्थेको लभते बब्बु . " शास्ता ने इसे जेतवन में विहार करते समय काणमाता के शिक्षा-पद[2] के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती मे अपनी कानी लडकी के कारण काण-माता कहलाने वाली एक स्रोतापन्न आर्य-श्राविका थी। उसने अपनी कानी लडकी को एक गामडे में समान जाति के किसी आदमी को दिया। काणा किसी काम से माँ के घर आई।

कुछ दिन बीतने पर उसके स्वामी ने दूत भेजा—मै चाहता हूँ कि काणा आवे। काणा चली आवे।

काणा ने दूत की बात सुन, माँ से पूछा—माँ! जाती हूँ।

काण-माता ने सोचा कि इतने दिन रहकर खाली हाथ कैसे जाएगी, इस लिए पुए पकाने लगी।

उस समय एक पिण्डपातिक[3] भिक्षु उसके घर आया। उपासिका ने उसे बिठा-

---

[1] भिक्खुणी-पातिमोक्ख।

[2] पाचित्तिय के भोजन-वर्ग का चौथा शिक्षापद।

[3] जो भिक्षु केवल भिक्षा से ही निर्वाह करता है, निमन्त्रण आदि ग्रहण नहीं करता।

कर पात्रभर पुए दिलवाए। उसने निकल दूसरे (भिक्षु) से कहा। उसे भी वैसे दिलवाए। उसने भी निकलकर दूसरे से कहा। उसे भी वैसे ही। इस प्रकार चार जनो को पुए दिलवाए। सव तैयार पुए समाप्त हो गए। काणा का जाना नही हुआ।

उसके स्वामी ने दूसरा दूत भेजा और दूसरे के वाद तीसरा भेजा। तीसरे दूत के हाथ उसने कहला भेजा कि यदि काणा नही आएगी तो मै दूसरी भार्य्या ले आऊँगा। तीनो वार उसी तरह जाना न हो सका। काणा का स्वामी दूसरी स्त्री ले आया। काणा ने जव यह सुना तो रोने लगी।

शास्ता को पता लगा तो पहन कर पात्र-चीवर ले, काण-माता के घर जा विछे आसन पर वैठ कर पूछा—

"यह क्यो रोती है?"

"इस कारण से।"

शास्ता ने धर्मकथा कह काणा-माता को दिलासा दिया। फिर उठकर विहार को गए।

उन चार भिक्षुओ को तीन वार तैयार पुए ले आकर काणा के गमन मे वाधक होने की वात भिक्षुसघ मे प्रकट हो गई।

एक दिन भिक्षुओ ने धर्मसभा मे वातचीत चलाई—आयुष्मानो! चार भिक्षु तीन वार काण-माता के यहाँ तैयार किए सव पुए खागए। इससे काणा का जाना रुक गया। स्वामी ने लडकी को छोड दिया। अव इससे महाउपासिका के मन को वहुत दु ख हुआ है।

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, वैठे क्या वातचीत कर रहे हो?" "अमुक वातचीत।"

भिक्षुओ, उन चार भिक्षुओ ने काण-माता का खाकर केवल अव ही उसे दु ख नही दिया है, पहले भी दिया है। इतना कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व पत्थर-कट कुल में पैदा हुए। बडे होने पर वह अपने शिल्प में पारङ्गत हो गए।

काशी देश के एक कस्बे में एक बडा धनवान् सेठ था। उसका गडा हुआ खजाना ही चालीस करोड का सोना था।

उसकी स्त्री मरी तो वह धन के स्नेह से चुहिया होकर पैदा हुई और उस खजाने पर रहने लगी। इस प्रकार वह कुल नष्ट हो गया। वश उजड गया। वह गाँव भी ध्वस्त हो नामशेष रह गया।

उन दिनो बोधिसत्त्व जहाँ पहले गाव था उसी जगह के पत्थर उखाडकर उन्हें तराशते थे। उस चुहिया ने अपने आसपास बोधिसत्त्व को बार बार आते-जाते देखा तो उसके मन में स्नेह पैदा हो गया। उसने सोचा मेरा बहुत सा धन निष्प्रयोजन नष्ट हुआ जाता है। मैं और यह इकट्ठे मिलकर इस धन को खाएँगे। एक दिन वह मुँह मे एक कार्पापण पकडे हुए बोधिसत्त्व के पास पहुँची। बोधिसत्त्व ने प्रिय-वाणी का प्रयोग करते हुए पूछा—

"अम्म ! कार्षापण लेकर क्यो आई है ?"

"तात ! इसे लेकर स्वय भी खाएँ और मेरे लिए भी मास लाएँ।"

बोधिसत्त्व ने 'अच्छा' कह स्वीकार कर कार्पापण ले घर जाकर एक मासे का माम खरीदकर उसे लाकर दिया। उसने उसे ले अपने निवासस्थान पर जा जी भरकर खाया।

उसके बाद से वह इसी तरह प्रतिदिन बोधिसत्त्व को कार्पापण देती। वह भी इससे माम ला देता।

एक दिन उस चुहिया को बिल्ले ने पकड लिया। वह बोली—"स्वामी ! मुझे न मारे।"

"क्यो ? मुझे भूख लगी है ! मैं मास खाना चाहता हूँ। मै बिना मारे नही रह सकता।"

"क्या केवल एक दिन एक ही बार मास खाना चाहते है, अथवा नित्य प्रति ?"

"मिले तो नित्य खाना चाहूँगा।"

"यदि ऐसा है, तो मुझे छोड दें। मै नित्य प्रति मास दिया करूँगी।"

"अच्छा तो ध्यान रखना" कह बिल्ले ने उसे छोड दिया।

उसके बाद से उसके लिए जो मास आता उसके वह दो हिस्से करके एक बिल्ले को देती एक स्वय खाती।

फिर एक दिन उसे एक दूसरे बिल्ले ने पकड लिया। उसे भी उसी तरह मना-

कर अपने आप को छुडाया। उसके वाद से तीन हिस्से करके खाने लगी। फिर एक और ने पकड लिया। उसे भी उसी तरह मनाकर अपने को छुडाया। उसके वाद से चार हिस्से करके खाने लगी। फिर एक ने पकड लिया। उसे भी उसी तरह समझाकर अपने को छुडाया। उसके वाद से पाँच हिस्से करके खाने लगी।

केवल पाँचवाँ हिस्सा मिलने से वह चुहिया आहार की कमी से क्लान्त तथा कृश हो गई। उसका मास और रक्त कम पड गया। बोधिसत्त्व ने उसे देखकर पूछा—"अम्म! म्लान क्यो पड गई है?"

"इस कारण से।"

"इतनी देर तक मुझे क्यो नही वताया। मै जानता हूँ इसका क्या उपाय करना चाहिए।"

इस प्रकार उसे दिलासा दे शुद्ध स्फटिक पत्थर की एक गुफा वनाकर बोधिसत्त्व ने कहा—

"अम्म! तू इस गुफा मे प्रवेश कर, वहाँ रह जो कोई आए उसे कठोर वचन से डाँट।"

चुहिया गुफा मे पडकर लेट रही। एक विल्ले ने आकर कहा—मेरा मास दे।

चुहिया वोली—अरे दुष्ट विलार! क्या मै तेरी नौकर हूँ कि मास लाकर दू। अपने पुत्रो का मास खा।

विल्ला नही जानता था कि चुहिया स्फटिक गुहा के अन्दर है। उसने क्रोध से सहसा आक्रमण किया कि चुहिया को पकडूँगा। उसका हृदय स्फटिक गुहा से टकराया और उसी समय चूर चूर हो गया। आखे निकल आई सी हो गई। वह वही मर कर एक छिपे हुए स्थान पर गिरा। इस प्रकार दूसरे चार जने भी मृत्यु को प्राप्त हुए।

उसके वाद से चुहिया निर्भय हो गई। वह वोधिसत्त्व को प्रतिदिन दो तीन कार्षापण देती। इस प्रकार उसने सारा धन वोधिसत्त्व को ही दे दिया। वे दोनो जीवन भर मित्र-भाव से रह यथाकर्म (परलोक) सिधारे।

शास्ता ने पूर्वजन्म की यह कथा-कह सम्यक् सम्बुद्ध हुए रहने पर यह गाथा कही—

यत्थेको लभते वब्बु दुतियो तत्थ जायति,
ततियो च चतुत्थो च इद ते वब्बुका विल ॥

[जहाँ एक विल्ले को (मास) मिलता है दूसरा वही जाता है। तीसरा भी वही जाता है और चौथा भी वही। हे विल्ले! यह तेरा विल[1] है।]

यत्थ जिस जगह। वब्बु, विल्ला। दुतियो तत्थ जायति, जहाँ एक को चुहिया अथवा मास मिलता है, दूसरा विल्ला भी वही जाता है। वैसे ही ततियो च चतुत्थो च, इस प्रकार वहाँ चार विल्ले हुए। वे दिन प्रति दिन मास खाते हुए। ते वब्बुका इद स्फटिक का बना हुआ विल पेट मे गटाकर सभी मर गए।

इस प्रकार शास्ता ने धर्मोपदेश दे जातक का मेल वैठाया।

उस समय के चारो विल्ले चार भिक्षु हुए। चुहिया काण-माता हुई। पत्थर तराशनेवाला जौहरी तो मै ही था।

१३८. गोध जातक

"कि ते जटाहि दुम्मेध ..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक ढोंगी के वारे मे कही।

वर्तमान-कथा जैसी कथा पहले आई है,[2] वैसी ही है।

---

[1] प्रतीत होता है कि यह गाथा चुहिया द्वारा कही गयी थी। इसमें 'विल' शब्द का अर्थ 'हिस्सा' होना चाहिए। जातककार ने यह गाथा बुद्ध-भाषित बनाई है; और विल का जो अर्थ किया है वह मेल नहीं खाता।

[2] भीमसेन जातक (८०)।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व गोह के रूप में पैदा हुए।

उस समय पाँच-अभिज्ञा-प्राप्त (एक) उग्र तपस्वी एक गाँव के समीप जगल मे पर्ण-कुटी में रहता था। ग्रामवासी तपस्वी की अच्छी तरह सेवा करते थे। बोधिसत्त्व उसके चङ्क्रमण करने की जगह के पास एक बिल मे रहते थे। प्रतिदिन दो तीन बार तपस्वी के पास आकर धर्म तथा अर्थपूर्ण बाते सुन, तपस्वी को प्रणाम कर अपने निवासस्थान को लौट जाते। आगे चलकर तपस्वी ग्रामवासियो को पूछकर वहाँ से चला गया। उस शीलव्रतसम्पन्न तपस्वी के चले जाने पर एक दूसरा कुटिल तपस्वी आकर उसी आश्रम मे रहने लगा। बोधिसत्त्व उसे भी पहले ही तपस्वी की तरह सदाचारी समझ उसके पास गए।

एक दिन ग्रीष्मऋतु में अकाल वर्षा बरसने पर बिलो में से मक्खियाँ निकली। उन्हें खाने के लिए गोहें घूमने लगी। ग्रामवासियो ने बाहर निकल बहुत सी गोहें पकड, चिकनी भोजन-सामग्री के साथ खट्टा-मीठा गोह-मास तैयार कर उस तपस्वी को दिया।

तपस्वी ने गोह का मास खाया तो उसे बहुत स्वादिष्ट लगा। उसने पूछा—यह मास बडा मीठा है। किसका मास है? जब उसे पता लगा कि किसका मास है, तो वह सोचने लगा कि मेरे पास बडी गोह आती है। उसे मारकर उसका मास खाऊँगा। उसने पकाने के बरतन और उनके साथ घी, नमक आदि मँगवा कर एक ओर रख लिए। स्वय मुद्गर ले, काषाय वस्त्र मे ढक, पर्ण-कुटी के सामने शान्तचित्त की तरह बैठ बोधिसत्त्व की प्रतीक्षा करने लगा।

बोधिसत्त्व शाम को तपस्वी के पास जाने के लिये निकले। समीप पहुँचते ही उसकी इन्द्रियो में विकार देखकर सोचने लगे—यह तपस्वी उस तरह नही बैठा है जैसे और दिनो बैठा रहता था। आज यह मेरी ओर दूषित दृष्टि से देख रहा है। इसकी परीक्षा करूँगा। वे जिधर से तपस्वी की देह को छूकर हवा आ रही थी उधर खडे हुए। गोह के मास की गन्ध आई। उसे सूघकर बोधिसत्त्व ने सोचा—इस कुटिल तपस्वी ने आज गोह-मास खाया होगा। इसीसे यह रस-तृष्णा मे आसक्त हो गया। आज मेरे समीप पहुँचने पर मुझे मुद्गर से मार मास

पकाकर खाना चाहता होगा। वह उसके पास न जा, वापिस लौटकर घूमने लगे।

तपस्वी ने वोधिसत्त्व को न आता देख समझा कि यह जान गया होगा कि मै इसे मारना चाहता हूँ। इसी से नही आता है। न आने पर भी यह कहाँ वचकर जाएगा। उसने मुद्गर निकाल फेककर मारा। वह उसकी पूछ के सिरे में ही लगा।

वोधिसत्त्व जल्दी से विल में प्रविष्ट हो दूसरे छेद से सीस निकालकर वोले —"कुटिल जटिल! मै तुझे सदाचारी समझ कर तेरे पास आया। लेकिन अव मैंने तेरा कुटिल स्वभाव जान लिया। तेरे जैसे महाचोर को इस प्रव्रजित भेप मे क्या?" इस प्रकार उसकी निन्दा करते हुए यह गाथा कही—

किं ते जटाहि दुम्मेध किं ते अजिनसाटिया,
अब्भन्तरं ते गहनं वाहिरं परिमज्जसि॥[१]

[हे दुर्वुद्धि! जटाओ मे तुझे क्या (लाभ)? और मृगचर्म के पहनने से क्या? अन्दर मे तो तू मैला है, वाहर से धोता है।]

किं ते जटाहि दुम्मेध, भो, दुर्वुद्धि! मूर्ख! यह जटाएँ प्रव्रजित को धारण करनी चाहिए। प्रव्रज्या-गुण से तू रहित है। तुझे इन जटाओ से क्या लाभ? किं ते अजिनसाटिया, मृग-चर्म के अनुकूल सयम का अभाव है, तव इस मृग-चर्म से क्या? अब्भन्तर ते गहन—तेरा भीतर राग, द्वेप तथा मोह से मलिन है, ढका हुआ है। वाहरिं परिमज्जसि, सो तू अभ्यन्तर को मैला ही रख स्नान आदि से तथा (श्रमण-) चिह्न धारण करके वाहर को साफ करता है। तू वैसा ही है जैसे काञ्जी मे भरा हुआ तुम्वा हो, विप से भरा घडा हो, साँप से भरी हुई वाँवी हो अथवा गूह मे भरा हुआ चित्रित घडा हो। तुझ चोर के यहाँ रहने से क्या? शीघ्र भाग। यदि नही जाएगा तो ग्रामवासियो को कहकर तेरा निग्रह करवाऊँगा।

---

[१] धम्मपद (२६।२२)

इस प्रकार बोधिसत्त्व उस कुटिल तपस्वी को धमकाकर बिल मे चले गए। कुटिल तपस्वी भी वहाँ से चला गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय कुटिल तपस्वी यह ढोंगी था। पहला शीलवान् तपस्वी सारिपुत्र था। गोहपण्डित तो मै ही था।

१३९. उभतोभट्ठ जातक

"अक्खी भिन्ना पटो नट्ठो "यह शास्ता ने वेळुवन मे विहार करते समय देवदत्त के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय भिक्षुओ ने धर्म सभा मे बातचीत चलाई—"आयुष्मानो! जैसे कोई श्मशान की लकडी हो, जो दोनो ओर से जलती हो और जिसके बीच मे गूह लगा हुआ हो, वह न जगल मे जलावन का काम देती है, न गाँव मे ही जलावन का काम देती है। इसी प्रकार देवदत्त ऐसे कल्याणकर शासन मे प्रव्रजित हो दोनो ओर मे भ्रष्ट हो गया, दोनो ओर से बाहर हो गया, गृहस्थी के भोगो को भी नही भोगता और श्रमणत्व के उद्देश्य को भी पूरा नही करता।"

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत'। 'भिक्षुओ! देवदत्त केवल अभी उभयभ्रष्ट नही हुआ है, पूर्व समय मे भी भ्रष्ट हुआ है।' इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व वृक्ष-देवता होकर पैदा हुए।

उस समय एक गाँव में मछुए रहते थे। एक मछुआ जाल ले अपने छोटे

पुत्र के साथ जिम तालाव में मछुए साधारणत मछली पकडते थे, वहाँ गया। जाकर जाल फेंका। जाल पानी से छिपे हुए एक ठूठ में जा फँसा। मछुए ने जव देखा कि वह निकलता नही है तो सोचा कि जाल में कोई वडी मछली फँसी होगी। मैं लडके को (उसकी) माँ के पास भेजकर पडोसी से झगडा करा दू। तव कोई इसमें से हिस्सा पाने की आशा न करेगा। उसने पुत्र से कहा—"तात! जा। माँ से कह कि हमें वडी मछली मिली है और यह भी कह कि वह पडौसी से झगडा कर ले।"

पुत्र को भेजने के वाद जव वह जाल को न खीच सका तो रस्सी टूटने के भय से उसने अपना ऊपर का कपडा उतार जमीन पर रक्खा और पानी में उतरा। मछली के लोभ में मछली को ढूढते हुए ठूठ से टकरा गया। उसकी दोनो आँखें फूट गईं। जमीन पर रक्खे हुए उसके कपडे को चोर ले गए।

वह पीडा से पगला हो, हाथ से आँखो को दवाए हुए पानी से वाहर निकल काँपता हुआ कपड़े खोजने लगा।

उसकी भार्य्या ने भी सोचा कि मैं झगडा करके ऐसा कर दू कि कोई कुछ आशा न रक्खे। उसने एक कान में ताड का पत्ता पहना, एक आँख में हाँडी का काजल लगाया और गोद में कुत्ता ले पडौसी के घर गई। उसकी एक पडौसन वोली—"तूने एक ही कान मे ताड का पत्ता डाला है, एक ही आँख में कज्जल लगाया है और गोद में कुत्ते को ऐसे लेकर जैसे यह तेरा प्यारा पुत्र हो एक घर से दूसरे घर घूम रही है। क्या तू पगली हो गई है?"

"मैं पगली नही हूँ। तू मुझे व्यर्थ ही गाली देती है, मजाक करती है। अव मैं मुखिया[1] के पास जाकर तुझपर आठ कार्षापण जुर्माना करवाऊँगी।"

इस प्रकार परस्पर झगडकर दोनो मुखिया के पास गईं। दोषी का पता लगाने मे वही दण्डित हुई।

लोग उसे वाँधकर पीटने लगे कि जुर्माना दे।

वृक्षदेवता ने गाँव में उसका यह हाल और जगल में उसके पति की विपत्ति को देख एक टहने पर खडे होकर कहा—भो! पुरुष! जल में भी तेरा काम

---

[1] ग्रामभोजक।

बिगड़ा, स्थल पर भी। तू दोनों ओर से भ्रष्ट हो गया। इतना कह यह गाथा कही—

अक्खी भिन्ना पटो नट्ठो सखीगेहे च भण्डन,
उभतो पदुट्ठकम्मन्तो उदकम्हि थलम्हि च॥

[आंख फूट गई। वस्त्र खोया गया। सखी के घर मे झगडा हुआ। जल और स्थल दोनो में ही तेरा काम बिगड़ गया।]

सखीगेहे च भण्डनं, सखी का मतलब है सहायिका, उनके घर में तेरी भार्य्या ने झगड़ा किया। झगड़ा करके बांधी गई, पीटी गई और दण्डित हुई। उभतो पदुट्ठ कम्मन्तो, इस प्रकार दोनो जगह मे तेरा काम बिगडा ही। कौन से दो स्थानो में ? उदकम्हि थलम्हि च, आंख फटने से और वस्त्र नष्ट होने से जल में काम बिगडा, सखी के घर पर झगड़ा होने से स्थल पर काम बिगड़ा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मछुआ देवदत्त था। वृक्षदेवता तो मैं ही था।

१४०. काक जातक

"निच्चं उब्बिग्ग हदया ..." यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय जाति-सेवा के बारे में कही। 'वर्तमान कथा बारहवे निपात की भद्दसाल जातक' मे आएगी।

'भद्दसाल जातक (४६५)।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व कौए की योनि में पैदा हुए।

एक दिन राजा का पुरोहित नगर के बाहर नदी पर स्नान कर, सुगन्धित लेप कर, मालाएँ पहन, सुन्दर वस्त्र धारण किये नगर में प्रविष्ट हुआ। नगर-द्वार के तोरण पर दो कौए बैठे थे। उनमें से एक ने दूसरे को कहा—

"मित्र! मैं इस ब्राह्मण के सिर पर बीट करूँगा।"

"यह अच्छा नही है। यह ब्राह्मण ऐश्वर्य्यशाली है। ऐश्वर्य्यशालियो के साथ वैर करना बुरा है। यह क्रुद्ध होने पर सभी कौओ को भी नष्ट कर सकता है।"

"मुझसे बिना किए नहीं रहा जाता।"

"अच्छा तो पता लगेगा" कह दूसरा कौआ उड गया।

जब ब्राह्मण तोरण के नीचे आया उसने ओलम्बक[1] गिराते हुए की तरह उसके सिर पर बीट गिरा दी। ब्राह्मण क्रुद्ध हो कौओ का वैरी हो गया।

उस समय मजदूरी पर धान कूटनेवाली एक दासी धूप में घर के दरवाजे पर धान फैला उनकी देखभाल कर रही थी। उसे बैठे बैठे नींद आ गई। उसे असावधान जान एक लम्बे बालोवाला बकरा आकर धान खा गया। उसने जाग उसे देखकर भगाया।

बकरे ने दूसरी तीसरी बार भी उसे उसी प्रकार सोता देख आकर धान खाया। उसने भी उसे तीनो बार भगाया। तब वह सोचने लगी—इस प्रकार यह बार बार खाकर आधा धान खा जायगा। मेरी बड़ी हानि होगी। अब मैं ऐसा प्रबन्ध करूँगी कि यह फिर न आए।

वह जलती हुई लकडी ले सोई हुई की तरह बैठ रही। जब बकरा धान खाने आया उसने उठकर जलती हुई लकड़ी से मारा। बालो में आग लग गई। शरीर जलने पर वह आग बुझाने के लिए जल्दी से भागकर हस्तिशाला के पास

---

[1] शत्रु-पक्ष के हाथी के नगर-द्वार में प्रवेश करने पर उसके ऊपर जोर से फेंकी जाने वाली नोकदार लकडी।

गया और वही एक तृण-कुटी से शरीर रगडा। उस कुटी को आग लग गई। वहाँ से उठी ज्वाला हस्तिशाला मे जा लगी। हस्तिशाला के जलने से हाथियो की पीठ जली। वहुत से हाथियो के शरीर मे जखम हो गए। वैद्य हस्तियो को निरोग न कर सका, तो उसने राजा से कहा। राजा ने पुरोहित से पूछा—"आचार्य्य! हाथियो का वैद्य हाथियो की चिकित्सा नही कर सकता। कोई दवाई जानते है?"

"महाराज, जानता हूँ।"

"किस चीज की जरूरत होगी?"

"महाराज, कौवे की चर्वी।"

राजा ने आज्ञा दी—तो कौवो को मारकर कौवो की चर्वी लाओ।

उसके वाद से कौवे मारे जाने लगे, और चर्वी न पाकर जहाँ तहाँ उनका ढेर लगाया जाने लगा। कौवो पर वडी भारी विपत्ति आई।

उस समय वोधिसत्त्व अस्सी हजार कौओ के साथ महाश्मशान वन मे रहते थे। एक कौवे ने जाकर वोधिसत्त्व को कौओ पर आई विपत्ति का समाचार कहा। उसने सोचा—"मेरे अतिरिक्त कोई मेरी जातिवालो के दु ख को दूर नही कर सकता। मै दूर करूँगा।"

वोधिसत्त्व दस पारमिताओ का ख्यालकर, मैत्री-पारमिता को प्रमुख कर एक ही उडान में उड खुले हुए वडे रोशनदान में प्रविष्ट हो राजा के आसन के नीचे जा वैठे। उन्हें एक मनुष्य पकडने लगा। राजा ने रोका—शरण में आए को मत पकडो। वोधिसत्त्व ने थोडा विश्राम ले मैत्री-पारमिता का ध्यान कर आसन के नीचे से निकल राजा से कहा—महाराज! राजा को चाहिए कि वह उत्तेजना के वशीभूत होकर राज्य न करे। जो भी कार्य्य करना हो वह सोच विचार कर करना चाहिए। जो करने से हो सके, वही कार्य्य करना चाहिए, दूसरा नही। यदि राजा ऐसा कार्य्य करते है जिसका कोई फल नही होता तो वह जनता के लिए मरण होता है, महान् भय का कारण होता है। पुरोहित ने वैर के वश हो झूठ कहा है। कौवो को चर्वी होती ही नही।

राजा प्रसन्न हुआ। उसने वोधिसत्त्व को सोने का सुन्दर पीढा दिया। वहाँ वैठने पर उसके परो को सौ-पाक सहस्र-पाक तैल लगवाया। सोने के थाल में राज-भोजन दिलवाया। पानी पिलवाया। अच्छी तरह से खा चुकने पर जब

बोधिसत्त्व सुखपूर्वक बैठे तब राजा ने पूछा—"पण्डित, तू कहता है, कौवो को चर्वी नही होती। उनको चर्वी क्यो नही होती?"

बोधिसत्त्व ने इन इन कारणो से नही होती बताते हुए सारे घर को अपने शब्द मे गुजाते हुए धर्म-कथा की, और यह गाथा कही—

निच्चं उब्बिग्गहदया सब्बलोकविहेसका,
तस्मा तेस वसा नत्थि काकानस्माकञातिनं॥

[हृदय नित्य उद्विग्न रहता है। सारे ससार को कष्ट देते है। इसलिए राजा! हमारी जाति के लोग—जो कौवे है—चर्वी-रहित होते है।]

महाराज! कौवे सदैव उद्विग्न हृदय होते है, भयभीत ही विचरते है। सारे ससार को कष्ट देते है—क्षत्रिय आदि को भी, स्त्री-पुरुष को भी, लडके लडकियो को भी—सभी को तकलीफ पहुँचाते है—इसलिए इन दो कारणो से हमारे जातिवालो को चर्वी नही होती। पहले भी नही हुई। आगे भी नही होगी।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने यह बात स्पष्ट कर राजा को समझाया—महाराज! राजा किसी भी बात को बिना सोचे-विचारे नही करते।

राजा ने प्रसन्न हो राज्य बोधिसत्त्व को भेंट किया। बोधिसत्त्व ने राज्य राजा को लौटा दिया। फिर उसे पञ्चशीलो मे प्रतिष्ठित कर उससे सभी प्राणियो को अभय-दान देने के लिए कहा। राजा ने धर्मोपदेश सुन सभी प्राणियो को अभय-दान दे कौवो के लिए नित्य-भोजन बाँध दिया। प्रतिदिन अम्मण भर चावल का भात पकाकर नाना प्रकार के रसो से मिलाकर कौओ को दान दिया जाता। बोधिसत्त्व को राज-भोजन ही मिलता।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय वाराणसी का राजा आनन्द था। कौवो का राजा तो मै ही था।

पहला परिच्छेद

१५. ककण्टक वर्ग

१४१. गोध जातक (२)

"न पापजनससेवी " यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय विपक्षी भिक्षु की सगत करने वाले भिक्षु के बारे मे कही। वर्तमान कथा महिलामुख जातक[1] की कथा के ही समान है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व गोह के रूप मे पैदा हुए। वडे होने पर वह नदी के किनारे एक वडे विल में सैंकडो गोहो के साथ रहने लगे।

उनके पुत्र गोह-पिल्ले की एक गिरगिट के साथ दोस्ती हो गई। वह उसके साथ आनन्द मनाता और गले लगाने के लिए उस पर आ पडता।

उस गिरगिट के साथ उसकी दोस्ती की वात गोहराज से कही गई। गोहराज ने पुत्र को वुलाकर कहा—

"तात! तू अनुचित स्थान में विश्वास कर रहा है। गिरगिट की जाति नीच होती है। उनका विश्वास नही करना चाहिए। यदि तू उसका विश्वास करेगा, तो तेरे और गिरगिट के कारण यह सारा गोह-कुल विनाश को प्राप्त होगा। अव से इसके साथ दोस्ती मत रख।" उसने दोस्ती नही ही छोडी।

जव वोधिसत्त्व के बार वार कहने से भी उनकी मित्रता जैसी की तैसी रही, तव वोधिसत्त्व ने सोचा कि इस गिरगिट के कारण हमको अवश्य खतरा होगा।

---

[1] महिलामुख जातक (२६)

खतरे के समय के लिए भागने का मार्ग तैयार होना चाहिए। उसने एक तरफ हवा आने का रास्ता बनवा लिया।

बोधिसत्त्व का पुत्र भी शनै शनै बडे शरीर वाला हुआ, गिरगिट पहले ही जितना रहा। वह समय-समय पर उसका आलिंगन करने के लिए गिरगिट पर आ पडता। गिरगिट को ऐसा मालूम देता कि मानो उस पर पर्वत आ पडा है। उसने कष्ट पाते हुए सोचा कि यदि यह और कुछ दिन इस प्रकार मेरा आलिङ्गन करता रहा तो मै जीवित नही रहूँगा। इसलिए किसी शिकारी के साथ मिलकर इस गोह-कुल को ही नष्ट करवाऊँ।

एक दिन ग्रीष्म ऋतु में वर्षा होने पर बाँबी से मक्खियाँ निकली। जहाँ-तहाँ से गोह निकलकर मक्खियो को खाने लगे। एक गोह-शिकारी गोह के विल को फोडने के लिए कुदाल और कुत्ते साथ में ले जगल में घूम रहा था। गिरगिट ने उसे देखकर सोचा कि आज अपना मनोरथ पूरा करूँगा। उसने पास आ, थोडी दूर पर ठहर पूछा—"हे! पुरुष! जगल मे क्यो घूम रहे हो?" उसने कहा—गोहो के लिए। गिरगिट बोला—"मै कई सौ गोहो का निवासस्थान जानता हूँ। आप आग और पुआल लेकर आएँ।" उसे वहाँ ले जाकर कहा, "यहाँ पुआल रख, आग लगाकर धुआँ करें। चारो तरफ कुत्तो को विठाएँ। अपने आप मुग्दर लेकर वैठें। जो जो गोह निकले उन्हे मार-मारकर ढेर लगाएँ।" फिर स्वय एक जगह पर सिर उठाकर पड रहा—आज शत्रु की पीठ[1] देखने को मिलेगी।

शिकारी ने पुआल का धुआँ किया। धुआँ विल में घुसा। गोह जव धुएँ से अंधे हुए तव मृत्यु-भय से भयभीत हो भागने लगे। शिकारी ने जो जो गोह निकले उन्हें मारा। उसके हाथ से वचो को कुत्तो ने लिया। गोहो के लिए महाविनाश उपस्थित हुआ।

बोधिसत्त्व को मालूम हुआ कि गिरगिट के कारण महान् खतरा पैदा हो गया। वह सोचने लगे कि पापी का साथ नही ही करना चाहिए। पापी की सगत से सुख नहीं हो सकता। एक पापी गिरगिट के कारण इतने गोह नाश को प्राप्त हुए। इस प्रकार सोचते हुए हवा आने के विल से भागते हुए यह वात कही—

---

[1] शत्रु की पीठ देखना मिलने का भावार्थ है पलायन; यहाँ विनाश से तात्पर्य है।

न पापजनसंसेवी अच्चन्तसुखमेधति,
गोधाकुलं ककण्टाव कलिं पापेति अत्तानं॥

[पापी की सगत करने वाले को निरन्तर सुख कभी नही मिलता। जैसे गिरगिट के कारण गोह-कुल नष्ट हुआ, इसी प्रकार वह अपना विनाश करता है।]

पापजनसंसेवी, (पापी की सगत करनेवाला) आदमी **अच्चन्तसुखं**, केवल सुख ही सुख वा निरन्तर सुख **न एधति**, नही प्राप्त करता, जैसे क्या? **गोधाकुलंककण्टाव**, जैसे गिरगिट से गोह-कुल को सुख नही मिला। इसी प्रकार पापी जन की सगत करनेवाले को सुख नही मिलता। पापी जन की सगत करने वाला निश्चय से **कलिं पापेति अत्तानं**, कलि कहते है विनाश को, पापी जन की सगत करने वाला निश्चयपूर्वक अपने को और अपने साथ रहने वालो को नष्ट करता है।

पालि मे **फलं पापेति** पाठ है। वह पाठ अट्ठकथा में नही है। उस अर्थ का भी यहाँ मेल नही वैठता। इसलिए जैसे यहाँ कहा गया, वैसे ही ग्रहण करना चाहिए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल वैठाया। उस समय गिरगिट देवदत्त था। वोधिसत्त्व का पुत्र उपदेश न माननेवाला गोह-पिल्ला विपक्ष-सेवी भिक्षु था। गोह-राज तो मै ही था।

१४२. सिगाल जातक

"**एतं हि ते दुराजानं** " यह शास्ता ने वेणुवन में विहार करते समय **देवदत्त** के (तथागत को) मारने का प्रयत्न करने के वारे में कही।

क. वर्तमान कथा

धर्म-सभा में भिक्षुओ की वातचीत सुनकर तथागत ने कहा—भिक्षुओ ! देवदत्त ने केवल अभी मेरे वध की कोशिश नही की। पहले भी की ही है। लेकिन मुझे मार नही सका। स्वय ही दुखी हुआ। यह कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्व गीदड़ होकर पैदा हुए। वह श्रृगाल राजा वन श्रृगालगण सहित श्मशान मे रहने लगे।

उस समय राजगृह मे उत्सव था। अधिकाश मनुष्य सुरा पीते थे, वह था ही सुरा-उत्सव। अनेक धूर्त वहुत सी सुरा और मास ले आये, और मस्त होकर सुरा पीने तथा मास खाने लगे। रात्रि के पहिले पहर में ही उनका मास समाप्त हो गया। सुरा तो वहुत थी।

एक वोला—"मास का टुकडा दो।"

दूसरे ने कहा—"मास तो समाप्त हो गया" "मेरे खड़े रहते कही मास समाप्त हो सकता है?" कह उसने सोचा कि कच्चे श्मशान मे मृत मनुष्यो को खाने के लिए आए हुए श्रृगालो को मार कर मास लाऊँगा। वह एक मोगरी ले नाली के रास्ते शहर से निकल श्मशान जा मोगरी सहित मृतक की तरह सीधा ही लेट रहा।

उस समय श्रृगालो के दल से घिरे हुए वोधिसत्त्व वहाँ आए। उसे देखकर वह समझ गए कि यह मरा नही है, लेकिन तव भी सोचा कि अच्छी तरह परीक्षा करूँगा। उन्होंने उस आदमी के नीचे की हवा की ओर जा उसके शरीर की गन्ध सूघ, जाना कि यह वास्तव में मृत नही है। तव सोचा कि इसे लज्जित करके जाऊँगा। उन्होने मोगरी के सिरे को पकडकर खीचा। धूर्त ने मोगरी नही छोडी। पास आते हुए को भी न देखते हुए की तरह मोगरी को और भी जोर से पकड लिया। वोधिसत्त्व ने लौटकर कहा—'हे! पुरुष! यदि तू मुर्दा होता, तो मेरे मोगरी खीचने पर उसे जोर से न पकडता। इसलिए तेरा मृत अथवा जीवित होना इस प्रकार दुर्ज्ञेय है।" इतना कह यह गाथा कही—

एत हि ते दुराजानं यं सेसि मतसायिक,
यस्स ते कड्ढमानस्स हत्या दण्डो न मुच्चति॥

[तू किस कारण से मुर्दे की तरह पडा है, यह जानना कठिन है। तेरे हाथ से तो खीचने पर डण्डा नही छूटता।]

एतं हि ते दुराजानं, तेरी यह बात जाननी कठिन है । **यं सेसि मतसायिकं,** जिस कारण से तू मुर्दे की तरह लेटा है। **यस्स ते कड्ढमानस्स,** जब डण्डे का सिरा खीचने पर वह तेरे हाथ से नही छूटता; तब तू वास्तव मे मुर्दा नही है।

ऐसा कहने पर उस धूर्त ने यह देख कि यह शृगाल मेरे जीवित होने की बात जानता है डण्डा फेककर मारा। डण्डा नही लगा। धूर्त बोला—जा, इस बार तू बच गया। बोधिसत्त्व ने रुककर उत्तर दिया—हे! पुरुष! मुझे छोड देने पर भी तू आठ महान् नरको तथा सोलह उस्सद नरको से नही छूटेगा। इतना कह चल दिए।

धूर्त को कुछ हाथ न लगा। वह श्मशान से निकल, खाई में स्नान कर जिस मार्ग से नगर से बाहर आया था, उसी से नगर मे प्रविष्ट हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय धूर्त देवदत्त था। शृगाल-राजा तो मै ही था।

१४३. विरोचन जातक

"**लसी च ते निप्फलिता** " इसे शास्ता ने वेळुवन में रहते समय देवदत्त के **गयाशीर्ष**[1] पर सुगत (तथागत) की नकल करने के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

जब देवदत्त का ध्यान (-बल) जाता रहा और उसको लोगो से जो प्राप्ति

[1] गया का ब्रह्मयोनि-पर्वत।

होती थी वह बन्द हो गई तथा लोगो ने उसका सत्कार करना छोड दिया तो उसने सोचकर एक उपाय निकाला। उसने बुद्ध से पाँच बातो[1] की याचना की, जिन्हें शास्ता ने अस्वीकार किया। तब उसने दोनो अग्रश्रावको[2] के पाँच सौ शिष्यो को जो अभी प्रव्रजित हुए तथा धर्म-विनय से सुपरिचित न थे बहकाया और उन्हें गया शीर्ष पर ले जाकर सघ मे भेद पैदा कर एक सीमा[3] में पृथक विनय-कर्म[4] करने लगा।

शास्ता ने उन भिक्षुओ के आने का समय देख दोनो अग्रश्रावको को भेजा। उन्हें देख देवदत्त प्रसन्न हुआ। रात को धर्मोपदेश देते समय उसने सोचा कि मैं बुद्ध की नकल करूँगा। वह बोला—सारिपुत्र! भिक्षु-सघ आलस्य रहित है। तुम भिक्षु-सघ को कुछ धर्मोपदेश करो। मेरी पीठ में दर्द होता है। मैं इसे जरा तानूंगा।

इतना कह देवदत्त सो गया।

दोनो अग्रश्रावक उन भिक्षुओ को धर्मोपदेश दे (आर्य-) **मार्ग और फल**[5] के प्रति उनका ध्यान जागृत कर सभी को वे वेळुवन साथ ले गए।

कोकालिक ने जब देखा कि विहार खाली हो गया तब वह देवदत्त के पास गया और बोला—"आयुष्मान् देवदत्त! तेरे अनुयायियो में भेद पैदा कर अग्रश्रावक तेरा विहार खाली कर चले गए। तू पडा सो ही रहा है।" उसने उसकी चादर हटा दीवार में कील ठोकने की तरह उसकी छाती में एडी से एक ठोकर लगाई। उसी समय उसके मुह से खून गिर पडा। उसके बाद से वह रोगी हो गया।

शास्ता ने स्थविर से पूछा—सारिपुत्र! तुम्हारे जाने के समय देवदत्त ने क्या किया?

---

[1] पांच बातें यह हैं—(१) जिन्दगी भर वन में ही रहा करें, (२) जिन्दगी भर भिक्षा मांग कर ही खाएँ, (३) जिन्दगी भर फेंके चीथड़ो के ही चीवर पहने (४) जिन्दगी भर पेड़ के नीचे ही रहें, (५) जिन्दगी भर मछली, मांस न खाएँ (चुल्लवग्ग, द्वितीय भाणवार)।

[2] सारिपुत्र और मौद्गल्यायन।

[3] सीमित-प्रदेश।

[4] साघिक कर्म।

[5] स्रोतापत्ति मार्ग आदि चार आर्य-मार्गो के चार फल।

"भन्ते! हमे देखकर देवदत्त ने सोचा कि बुद्ध की तरह व्यवहार करूँगा। बुद्ध की नकल करता हुआ वह विनाश को प्राप्त हुआ।"

"सारिपुत्र! देवदत्त केवल अभी मेरी नकल करने जाकर विनाश को प्राप्त नही हुआ, पहले भी हुआ है।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व केसरी (सिंह) होकर पैदा हुए और हिमालय की कञ्चनगुफा मे रहने लगे।

एक दिन वे कञ्चनगुफा से निकल जम्हाई ले, चारो दिशाओ की ओर नजर उठा, सिंहनाद कर शिकार के लिए निकले। उन्होने एक बडे भारी भैंसे को मारा। उसका मास खाया। फिर एक तालाब मे उतर मणि-वर्ण जल की कोख पूर्ण करते हुए की तरह गुफा की ओर प्रस्थान किया।

शिकार के लिए निकले एक गीदड ने उन्हें एकाएक देखा। जब वह भाग न सका तो वह केसरी के पैरो में जाकर गिर पडा।

"जम्बुक! क्या बात है?"

"स्वामी! मैं आपके चरणो की सेवा करना चाहता हूँ।"

"अच्छा, आ मेरी सेवा कर। मैं तुझे अच्छे-अच्छे मास खिलाऊँगा।" कह जम्बुक को कञ्चनगुफा मे ले गया।

गीदड तब से सिंह का मारा हुआ मास ही खाता रहा। कुछ ही दिन में वह मोटा हो गया।

एक दिन गुफा में पडे ही पडे उसे केसरी ने कहा—"जम्बुक! जा, पर्वत की चोटी पर चढकर पर्वत के नीचे घूमनेवाले हाथी, घोडे तथा भैंसे आदि में से जिस किसी का मास खाना चाहे, आकर मुझसे कह कि मै अमुक पशु का मास खाना चाहता हूँ। और मुझे प्रणाम कर यह भी कह कि 'हे स्वामी! अपना पराक्रम दिखाएँ।' मैं उसे मार, उसका मास खा, तुझे भी दूँगा।"

गीदड पर्वत की चोटी पर चढ नाना प्रकार के पशुओ को देख जिसका भी मास खाना चाहता कञ्चनगुफा में आकर सिंह से निवेदन कर उसके पाँव में गिरकर कहता—स्वामी! अपना पराक्रम प्रकट करे। सिंह जल्दी से छलाँग मारकर

चाहे मस्त हाथी ही होता उसकी हत्या कर उसका मास स्वय खाता और शृगाल को भी देता। गीदड़ पेट भर कर मास खा, गुफा में जा सो रहता।

इस प्रकार ज्यो-ज्यो समय व्यतीत हुआ उसके दिल में अभिमान पैदा हो गया। मेरे भी तो चार पैर है। मै क्यो रोज-रोज दूसरे पर निर्भर रहता हूँ। अव से मै भी हाथी आदि को मारकर मास खाऊँगा। सिंह भी 'हे मृगराज! स्वामी! अपना पराक्रम दिखाएँ' कहने पर ही हाथियो को मारता है; मै भी सिंह से यह कहलवाऊँगा कि 'हे जम्बुक! अपना पराक्रम दिखा' और एक वढिया हाथी को मार उसका मास खाऊँगा।

उसने शेर से कहा—स्वामी! मैने वहुत देर तक आपके मारे हुए हाथियो का मास खाया। मै भी एक हाथी को मारकर उसका मास खाना चाहता हूँ। जिस जगह आप कञ्चनगुफा में लेटते है, मै वहाँ लेट रहूँगा। आप पर्वत के नीचे घूमनेवाले हाथी को देख मेरे पास आकर कहें 'जम्वुक! अपना पराक्रम दिखा।' इतनी सी वात के लिए अनुदार न हो।

सिंह ने कहा—जम्वुक! तेरी सामर्थ्य हाथी मारने की नही है। गीदड़-कुल में पैदा होकर कोई गीदड हाथी को मारकर उसका मास खा सके, ऐसा गीदड दुनिया में नही है। तू ऐसी इच्छा मत कर। मेरे द्वारा मारे जाने वाले हाथियो का मास खाकर ही रह।

ऐसा कहने पर भी वह नही माना। वार-वार कहता ही रहा।

सिंह ने जव देखा कि वह नही मानता तो स्वीकार कर कहा—अच्छा! तो मेरी रहने की जगह पर जाकर लेट रह। जम्वुक को कञ्चनगुफा में लिटा पर्वत की चोटी पर चढ मस्त हाथी को देख गुफा के द्वार पर जाकर कहा—जम्वुक! अपना पराक्रम दिखा।

शृगाल कञ्चनगुफा से निकला, जम्हाई ली, चारो ओर देखकर तीन वार आवाज की। फिर मस्त हाथी के सिर पर आक्रमण करने जाकर उसके पाँव में गिरा। हाथी ने दाहिना पाँव उठाकर उसके सिर पर रख दिया। सिर की हड्डियाँ चूर-चूर हो गई।

उसके शरीर को हाथी ने पाँव से इकट्ठा किया, और उस पर लीद करके चिंघाड़ता हुआ जगल में चला गया।

बोधिसत्त्व ने यह हाल देख, 'जम्बुक! अब अपना पराक्रम दिखा' कह, यह गाथा कही—

लसी च ते निप्फलिता मत्थको च विदाळितो,
सब्बा ते फासुका भग्गा अज्ज खो त्वं विरोचसि॥

[तेरे सिर का भीजा निकल गया है। मस्तक फट गया है। तेरी सभी हड्डियाँ टूट गई हैं। आज तू अपना पराक्रम दिखा रहा है।]

लसी का मतलब है माथे का भीजा। निप्फलिता, निकल आई।

बोधिसत्त्व ने यह गाथा कही। जब तक जीवन था तब तक जीवित रह कर्मानुसार (परलोक) सिधारे।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय गीदड देवदत्त था। सिंह मैं ही था।

१४४. नंगुट्ठ जातक

"**बहुम्पेतं असब्भि जातवेद** ." इसे शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय आजीविकों[1] के मिथ्या-मत के बारे में कहा।

क. वर्तमान कथा

उस समय जेतवन की पिछली तरफ आजीवक नाना प्रकार की मिथ्या-तपस्याएँ करते थे। बहुत से भिक्षुओं ने उनके उकड़ू-बैठना, चिमगादड-व्रत,

---

[1] नग्न-साधुओं का एक सम्प्रदाय।

कांटो पर सोना, तथा पञ्चाग्नि ताप आदि मिथ्या तपो के भेदो को देखकर भगवान से पूछा—भन्ते! इस मिथ्या-तप से कुछ भी उन्नति होती है?

शास्ता ने उत्तर दिया—"भिक्षुओ, इस प्रकार के मिथ्या-तप से न कल्याण ही होता है, न उन्नति ही होती है। पूर्व समय में पण्डितो ने यह समझा कि इस प्रकार के तप से कल्याण होगा वा उन्नति होगी। वे जन्म-दिन पर रक्खी हुई अग्नि लेकर जगल गए। वहाँ अग्नि-पूजा आदि से कुछ भी लाभ न देख, आग को पानी से बुझा वे कठिण अभ्यास कर अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर ब्रह्मलोक गामी हुए।" इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उदीच्य ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। उनके पैदा होने के दिन माता-पिता ने जन्म-अग्नि लेकर रक्खी। सोलह वर्ष की आयु होने पर वे बोले—

"पुत्र! तेरे जन्म के दिन हमने आग रक्खी है। यदि गृहस्थ होना चाहता है तो तीनो वेद सीख। यदि ब्रह्मलोक जाना चाहता है तो आग लेकर जगल चला जा, वहाँ अग्नि की पूजा करते हुए महाब्रह्मा को प्रसन्न कर ब्रह्मलोक गामी होना।"

उसने कहा, मुझे गृहस्थी से काम नही। वह आग ले जगल में प्रवेश कर, वहाँ आश्रम बना अग्नि-पूजा करता हुआ आरण्य मे रहने लगा।

उसे एक दिन किसी प्रत्यन्त-ग्राम से दक्षिणा में एक बैल मिला। उस बैल को आश्रम पर ले जाकर उसने सोचा—अग्नि-भगवान को गो-मास खिलाऊँगा। तभी उसे ख्याल आया—यहाँ नमक नही है। अग्नि-भगवान् बिना नमक के खा न सकेंगे। गाँव मे नमक लाकर अग्नि-भगवान को नमक सहित खिलाऊँगा।

वह बैल को वैसे ही बाँध नमक लेने के लिए गाँव गया। उसके जाने पर बहुत शिकारी वहाँ आए। उन्होने बैल को देख उसे मार डाला और उसका मास पका खाकर उसकी पूंछ, जाँघ तथा चर्म वही छोडकर शेष मास लेकर चले गए।

ब्राह्मण ने लौटकर जब केवल पूंछ आदि को देखा तो सोचने लगा—यह अग्नि-भगवान् अपनी चीज की भी रक्षा नही कर सके। मेरी तो क्या रक्षा करेंगे? यह अग्नि-पूजा निरर्थक है। इससे कल्याण वा उन्नति नही है।

उनका मन अग्नि-पूजा की ओर से उदासीन हो गया। वह बोला—भो

अग्नि-भगवान्! तुम अपनी चीज की भी रक्षा नही कर सके। मेरी क्या रक्षा करोगे? मास तो नही है, इतने से ही सन्तुष्ट होओ। यह कह पूँछ आदि को आग मे फेकते हुए यह गाथा कही—

वहुम्पेतं असब्भि! जातवेद! यतवालधिनाभिपूजयाम,
मंसारहस्स नत्यज्ज मंसं नंगुट्ठम्पि भवं पटिग्गहातु॥

[हे असत्पुरुष! अग्निदेव! यह भी वहुत समझे कि हम पूँछ से तेरी पूजा कर रहे है। तुझे मास मिलना योग्य था, लेकिन मास नही है। इसलिए आप जनाव पूँछ ग्रहण करे।]

वहुम्पेतं, इतना भी वहुत है, **असब्भि**, असत्पुरुष! असाधुजातिक। **जात-वेद**, अग्नि को सम्वोघन करता है। अग्नि जात होते ही, पैदा होते ही, अनुभव होती है, ज्ञात होती है, प्रकट होती है—इसलिए **जातवेद** कहलाती है। **य तं वाल-धिनाभिपूजयाम**, आज हम तुझे जो अपनी पास की चीज भी सुरक्षित नही रख सकता उसकी पूँछ से पूजा कर रहे हैं। यही प्रकट करता है कि यह भी तेरे लिए वहुत कर रहे हैं। **मसारहस्स**, तुझे मास चाहिए था। आज तेरे लिए मास नही है। **नंगुट्ठम्पि भव परिग्गहातु**, अपनी चीज को रख सकने मे असमर्थ आप यह खुर-सहित जाँघ का चर्म और पूँछ ही ग्रहण करे।

इस प्रकार कह वोधिसत्त्व आग को पानी से वुझा ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर व्रह्मलोक-परायण हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल-वैठाया।

आग को वुझानेवाला तपस्वी उस समय मैं ही था।

१४५. राध जातक

"न त्व राध ! विजानासि..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते हुए पूर्व-भार्य्या के प्रति आसक्ति के बारे में कही। वर्तमान-कथा **इन्द्रिय-जातक**[1] में आएगी।

शास्ता ने उस भिक्षु को बुलाकर कहा—भिक्षु, स्त्रियो को बचाया नही जा सकता। पहरेदार रखने से भी उनकी देखभाल नही हो सकती। तू भी पहले पहरेदार रखकर भी नही बचा सका। अब कैसे बचा सकेगा? इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व तोते की योनि में पैदा हुए। काशी देश के एक ब्राह्मण ने बोधिसत्त्व और उसके छोटे भाई को पुत्र की तरह पाला। उन दोनो में से बोधिसत्त्व का नाम हुआ पोट्ठपाद, दूसरे का राध।

हाँ, उस ब्राह्मण की ब्राह्मणी अनाचारिणी थी, दु शीला। वह व्यापार के लिए जाने लगा तो दोनो भाइयो से बोला—तात! यदि माता ब्राह्मणी अनाचार करे, तो उसे रोकना। बोधिसत्त्व ने उत्तर दिया—तात! अच्छा! यदि रोक सकेंगे रोकेंगे नही रोक सकेंगे तो चुप रहेंगे।

इस प्रकार ब्राह्मण ब्राह्मणी को तोतो को सौंपकर व्यापार करने गया। उसके जाने के दिन से ब्राह्मणी ने अनाचार करना आरम्भ किया। (घर में) प्रवेश करनेवालो की और बाहर निकलने वालो की गिनती नही रही। उसकी करतूत देख राध ने बोधिसत्त्व से कहा—"भाई! हमारा पिता हमें कह गया था

---

[1] इन्द्रिय जातक (४२३)

कि यदि माता अनाचार करे तो उसे रोकना। अब वह अनाचार कर रही है। हम उसे रोकें।" बोधिसत्त्व ने कहा—तात ! तू अपनी बेसमझी के कारण, मूर्खता के कारण, ऐसा कह रहा है। स्त्रियो को उठाए लेकर फिरा जाए, तब भी उनकी देखभाल नही हो सकती। जो काम किया नही जा सकता, उसे न करना चाहिए। इतना कह यह गाथा कही—

न त्वं राघ ! विजानासि अड्ढरत्ते अनागते,
अव्यायतं विलपसि विरत्ता कोसियायने॥

[राघ ! तू नही जानता। अभी आधी रात भी नही हुई। न जानने के कारण ही तू बकवास करता है। उसका (अपने पति की ओर से) मुँह मुडा है।]

न त्वं राघ ! विजानासि अड्ढरत्ते अनागते, तात ! राघ ! तू नही जानता, आधी रात न होने पर ही पहले पहर में ही इतने आदमी आए। अब कौन जानता है कि कितने आदमी आएँगे ? **अव्यायतं विलपसि,** तू व्यर्थ बकवास करता है। **विरत्ता कोसियायने,** माता कोसयायनि ब्राह्मणी का दिल विरक्त है। हमार पिता के प्रति प्रेम नही है। यदि उसका उसमें प्रेम या स्नेह होता तो इस प्रकार अनाचार न करती। इन शब्दो से इस बात को प्रकट किया।

इस प्रकार कह राध को ब्राह्मणी के साथ बोलने नही दिया।

वह भी जब तक ब्राह्मण नही आया तब तक यथारुचि अनाचार करती रही। ब्राह्मण ने लौटकर पोट्ठपाद से पूछा—तात ! तेरी माँ कैसी है ? बोधिसत्त्व ने ब्राह्मण को जो जो हुआ सब कह दिया। फिर कहा—"तात ! इस प्रकार की दुश्चरित्रा से तुम्हें क्या प्रयोजन ? माता का दोष प्रकट करने के बाद से अब हम यहाँ नही रह सकते।" वह ब्राह्मण के पाँव मे गिरकर राध के सहित उडकर जगल चला गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला चार आर्य-सत्य प्रकाशित किए। सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर उद्विग्न भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय ब्राह्मण और ब्राह्मणी यही दो जने थे। राध आनन्द था। पोट्ठपाद मैं ही था।

१४६. काक जातक

"अपि नु हनुका सन्ता " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय बहुत से वृद्ध भिक्षुओ के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वे गृहस्थ होने के समय श्रावस्ती के धनी परिवार के थे। एक दूसरे के मित्र थे। परस्पर मिलकर पुण्य करते थे। बुद्ध का उपदेश सुनकर उन्होने सोचा कि हम बूढे हुए। हमें गृहस्थी से क्या लाभ? शास्ता के पास रमणीय बुद्ध-शासन में प्रव्रजित हो हम दुःख का अन्त करें।

वे अपनी सारी जायदाद लडके लडकियो को दे, रोते हुए रिश्तेदारो को छोड, शास्ता से प्रव्रज्या की याचना कर प्रव्रजित हुए। लेकिन प्रव्रजित होने पर प्रव्रज्या के अनुकूल श्रमण-धर्म की पूर्ति नही की। बूढे होने से धर्म भी नही सीख सके। गृहस्थ रहने के समय की तरह प्रव्रजित होने पर भी विहार के एक कोने में पर्ण-शाला बनवा कर उसमें इकट्ठे ही रहते थे। भिक्षा माँगने के लिए भी प्राय और कही न जाकर अपने लडके लड़कियो के घर जाकर वही खाते थे।

उनमें से एक की पहली भार्य्या सभी वृद्ध भिक्षुओ का उपकार करनेवाली थी। इसलिए बाकी जनो को जो भिक्षा मिलती उसे लेकर भी उसी के घर जा बैठकर खाते। वह भी उनको जो सूप-व्यञ्जन तैयार होता देती। किसी बीमारी से वह मर गई।

वह वृद्ध स्थविर विहार जाकर एक दूसरे के गले मिल विहार के आस-पास यह कहते हुए रोने लगे—"जिनके हाथो में मधुर-रस था, वह उपासिका मर गई।" उनकी आवाज सुनकर इधर-उधर से भिक्षुओ ने आकर पूछा—"आयुष्मानो! क्यो रो रहे हो?" वे बोले—"हमारे मित्र की पहली भार्य्या मर गई है। उसके

हाथ में मधुर-रस था। वह हमारा बहुत उपकार करने वाली थी। अब वैसी स्त्री कहाँ मिलेगी ? इसी वजह से रो रहे हैं।"

उनको विलाप करते देख भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—"आयुष्मानो ! इस कारण से वृद्ध स्थविर एक दूसरे के गले में हाथ डाल रोते हुए घूम रहे हैं।"

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?"

"अमुक बातचीत" कहने पर शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ, यह केवल अभी उसके मरने पर रोते हुए नहीं घूम रहे हैं। पहले भी इन्होंने इसके कौए की योनि में पैदा हो समुद्र में मरने पर सोचा कि समुद्र का पानी उलीचकर इसे निकाल लाएँगे। वे परिश्रम करते हुए (कठिनाई से) पण्डितों द्वारा जीवित बचाए गए।"—इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व समुद्र-देवता होकर पैदा हुए।

एक कौवा अपनी कौवी को लेकर चोगा खोजता हुआ समुद्र के किनारे गया। उस समय मनुष्य समुद्र तट पर दूध की खीर, मत्स्य-मास तथा सुरा आदि से नाग को बलि चढा चले गए थे। कौवे ने बलि की जगह पहुँच, खीर आदि देख कौवी के साथ दूध-खीर, मत्स्य-मास आदि खाकर बहुत-सी सुरा पीली। सुरापान से वे दोनो नशे में मस्त हो गए। उन्होंने सोचा कि समुद्र-क्रीड़ा करें। इस उद्देश्य से वह किनारे पर बैठकर स्नान करने लगे। एक लहर आई और कौवी को समुद्र मे बहा ले गई। उसे एक मच्छ मास खाकर निगल गया। कौआ रोने पीटने लगा—मेरी भार्य्या मर गई।

उसके रोने पीटने की आवाज सुन बहुत से कौवे इकट्ठे होकर पूछने लगे—क्यो रोते हो ? किनारे पर नहाती हुई मेरी भार्य्या को लहर ले गई। वे सब एक स्वर से रोने लग गए।

उनको यह ख्याल हुआ कि हमारे सामने इस समुद्र-जल की क्या सामर्थ्य है ? हम पानी को उलीचकर समुद्र को खाली कर अपनी सहायिका को निकाल लेंगे।

वे मुंह भर-भरकर पानी बाहर छोडने लगे। निमक के पानी से गला सूखने पर वह स्थल पर जाकर विश्राम लेते।

जब उनकी दाढें थक गईं, मुख सूख गए, आँखें लाल पड गईं तो उन्होंने दीन दुखी होकर एक दूसरे को सम्बोधन कर कहा—"भो! हम तो समुद्र से पानी लाकर बाहर गिराते हैं, लेकिन जिस-जिस जगह से पानी लाते हैं वह फिर पानी से भर जाती है। हम समुद्र को खाली न कर सकेंगे।" इतना कह, यह गाथा कही—

अपि नु हनुका सन्ता मुखञ्च परिसुस्सति,
ओरमाम न पारेम पूरतेव महोदधि॥

[हमारी दाढें थक गईं और मुंह सूखता है। हम प्रयत्न करते हैं, लेकिन पार नही पाते। महासमुद्र भरता ही जाता है।]

अपि नु हनुका सन्ता, हमारी दाढें थक गईं। ओरमाम न पारेम, हम अपना बल लगाकर समुद्र का पानी निकाल बाहर करना चाहते हैं, लेकिन हम खाली नही कर सकते, यह पूरतेव महोदधि।

इस प्रकार कहते हुए वे सभी कौवे रोने लगे—उस कौवी की ऐसी चोच थी! ऐसी गोल-गोल आँखें थी! ऐसा सुन्दर आकार-प्रकार था! ऐसा मधुर शब्द था! वह इस चोर समुद्र के कारण नष्ट हो गई।

उन्हें इस प्रकार विलाप करते देख समुद्र-देवता ने भयानक रूप दिखाकर भगाया। इस प्रकार उनका कल्याण हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय कौवी यह पूर्व की भार्य्या थी। कौवा बूढा स्थविर था। बाकी कौवे अन्य बूढे स्थविर थे। समुद्र-देवता तो मैं ही था।

१४७. पुप्फरत्त जातक

"नयिदं दुक्खं अदुं दुक्खं " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उद्विग्न-चित्त भिक्षु के वारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

भगवान् ने उससे पूछा—भिक्षु, क्या तू सचमुच उद्विग्न-चित्त है? वह बोला—हाँ, सचमुच। "तुझे किसने उत्तेजित किया?" पूछने पर उसने कहा—"मेरी पहली भार्य्या ने। भन्ते! उस स्त्री के हाथ मे मधुर-रस है। मैं उसके विना नही रह सकता।"

शास्ता ने कहा—"भिक्षु! यह तेरा अनर्थ करनेवाली है। तू इसके कारण पहले भी सूली पर चढाया गया। इसी के कारण रोता हुआ मरकर तू नरक में पैदा हुआ। अव फिर तू उसे ही क्यो चाहता है?" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व आकाश स्थित देवता हुए।

बाराणसी में कार्तिक मास की रात्रि का उत्सव हुआ। नगर देवनगर की तरह सजाया गया। सव लोग उत्सव मनाने मे मस्त थे।

एक दरिद्र आदमी के पास केवल एक ही मोटे कपडे का जोड़ा था। उसने उसे अच्छी तरह धुलवाकर, स्त्री कराके, उसमे सैकड़ो, हजारो चुनन देकर रक्खा था।

उसकी भार्य्या बोली—"स्वामी! मेरी इच्छा है कि केसर के रग का एक वस्त्र पहन तेरे गले से लग कार्तिक के उत्सव में विचरूँ।"

स्वामी बोला—"भद्रे! हम दरिद्रों के पास केसर कहाँ से आयगा? शुद्ध वस्त्र पहन कर खेल।"

"केसर रंग न मिलने पर उत्सव न खेलूँगी। तू दूसरी स्त्री लेकर खेल।"

"भद्रे! मुझे क्यों कष्ट देती है। हम दरिद्रों के पास केसर कहाँ?"

"स्वामी! पुरुष की इच्छा हो तो क्या नहीं है? क्या राजा के केसर-बाग मे बहुत केसर नहीं है?"

"भद्रे! वह स्थान राक्षसों से सुरक्षित तालाब की तरह बहुत बलवान आदमियों से सुरक्षित है। वहाँ नहीं जा सकता। तू उसकी इच्छा मत कर। जो है उसी से सन्तुष्ट रह।"

"स्वामी! रात को अन्धकार होने पर क्या कोई ऐसी जगह है जहाँ आदमी नहीं जा सकता?"

उसके बार बार कहने से आसक्ति होने के कारण उसने उसकी बात स्वीकार कर कहा—"अच्छा, भद्रे! चिन्ता मत कर।"

इस प्रकार उसे आश्वासन दे, रात को, जीवन का मोह छोड, नगर से निकल, राजा के केसर-बाग पर जा, वहाँ बाड को तोड, बाग में दाखिल हुआ। पहरेदारों ने बाड के शब्द को सुन 'चोर है' समझ घेर कर पकड लिया। फिर गाली दे, पीट, बाँधकर दिन होने पर राजा के पास ले गए। राजा ने आज्ञा दी—जाओ इसे सूली पर चढा दो।

वे उसकी बाहों को पीछे बाँध, वध्य-भेरी के बजते हुए उसे नगर से बाहर ले गए और वहाँ सूली पर चढा दिया। बडी वेदना हुई। कौवे सिर पर बैठ कर बर्छी की नोक सदृश चोंच से उसकी आँखें निकालने लगे। वैसे कष्ट को भी भूलकर वह यही सोचता रहा—'ओह! मैं घने पुष्प के रंग मे रंगे वस्त्र पहने, गले में दोनो हाथ डाले उस स्त्री के साथ कार्तिक रात्रि के उत्सव मे न घूम सका।' इस प्रकार चिन्ता करते हुए यह गाथा कही—

नयिदं दुक्खं अदु दुक्खं यं म तुदति वायसो,
य सामा पुप्फरत्तेन कत्तिकं नानुभोस्सति॥

[न मैं उसे ही दुःख समझता हूँ, न उसे ही जो कि कौआ मुझे ठोंगे मारता है।

मुझे दु ख है तो यह है कि मेरी श्यामा फूल के रँगे वस्त्र से कार्तिक के उत्सव का आनन्द न ले सकेगी।]

नयिदं दुक्खं अदुं दुक्खं य मं तुदति वायसो, यह जो सूली पर चढने का शारीरिक और मानसिक दु ख है और यह जो लोहे जैसी चोच से कौआ मुझे ठोगे मारता है, यह सब मेरे लिए दु ख नही है। केवल वही दु ख मेरे लिए दु ख है। कौनसा ? **यं सामा पुप्फरत्तेन कत्तिकं नानुभोस्सति,** जो वह प्रियङ्गु श्यामा मेरी भार्य्या एक केसरी वस्त्र पहन, एक ओढ, इस प्रकार घने रगीन लाल वस्त्र जोडे को धारण कर मुझे गले लगा कार्तिक रात्रि के उत्सव का आनन्द न ले सकेगी। यही मेरा दु ख है। यही मुझे कष्ट देता है।

वह इस प्रकार उस स्त्री के बारे मे विलाप करता हुआ ही मरकर नरक में पैदा हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय के पति-पत्नी इस समय के पति-पत्नी। उस बात को प्रत्यक्ष देखनेवाला आकाशदेवता मैं ही था।

१४८. सिगाल जातक

"नाहं पुनं न च पुनं " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय कामुकता का निग्रह करने के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में पाँच सौ महाधनवान्, सेठो के पुत्र, जिनकी परस्पर मित्रता थी, शास्ता का धर्मोपदेश सुन, शासन में दिल से प्रव्रजित हो जेतवन के उस हिस्से में रहने लगे जिसमे अनाथपिण्डिक ने कार्षापण बिछवाए थे।

एक दिन आधी रात के समय उनके मन मे कामुकता का भाव पैदा हुआ। उन्होंने उद्विग्न होकर एक बार छोडे हुए कामुकता के विचार को फिर अपनाने की सोची।

शास्ता ने आधी रात के समय अपने सर्वज्ञता रूपी ज्ञान-दण्ड-प्रदीप को उठाकर देखा कि उस समय जेतवन के भिक्षुओ के मन में क्या विचार उत्पन्न हो रहे है। उन्हें पता लगा कि उन भिक्षुओ के मन में कामुकता का भाव पैदा हुआ है।

बुद्ध अपने शिष्यो की उसी तरह रक्षा करते है जैसे एक ही पुत्रवाली स्त्री अपने पुत्र की अथवा एक ही आँखवाला अपनी आँख की। पूर्वाह्न आदि जिस किसी समय में भी उनके मन में बुरे विचार आते है, वे उन्हे अधिक न बढने देकर तुरन्त निग्रह करते है। इसलिए उनके मन में ऐसा हुआ कि यह तो चक्रवर्ती राजा के नगर के अन्दर ही चोरो के दाखिल हो जाने जैसी बात है। मै अभी उन्हें धर्मोपदेश कर, उनके बुरे सकल्पो का निग्रह कर उन्हे अर्हत्व दूंगा।

उन्होंने सुगन्धित गन्धकुटी से निकल, आयुष्मान् आनन्द स्थविर को जो कि धर्म के खजानची थे, मधुर स्वर से बुलाया—"आनन्द!"

स्थविर "क्या आज्ञा है भन्ते!" कह प्रणाम करके खडे हुए।

"आनन्द! करोडो कार्षापण फैलाए जाने की सीमा के अन्दर जितने भिक्षु है, उन सब को गन्धकुटी के आँगन मे एकत्र कर।"

बुद्ध ने सोचा कि यदि मै केवल उन पाँच सौ भिक्षुओ को बुलवाऊँगा, तो उनके मन में होगा कि शास्ता ने हमारे मन के बुरे विचारो को जान लिया। वे उद्विग्न हो जाएँगे और धर्मोपदेश ग्रहण न कर सकेंगे। इसलिए कहा कि सभी को इकट्ठा कर।

"अच्छा भन्ते!" कह स्थविर ने चाबी[1] ले, एक आँगन से दूसरे आँगन घूम, सभी भिक्षुओ को गन्धकुटी के आँगन में इकट्ठा कर बुद्ध के लिए आसन बिछाया। शास्ता बिछे हुए आसन पर पालथी मार, शरीर को सीधा रख वैसे ही बैठे मानो शिला रूपी पृथ्वी पर सुमेरु पर्वत प्रतिष्ठित हुआ हो। बारी बारी करके छ वर्ण की घनी बुद्ध रश्मिएँ निकल रही थी। वह रश्मियाँ भी हाथ जितनी ऊँची हो, छत्र जितनी ऊँची हो, कगूरे जितनी ऊँची हो, छीज छीज कर आकाश में बिजली

---

[1] अवापुरणं—दरवाजा खोलने का लकड़ी का कोई औजार।

की तरह फैली। ऐसा हुआ जैसे समुद्र की कोख को क्षुब्ध करके उसमें से बाल-सूर्य्य निकला हो।

भिक्षुसघ भी शास्ता को प्रणाम करके बडे आदर के साथ उन्हे घेरकर इस प्रकार बैठा जैसे शास्ता लाल कम्बल की कनात से घिरे हुए हो। बुद्ध ने भिक्षुओ को ब्रह्मस्वर से सम्बोधन कर कहा—

"भिक्षुओ, भिक्षु को काम-भोग सम्बन्धी वितर्क, क्रोध सम्बन्धी वितर्क, विहिंसा सम्बन्धी वितर्क—इन तीन बुरे सकल्पो को मन मे जगह नही देनी चाहिए। यदि मन में कोई बुरा विचार आ जाए तो उसे छोटा न समझना चाहिए। बुरा विचार शत्रु की तरह होता है। शत्रु कभी छोटा नही होता। मौका मिलने से वह नाश ही कर डालता है। इसी प्रकार थोडा सा भी बुरा विचार यदि उसे बढने का मौका मिले तो महाविनाश कर डालता है। बुरा विचार हलाहल विष की तरह होता है, ऐसे फोडे की तरह होता है, जिसने चमडी और रोएँ उखाड लिए हो, विषैले सॉप की तरह होता है, विजली और आग की तरह होता है। इससे चिमटना ठीक नही। डरते रहना चाहिए। जिस समय पैदा हो उसी समय ज्ञानवल से अथवा भावना-वल से उसे इस तरह त्याग देना चाहिए जिस तरह कमल के पत्ते पर पडी हुई बूँद उसे छोड देती है। पुराने पण्डितो ने थोडे से भी बुरे विचार को सहन न कर उसका इस प्रकार निग्रह कर दिया कि वह फिर पैदा न हो।" इतना कह बुद्ध ने पूर्वजन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पुराने समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व सियार की योनि में पैदा हो जंगल में नदी के किनारे बसने लगे।

एक बूढा हाथी गङ्गा के किनारे मर गया। शिकार की खोज मे घूमते हुए सियार ने हाथी के शरीर को देखकर सोचा कि मुझे वडा शिकार मिला है। उसने सूँड पर जाकर मुँह मारा। ऐसा लगा मानो हल की फाल पर मुँह लगा। यहाँ कुछ खाने योग्य नही है, समझ उसने दाँतो पर मुँह मारा। ऐसा लगा मानो खम्भे पर मुँह लगा हो। कान पर मुँह मारा। ऐसा लगा मानो छाज के कोने पर मुँह लगा हो। पेट पर मुँह मारा। ऐसा लगा मानो धान की कोठी पर मुँह लगा हो। पैरो पर मुँह मारा। ऐसा लगा मानो ऊखल पर मुँह लगा हो। पूँछ पर मुँह मारा।

ऐसा लगा मानो मूसल पर मुँह लगा हो। यहाँ भी कुछ खाने योग्य नही है, सोच कही भी कुछ मजा न आने पर उसने गुदा-मार्ग में मुँह मारा। ऐसा लगा मानो नरम नरम पूए हो।

उसने सोचा कि अब मुझे इस शरीर में खाने योग्य कोमल जगह हाथ लग गई। उसके वाद से वह खाता हुआ पेट के अन्दर घुस, वहाँ वृक्क, हृदय आदि को खाकर प्यास के समय रक्त पी, लेटने की इच्छा होने पर पेट में ही फैलकर लेटा। वह सोचने लगा कि यह हाथी का शरीर मुझे रहने का सुख देता है इसलिए घर की तरह है, खाने की इच्छा होने पर मास की कमी नही, मुझे किसी दूसरी जगह जाने की क्या आवश्यकता? वह किसी दूसरी जगह न जा, हाथी के पेट में ही मास खाता हुआ रहने लगा।

जैसे जैसे समय गुजरता गया ग्रीष्म ऋतु की वायु के तथा सूर्य्य की किरणो के स्पर्श से वह लाश सूखकर उसमें वल पड गए। जिस द्वार से सियार ने प्रवेश किया था, वह दरवाजा वन्द हो गया। पेट में अन्धेरा छा गया। सियार को ऐसा हुआ मानो लोकान्तरिक[1] नरक में चला गया हो। लाश के सूखने पर मास भी सूखने लगा। लोहू भी कम पड गया। निकलने को दरवाजा न मिलने पर, भय-भीत हो वह दौडता हुआ, इधर उधर कुरेदता हुआ, वाहर निकलने के लिए द्वार खोजता घूमने लगा।

इस प्रकार देगची मे आटे का गोला उवलने की तरह पसीना वहाते रहने पर कुछ दिन में वडी भारी वर्षा हुई। उसने उस लाश को भिगोकर पहले की दशा मे कर दिया। गुदा-मार्ग खुलकर तारे की तरह दिखाई देने लगा। सियार ने वह छेद देखा तो समझा कि अब मेरी जान वची। वह हाथी के सिर तक गया, फिर जोर से उछलकर गुदा-मार्ग को सिर से धक्का दे वाहर निकल आया। शरीर गीला होने के कारण उसके सभी वाल गुदा-मार्ग में ही सट गए।

ताड-स्कन्ध के सदृश लोमरहित शरीर को देखकर उसका चित्त उद्विग्न हुआ। वह थोडी देर दौडा। फिर रुका और वैठ कर अपने शरीर को देखते हुए सोचने लगा—

"मुझे यह दुःख किसी दूसरे ने नही दिया है। यह लोभ के हेतु से, लोभ के

---

[1] इस नरक में अन्धेरा घुप रहता है।

कारण से, लोभ की वजह से ही मुझे भोगना पडा है। अब से मै लोभ के वशीभूत न होऊँगा। फिर हाथी के शरीर मे प्रवेश न करूँगा।"

उसका हृदय सवेग मे भर गया और यह गाथा कही—

नाहं पुनं न च पुनं न चापि अपुनप्पुनं,
हत्थिबोन्दि पवेक्खामि तथा हि भयतज्जितो॥

[मै ऐसा भयभीत हो गया हूँ कि मै अब फिर, फिर और भी फिर, फिर अर्थात् कभी भी, हाथी के शरीर मे प्रवेश नही करूँगा।]

न चापि अपुनप्पुन, आकार निपात मात्र है। इस सारी गाथा का अर्थ यह है कि इससे फिर और उससे फिर तथा जो कहा गया है उससे भी फिर फिर हाथी के शरीर कहे जाने वाले **हत्थि बोन्दि न पवेक्खामि**। किस लिए ? **तथा हि भय तज्जितो**, मै इसी वार प्रवेश करने से भी भयभीत हो गया, मरण-भय से त्रास को तथा उद्विग्नता को प्राप्त हुआ।

इतना कह और वहाँ से भाग फिर उस अथवा अन्य किसी भी हाथी के शरीर को खडे होकर देखा तक नही। उस के बाद से लोभ के वशीभूत नहीं हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला कर कहा—"भिक्षुओ, अन्दर जो मैल पैदा हो जाए उस चित्त के मैल को बढने न देकर वही निग्रह करना चाहिए।" इतना कह आर्य-सत्यो का प्रकाशन कर, जातक का साराश निकाला। सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर वह पाँच सौ भिक्षु अर्हत् हो गए। शेष मे से कुछ स्रोतापन्न, कुछ सकृदागामी तथा कुछ अनागामी हुए।

उस समय सियार तो मै ही था।

१४९. एकपण्ण जातक

"एक पण्णो अय रुक्खो ..." यह शास्ता ने वैशाली के पास महावन की कूटागार शाला मे रहते हुए वैशाली के एक दुष्ट-स्वभाव लिच्छवि-कुमार के वारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय वैशाली में गावुत गावुत[1] की दूरी पर तीन प्राकारें वनी थी। तीनो जगहो पर गोपुर थे, अट्टालिकाएँ थी तथा कोठे थे। इस प्रकार अत्यन्त शोभायमान था।

वहाँ सदैव राज्य करवाते हुए रहनेवाले राजाओ की सख्या सात हजार सात सौ सात होती थी। उतने ही उपराजा होते थे। उतने ही सेनापति। उतने ही भण्डारी।

उन राजकुमारो में एक कुमार दुष्ट लिच्छवि-कुमार कहलाता था। वह क्रोधी था, प्रचण्ड था, कठोर था। डण्डे से छेडे गए जहरीले साँप की तरह क्रोध से सदैव जलता रहता था। कोई भी उसके सामने दो तीन शब्द भी नही वोल सकता था। उसे न उसके माता पिता, न रिश्तेदार और न यार-दोस्त ही समझा सके। तव उसके माता-पिता ने सोचा—"यह कुमार अत्यन्त कठोर स्वभाव का है। दुस्साहसी है। सम्यक् सम्बुद्ध को छोड और कोई इसे विनयी नही वना सकता। हो सकता है कि यह उन्ही लोगो मे से हो जो बुद्ध के विनीत वनाने से ही विनीत वनते है।" वे उसे शास्ता के पास ले गए और प्रणाम करके वोले—भन्ते! यह कुमार प्रचण्ड है, कठोर है, क्रोध से जलता है। इसे उपदेश दें।

शास्ता ने उस कुमार को उपदेश दिया—"कुमार! प्राणियो के प्रति प्रचण्ड

---

[1] गव्यूति = २ मील।

नही होना चाहिए, दुस्साहसी नही होना चाहिए, कष्ट देने वाला नही होना चाहिए। कठोर वाणी जिस माता ने जन्म दिया है उसको भी, पिता को भी, पुत्र को भी, भाई बहन को भी, भार्य्या को भी, मित्र-बन्धुओ को भी अप्रिय होती है, अच्छी नही लगती। जो आदमी डसने के लिए आए सर्प की तरह, जगल मे लूटमार करने के लिए तैयार चोर की तरह, खाने के लिए आए यक्ष की तरह उद्विग्न होता है, वह दूसरे जन्म मे नरक आदि में पैदा होता है। इस जन्म में क्रोधी आदमी सजा-धजा रहने पर भी दुर्वर्ण ही होता है। इसका पूर्ण चन्द्र की सी शोभा वाला भी चेहरा आग से जले कमल के सदृश अथवा मैले कञ्चन के शीशे की तरह भोडा हो जाता है, देखने मे बुरा लगता है। क्रोध के कारण ही प्राणी शस्त्र लेकर स्वय अपने को मार डालते हैं। विष खा लेते हैं। रस्सी से फाँसी लटक जाते हैं। प्रपात से गिर पडते हैं। इस प्रकार क्रोध के वशीभूत हो मरकर वह नरक आदि में पैदा होते हैं। दूसरो को कष्ट देनेवाले भी इस जन्म में निन्दा को प्राप्त हो मरने पर नरक आदि मे उत्पन्न होते हैं। फिर जब मनुष्य होकर पैदा होते हैं तो पैदा होने के ही समय से लेकर प्राय रोगी रहते हैं। आँख की बीमारी तथा कान की बीमारी आदि रोगो में एक से उठने पर दूसरी बीमारी मे फँस जाते हैं। रोग से मुक्त न हो सकने के कारण नित्य दुखी रहते हैं। इसलिए सभी प्राणियो के प्रति मैत्री भावना रखनी चाहिए। सभी का हित-चिन्तक होना चाहिए। सभी के प्रति कोमल चित्त वाला होना चाहिए। क्योकि इस प्रकार का (क्रोधी) आदमी नरक आदि के भय से मुक्त नही होता।

वह कुमार शास्ता का एक ही उपदेश सुनकर मान-रहित हो गया, शान्त इन्द्रिय हो गया; क्रोध-रहित हो गया, मैत्री-चित्तवाला हो गया तथा कोमल-चित्त का हो गया। उसे कोई गाली देता, मारता तो भी वह उसकी ओर रुककर न देखता। वह ऐसा साँप हो गया जिसके दाँत उखाड दिए गए हो, ऐसा केकडा हो गया जिसका डक जाता रहा हो, ऐसा बैल हो गया जिसके सीग न हो।

उसका समाचार जानकर भिक्षुओ ने धर्म-सभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो! **दुष्ट लिच्छवि-कुमार** को चिरकाल तक उपदेश देते रहकर भी न माता-पिता, न रिश्तेदार-मित्र आदि ही उसे विनीत बना सके। सम्यक् सम्बुद्ध ने उसे एक ही उपदेश से ऐसा कर दिया जैसे किसी मस्त हाथी को शान्त कर दिया हो। यह ठीक ही कहा गया है—भिक्षुओ! हाथी-दमन करने वाला जब हाथी

को दमन करता है तो दमन किया हुआ हाथी एक ही दिशा मे दौडता है चाहे पूर्व दिशा मे, चाहे पश्चिम दिशा में, चाहे उत्तर दिशा में अथवा दक्षिण में। भिक्षुओ, घोडा-दमन करनेवाला जब घोडे को दमन करता है तो दमन किया हुआ घोडा एक ही दिशा में दौडता है चाहे पूर्व-दिशा मे, चाहे पच्छिम में, चाहे उत्तर में अथवा दक्षिण में। भिक्षुओ, बैल को दमन करने वाला जब उसे दमन करता है, तो दमन किया हुआ बैल एक ही दिशा में दौडता है चाहे पूर्व-दिशा में, चाहे पच्छिम मे, चाहे उत्तर में अथवा दक्षिण मे। लेकिन भिक्षुओ, जिसे तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध शिक्षित करते है वह आठ दिशाओ मे जाता है। रूपवान रूपो को देखता है, यह एक दिशा है ... सञ्ज्ञा तथा वेदना का जो निरोध है उसे प्राप्त कर विचरता है, यह आठवी दिशा है। वह शिक्षको में अनुपम पुरुष-दमन सारथि कहलाते है।[१] आयुष्मानो! सम्यक् सम्बुद्ध के समान पुरुषो का दमन करनेवाला सारथि नही है।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ! मैने इसे केवल अब ही एक ही उपदेश से शिक्षित नही किया है, पहले भी एक ही उपदेश से शिक्षित किया है।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व ने उदीच्य ब्राह्मण कुल में पैदा हो, बडे होने पर तक्षशिला में तीनो वेद और सभी शिल्प सीखे। फिर कुछ समय घर में रहकर माता पिता के मरने पर ऋषियो की प्रव्रज्या के ढग मे प्रव्रजित हो अभिञ्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर हिमालय में प्रवेश किया। चिरकाल तक वहाँ रहने के बाद नमक और खटाई खाने के लिए जनपद में आकर वाराणसी पहुँच राजा के उद्यान मे रहा। फिर एक दिन अच्छी तरह से वस्त्र पहन, आच्छादित हो, तपस्वी के रूपरग मे भिक्षा माँगने के लिए नगर में प्रविष्ट हो, राजा के आँगन में पहुँचा।

राजा ने झरोखे मे देखा तो उसकी चाल-ढाल से मन प्रसन्न हुआ। उसने देखा कि यह तपस्वी शान्त-इन्द्रिय तथा शान्त मनवाला है। चलता है तो नीची

---

[१] मज्झिम निकाय (२)।

नजर करके युग-मात्र[1] देखता हुआ चलता है। मालूम होता है कि कदम कदम पर एक एक हजार की थैली रखता हुआ सिह की तरह चला आ रहा है। 'यदि कही पर शान्त -धर्म नाम की कोई चीज है तो वह इसके अन्दर अवश्य होगी' सोच एक अमात्य की ओर देखा।

'देव! क्या आज्ञा है?'

'इस तपस्वी को ले आओ।'

वह 'देव! अच्छा' कह बोधिसत्त्व के पास गया। वहाँ पहुँचकर बोधिसत्त्व को प्रणाम कर उनके हाथ से भिक्षा-पात्र लिया। बोधिसत्त्व ने पूछा—"महापुण्य-वान्! क्या बात है?"

"भन्ते! महाराज आपको याद कर रहे है।"

"हम राजकुल मे आने जाने वाले नही है, हम हिमवन्त-निवासी है।"

आमात्य ने जाकर राजा से यह बात कही। राजा बोला—हमारे यहाँ आने जाने वाला कोई भिक्षु नही है। उन्हे जाकर ले आओ।

अमात्य ने जा बोधिसत्त्व को प्रणाम कर, प्रार्थना कर, साथ लिवा राज-भवन में पहुँचाया।

राजा ने बोधिसत्त्व को प्रणाम कर, श्वेत छत्र लगे हुए सोने के सिहासन पर बिठा, अपने लिए तैयार किए गए नाना प्रकार के भोजन खिलाकर पूछा—'भन्ते! कहाँ रहते है?'

'महाराज! हम हिमवन्त-निवासी है।'

'अब कहाँ जा रहे है?'

'महाराज! वर्षा-ऋतु के अनुकूल निवास स्थान की खोज है।'

'तो भन्ते! हमारे ही उद्यान मे रहे।'

उनसे स्वीकृति ले अपना भी भोजन समाप्त कर राजा बोधिसत्त्व के साथ उद्यान गया। वहाँ पर्णशाला बनवा, उसमे रात के रहने योग्य तथा दिन में रहने योग्य स्थान तैयार करवा, प्रव्रजितो की आवश्यकताएँ दे, उनकी सेवा आदि के लिए उद्यानपाल को भार सौप स्वय नगर को लौटा। उस समय से बोधिसत्त्व उद्यान में रहने लगे। राजा भी दिन में दो तीन बार उनकी सेवा में जाता।

---

[1] युग, दो हाथ तक।

उस राजा का दुन्ट कुमार नाम का पुत्र था। वह क्रोधी था, कठोर था। न उसे राजा ही विनीत वना सका, न वाकी रिश्तेदार। आमात्यो और ब्राह्मण गृहपतियो ने क्रुद्ध होकर इतना कहा कि 'हे स्वामी! ऐसा न करें। ऐसा न कर सकेंगे।' इतने मे भी वह उसे कुछ न समझा सके।

राजा ने सोचा मेरे शीलवान् तपस्वी के अतिरिक्त कोई दूसरा इस कुमार को विनीत नही वना सकता।

वह कुमार को वोधिसत्त्व के पास ले गया और उन्हें सौंपते हुए कहने लगा—भन्ते! यह कुमार क्रोधी है, कठोर स्वभाव का है। हम इसे विनीत नही कर सकते। आप इसे किसी ढग से शिक्षा दें। इतना कह चला गया।

वोधिसत्त्व ने कुमार के साथ उद्यान में घूमते हुए नीम का एक पौदा देखा जिसके एक ओर एक पत्ता, दूसरी ओर दूसरा पत्ता—इस प्रकार कुल दो पत्ते थे। वोधिसत्त्व ने कुमार से कहा—कुमार! इस पौदे के पत्ते खाकर इसका रस चखो। उसने उसका एक पत्ता मुँह में रखते ही उसका रस चख "थू" करके जमीन पर थूका। "कुमार यह क्या?" "भन्ते! यह पौदा अभी हलाहल विप के समान है, वडे होने पर तो यह वहुत मनुष्यो की जान लेगा।" इतना कहते हुए उसने नीम के पौदे को उखाडकर हाथो से मल डाला और यह गाथा कही—

> एकपण्णो अयं रुक्खो न भुम्या चतुरंगुलो,
> फलेन विसकप्पेन महायं किं भविस्सति॥

[इस पौदे का केवल एक पत्ता है और यह भूमि से चार अगुल ऊँचा नही। विप जैसे पत्तेवाला यह वडा होकर क्या होगा?]

एकपण्णो, दोनो ओर एक एक पत्ता है। **न भुम्या चतुरगुलो**, भूमि से चार अगुल भी ऊँचा नही वढा है। **फलेन**, अर्थात् पत्ते से। **विसकप्पेन**, हलाहल विप जैसे। इतना छोटा होता हुआ भी ऐसे कडुवे फल वाला है। **महायं किं भविस्सति**, जव यह वृद्धि पाकर वडा होगा तव कैसा होगा? निश्चय से मनुष्य की जान लेने वाला होगा। इसी से उखाड कर हाथ से मलकर फेंक दिया—यह कहा।

तव वोधिसत्त्व ने उसे कहा—'कुमार ! तूने इस पौदे को यह सोचकर कि यह अभी से इतना तीता है, वडे होने पर इससे किसी की क्या उन्नति होगी, तोड कर, मरोड कर फेंक दिया। जैसे तूने इसके प्रति बरताव किया, ठीक इसी तरह तेरे राष्ट्र के वासी भी यह सोचेगे कि यह कुमार क्रोधी है, कठोर स्वभाव का है, बड़ा होने पर राज्य करके क्या करेगा ? इससे हमारी उन्नति कहाँ होगी ? वह तुझे राज्य न दे, नीम के पौदे की तरह उखाडकर तुझे राष्ट्र से निकाल देगे। इस-लिए नीम के पौदे के स्वभाव को छोड अव से शान्ति, मैत्री तथा दया से युक्त हो।'

उस समय से उसने अभिमान छोड दिया। नम्र हो गया। शान्ति, मैत्री और दया मे युक्त हो वोधिसत्त्व के उपदेशानुसार आचरण कर पिता के मरने पर राज्य प्राप्त किया। फिर दान आदि पुण्य कर्म करता हुआ यथाकर्म (परलोक) सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना सुना "भिक्षुओ ! मैंने केवल अभी इस **दुष्ट लिच्छवि कुमार** को सीधा नही किया, पहले भी सीधा किया है" कह जातक का मेल वैठाया।

उस समय दुष्ट कुमार यह **लिच्छवि-कुमार** था। राजा आनन्द था। उपदेश देनेवाला तपस्वी मै ही था।

१५०. सञ्जीव जातक

"**असन्त यो पग्गण्हाति** " यह शास्ता ने **वेळुवन** मे विहार करते समय **अजातशत्रु** राजा द्वारा किए गए दुर्गुणी के आदर के वारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसने वुद्धो के विरोधी, दुश्चरित्र, पापी **देवदत्त** के प्रति श्रद्धावान् हो, उस दुष्ट असत्पुरुप को ऊँचा स्थान दे उसका आदर करने की इच्छा से बहुत सा धन खर्च करके **गया-सीस** पर एक विहार वनवा दिया। उसी को वात मान अपने पिता को जो कि स्रोतापन्न आर्य-श्रावक था मरवा डाला। इस प्रकार अपने स्रोतापन्न होने की सम्भावना मे वाधा डाल विनाश को प्राप्त हुआ।

जब उसने सुना कि देवदत्त को जमीन निगल गई तो उसे डर हुआ कि कही उसे भी जमीन न निगल जाए। भयभीत होने से उसका राज्य-सुख जाता रहा। शय्या पर सोता तो उसे सोने मे मजा न आता। तीव्र वेदना से पीड़ित हाथी के बच्चे के समान वह इधर उधर विचरता। उसे ऐसा दिखाई देने लगा जैसे पृथ्वी फट गई हो, उसमें से अवीचि-ज्वाला' निकल रही हो, और पृथ्वी उसे निगले जा रही हो, तप्त लोह शय्या पर लिटाकर लोहे की कीलें ठोकी जा रही हो। इससे उस राजा को चोट खाए मुर्गे की तरह क्षण भर के लिए भी शान्ति न थी, काँपता ही रहता था।

उसने सम्यक् सम्बुद्ध के दर्शन कर उनसे क्षमा माँगने की तथा शका मिटाने की इच्छा की। लेकिन अपने अपराध के भार के कारण उसकी जाने की हिम्मत न हुई।

राजगृह नगर में कार्तिकोत्सव था। नगर देवनगर की तरह अलकृत था। महल पर अमात्यगणो से घिरा राजा स्वर्ण सिहासन पर बैठा था। उसने देखा कि कौमारभृत्य जीवक पास ही बैठा है। उसके मन मे आया कि मैं जीवक को लेकर सम्यक् सम्बुद्ध के पास जाऊँ। लेकिन उसने साथ ही सोचा कि मैं जीवक को सीधा तो यह नहीं कह सकता कि हे जीवक! मैं सम्यक् सम्बुद्ध के पास जाना चाहता हूँ। अकेला नही जा सकता। मुझे बुद्ध के पास ले चल। मैं उसे एक ढग से कहूँगा —रात्रि के सौन्दर्य की प्रशसा करके पूछूंगा कि आज हम किस श्रमण या ब्राह्मण का सत्सग करे, जिसका सत्सग करने से मन प्रसन्न हो। इसे सुन कर आमात्य अपने अपने शास्ता की प्रशसा करेंगे। जीवक भी सम्यक् सम्बुद्ध की प्रशसा करेगा। तब उसे लेकर बुद्ध के पास जाऊँगा।

उसने पाँच पदो से रात्रि की प्रशसा की—"भो! चाँदनी रात्रि लक्षण-सम्पन्ना है। भो! चाँदनी रात्रि सुन्दर है। भो! चाँदनी रात्रि दर्शनीय है। भो! चाँदनी रात्रि मन को प्रसन्न करने वाली है। भो! चाँदनी रात्रि रमणीय है। आज की रात्रि हम किस श्रमण या ब्राह्मण का सत्सग करे, जिसका सत्सग करने से चित्त प्रसन्न हो?"

एक आमात्य ने पूरण कश्यप की प्रशसा की। एक ने मक्खलि गोशाल की।

'अवीचि नरक से निकलने वाली ज्वाला।

एक ने अजित केश कम्बल की। एक ने प्रवुध कात्यायन की। एक ने वेलट्ठिपुत्र सञ्जय की। एक ने निर्ग्रन्थनाथपुत्र की। महावीर

राजा उनकी वातचीत सुन चुप रहा। वह माहामात्य जीवक के कहने का ही विश्वास करता था। जीवक ने भी यह सोचकर कि जव राजा मेरे प्रति कुछ कहेगा, तभी देखूगा मौन ही रक्खा। राजा ने पूछा—"जीवक! तू क्यो चुप है?" तव जीवक ने आसन से उठ जिधर भगवान् थे उधर हाथ जोडकर कहा—देव! यह भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्वुद्ध हमारे आम्रवन मे रहते है। उनके साथ साढे वारह सौ भिक्षु है। उन भगवान् की इस प्रकार की कीर्ति है कि वह अर्हत् है इस प्रकार नौ तरह[1] के गुण है, कह और उनके जन्म के समय से पूर्व निमित्त आदि भेद तथा भगवान् के प्रताप को प्रकाशित कर कहा कि देव! उन भगवान् वुद्ध का सत्सग करे, धर्म सुने तथा शकाएँ मिटाएँ।

राजा का मनोरथ पूरा हुआ। वह वोला—सौम्य! जीवक! हाथियो को सजवाओ। हाथियो को सजवा वडे राजसी ठाट-वाट से जीवक के आम्रवन में पहुँच राजा ने देखा सुगन्वित वडे भवन मे तथागत भिक्षु सघ से घिरे वैठे है। जैसे महान् सरोवर हो, किन्तु उसकी लहरे शान्त हो, वैसे ही भिक्षु-सघ को इधर उधर से देखकर राजा ने सोचा—ऐसी शान्त परिपद् तो मैने इससे पहले कभी देखी ही नही। उसने भिक्षु-परिपद् के उठने-वैठने के तरीके से ही प्रसन्न हो सघ को प्रणाम किया। फिर सघ की स्तुति करते हुए उसने भगवान् को प्रणाम किया और एक ओर वैठकर श्रमणत्व के फल के वारे में प्रश्न किया। भगवान् ने उसे दो भाणवारो मे विस्तार करके सामञ्ञफल सूत्र[2] का उपदेश दिया। सूत्र का उपदेश हो चुकने पर वह प्रसन्न हो भगवान् से क्षमा माँग आसन से उठकर चला गया।

राजा के चले जाने के थोडी ही देर वाद वुद्ध ने भिक्षुओ को वुलाकर कहा—भिक्षुओ, यह राजा जख्मी हो गया समझो। भिक्षुओ, राजा को आहत हो गया

---

[1] इति पि सो [१]भगवा, [२]अरहं, [३]सम्मासम्बुद्धो, [४]विज्जाचरणसम्पन्नो, [५]सुगतो, [६]लोकविदू, [७]अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि, [८]सत्था देवमनुस्सानं, [९]बुद्धो भगवाति॥

[2] दीघ निकाय, (दूसरा सूत्र)।

समझो। यदि यह ऐश्वर्य्य के लोभ में पडकर अपने धार्मिक, धर्म से राज्य करने वाले पिता को जान से न मरवाता, तो इसे इसी आसन पर रज रहित, मल-रहित धर्म-चक्षु, उत्पन्न हो जाता। देवदत्त के कारण, दुष्ट को बडा स्थान देने से, वह स्रोतापत्ति फल को न प्राप्त कर सका।

किसी दूसरे दिन भिक्षुओ ने धर्म-सभा में बातचीत चलाई —'आयुष्मानो! अजातशत्रु ने दुष्ट का आदर करके, दुश्चरित्र, पापी देवदत्त की प्रेरणा से पितृ-हत्या करके स्रोतापत्ति फल से हाथ धोया। देवदत्त ने राजा का नाश कर दिया।'

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर 'भिक्षुओ, केवल अभी अजातशत्रु दुष्ट का सम्मान करके विनाश को प्राप्त नही हुआ पहले भी इसने दुष्ट का आदर कर अपना नाश किया है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व महा सम्पत्तिशाली ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बडे होने पर तक्षशिला जाकर सब शिल्प सीख आए। फिर वाराणसी मे प्रसिद्ध आचार्य्य हो पाँच सौ विद्यार्थियो को विद्या सिखाने लगे।

उन विद्यार्थियो में एक सञ्जीव नाम का विद्यार्थी था। बोधिसत्त्व ने उसे मुर्दे को जिलाने का मन्त्र सिखाया। उसने मुर्दे को जिलाने का ही मन्त्र सीखा, फिर सुलाने का नही सीखा। एक दिन विद्यार्थियो के साथ जब वह लकड़ी बटोरने जगल गया तो उसने एक मृत-व्याघ्र को देखा। उसने अपने साथियो से कहा—"मै इस मृत-व्याघ्र को जिलाऊँगा।"

विद्यार्थी—"नही जिला सकेगा।"

सञ्जीवक—"तुम लोगो के देखते ही देखते जिलाऊँगा।"

विद्यार्थी—"यदि जिला सकता है तो जिला।"

इतना कहकर वे विद्यार्थी वृक्ष पर चढ गए। सञ्जीवक ने मन्त्र पढकर मृत-व्याघ्र पर कंकर फेंके। व्याघ्र उठकर जल्दी मे आया और सञ्जीवक का गला काट उसे मार स्वयं भी वही गिर पडा। सञ्जीवक भी वही गिर पडा। दोनो उस ही स्थान पर मुर्दे हो गए।

विद्यार्थियो ने लकडी ले आकर आचार्य्य को वह समाचार सुनाया। आचार्य्य ने विद्यार्थियो को वुलाकर कहा--तात! दुष्ट को वडप्पन देनेवाले, जहाँ सम्मान नही करना चाहिए, वहाँ सम्मान प्रदर्शित करनेवाले, इस प्रकार के दु ख को अवश्य प्राप्त होते हैं। इतना कह यह गाथा कही—

असन्तं यो पग्गण्हाति असन्तञ्चुपसेवति,
तमेव घासं कुरुते व्यग्घो सञ्जीविको यथा॥

[जो दुश्चरित्र को वडप्पन देता है, जो दुराचारी की सगत करता है, उसे वह दुराचारी वैसे ही खा जाता है जैसे जीवन-प्राप्त व्याघ्र।]

असन्तं—तीन प्रकार[1] के दुश्चरित्र से युक्त, दुश्शील, पापी। **यो पग्गण्हाति,** क्षत्रिय, आदि में जो कोई इस प्रकार के दुराचारी प्रव्रजित को चीवर आदि देकर अथवा गृहस्थ को उपराज वा सेनापति आदि का पद देकर वडप्पन देता है, सत्कार तथा सम्मान प्रदर्शित करता है। **असन्तञ्चुपसेवति,** जो इस प्रकार के दुश्शील की सगति करता है। **तमेव घासं कुरुते,** उसी दुष्ट आदमी को, वडप्पन देनेवाले को वह दुराचारी खा जाता है, नष्ट करता है। कैसे? **व्यग्घो सञ्जीविको यथा,** जैसे सञ्जीवक नाम के विद्यार्थी ने मृत-व्याघ्र को मन्त्र पढकर जिलाया, जीवन-दान दे आदृत किया। उसने उस जीवन-दान देनेवाले सञ्जीवक का ही प्राण ले लिया। इस प्रकार जो कोई भी दुष्ट आदमी का आदर करता है, वह दुष्ट अपना आदर करनेवाले ही को नष्ट करता है। इस तरह दुष्टो को वडप्पन देनेवाले नाश को प्राप्त होते हैं।

वोधिसत्त्व इस गाथा द्वारा विद्यार्थियो को उपदेश दे, दानादि पुण्य करके कर्मानुसार परलोक सिधारे। शास्ता ने भी यह धर्म-देशना ला जातक का मेल वैठाया।

उस समय मृत-व्याघ्र को जिलानेवाला विद्यार्थी **अजातशत्रु** था। चारो दिशाओ में प्रसिद्ध आचार्य्य तो मै ही था।

---

[1] काय, वाक तथा मन के पाप-कर्म।

दूसरा परिच्छेद

१. दळ्ह वर्ग

१५१. राजोवाद जातक

"दळ्ह दळ्हस्स खिपति ..." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय राजा को दिये गए उपदेश के बारे में कही। वह उपदेश तेसकुण जातक[1] में आयेगा।

क. वर्तमान कथा

एक दिन कोशल-नरेश पाप-कर्म सम्बन्धी किसी ऐसे मुकद्दमे का जिसका निर्णय करना आसान नहीं था, फैसला करके प्रातःकाल का भोजन कर चुकने पर गीले हाथों ही, अलंकृत रथ में बैठ शास्ता के पास गया। वहाँ पुष्पित कमल सदृश चरणों में गिर कर प्रणाम किया और एक ओर बैठा।

शास्ता ने पूछा—हन्त ! महाराज ! दिन चढ़े तुम कहाँ से आए ?

राजा—भन्ते ! आज पापकर्म सम्बन्धी एक ऐसे मुकद्दमे का जिसका निर्णय करना आसान नहीं था, फैसला करने में लगे रहने के कारण समय नहीं मिला। अभी उसका फैसला कर, भोजन करके, गीले हाथों ही आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।

शास्ता—महाराज ! धर्म से, न्याय से, मुकद्दमे का फैसला करना शुभ-कर्म है। यह स्वर्ग का मार्ग है। लेकिन इसमें आश्चर्य की क्या बात है यदि तुम मेरे जैसे सर्वज्ञ से उपदेश लेते हुए भी धर्म से तथा न्याय से मुकद्दमे का फैसला करते हो। आश्चर्य तो इसी में है कि पूर्व के राजा लोग जिन्होंने ऐसे पण्डितों का ही उपदेश सुना जो सर्वज्ञ नहीं थे धर्म से तथा न्याय से मुकद्दमों के फैसले करते हुए चार अग-

---

[1] जातक (५२१)

तियों[1] से वचकर दस-राजधर्मो से विरुद्ध न जा, धर्मानुसार राज्य करते हुए स्वर्ग-मार्ग को भरनेवाले हुए।

इतना कह राजा के प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व उसकी पटरानी की कोख में रह, गर्भ की सम्यक् रक्षा होने पर माता की कोख से वाहर निकले। नाम-करण के दिन उसका नाम ब्रह्मदत्तकुमार ही रक्खा गया।

क्रम से वढ़ते हुए सोलह वर्ष की आयु होने पर वह तक्षशिला जाकर सव शिल्पो मे निष्णात हो, पिता के मरने पर राजा हो धर्म से तथा न्याय से राज्य करने लगा। राग आदि के वशीभूत न हो वह मुकद्दमो का फैसला करता। उसके धर्म से राज्य करने से अमात्य भी धर्म से ही व्यवहारो (=मुकद्दमो) का फैसला करते। मुकद्दमो का धर्म से फैसला होने के कारण झूठे मुकद्दमे करनेवाले भी नही रहे। उनके न होने से राजाङ्गण मे मुकद्दमे करनेवालो का शोर नही होता था। अमात्य सारा दिन न्यायालय मे वैठे रहकर भी जव किसी को मुकद्दमा लिए आता न देखते तो उठकर चले जाते। न्यायालय खाली कर देने योग्य हो गए।

वोधिसत्त्व सोचने लगे कि मेरे धर्मानुसार राज्य करने के कारण मुकद्दमा करनेवाले नही आते। शोर नही होता। न्यायालय छोडने योग्य हो गए। अब मुझे अपने दुर्गुणो की खोज करनी चाहिए। जव मुझे यह पता लग जाएगा कि यह-यह मेरे दुर्गुण हैं तो उन्हे छोडकर गुणवान वनकर ही रहूँगा।

उसके वाद से वह खोजने लगे कि कोई मेरे दोष कहने वाला है? उन्हे महल के अन्दर कोई ऐसा नही मिला जो उनके दोष कहे। जो मिला प्रशसा करनेवाला ही मिला। 'यह मेरे भय से भी केवल मेरी प्रशसा ही करते होगे' सोच महल के वाहर रहनेवालो की परीक्षा की। वहाँ भी कोई न मिला, तो नगर के अन्दर खोज की। नगर के वाहर चारो दरवाजो पर स्थित गाँवो में खोजा। वहाँ भी कोई दोष कहने वाला न मिला। प्रशसा ही सुनने को मिली। तव वोधिसत्त्व ने जनपद में खोजने का निर्णय किया। अमात्यो को राज्य सँभाल वह रथ पर चढ़

---

[1] छन्द, द्वेष, भय तथा मोह के वशीभूत हो पक्षपात करना।

केवल सारथि को साथ ले भेष बदल नगर से निकला। जनपद में खोजते हुए वह राज्य की सीमा तक चला गया। जब वहाँ भी उसे कोई दोष दिखानेवाला नही मिला, प्रशसा ही सुनाने वाले मिले तो प्रत्यन्त-देश[1] की सीमा पर से महामार्ग से नगर की ओर लौटा।

उसी समय मल्लिक नाम का कोशल-नरेश भी धर्म से राज्य करता हुआ अपने दोष कहने वाले को ढूढने के लिए निकला था। जब उसे महल के अन्दर रहने वालो आदि में कोई दोष कहनेवाला नही मिला, प्रशसा करने वाले ही मिले तो वह जनपद मे खोजता हुआ वहाँ पहुँचा। वे दोनो, गाडियो के एक नीचे रास्ते पर आमने सामने हुए। रथो के लिए एक दूसरे को गुजरने देने की जगह नहीं थी।

मल्लिक राजा के सारथि ने वाराणसी राजा के सारथि से कहा—अपने रथ को लौटा ले।

वाराणसी राजा के सारथि ने कहा—तू अपने रथ को लौटा ले। मेरे रथ मे वाराणसी राज्य के स्वामी महाराज ब्रह्मदत्त बैठे है।

दूसरे ने भी कहा—इस रथ में कोशल राज्य के स्वामी मल्लिक महाराज बैठे है। तू अपने रथ को मोड कर हमारे राजा के रथ को जगह दे।

वाराणसी राजा के सारथि ने सोचा—यह भी राजा है। अब क्या करना चाहिए? उसे एक उपाय सूझा कि राजा की आयु पूछकर जो आयु में छोटा होगा उसका रथ लौटवाकर जो बडा होगा उसके रथ के लिए जगह करवाऊँगा। ऐसा निश्चय कर उसने दूसरे सारथि से कोशल राजा की आयु पूछी। मिलान करने पर दोनो राजा समान आयु वाले निकले। फिर राज्य-विस्तार, सेना, धन, यश, जाति, गोत्र, कुल-भेद आदि के बारे मे पूछा। दोनो तीन-तीन सौ योजन राज्य के स्वामी निकले। दोनो की सेना, धन, यश, जाति, गोत्र तथा कुल-भेद सब एक सदृश था। तब सोचा जो अधिक शीलवान् होगा उसे जगह दी जायगी। उसने पूछा—'सारथि! तुम्हारे राजा का सदाचार कैसा है?"

उसने अपने राजा के दुर्गुणो को भी गुण बताते हुए कहा कि हमारे राजा में यह गुण है, यह गुण है, और यह गाथा कही—

---

[1] राज्य-सीमा के बाहर।

दळहं दळहस्स खिपति मल्लिको मुदुना मुदुं
साधुम्पि साधुना जेति असाधुम्पि असाधुना,
एतादिसो अयं राजा मग्गा उय्याहि सारथि ॥

[मल्लिक कठोर के साथ कठोरता का व्यवहार करता है, कोमल के साथ कोमलता का। भले आदमी को भलाई से जीतता है, बुरे को बुराई से। सारथि ! यह राजा ऐसा है। तू मार्ग छोड दे।]

दळहं दळहस्स खिपति, जो बहुत कठोर होता है उसे कठोर वचन से वा प्रहार से ही जीतना चाहिए। ऐसे आदमी के प्रति यह कठोर व्यवहार करता है अथवा कठोर वचन का प्रयोग करता है। इस प्रकार कठोर होकर ही उसे जीतता है—यही प्रगट करता है। **मल्लिको,** उस राजा का नाम है। **मुदुना मुदुं,** कोमल स्वभाव वाले को स्वय भी कोमल होकर जीतता है। **साधुम्पि साधुना जेति असाधुम्पि असाधुना,** जो सज्जन हैं, उनके प्रति स्वय भी सज्जन बनकर उन्हें सज्जनता से और जो दुर्जन हैं उनके प्रति स्वय भी दुर्जन बनकर उन्हे दुर्जनता से जीतता है। **एतादिसो अय राजा,** इस हमारे कोशल राजा का ऐसा सदाचरण है। **मग्गा उय्याहि सारथि,** अपने रथ को लौटा कर छोटे रास्ते से जा। हमारे राजा को रास्ता दे।

तब वाराणसी राजा के सारथि ने पूछा—"भो ! क्या तुमने अपने राजा के गुण कह लिए ?"

"हाँ।"

"यदि यही गुण हैं, तो अवगुण कैसे होते हैं ?"

"अच्छा ! यह अवगुण ही सही। तुम्हारे राजा मे कौन से गुण है ?"

"अच्छा तो सुनो" कह दूसरी गाथा कही—

अक्कोधेन जिने कोधं, असाधुं साधुना जिने
जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलिकवादिनं,
एतादिसो अय राजा मग्गा उय्याहि सारथि[1] ॥

---

[1] धम्मपद (१०।३)।

[क्रोधी को अक्रोध से जीतता है। बुरे को भलाई से। कजूस को दान से। झूठे को सत्य से। यह राजा ऐसा है। इसलिए सारथि! तू मार्ग छोड दे।]

एतादिसो, इन अक्कोधेन जिने कोधं आदि कहे गए गुणो से युक्त। यह क्रोधी आदमी को स्वय शान्त रहकर अक्रोध से जीतता है। असाधु को स्वय भला होकर साधुता से। कदरियं, अत्यन्त कजूस को स्वय दाता बनकर दान से। अलिकवादिन, झूठ बोलनेवाले को स्वय सत्यवादी बनकर सच्चेन जिनाति। मित्र सारथि! मार्ग से हट जा। इस प्रकार के सदाचार से युक्त हमारे राजा को मार्ग दे। हमारा राजा ही मार्ग पाने के योग्य है।

ऐसा कहने पर मल्लिक राजा तथा उसके सारथि, दोनो ने उतर कर, घोडो को खोल रथ को हटा वाराणसी के राजा को मार्ग दिया। वाराणसी राजा ने मल्लिक राजा को उपदेश दिया कि राजा को यह-यह करना चाहिए। फिर वाराणसी जा वहाँ दानादि पुण्य-कर्म करके जीवन समाप्त होने पर स्वर्ग-मार्ग ग्रहण किया।

मल्लिक राजा ने भी उसका उपदेश ग्रहण कर जनपद में जा अपने दोष बताने वाले को बिना खोजे ही अपने नगर पहुँच दानादि पुण्य-कर्म करके स्वर्ग को प्रयाण किया।

शास्ता ने कोशल-नरेश को उपदेश देने के लिये यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय मल्लिक राजा का सारथि मोग्गल्लान था। राजा आनन्द था। वाराणसी राजा का सारथि सारिपुत्र था। राजा तो मैं ही था।

१५२. सिगाल जातक

"असमेक्खित कम्मन्त ." यह शास्ता ने कूटागार शाला में रहते समय वैशाली निवासी एक नाई के लडके के बारे मे कही—

क. वर्तमान कथा

उसका पिता राजाओ, रानियो, राजकुमारो तथा राजकुमारियो की हजामत बनाता, केश ठीक करता, शतरज[1] बिछाता तथा और भी सभी कार्य्य करता था। वह श्रद्धावान् था। उसने बुद्ध, धर्म तथा सघ की शरण गही थी। वह पचशीलो की रक्षा करता था। बीच-बीच में वह शास्ता का धर्मोपदेश सुनता हुआ, अपना समय व्यतीत करता था।

एक दिन वह राजा के यहाँ काम करने जाते समय अपने पुत्र को साथ ले गया। पुत्र ने वहाँ एक देवप्सरा सदृश सजी हुई लिच्छवि कुमारी को देखा। वह उस पर आसक्त हो गया। पिता के साथ राजभवन से लौटने पर उसने कहा कि यह कुमारी मिलेगी तो बचूँगा, नही तो यही मेरा मरण होगा। इतना कह वह खाना-पीना छोड चारपाई पर पड रहा।

उसके पिता ने पास आकर कहा—तात! अनधिकार इच्छा मत कर। तू नाई का लडका है। तेरी जाति छोटी है। लिच्छवि कुमारी क्षत्री की लडकी है। ऊँची जाति वाली। वह तेरे लिए योग्य नही है। तेरे लिए तेरी समान जाति और गोत्र की कोई दूसरी लडकी ला दूँगा।

उसने पिता का कहना नही माना। उसके माता, भाई, बहन, चाची, चाचा

---

[1] दोनो ओर आठ-आठ मोहरो के स्थान होने से शतरज का पुराना नाम अट्ठपद है।

सभी रिश्तेदारों तथा मित्रों आदि ने समझाने की कोशिश की। वे नहीं समझा सके। वह वहीं सूख-सूख कर मर गया।

उसका पिता शरीर का दाह-कर्म आदि कृत्य करके जब शोक कम हुआ तो शास्ता की वन्दना करने की इच्छा से बहुत-सा गन्ध-माला-लेप आदि ले, महावन पहुँच शास्ता की पूजा कर, प्रणाम कर एक ओर बैठा। शास्ता ने पूछा—

"उपासक! क्यों इन दिनों दिखाई नहीं देता?"

उसने वह हाल कहा।

शास्ता बोले—"उपासक! तेरा लड़का केवल अभी अनधिकार इच्छा करके विनाश को प्राप्त नहीं हुआ, पहले भी हुआ है।"

उपासक के प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व हिमालय-प्रदेश में सिंह होकर पैदा हुए। उनसे छोटे छ भाई थे और एक बहन थी। सभी काञ्चन-गुफा में रहते थे।

उस गुफा से थोड़ी ही दूर रजत पर्वत पर एक स्फटिक गुफा थी। उसमें एक सियार रहता था। समय गुजरने पर उन सिंहों के माता-पिता मर गए। वह अपनी बहन सिंह बच्ची को गुफा में छोड जाते और स्वय शिकार के लिए बाहर निकल मांस ला कर उसे देते। वह सियार उस सिंह बच्ची को देखकर उस पर आसक्त हो गया। उसके माता-पिता जब थे, तब तो उसे अवसर न मिलता था। अब इन सातों जनों के शिकार के लिए चले जाने पर स्फटिक गुफा से उतर काञ्चन-गुफा के द्वार पर जा सिंह बच्ची के सामने इस प्रकार कुछ लौकिक ढंग की गुप्त बातचीत कहता—

"सिंह की बच्ची! मैं भी चौपाया हूँ। तू भी चौपाया है। तू मेरी भार्य्या बन। मैं तेरा पति बनूँगा। हम मिलकर प्रसन्नता पूर्वक रहेंगे। अब से तू मेरी प्रेमिका हो जा।"

वह उसकी बातचीत सुन सोचने लगी—

"यह सियार चौपायों में सबसे निचले दर्जे का निकृष्ट प्राणी है, वैसे ही जैसे चाण्डाल। हम उत्तम राजकुल के हैं। यह मुझसे अगम्य अनुचित बातचीत करता

है। मैं इस प्रकार की बातचीत सुनकर जीकर ही क्या करूँगी? साँस रोक कर मर जाऊँगी।"

फिर उसने सोचा—

"मेरा इस प्रकार यूँ ही मरना ठीक नहीं। मेरे भाई आते हैं। उन्हें कहकर मरूँगी।"

सियार को भी जब उसकी ओर से कोई उत्तर न मिला तो उसने सोचा यह मुझसे सम्बन्ध नहीं करेगी। वह अफसोस करता हुआ स्फटिक-गुफा में जाकर पड़ रहा।

एक सिंह बच्चा भैंस वा हाथी में से किसी को मार मास खा, बहन का हिस्सा लाकर बोला—"मास खा।"

"भाई! मैं मास नहीं खाऊँगी। मैं मरूँगी।"

"क्यों?"

उसने वह हाल कहा।

"अब वह सियार कहाँ है?"

उसने स्फटिक-गुफा में पड़े हुए सियार को आकाश में है समझा और बोली—"भाई! क्या नहीं देखते हो? यह रजत पर्वत पर आकाश में स्थित है।"

सिंह बच्चा नहीं जानता था कि वह स्फटिक-गुफा में लेटा है। उसने उसे आकाश में लेटा हुआ समझ सोचा "इसे मारूँगा" और सिंह-वेग के साथ उछल कर, स्फटिक-गुफा पर छाती से चोट की। उसका हृदय फट जाने से वह मर कर वहीं गिर पड़ा।

तब दूसरा आया। उसने उसे भी वैसा ही कहा। उसने भी वैसा ही किया और मरकर पर्वत के नीचे गिर पड़ा। इस प्रकार छओ भाइयों के मरने पर सबसे अन्त में बोधिसत्व आए। उसने उन्हें भी वह हाल कहा और यह पूछने पर कि अब वह कहाँ है बताया कि वह रजत पर्वत पर आकाश में लेटा है।

बोधिसत्व ने सोचा—सियार आकाश में नहीं ठहर सकते। वह स्फटिक-गुफा में पड़ा होगा। वे पर्वत के नीचे उतरे तो देखा कि छओ भाई मरे पड़े हैं। वे समझ गए कि अपनी मूर्खता के कारण विचार न कर सकने के कारण स्फटिक-गुफा न जानने से उसी से हृदय टकराकर मरे होंगे। 'बिना विचारे जल्दबाजी करनेवालों का काम ऐसा ही होता है' कह पहली गाथा कही—

असमेक्खितकम्मन्त　　तुरिताभिनिपातिन,
मानि कम्मानि तप्पेन्ति उण्ह वज्झोहित मुखे ॥

[जो आदमी विना विचारे जल्दवाजी मे काम करता है, उसके वह काम ही उसे तपाते है, जैसे मुँह में डाला हुआ गर्म भोजन ।]

असमेक्खितकम्मन्त तुरिताभिनिपातिनं, जो आदमी जिस काम को करना चाहता है, यदि वह उसके दोषो का ख्याल न कर, उन पर विचार न कर जल्दवाज होकर जल्दी मे ही उस काम को करने को तैयार होता है, कूद पडता है, लग जाता है, उस विना विचारे जल्दवाजी मे काम करने वाले को वे इस प्रकार किये गए मानिकम्मानि तप्पेन्ति, सोच मे डाल देते है, कष्ट देते है। कैसे ? उण्हं वज्झोहित मुखे जिस तरह खाते समय यदि इसका विचार न कर कि यह ठण्डा है, या गर्म है, गर्म भोजन मुख मे डाल दिया जाए तो मुँह भी जलता है, गला भी जलता है और पेट भी जलता है, चिन्ता होती है तथा कष्ट होता है। इसी प्रकार उस तरह के आदमी को वह कर्म तपाते है।

उस सिंह ने यह गाथा कह सोचा—मेरे भाई उपाय-कुशल नही रहे। सियार को मारने जाकर वह बडे जोर से कूद कर स्वय मर गये। मैं ऐसा न कर गुफा मे पडे हुए ही सियार के हृदय को फाड डालूँगा।

उसने सियार के चढने-उतरने के रास्ते का ख्याल कर उसके सामने खडे हो तीन बार सिंहनाद किया। पृथ्वी सहित आकाश गूँज उठा। सियार का हृदय स्फटिक-गुफा में लेटे ही लेटे डर के मारे फट गया। वह वही मर गया। शास्ता ने कहा—इस प्रकार वह सियार सिंहनाद सुनकर मर गया।

शास्ता ने बुद्धत्व प्राप्त किए रहने पर यह गाथा कही—

सीहोच　सीहनादेन　दद्दरं　अभिनादयि
सुत्वा सीहस्स निग्घोस सिगालो दद्दरे वसं
भीतो सन्तासमापादि हदयं चस्स अप्फलि ॥

[सिंह ने सिंहनाद से गुफा को गुंजा दिया। गुफा मे रहने वाले सियार ने

जब सिंह की आवाज सुनी तो वह डर कर त्रास को प्राप्त हुआ और उसका हृदय फट गया।]

सीहो, सिंह चार प्रकार के होते है (१) तृण-सिंह (२) पाण्डु-सिंह (३) काळ-सिंह (४) लाल हाथ पैर वाला केसरी। उनमे से यहाँ केसरी सिंह से ही मतलब है। **दद्दर अभिनादयि** सौ बिजलियो के शब्द से भी भयानक सिंहनाद से उस रजत पर्वत को निनादित कर दिया, गुंजा दिया। **दद्दरे वस,** स्फटिक मिले रजत पर्वत पर रहते हुए। **भीतो सन्तासमापादि** मृत्यु-भय से डरकर चित्त-त्रास को प्राप्त हुआ। **हृदयं चस्स अप्फलि,** उस भय से उसका हृदय फट गया।

इस प्रकार सिंह उस सियार का प्राणान्त कर, भाइयो को एक जगह छिपाकर बहन को उनके मरने का वृत्तान्त कह, उसे दिलासा दे जन्म भर काञ्चन-गुफा मे ही रह कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, आर्य-सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो का प्रकाशन हो चुकने पर उपासक श्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय सियार नाई का लडका था। सिंह-बच्ची लिच्छवि-कुमारी। छ छोटे भाई कोई स्थविर हुए। ज्येष्ठ-भ्राता सिंह तो मैं ही था।

१५३. सूकर जातक

"चतुष्पदो अह सम्म ..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक बूढ़े स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन रात में जब धर्म-देशना हो रही थी, जब शास्ता गन्धकुटी के दरवाजे पर मणिमय सीढ़ी पर खड़े होकर भिक्षुसंघ को उपदेश दे गन्धकुटी में चले गए थे, धर्मसेनापति (सारिपुत्र) शास्ता को प्रणाम कर अपने परिवेण में गये। महा-मोग्गल्लान भी अपने परिवेण में जा, वहाँ थोड़ी देर विश्राम कर स्थविर के पास चले आए और प्रश्न पूछने लगे। जो-जो प्रश्न पूछा जाता धर्म सेनापति आकाश में चन्द्रमा को उठाते हुए से उसका उत्तर देकर समझा देते। चारों प्रकार की परिषद् बैठी धर्म सुनती रही।

एक बूढ़े स्थविर को सूझा—यदि मैं इस सभा में सारिपुत्र से कोई प्रश्न पूछकर उसे चक्कर में डाल दूँ तो यह सभा समझेगी कि यह भी बहुश्रुत है और मेरा सत्कार सम्मान करेगी। इसलिए उसने सभा में से उठ सारिपुत्र के पास जाकर एक तरफ खड़े हो कहा—आयुष्मान्! सारिपुत्र। हम भी एक प्रश्न पूछना चाहते हैं। हमें भी पूछने की आज्ञा दें। लपेटने के बारे में, उधेड़ने के बारे में, निग्रह के बारे में, प्रग्रह के बारे में, विशेष के बारे में, तथा निर्विशेष के बारे में अपना निश्चय कहें[1]।

स्थविर ने उसकी ओर देख सोचा—यह बूढ़ा इच्छाओं के वशीभूत है, तुच्छ है, कुछ नहीं जानता। वे उससे बिना कुछ बातचीत किए शरमाये हुए, पंखे[2]

---

[1] यह प्रश्न निरर्थक शब्द-समूह मात्र है।

[2] धर्मोपदेश के समय पंखा हाथ में रहता है।

को रखकर आसन से उतर परिवेण मे चले गए। मोग्गल्लान स्थविर भी अपने परिवेण मे चले गए।

मनुष्यो ने उसका पीछा किया—पकडो इस वूढे को, इसने हमे मधुर धर्मोपदेश नही सुनने दिया। वह भागता हुआ विहार के सिरे पर एक दरार फटे पाखाने में गिर पडा और गन्दगी से पुत गया। आदमियो को उसे देख घृणा हुई। वे शास्ता के पास गए। शास्ता ने उन्हे देख पूछा—"उपासको! क्यो असमय कैसे आए?" मनुष्यो ने वह हाल कहा।

शास्ता ने कहा—"उपासको! न केवल अभी यह वूढा उवल कर अपने वल को न जान महा वलवान् के साथ जूझ कर गूह से लिवड गया है, यह पहले भी उवल कर अपने वल को न जान महावलवान् से जूझ गूह से लिवड चुका है।" उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की वात कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व सिंह होकर पैदा हुए, और हिमालय प्रदेश में पर्वत-गुफा मे रहने लगे।

उनके नजदीक ही एक तालाव के आस-पास वहुत से सूअर रहते थे। उसी तालाव के आस-पास तपस्वी भी पर्णशालाओ मे रहते।

एक दिन सिंह भैसे या हाथी में से किसी एक को मार, पेट भर मास खा, उस तालाब मे उतर पानी पी ऊपर आया।

उसी समय एक मोटा सूअर उस तालाब के आस-पास चरता था। सिंह ने उसे देख सोचा कि इसे किसी दूसरे दिन खाऊँगा। यदि यह मुझे देख लेगा तो फिर न आएगा। उसके न आने के डर से वह तालाब से उतर एक तरफ को जाने लगा। सूअर ने उसे देखा तो सोचा—यह मुझे देख मेरे भय से सामने से न जा सकने के कारण भागा जा रहा है। आज मुझे इस सिंह से जूझना चाहिए। उसने सिर उठाकर सिंह को युद्ध के लिए ललकारते हुए यह पहली गाथा कही—

चतुप्पदो अहं सम्म! त्वम्पि सम्म! चतुप्पदो,
एहि सीह! निवत्तस्सु किन्नु भीतो पलायसि॥

[दोस्त! मैं चौपाया हूँ। तू भी चौपाया है। सिंह! आ, रुक। डरकर किस लिए भागता है।]

सिंह ने उसकी बात सुनी तो कहा—दोस्त! आज हमारा तेरे साथ युद्ध न होगा। आज से सातवें दिन इसी जगह पर संग्राम होवे। इतना कह वह चला गया।

सुअर प्रसन्न हुआ कि सिंह के साथ युद्ध करूँगा। उसने अपने सब रिश्तेदारों को कह दिया। वह उसकी बात सुन कर डरे। 'अब तू हम सभी को नष्ट करेगा। अपनी ताकत को न पहचान कर सिंह के साथ युद्ध करना चाहता है। सिंह आकर हम सब के प्राण ले लेगा। दुस्साहस न कर।'

उसने भयभीत हो पूछा—"तो अब क्या करूँ?"

उन्होंने उपाय बताया—दोस्त सुअर! तू उस जगह जाकर जहाँ यह तपस्वी मल-मूत्र त्यागते हैं सात दिन तक शरीर में गंदगी लपेटकर शरीर को सुखा, सातवें दिन शरीर को ओस की बूँदो से गीलाकर सिंह के आने से पहले ही आकर हवा का रुख देख, जिधर से हवा आती हो उधर खड़े हो जाना। सिंह सफाई पसन्द होता है। वह तेरे शरीर की गन्दगी को सूंघ तुझे विजयी छोड़ चला जाएगा।

उसने वैसे ही किया और सातवें दिन वहाँ जाकर खड़ा हो गया। सिंह उसके शरीर की गन्दगी को सूंघकर समझ गया कि उसने देह में गूह पोता है। वह बोला—

"दोस्त सुअर! तूने अच्छा उपाय सोचा है। यदि तूने गूह न पोता होता, तो मैं तुझे यहीं मार देता। लेकिन अब तो मैं तेरे शरीर को न मुँह से डस सकता हूँ न पैरों से ही तुझ पर प्रहार कर सकता हूँ। इसलिए मैं तुझे विजयी मानता हूँ।"—इतना कह दूसरी गाथा कही—

असुचि पूतिलोमोसि दुग्गन्धो वासि सूकर!
सचे युज्झितुकामोसि जयं सम्म! ददामि ते॥

[सुअर! तू अपवित्र गन्दे बालों वाला है। तेरे शरीर से दुर्गन्ध आती है। यदि तुझे युद्ध करने की इच्छा है, तो मैं तुझे विजयी मान लेता हूँ।]

पूतिलोमोसि—गन्दगी लगे दुर्गन्धपूर्ण बालों वाला है। **दुग्गन्धो वासि**, अनिष्टकर, घृणित, प्रतिकूल दुर्गन्ध फैलाता है। **जयं सम्म! ददामि ते।**

तुझे विजयी मानता हूँ मैं पराजित हूँ। तू जा। इतना कह सिंह रुक, अपना शिकार कर, तालाब में पानी पी पर्वत-गुफा को ही चला गया।

सुअर ने अपने रिश्तेदारो को कहा—सिंह को मैंने जीत लिया। वे डरे कि फिर किसी दिन आकर सिंह हम सबको जान से मार डालेगा। वे भाग कर किसी दूसरी जगह चले गए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय सुअर यह वृद्ध स्थविर था। सिंह तो मैं ही था।

१५४. उरग जातक

"**उघूरगानं पवरो पविट्ठो . . .**" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय श्रेणियो[1] के सघ कलह के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कोशल राजा के दो सेवक श्रेणियो के प्रधान थे। वे दोनो महामात्य एक दूसरे को जहाँ कही देखते झगडा करते। उनके बैर की बात सारे नगर में फैल गई। न राजा और न उनके रिश्तेदार तथा मित्र उनका झगडा मिटा सके।

एक दिन प्रात काल शास्ता ने उन आदमियो का विचार करते हुए, जिनके ज्ञानी होने की सभावना थी इन दोनो के स्रोतापन्न होने की सभावना को देखा। किसी एक दिन वे श्रावस्ती में भिक्षाचार करते हुए उनमें से एक के घर के दरवाजे पर खडे हुए।

उसने बाहर निकल पात्र ले शास्ता को घर के अन्दर ले जा आसन बिछा

---

[1] शिल्पियो के संघ।

कर विठाया। शास्ता ने वैठते ही उसे मैत्री-भावना की महिमा समझाई, जब उसका चित्त कुछ कोमल हुआ देखा तो आर्य्य-सत्यो को प्रकाशित किया। सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर वह स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

शास्ता ने जब देखा कि वह स्रोतापन्न हो गया तो उसी के हाथ में पात्र रहने देकर उसे साथ ले दूसरे के घर पर पहुँचे। उसने भी वाहर निकल शास्ता को प्रणाम कर 'भन्ते! घर में प्रवेश करें' कह, घर में ले जाकर विठाया। दूसरा भी पात्र लिए हुए शास्ता के साथ ही अन्दर गया। शास्ता ने उसे मैत्री-भावना के ग्यारह लाभ[1] वताए। जब जाना कि उसका चित्त कोमल पड गया तो आर्य्य-सत्यो को प्रकाशित किया। सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर वह भी स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ।

वे दोनो स्रोतापन्न हो परस्पर अपने-अपने दोषो को स्वीकार कर, उनके लिए क्षमा माँग एक दूसरे के साथ मिलकर आनन्दपूर्वक रहनेवाले, एक ही विचार के हो गए। उसी दिन भगवान् के सामने वैठकर उन्होने इकट्ठे खाया।

शास्ता भोजन-कृत्य समाप्त करके विहार गए। वे भी वहुत-सा माला-गन्ध-लेप आदि सुगन्धित वस्तुएँ तथा घी, शहद और शक्कर आदि लेकर शास्ता के साथ ही घर से निकले। भिक्षु-सघ ने शास्ता को आदर प्रदर्शित किया। वुद्ध उपदेश देकर गन्ध-कुटी मे प्रविष्ट हुए।

भिक्षुओ ने सायकाल धर्म-सभा मे वातचीत चलाई। 'आयुष्मानो! शास्ता अविनयी को विनयी वनानेवाले है। जिन दो अमात्यो का चिरकाल तक प्रयत्न करके भी न राजा और न उनके रिश्तेदार वा सम्वन्धी मेल करा सके तथागत ने उनको एक ही दिन मे विनीत कर दिया।' शास्ता ने आकर पूछा—'भिक्षुओ! वैठे क्या वातचीत कर रहे हो?' 'अमुक वातचीत' कहने पर तथागत ने कहा—'भिक्षुओ, मैने केवल अभी इन दो जनो का मेल नही कराया, पहले भी कराया है।' इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वाराणसी के उत्सव

[1] अंगुत्तर-निकाय, एकादशक निपात।

की घोषणा होने पर बडा मेला हुआ। वहुत से मनुष्य, देव, नाग तथा गरुड आदि समज्ज[1] देखने के लिए इकट्ठे हुए।

वहाँ एक जगह एक नाग और गरुड मेला देखते हुए इकट्ठे खडे थे। नाग ने गरुड को, गरुड न समझ उसके कधे पर हाथ रख दिया। गरुड ने मुडकर देखा कि मेरे कधे पर हाथ किसने रक्खा? उसने देखा कि नाग है। नाग ने भी जब गरुड को देखा तो उसे जान का डर हुआ। वह नगर से निकल नदी के रास्ते भाग गया। गरुड ने भी उसे पकडने के लिए पीछा किया।

उस समय वोधिसत्त्व तपस्वी थे। वे उसी नदी के किनारे पर्णशाला में रहते हुए दिन की थकावट मिटाने के लिए नहाने का वस्त्र पहन वल्कल-छाल को वाहर छोड नदी मे उतर स्नान कर रहे थे।

नाग ने सोचा इस प्रव्रजित की सहायता से जान वचा सकूँगा। उसने अपना असली रूप छोड मणि की शकल वना वल्कल के अन्दर प्रवेश किया। गरुड ने पीछा करते हुए उसे वहाँ घुसा देख वल्कल के प्रति गौरव होने से उसे न पकड बोधिसत्त्व को 'भन्ते! मै भूखा हूँ। आप अपने वल्कल को ले। मै नाग को खाऊँगा' कहने के लिये यह गाथा कही—

इधूरगानं पवरो पविट्ठो
सेलस्स वण्णेन पमोक्खमिच्छं
ब्रह्मञ्च वण्णं अपचायमानो
बुभुक्खितो नो विसहामि भोत्तुं॥

[यहाँ मणिवर्ण से नागराजा जान वचाने के लिए घुसा है। मै ब्राह्मण वर्ण का आदर करने के कारण भूखा होता हुआ भी उसे खाने की हिम्मत नही करता।]

इधूरगानं पवरो पविट्ठो, उस वल्कल में नागो मे श्रेष्ठ नागराज प्रविष्ट हुआ है। **सेलस्स वण्णेन,** मणि के वर्ण से, अर्थात् मणि की शक्ल वना प्रविष्ट हुआ। **पमोक्खमिच्छ,** मुझसे बचने की इच्छा से। **ब्रह्मञ्च वण्णं अपचायमानो,** मै तुम्हारे

---

[1] **समज्ज=मेला।**

ब्रह्म-वर्ण, श्रेष्ठ-वर्ण, की पूजा करने के कारण, गौरव करने के कारण **बुभुक्खितो नो विसहामि भोत्तुं** वल्कल में घुसे हुए इस नाग को भूख होते भी नही खा सकता हूँ।

पानी में खडे ही खडे बोधिसत्त्व ने गरुड राज की प्रशसा करते हुए यह गाथा कही—

सो ब्रह्मगुत्तो चिरमेव जीव
दिब्बा च ते पातुभवन्तु भक्खा
सो ब्रह्मवण्ण अपचायमानो
बुभुक्खितो नो वितरासि भोत्तुं॥

[तू ब्रह्म द्वारा रक्षित होकर चिरकाल तक जीवित रह। तुझे दिव्य भोजन प्राप्त हो। तू ब्रह्म-वर्ण के गौरव के कारण भूखा होता हुआ भी नही खा रहा है।]

सो ब्रह्मगुत्तो, वह तू ब्रह्म द्वारा गोपित, ब्रह्म द्वारा रक्षित होकर **दिब्बा च ते पातुभवन्तु भक्खा,** देवताओ के भोजन करने योग्य भोजन तुझे मिलें। प्राण-हिंसा करके नाग-मास खानेवाला न बन।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने पानी में खडे ही खडे अनुमोदन कर, पानी से निकल वल्कल पहन उन दोनों को अपने आश्रम पर ले जा मैत्री-भावना की प्रशसा कर दोनों का मेल करा दिया। उसके बाद से वह प्रसन्नता पूर्वक सुख से रहने लगे।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय नाग और गरुड यह दो महामात्य थे। तपस्वी तो मै ही था।

१५५. गग्ग जातक

"जीव वस्स सतं गग्ग " यह शास्ता ने जेतवन के समीप राजा प्रसेनजित के बनवाए **राजकाराम** मे रहते हुए अपनी छीक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन शास्ता को राजकाराम में चारो-प्रकार की परिषद मे बैठे धर्मोपदेश करते समय छीक आई। भिक्षुओ ने जोर से, ऊँचे स्वर से कहा—"भन्ते! भगवान्! जीएँ। सुगत! जीएँ।" उनके चिल्लाने से धर्मोपदेश में विघ्न पडा। भगवान् ने भिक्षुओ से पूछा—

"भिक्षुओ, यदि किसी के छीकने पर "जीएँ" कहा जायगा, तो क्या उस कहने से उसके जीने मरने पर कुछ प्रभाव पडेगा?"

"भन्ते! नही।"

"भिक्षुओ! छींकने पर "जीएँ" नहीं कहना चाहिए। जो कहे उसे दुष्कृत का दोष लगेगा।"[1]

उन दिनो भिक्षुओ को छीक आने पर लोग कहा करते—"भन्ते! जीएँ।" भिक्षु बुरा मानते और कुछ न बोलते। लोग खीझ उठते—कैसे है यह श्रमण शाक्य-पुत्रीय जो "भन्ते! जीएँ" कहने पर कुछ नही बोलते। भगवान् से यह बात कही गई। भगवान् ने कहा—"भिक्षुओ! गृहस्थ लोग मगल-अमगल को मानने वाले है। **भिक्षुओ! गृहस्थ लोगो के 'भन्ते जीएँ' कहने पर 'चिरकाल तक जीते रहो' कहने की अनुज्ञा देता हूँ।"**

भिक्षुओ ने भगवान् से पूछा—भन्ते! 'जीओ', तथा 'जीते रहो' यह कहने की प्रथा कब से आरम्भ हुई? शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, यह 'जीओ' तथा 'जीते

---

[1] विनय पिटक में यह शिक्षापद नहीं मिला।

रहो' कहने की प्रथा पुराने समय में आरम्भ हुई। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व काशी देश मे एक ब्राह्मण कुल मे पैदा हुए। उनका पिता व्यापार करके गुजारा करता था। उसने सोलह वर्ष के वोधिसत्त्व से मोती आदि की चीजें उठवा ग्राम निगम आदि मे घूमते हुए वाराणसी पहुँचकर द्वारपाल के घर पर भोजन बनवाकर खाया। निवासस्थान नही था। उसने पूछा—"असमय पर आए हुए अतिथि कहाँ रहते है?"

मनुष्यों ने उत्तर दिया—"नगर के बाहर एक शाला है। लेकिन उसमें भूत-प्रेत आदि रहते है। यदि चाहें तो वहाँ रहे।"

बोधिसत्त्व ने कहा—"तात! चलें! डरने की जरूरत नही। मै उस यक्ष का दमन कर उसे आपके चरणों पर गिराऊँगा।" वह पिता को लेकर वहाँ गए।

पिता तख्ते पर लेटा। वे स्वय पिता के पैरो को दबाते हुए बैठे।

वहाँ रहनेवाले यक्ष ने बारह वर्ष कुबेर की सेवा करके उससे यह अधिकार प्राप्त किया था कि उस शाला में जो आदमी आएँ उनमें से किसी को छीक आने पर यदि कोई 'जीवें' कहे और जिसको छीक आई हो वह भी 'जीओ' कहे तो उनको छोड़कर वह शेष सभी को खा सकता है। वह चौखट पर रहता था। उसने वोधिसत्त्व के पिता को छीक दिलाने के लिए अपने प्रताप से सूक्ष्म-चूर्ण बखेरा। चूर्ण आकर उनके नथनो मे पड़ा। उसे तख्ते पर पडे ही पडे छीक आई। वोधिसत्त्व ने उसे 'जीवें' नहीं कहा। यक्ष उसे खाने के लिए चौखट से उतरने लगा। वोधिसत्त्व ने उसे उतरते देख, सोचा इसी ने मेरे पिता को छिकाया होगा। छीकने पर जो 'जीवें' न कहे उन्हे यह यक्ष खा लेता होगा। उन्होने पिता को सम्बोधन करके यह पहली गाथा कही—

जीव वस्स सत गग्ग! अपरानि च वीसति,
मा म पिसाचा खादन्तु जीव त्वं सरदोसतं॥

[गग्ग! तू सौ वर्ष जीवित रह। और भी बीस वर्ष। मुझे पिशाच न खाएँ। तू सौ वर्ष जीवित रह।]

गग्ग, यह पिता को उसके नाम से सम्बोधन किया है। **अपरानि च वीसति,** और भी वीस वर्ष जीवित रहें। **मा मं पिसाचा खादन्तु,** मुझे पिशाच न खाएँ। **जीव त्वं सरदो सतं,** तू एक सौ बीस वर्ष जी।

सरदसतं का अर्थ तो सौ वर्ष ही होता है। लेकिन पहले के बीस जोड देने से यहाँ एक सौ बीस से मतलब है।

यक्ष ने वोधिसत्त्व का वचन सुन सोचा कि इस माणवक ने 'जीवें' कहा है, इसलिए इसे नही खा सकता। इसके पिता को खाऊँगा। इसलिए पिता के पास गया। उसने उसे आते देख सोचा, यह यक्ष उन लोगो को खा लेता होगा, जो 'जीवें' के उत्तर मे 'जीओ' न कहते होगे। इसलिए मै प्रतिवचन करूँगा। उसने पुत्र के बारे मे दूसरी गाथा कही—

त्वम्पि वस्स सतं जीव अपरानि च वीसतिं,
विसं पिसाचा खादन्तु जीव त्वं सरदोसतं॥

[तू भी सौ वर्ष जीवित रह। और भी बीस वर्ष। पिशाच विष खाएँ। तू सौ वर्ष जीवित रह।]

विसं पिसाचा, पिशाच हलाहल विष खाएँ।

यक्ष ने उसकी बात सुन सोचा, मै दोनो में से किसी को नही खा सकता। वह रुक गया।

बोधिसत्त्व ने पूछा—'भो यक्ष! इस शाला में प्रवेश करनेवाले आदमियो को तू क्यो खाता है?'

"बारह वर्ष कुबेर की सेवा करके अधिकार प्राप्त किया है।"

"क्या सभी को खाने का अधिकार है?"

"जीवें' और 'जीओ' कहने वालो को छोड शेष सभी को खाता हूँ।"

"यक्ष! तूने पहले बुरे कर्म किए। इसलिए तू निर्दयी, कठोर तथा दूसरो

की हिंसा करनेवाला पैदा हुआ। अब फिर उसी तरह के काम करके तू **तमोतम-परायण**' हो रहा है। इसलिए अब से तू प्राणि-हिंसा आदि से विरत हो।"

इस प्रकार उस यक्ष का दमन कर, नरक के भय से उसे डरा, पञ्चशीलो में प्रतिष्ठित कर यक्ष को दूत की तरह विनीत कर दिया।

आगे चलकर आने-जाने वाले मनुष्यो ने यक्ष को देखा और जब उन्हे मालूम हुआ कि बोधिसत्त्व ने उसका दमन किया, तो उन्होने राजा से कहा—"देव! एक तरुण ने उस यक्ष का दमन कर उसे दूत की तरह विनीत कर रक्खा है।"

राजा ने बोधिसत्त्व को बुलाकर सेनापति के स्थान पर नियुक्त किया। और पिता का बहुत सत्कार किया।

राजा यक्ष को बलि-ग्रहण का अधिकारी बना, बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार चल, दान आदि पुण्य-कर्म कर स्वर्ग सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला 'जीवें' और 'जीओ' कहने की प्रथा उस समय चली, कहा और जातक का मेल बैठाया।

उस समय का राजा आनन्द था। पिता काश्यप था। और पुत्र तो मैं ही था।

१५६. अलीनचित्त जातक

"अलीनचित्त निस्साय ...", यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक हिम्मत-हारे भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

इसकी कथा ग्यारहवे परिच्छेद (निपात) की संवर जातक[2] मे आएगी।

---

[1] अन्धकार मे अन्धकार में जाने वाला=हीनकुल में पैदा होकर नीच कर्म करने वाला।

[2] संवर जातक (४६२)।

शास्ता ने उस भिक्षु से पूछा—"भिक्षु, क्या तूने सचमुच हिम्मत छोड दी ?"

"भगवान् ! सचमुच ।"

शास्ता ने कहा—"भिक्षु, क्या तूने पूर्व समय मे हिम्मत करके मास के टुकडे सदृश छोटे से कुमार को बारह योजन के वाराणसी के नगर का राज्य नही लेकर दिया था ? अब इस प्रकार के शासन मे प्रव्रजित होकर क्यो हिम्मत हारता है ?" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वाराणसी के समीप ही बढई-ग्राम था। वहाँ पाँच सौ बढई रहते थे।

वह नौका से नदी के स्रोत के ऊपर की तरफ जाते। वहाँ जगल मे घर बनाने की लकडी काटकर वही एक तल्ले के मकान बना, खम्भे से आरम्भ करके सभी लकडियो पर चिह्न लगाते। फिर उन्हें नदी के किनारे ले जा, नौका पर चढा, स्रोत के अनुसार चल नगर में आते। वहाँ जो जैसे घर चाहता, उसे वैसे बना देकर कार्षापण ले, फिर वैसे ही जा, घर के सामान लाते।

उनके इस प्रकार जीविका चलाते हुए एक बार पडाव डालकर लकडी काटते समय, उनके पास ही एक हाथी का पाँव खैर की लकडी के खूँटे पर पडा। उस खूँटे से उसका पाँव बिंध कर उसमे बडी पीडा होने लगी। पैर सूज गया। उसमे से पीप बहने लगा।

पीडा से पीडित हो उसने लकडी काटने का शब्द सुनकर सोचा कि इन बढइयो से मेरा कल्याण होगा। ऐसा समझ कर वह तीन पैरो से चलकर उनके पास पहुँचा और वही नजदीक ही पड रहा।

बढइयो ने उसका सूजा हुआ पैर देखा तो पास गए। उन्हे उसमें खूँटा दिखाई दिया। उन्होने तेज कुल्हाडी से खूँटे के चारो ओर गहरा निशान कर, उसमे रस्सी बाँधकर उसे खीचकर निकाला। फिर पीप निचोडकर, निकालकर गर्म पानी से धोया। उसके अनुकूल दवाई करने से थोडे ही समय मे घाव ठीक हो गए।

हाथी ने निरोग होकर सोचा—इन बढइयो ने मेरी जान बचाई। मुझे इनकी कुछ सेवा करनी चाहिए। उस दिन से वह बढइयो के साथ वृक्ष लाने लगा। छीलने के समय वह उन्हे उलट-उलट कर सामने करता। कुल्हाडी आदि औजार

ले आता। सूण्ड में लपेटकर काले धागे के सिरे को पकड लेता। वढई भी भोजन के समय इसे एक-एक पिण्ड देते तो पाँच सौ पिण्ड हो जाते।

उस हाथी का एक वच्चा था, जो एक दम श्वेत वर्ण का था और था मगल हाथी। हाथी ने सोचा कि मैं बूढा हो गया। अव मुझे अपने लडके को इन वढइयो को काम करने के लिए देकर स्वय जाना चाहिए। वह विना वढइयो को सूचित किये ही जगल में गया। वहाँ से लडके को ले आकर वढइयो से वोला—"यह मेरा लडका है। तुमने मुझे जीवन दान दिया है। मैं डाक्टर की फीस के वदले मे इसे देता हूँ। अव से यह तुम्हारी सेवा किया करेगा।" इतना कह, पुत्र को आदेश दे कि पुत्र! जो कुछ मेरा काम है, वह सव अव से तू करना, उसे वढइयो को सौंप स्वय जगल मे प्रवेश किया।

उस समय से वह हाथी-वच्चा वढइयो के कहने के अनुसार सव काम करने लगा। वे भी उसे पाँच सौ पिण्ड देकर पोसते। वह काम समाप्त कर नदी में उतर खेलकर आया करता। वढइयो के वच्चे भी उसे सूण्ड आदि से पकड जल और स्थल में सभी जगह उससे खेलते। श्रेष्ठ हाथी हो, घोडे हो, अथवा मनुष्य हो, कोई भी पानी मे मल-मूत्र नही त्यागते। वह भी पानी में मल-मूत्र न कर वाहर नदी के किनारे पर ही करता था।

एक दिन नदी के ऊपर के हिस्से में वर्षा हुई। हाथी की आधी सूखी लेण्डी पानी से वहकर नदी के रास्ते जा वाराणसी नगर के पत्तन पर एक झाडी मे जा अटकी।

राजा के हाथी-सेवक पाँच सौ हाथियो को नहलाने के लिए ले गए। श्रेष्ठ हाथी की लेण्डी की गन्ध सूँघकर एक भी हाथी ने पानी में उतरने की हिम्मत न की। सभी पूँछ उठाकर भागने लगे। हाथी-सेवको ने हथवानो को खवर की। उन्होंने सोचा पानी में कुछ खतरा होगा। पानी खोज करने पर जव उन्होने झाडी मे श्रेष्ठ हाथी की लेण्डी देखी तो समझ गए कि यही कारण है। उन्होने चाटी मँगवाई और उसे पानी मे भर, उसमे उसे घोल हाथियो के शरीर पर छिडकवा दिया। शरीर सुगन्धित हो गए तव हाथी नदी मे उतरकर नहाए।

हथवानो ने राजा को वह समाचार सुना सलाह दी कि देव! वह हाथी खोजकर मँगवाया जाना चाहिए। राजा नौकाओ के वेडे से नदी में उतर ऊपर जाने वाले वेडे से वढइयो के निवासस्थान पर पहुँचा। वह हाथी-वच्चा

नदी में खेल रहा था। जब उसने भेरी शब्द सुना तो जाकर बढइयो के पास खडा हो गया। बढइयो ने राजा की अगवानी करते हुए कहा—देव! यदि लकडी की आवश्यकता थी, तो कष्ट क्यो किया? क्या भेजकर मँगाना उचित न होता?

"अरे! मैं लकडी के लिए नही आया। मै तो इस हाथी के लिए आया हूँ।"

"देव! पकडवा कर ले जाएँ।"

हाथी-बच्चे ने जाना नही चाहा।

"अरे, हाथी क्या करता है?"

"देव! जिससे बढइयो का पोपण हो, वह लाता है।"

राजा ने "अच्छा, भाई!" कहा और हाथी की सूण्ड के पास, पूँछ के पास और चारो पैरो के पास एक-एक लाख कार्षापण रखवाए। हाथी इतने पर भी नही गया। सब बढइयो को दुशाले तथा बढइयो की स्त्रियो को पहनने के वस्त्र मिलने पर तथा साथ खेलनेवाले लडको के पालन-पोषण का प्रबन्ध होने पर वह बढइयो को पीछे आने न दे, स्त्रियो और लडको को देखता हुआ राजा के साथ चला गया।

राजा उसे लेकर नगर गया। वहाँ नगर और हस्ति-शाला को अलकृत करवाया। हाथी को नगर की प्रदक्षिणा करवा हस्ति-शाला में ले जाया गया। सभी तरह के गहने पहना, अभिषेक कर, उसे राजा की खास सवारी बनाया। फिर उसे अपना मित्र घोषित कर आधा राज्य हाथी को दे दिया। राजा ने उसे अपने बराबर का दर्जा दिया।

हाथी के आने के समय से सारे जम्बू द्वीप का राज्य राजा के हाथ में आया जैसा ही हो गया।

इस प्रकार समय गुजरता गया। बोधिसत्त्व ने उस राजा की पटरानी की कोख मे प्रवेश किया। उसके गर्भ के पूरे होते होते राजा मर गया। लोगो ने सोचा कि यदि हाथी को राजा के मरने की बात का पता लगेगा तो उसका हृदय फट जाएगा। इसलिए वह हाथी से राजा के मरने की बात को गुप्त रखकर उसकी सेवा करते रहे।

ठीक पडोस के कोशल-राजा ने जब सुना कि वाराणसी-नरेश मर गए तो

उसने राज्य को खाली देख बडी सेना ला नगर घेर लिया। नगर-निवासियो ने नगर के दरवाजे बन्द कर कोशल-राजा के पास सन्देश भेजा—

"हमारे राजा की पटरानी गर्भवती है। अंग-विद्या के जानने वालो का कहना है कि अब से सातवें दिन पुत्र होगा। यदि वह पुत्र को जन्म देगी तो हम आज से सातवें दिन राज्य न देकर युद्ध करेंगे। इतने दिन प्रतीक्षा करे।"

राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

देवी ने सातवे दिन पुत्र को जन्म दिया। लोगो ने कहा यह हमारे उदास-चित्त की उदासी को दूर करता हुआ पैदा हुआ है, और उसका नाम अलीनचित्त कुमार रक्खा।

उसके पैदा होने के ही दिन मे नगर-निवासी कोशल-नरेश के साथ युद्ध करने लगे। युद्ध का नेता न होने से बडी सेना भी युद्ध करती हुई थोडी-थोडी पीछे हटने लगी।

अमात्यो ने रानी से यह समाचार कह पूछा—

"आर्ये! इस प्रकार सेना के पीछे हटने से हमें डर लगता है कि हम हार न जाए। राजा का मित्र मगल हाथी न राजा के मरने की बात को जानता है, न पुत्र उत्पन्न होने की बात जानता है और न कोशल-नरेश के आकर युद्ध करने की बात जानता है। हम इसे यह सब कह दे?"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। फिर पुत्र को अलकृत कर कोमल वस्त्र की गद्दी पर लिटा महल से उतर अमात्यो को साथ ले हस्ति-शाला मे गई। वहाँ बोधिसत्त्व को हाथी के पैरो पर रखकर बोली—

"स्वामी! तुम्हारा मित्र तो मर गया। हमने तुम्हारे हृदय के फट जाने के डर से तुमसे नही कहा। यह तुम्हारे मित्र का पुत्र है। कोशल-राजा आकर नगर को घेरे हुए तेरे पुत्र से युद्ध कर रहा है। सेना पीछे हट रही है। या तो तू अपने पुत्र को स्वय ही मार डाल अथवा राज्य जीतकर इसे दे।"

उसी समय हाथी ने बोधिसत्त्व को सूण्ड मे ले उठा कर सिर पर रक्खा। रोता पीटा। फिर बोधिसत्त्व को उतार कर देवी के हाथ में लिटाया और कोशल-नरेश को पकडने के लिए हस्ति-शाला से निकल पडा।

मन्त्री-गण कवच उतार, सज-सजाकर दरवाजे खोल उसके पीछे-पीछे हो लिए। हाथी ने नगर से निकल क्रौंच-नाद किया। लोगो को डरा कर भगा दिया।

सेना की पाँत को तोड कोशल-राजा को बालो से पकड लाकर बोधिसत्त्व के पैरो मे डाल दिया। वह मारने के लिए उठा, तो उसे रोका। अब से सावधान रह। यह मत समझ कि कुमार बालक है। इस प्रकार उपदेश दे उसे उत्साहित किया।

उस समय से सारे जम्बू द्वीप का राज्य एक प्रकार से बोधिसत्त्व के ही हाथ मे आ गया। कोई भी शत्रु विरोध न कर सका।

सात वर्ष की अवस्था होने पर बोधिसत्त्व का अभिषेक हुआ। वह **अलीनचित्त राजा** के नाम से धर्मानुकूल राज्य करते रह कर मरने पर स्वर्ग सिधारा। शास्ता ने पूर्व-जन्म की यह कथा ला सम्यक् सम्बुद्ध होने की अवस्था मे यह दो गाथाएँ कही—

अलीनचित्तं निस्साय पहट्ठा महती चमू
कोसल सेना-सन्तुट्ठ जीवगाहं अगाहयी
एव निस्सयसम्पन्नो भिक्खु आरद्धवीरियो
भावय कुसल धम्मं योगक्खेमस्स पत्तिया
पापुणे अनुपुब्बेन सब्बसञ्ञोजनक्खयं॥

[अलीनचित्त के कारण बडी सेना प्रसन्न हुई। अपने राज्य से असन्तुष्ट कोशल नरेश को जिन्दा पकडवा लिया। इसी प्रकार यदि भिक्षु प्रयत्नशील हो और उसका सहायक हो तो वह निर्वाण-प्राप्ति के लिए कुशल-कर्मों का अभ्यास कर क्रम से सञ्ञोजनो का क्षय कर सकता है।]

अलीनचित्तं निस्साय, अलीनचित्त राजकुमार के कारण **पहट्ठा महती चमू,** हम लोगो को राज्य-परपरा देखनी मिली, इसलिए बडी सेना प्रसन्न हुई। **कोसल सेनासन्तुट्ठ,** कोशल नरेश को, जो अपने राज्य से असन्तुष्ट हो पराया राज्य लेने को आया। **जीवगाह अगाहयी** बिना मारे ही उस सेना ने उस हाथी से राजा को जीवित पकडवाया। **एव निस्सय सम्पन्नो,** जैसे वह सेना उसी प्रकार कोई कुल-पुत्र बुद्ध अथवा बुद्ध-श्रावक सदृश किसी हितैषी को या उसके आश्रय से युक्त। **भिक्खू,** जो शुद्ध है, उसी का यह नाम है। **आरद्धविरियो,** प्रयत्न-शील, चार प्रकार के दोषो से रहित प्रयत्न से युक्त। **भावय कुसल धम्म,** कुशल, निर्दोष

सैंतीस बोधि-पाक्षिक धर्मो की भावना करता हुआ। **योगक्खेमस्स पत्तिया** चारो प्रकार के योग से क्षेम अथवा निर्वाण की प्राप्ति के लिए उस धर्म का अभ्यास करते हुए। **पापुणे अनुपुब्बेन सब्बसञ्ञोजनक्खयं** इस प्रकार विपश्यना मे इस कुशल-धर्म का अभ्यास करते हुए वह किसी हितैषी का आश्रय-प्राप्त भिक्षु क्रम से विपश्यना-ज्ञान और पहले मार्ग-फल प्राप्त करते हुए अन्त मे दसो सञ्ञोजनो का नाश होने पर पैदा होने के कारण सब्बसञ्ञोजनक्खय स्वरूप कहे जाने वाले अर्हत्व को प्राप्त करता है। क्योंकि निर्वाण प्राप्त होने पर सभी सञ्ञोजनो का क्षय हो जाता है, इसलिए उसे भी सञ्ञोजनक्षय ही कहा जा सकता है। इसलिए यह अर्थ हुआ कि निर्वाण कहे जाने वाले सभी सञ्ञोजनो के क्षय को प्राप्त करता है।

इस प्रकार भगवान् ने अमृतमहानिर्वाण को धर्मोपदेश में मुख्य स्थान दे, आगे चार आर्य-सत्यो को प्रकाशित कर, जातक का मेल बैठाया। सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर हिम्मत-हारा भिक्षु अर्हत्व पद लाभी हुआ।

उस समय माता महामाया, पिता शुद्धोदन महाराजा था। राज्य लेकर देनेवाला यह हिम्मत-हारा भिक्षु था। हाथी का पिता सारिपुत्र। अलीनचित्त कुमार तो मैं ही था।

१५७. गुण जातक

"येन काम पणामेति   " यह (उपदेश) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय आनन्द स्थविर को एक हजार वस्त्र मिलने के बारे में कहा।

क. वर्तमान कथा

आनन्द स्थविर की कोशल-नरेश के महल मे धर्मोपदेश करने की कथा पहले महासार जातक[१] मे आ ही गई है।

जिस समय स्थविर राजा के महल मे धर्मोपदेश दे रहे थे राजा के लिए हजार-हजार के मूल्य के हजार वस्त्र लाए गए। राजा ने उनमे से पाँच सौ वस्त्र पाँच सौ देवियो को दिए। उन सबो ने वे वस्त्र लेकर दूसरे दिन आनन्द स्थविर को दे दिए। स्वय पुराने ही वस्त्र पहन कर राजा के जलपान करने की जगह गई।

राजा ने पूछा—"मैने तुम्हे हजार-हजार के मूल्य के वस्त्र दिलवाए। तुम उन्हे विना पहने क्यो आई?"

"देव! वह हमने आनन्द स्थविर को दे दिए।"

"आनन्द स्थविर ने सभी ले लिए?"

"देव! हाँ।"

उसे क्रोध आया—'सम्यक् सम्बुद्ध ने तीन चीवरो की अनुज्ञा दी है। मालूम होता है आनन्द स्थविर दुशालो का व्यापार करेंगे। उन्होने इतने ज्यादा वस्त्र ग्रहण किए हैं।' जलपान समाप्त करके राजा विहार गया। वहाँ स्थविर के कमरे (परिवेण) में प्रवेश कर, उन्हे प्रणाम कर बैठा। फिर राजा ने पूछा—"भन्ते! हमारे घर की स्त्रियाँ आपके पास धर्म सुनती व सीखती है?"

"हाँ महाराज! ग्रहण करने योग्य ग्रहण करती है, सुनने योग्य सुनती है।"

"क्या वे केवल सुनाती है, अथवा तुम्हें कपडा वा वस्त्र भी देती है।"

"महाराज! आज हजार-हजार के मूल्य के पाँच सौ वस्त्र दिए।"

"भन्ते! तुमने उन्हे ले लिया?"

"महाराज! हाँ।"

"भन्ते! क्या शास्ता ने केवल तीन ही चीवरो की आज्ञा नही दी है?"

"महाराज! हाँ। शास्ता ने एक भिक्षु को केवल तीन ही चीवरो का उपयोग करने की आज्ञा दी। लेकिन ग्रहण करना मना नही किया है। इसलिए

---

[१] महासार जातक (९२)।

मैंने भी दूसरे ऐसे (भिक्षुओं) को देने के लिए जिनके चीवर फट गए है वे वस्त्र ग्रहण कर लिए।"

"वे भिक्षु तुमसे वस्त्र पाकर अपने पुराने चीवरों का क्या करेंगे?"

"पुराने वस्त्र का उत्तरासग[1] बना लेंगे।"

"पुराने उत्तरासग का क्या करेंगे?"

"अन्तरवासक[2] बना लेंगे।"

"पुराने अन्तरवासक का क्या करेंगे?"

"बिछावन बना लेंगे।"

"पुराने बिछौने का क्या करेंगे?"

"जमीन पर बिछा लेंगे।"

"जमीन पर जो पहले बिछाते थे, उसका क्या करेंगे?"

"पाँव झाडने का काम लेंगे।"

"पाँव झाडने के पुराने कपडे का क्या करेंगे?"

"महाराज! जो श्रद्धापूर्वक दिया गया है, वह फेंका नही जा सकता। इसलिए पाँव झाडने के पुराने कपड़े को कुल्हाडी से कूटकर मिट्टी में मिलाकर शयनासन की जगहो पर मिट्टी का लेप करेंगे।"

"भन्ते! आपको दिया हुआ वस्त्र पाँव झाडने का कपड़ा बनने पर भी फेंका नहीं जा सकता?"

"महाराज! हाँ, हमें दिया फेंका नही जा सकता। उपयोग में ही लाया जाता है।"

राजा ने सन्तुष्ट हो प्रसन्नता के मारे घर पर रक्खे दूसरे पाँच सौ वस्त्र भी मँगवा कर स्थविर को दिए। स्थविर ने दान का अनुमोदन किया। उसे सुन स्थविर को प्रणाम कर राजा स्थविर की प्रदक्षिणा कर चला गया।

स्थविर ने जो पाँच सौ चीवर पहले मिले थे वह उन भिक्षुओं को बाँट दिए जिनके चीवर पुराने हो गए थे।

स्थविर के पाँच सौ शिष्य थे। उनमें एक छोटी आयु का भिक्षु स्थविर की

---

[1] ऊपर ओढने की चादर जैसा चीवर।

[2] नीचे पहनने का चीवर, जैसे धोती।

वहुत सेवा करता था। परिवेण मे झाड़ू लगाता। पीने और काम मे लाने का पानी लाकर उपस्थित करता। दातुन लाकर देता। मुख धोने तथा स्नान करने के लिए जल देता। पाखाने, अग्नि-शाला तथा सोने-वैठने के स्थान को ठीक-ठाक करके रखता। हाथ-पैर दवाना तथा पीठ मलना आदि करता। स्थविर ने यह सोच कि इसने मेरा वडा उपकार किया है पीछे मिले सव वस्त्र उसी को देना उचित समझ दे डाले। उसने भी वह सव वस्त्र वाँट कर अपने गुरु-भाइयो को दिए।

वे सभी भिक्षु जिन्हे वस्त्र मिला वस्त्र के टुकडे-टुकडे कर उन्हें रग कर्णिकार पुष्प के सदृश, कापाय वस्त्र पहन शास्ता के पास गए। वहाँ प्रणाम कर एक ओर वैठे भिक्षु कहने लगे—

"भन्ते! क्या स्रोतापन्न आर्य-श्रावक भी मुँह देखकर दान देते है?"

"भिक्षुओ, आर्य-श्रावक मुँह देखकर दान नही देते।"

"भन्ते! हमारे उपाध्याय धर्म-भण्डागारिक स्थविर ने हजार-हजार की कीमत के पाँच सौ वस्त्र एक ही छोटी आयु के भिक्षु को दे दिए। उसने जो उसे मिले वाँट कर हमें दिए।"

"भिक्षुओ, आनन्द मुख देखकर दान नही देता। उस भिक्षु ने इसकी वहुत सेवा की। उसने अपने उपकार का प्रत्युपकार करने के विचार से गुणवान होने के ख्याल से, उचित होने से सोचा कि उपकारी का प्रत्युपकार करना चाहिए, और इसी लिए अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए दिए। पुराने पण्डितो ने भी अपना उपकार करने वाले का वदले मे उपकार किया है।" उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की वात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व सिह की योनि मे पैदा हो पर्वत-गुफा मे रहते थे।

उन्होने एक दिन गुफा से निकल पर्वत के नीचे की ओर देखा। उस पर्वत के चारो ओर वडा भारी तालाव था। उसके एक (तरफ) ऊँची जगह पर कडे दलदल के ऊपर कोमल हरी घास उगी थी। खरगोश, हरिण और हलके मृग उसके ऊपर विचर कर उसे खाते। उस दिन भी एक मृग उन तिनको को खाता हुआ घूम रहा

था। सिंह उस मृग को पकडने के लिए पर्वत पर से उछल कर मृग की तरफ कूदा। मृग मरने के भय से डरकर चिल्लाता हुआ भाग गया। सिंह वेग को न रोक सकने के कारण दलदल पर गिरकर नीचे चला गया। ऊपर न आ सकने के कारण चारो पैर खभे की तरह हो गए। उसे एक सप्ताह तक वही निराहार खड़ा रहना पडा।

एक सियार शिकार खोज रहा था। उसे देख भय से भागा। सिंह ने उसे बुलाकर कहा—"भो! सियार! भाग मत। मैं दलदल मे फँसा हूँ। मेरे जीवन की रक्षा कर।" सियार उसके पास जाकर बोला—"मै तो तुझे निकालूँ, लेकिन डर लगता है कि तू निकलकर मुझे खा न जाए।"

"डर मत। मै तुझे नही खाऊँगा। तेरा बडा उपकार करूँगा। मुझे किसी उपाय से निकाल।"

सियार ने उससे प्रतिज्ञा करवा चारो पैरो के इर्द-गिर्द से दलदल हटा चारो पैरो से चार नालियाँ पानी की ओर बना दी। पानी ने घुसकर गारे को नरम कर दिया।

उसी समय सियार सिंह के पेट के नीचे घुस कर चिल्लाया—स्वामी! जोर लगाएँ। स्वय सिंह के पेट में सिर से टक्कर लगाई। सिंह जोर लगाने से गारे के ऊपर आया और कूद कर स्थल पर जा खडा हुआ।

थोडी देर विश्राम कर तालाब में उतर गारे को धो, स्नान कर सिंह ने एक भैंसे का वध किया। उसे दाढो से चीर उसका मास उधेड सियार के आगे रख कहा—सौम्य! ले खा। सियार के खा चुकने पर अपने खाया। सियार ने एक मास-पेशी मुंह में ली।

शेर ने पूछा—"सौम्य! यह किसके लिए?"

सियार बोला—"तुम्हारी दासी है। यह उसके लिए।"

सिंह बोला—'ले ले।' स्वय भी सिंहनी के लिए मास लेकर उसने सियार से कहा—"सौम्य! आ अपने पर्वत के शिखर पर जाकर वहाँ से सखि के निवास स्थान पर जाएँगे।" वहाँ पहुँच, मास खिला चुकने पर उसने सियार और सियारनी को आश्वासन दिया—अब से मै तुम्हारी देख-भाल करूँगा। वह उन्हें अपने निवास-स्थान पर ले गया। वहाँ गुफा के द्वार पर ही दूसरी गुफा मे बसाया।

उसके बाद से सिंह सिंहनी और सियारनी को छोड सियार के साथ शिकार के लिए जाता। वहाँ नाना पशुओ को मार कर दोनो वही खाते। सिंहनी और

सियारनी को भी ला कर देते। इस प्रकार समय व्यतीत होता रहा। सिंहनी ने तथा सियारनी ने भी दो-दो पुत्रो को जन्म दिया। वे सव इकट्ठे रहने लगे।

एक दिन सिंहनी के मन मे आया—यह सिंह सियार को, सियारनी को, तथा उसके बच्चो को वहुत प्यार करता है। इसका सियारनी से सम्बन्ध अवश्य होगा। इसीलिए उससे स्नेह करता है। मैं इसे कष्ट देकर, डराकर भगाऊँ।

जिस समय सिंह सियार को साथ ले शिकार के लिए जाता सिंहनी सियारनी को डराती, धमकाती—तू यहाँ क्यो रहती है? यहाँ से भागती क्यो नही? उसके बच्चे भी सियारनी के बच्चो को वैसे ही तग करते, धमकाते।

सियारनी ने सियार से सब हाल कहा और बोली—"पता नही, सिंहनी सिंह के ही कहने से ऐसा व्यवहार करती है। हम यहाँ वहुत दिन रह चुके। वह हमारी जान भी ले सकता है। अपने निवास-स्थान पर ही चले।"

सियार ने उनकी वात सुन सिंह के पास जाकर कहा—

"स्वामी! हम तुम्हारे पास वहुत समय रहे। अधिक देर तक समीप रहने वाले अप्रिय हो जाते हैं। हमारे शिकार के लिए चले जाने पर सिंहनी सियारनी को तग करती है। उसे डराती है कि यहाँ क्यो रहती है? यहाँ से भाग। सिंह-बच्चे भी सियार-बच्चो को डराते धमकाते हैं। यदि किसी को किसी का अपने पास रहना अच्छा न लगे तो 'जाओ' कह कर उसे निकाल देना चाहिए, तग करने की क्या जरूरत है?"

इतना कह यह पहली गाथा कही—

येन कामं पणामेति धम्मो बलवत मिगी।
उन्नदन्ति विजानाहि जातं सरणतो भयं॥

[हे सिंह! बलवान् का यही स्वभाव है कि जहाँ चाहता है भगा देता है। हे उन्नत दाँत वाले (सिंह)! यह जान ले कि शरण-स्थल से ही भय पैदा हो गया।]

येन काम पणामेति धम्मो बलवतं बलवान अथवा ऐश्वर्यशाली अपने सेवक को जिस दिशा में चाहता है उस दिशा मे भगा देता है, निकाल देता है, यह बलवानो का धर्म है। यह ऐश्वर्य-शालियो का स्वभाव है। यही परम्परा है। इसलिए यदि हमारा रहना अच्छा न लगता हो, तो हमें सीधा निकाल दें। कष्ट देने

से क्या लाभ ?—यही अर्थ प्रकट करने के लिए यह कहा। **मिगो**, सिंह को सम्बोधन करता है। वह मृगराज होने से मृगो का मालिक है, इसीलिए मिगी। **उन्नदन्ति**—यह भी उसी का सम्बोधन है। ऊँचे दाँतो वाला होने से उन्नदन्ति। उन्नतदन्ति, यह भी पाठ है। **विजानाहि**, यही ऐश्वर्यशालियो का स्वभाव है, यह जान लें। **जात सरणतो भयं**, हमे तुमसे प्रतिष्ठा मिली, इससे तुम्ही हमारे शरण। अब तुम्हारे ही पास से भय पैदा हो गया। इसलिए हम अपने निवास-स्थान को जायेंगे।

दूसरा अर्थ—मिगी (सिंहनी) **उन्नदन्ती** मेरे बच्चो और स्त्री को ताडती है। **येन काम पणामेति** जिस-जिस तरह से चाहता है उस-उस तरह से निकाल देता है, प्रवर्तित करता है, तग करता है—इसे तू जान ले। इसमें हम क्या कर सकते हैं ? **धम्मो बलवत** यह बलवानो का स्वभाव है। हम जाते हैं। किस लिए ? क्योंकि **जात सरणतो भय**।

उसकी बात सुनकर सिंह ने सिंहनी से पूछा—"भद्रे! अमुक समय मैं शिकार के लिए गया था और सातवें दिन इस सियार और सियारनी के साथ लौटा था, इसकी कुछ याद है ?"

"हाँ, याद है।"

"मेरे एक सप्ताह तक न आ सकने का कारण जानती है ?"

"स्वामी! नहीं जानती हूँ।"

"भद्रे! मैं एक मृग को पकड़ने जाकर, चूक कर, दलदल में फँस गया। उसमें से न निकल सकने के कारण सप्ताह भर भूखा खडा रहा। सो, इस सियार ने मेरे प्राण बचाए। यह मुझे जीवन-दान देने वाला मित्र है। जो मित्र का धर्म पूरा कर सके वह मित्र दुर्बल नहीं माना जाता। इसके बाद मेरे मित्र, मेरी सखी तथा उनके बच्चो का इस प्रकार अपमान न करना।"

इतना कह सिंह ने दूसरी गाथा कही—

अपिचेपि दुब्बलो मित्तो मित्तधम्मेसु तिट्ठति
सो ञातको च बन्धू च सो मित्तो सो च मे सखा,
दाठिनि! मातिमञ्ञित्थो सिगालो मम पाणदो॥

[यदि मित्र दुर्वल है, लेकिन वह मित्र के कर्तव्य को पूरा करता है तो वही रिश्तेदार है, वन्धु है, मित्र है, सखा है। सिहनी! अपमान मत कर। सियार मेरे प्राणो की रक्षा करने वाला है।]

अपि चेपि, एक 'अपि' जोर डालने के लिए है, दूसरा 'अपि' सम्भावना प्रकट करता है। अन्वय इस प्रकार है—**दुब्बलो चेपि मित्तो मित्तधम्मेसु अपि तिट्ठति** यदि स्थित रह सकता है। **सो ञातको च वन्धु च सो**, मैत्री चित्त होने से **मित्तो**। **सो च मे** सहायक होने से सखा। **दाठिनि! मातिमञ्ञित्थो**, भद्रे! दाढ वाली! सिंहनी! मेरे मित्र अथवा मेरी सखी का अपमान न कर। यह **सिगालो मम प्राणदो**।

उसने सिंह की वात सुन सियारनी से क्षमा माँगी। फिर उसके तथा उसके वच्चो के साथ मिल-जुल कर रहने लगी। सिंह-वच्चे भी सियार के वच्चो के साथ खेलते हुए मौज करते हुए रहने लगे। माता-पिता के मरने पर भी मैत्री वनाए रख मिल-जुल कर रहे। सात पीढी तक उनकी मैत्री वरावर वनी रही।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, आर्य-सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल वैठाया। सत्यो का, प्रकाशन समाप्त होने पर कोई स्रोतापन्न, कोई सकृदागामी, कोई अनागामी तथा कोई अर्हत हुए।

उस समय सियार आनन्द था। सिंह तो मैं ही था।

१५८. सुहनु जातक

"**नयिदं विसमसीलेन**. . ." यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय दो भिक्षुओ के वारे मे जिनका स्वभाव वड़ा उद्दण्ड था, कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय जेतवन में भी एक उद्दण्ड, कठोर, दुस्साहसी भिक्षु था और एक दूसरा देहात (जनपद) में भी था।

एक दिन देहात का भिक्षु किसी काम से जेतवन गया। श्रामणेर और छोटी आयु के भिक्षु उसके चण्ड-स्वभाव की वात जानते थे। उन्होंने दोनो उद्दण्ड भिक्षुओ का झगडा देखने की इच्छा से कुतूहलवश उस भिक्षु को जेतवन वासी भिक्षु के परिवेण में भेज दिया।

दोनो उद्दण्ड भिक्षु एक दूसरे को देखते ही परस्पर एक हो गए, मित्र वन गए। वह एक दूसरे के हाथ, पैर, पीठ दवाना आदि करने लगे।

भिक्षुओं ने धर्म सभा में वात चलाई—"भिक्षुओ! उद्दण्ड भिक्षु दूसरो के प्रति तो वडे उद्दण्ड है, कठोर है तथा दुस्साहसी है लेकिन दोनो परस्पर एक हो गए, मेल कर लिया, प्रेमी वन गए।"

शास्ता ने आकर पूछा—'भिक्षुओ! इस समय वैठे क्या वातचीत कर रहे हो?"

"अमुक वातचीत।"

"भिक्षुओ! केवल अभी नहीं पहले भी यह औरो के प्रति तो उद्दण्ड, कठोर तथा दुस्साहसी थे लेकिन दोनो परस्पर एक हो गए थे, मेल से रहते थे तथा प्रेमी थे।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व उस राजा के सर्वार्थसाधक अमात्य हुए। वे उसे अर्थ तथा धर्म की वातो मे सलाह देते थे। वह राजा थोडा लोभी स्वभाव का था। उसके यहाँ **महासोण** नाम का एक दुष्ट घोडा था।

गान्धार (=उत्तरापथ) देश के घोडो के व्यापारी पाँच सौ घोडे लाए। राजा को घोडो के आने की खवर दी गई।

पहले वोधिसत्त्व घोडो की कीमत लगा उसे कम न कर दिलवाते थे। राजा को इससे सन्तोष न होता था। इसलिए उसने दूसरे अमात्य को वुलाकर कहा—"तात! तू घोडो की कीमत लगा। लेकिन कीमत लगाने से पहले महासोण को

ऐसा कर कि वह इन घोडो मे जाकर उन्हें काट कर जख्मी कर दे। जब वे दुर्बल हो जाये और उनका मूल्य घट जाए, तब उनकी कीमत लगाना।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार कर वैसा ही किया। घोडो के व्यापारियो ने असन्तुष्ट हो, उसने जो किया वह वोधिसत्त्व से कहा।

वोधिसत्त्व ने पूछा—"क्या तुम्हारे नगर मे दुष्ट घोडा नही है ?

"स्वामी! सुहनु नाम का दुष्ट, चण्ड, कडे स्वभाव का घोडा है।"

"अच्छा तो फिर आते समय उस घोडे को लेते आना।"

उन्होने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। फिर आते समय उस घोडे को साथ लिवाकर आए।

राजा ने सुना कि घोडो के व्यापारी आए। उसने खिडकी खोलकर घोडो को देखा और महासोण को छुडवा दिया। घोडो के व्यापारियो ने भी महासोण को आते देख सुहनु को छोडा। वे दोनो पास आने पर एक दूसरे का शरीर चाटने लगे। राजा ने वोधिसत्त्व से पूछा—"मित्र! यह दो घोडे दूसरो के प्रति चण्ड है, कडे स्वभाव के है, दुस्साहसी है। दूसरे घोडो को काट कर रोगी कर देते है। लेकिन एक दूसरे के शरीर को चाटते हुए आनन्द-पूर्वक खडे है। यह क्या वात है ?"

वोधिसत्त्व ने उत्तर दिया, "महाराज! यह परस्पर विरोधी स्वभाव के नही है, समान स्वभाव के, समान धातु के है" और यह दो गाथाएँ कही—

नयिदं विसमसोलेन सोणेन सुहनुस्सह,
सुहनूपि तादिसोयेव यो सोणस्स स गोचरो॥
पक्खन्दिना पगब्भेन निच्चं सन्दान खादिना,
समेति पाप पापेन समेति असता असं॥

[सुहनु और सोण का स्वभाव विरोधी नही है। जैसा सुहनु है, वैसा ही सोण। उछल-कूद करने वाले, प्रगल्भ तथा हमेशा लगाम खा जाने वाले इस घोडे का पाप-कर्म और असत्कर्म दूसरे के वरावर है।]

नयिदं विसमसीलेन सोणेन सुहनुस्सह, यह जो सुहनु दुष्ट घोडा सोण के साथ प्रेम करता है, यह अपने विरुद्ध स्वभाव वाले के साथ नही। यह अपने समान शील वाले के ही साथ करता है। यह दोनो दुष्ट स्वभाव वाले होने से समान स्वभाव

वाले वा समान धातु वाले हैं। **सुहनूपि तादिसोयेव यो सोणस्स सगोचरो**, जैसा सोण सुहनु भी वैसा ही। **यो सोणस्स सगोचरो**, जो सोण की चरने की जगह है, वही उसकी भी। जैसे सोण अश्व-गोचर है अश्वो को काटता हुआ ही चरता है, उसी तरह सुहनु भी। इस प्रकार उनकी समान गोचरता प्रदर्शित की गई है। उनके आचरण की एकता दिखाने के लिए **पक्खन्दिना** आदि कहा गया है।

पक्खन्दिना, अश्वो के ऊपर कूद पडने के स्वभाव वाला। **पगब्भेन**, काय-प्रगल्भता आदि दुश्शीलता से युक्त। **निच्च सन्दानखादिना**, हमेशा अपनी लगाम खा जाने की आदत वाले से। **समेति पापं पापेन**, इन दोनो मे से एक का पाप, दुष्टता दूसरे के बराबर है। असता अस इन दोनो में से एक दुष्ट दुराचारी के साथ दूसरे का अस बुरा काम बराबरी करता है। जैसे गूंह आदि के साथ गूंह आदि मिल जाता है, कोई अन्तर नही रहता, वैसे ही।

इतना कहकर बोधिसत्त्व ने राजा को उपदेश दिया—"महाराज! राजा को अधिक लोभी नही होना चाहिए। दूसरो का धन नष्ट करना उचित नही।" फिर घोडो की कीमत लगवा उचित मूल्य दिलवाया।

घोडो के व्यापारी यथोचित मूल्य पाकर सतुष्ट लौटे। राजा भी बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार रह कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय दो घोडे यह दो दुष्ट भिक्षु थे। राजा आनन्द था। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

१५९. मोर जातक

"उदेतयं चक्खुमा..." यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक उद्विग्न-चित्त भिक्षु के सम्बन्ध मे कही।

क. वर्तमान कथा

उस भिक्षु को भिक्षु शास्ता के पास ले गये। शास्ता ने पूछा—"भिक्षु! क्या तू सचमुच उद्विग्न हो गया?"

"भन्ते! सचमुच।"

"क्या देखकर उद्विग्न हुआ?"

"एक अलकृत-शरीर स्त्री को देखकर।"

"भिक्षु! स्त्री तुम्हारे ही जैसो के चित्त को कैसे नही उद्वेलित करेगी। स्त्री-शब्द को सुनकर पुराने समय में पण्डितो ने सात सौ वर्ष तक कामुकता से दूर रह मौका मिलने पर क्षण भर में ही दुराचरण किया। शुद्ध प्राणी भी अशुद्ध हो जाते है। उत्तम यश वाले भी बे-इज्जत हो जाते हैं। अशुद्धो की तो बात ही क्या।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने मोर का जन्म ग्रहण किया। वह जिस समय अण्डे में थे, उस समय उस अण्डे का रग कर्णिका फूल की कली के सदृश था। जब अण्डा फोडकर बाहर आए तो सुनहरा

रग था—देखने योग्य, चित्त प्रसन्न कर देने वाला। पल्लो के बीच मे लाल रग की पांति विराजित थी।

उसने अपने जीवन की रक्षा के ख्याल से तीन पर्वत पक्तियाँ लाँघकर चौथी पर्वत-शृखला मे एक दण्डक-हिरण्य पर्वत के नीचे रहना शुरू किया। रात्रि का प्रभात होने पर वह पर्वत के शिखर पर बैठ, उगते सूर्य्य को देख अपने घूमने फिरने की जगह को सुरक्षित करने के लिए ब्रह्म (=महान्) मन्त्र बनाता हुआ यह कहता—

उदेतयं चक्खुमा एकराजा
हरिस्सवण्णो पठविप्पभासो
तं तं नमस्सामि हरिस्सवण्णं पठविप्पभासं
तयज्ज गुत्ता विहरेमु दिवसं॥

[यह चक्षुमान एक राजा जिसका रग सुनहरा है और जो पृथ्वी को प्रकाशित करता है उदय हो रहा है। मैं इस पृथ्वी को प्रकाशित करने वाले, सुवर्ण वर्ण को नमस्कार करता हूँ। आज इसके द्वारा रक्षित होकर दिन में घूमें।]

उदेति, प्राचीन लोकधातु से ऊपर उठता है। चक्खुमा, सारे ब्रह्माण्ड के निवासियो के अन्धकार को दूर कर आँख प्राप्त कराने से वह जिस आँख का देने वाला हुआ उसी आँख वाला होने से चक्खुमा। एकराजा, सारे चक्रवाल मे प्रकाश फैलाने वालो मे सर्वश्रेष्ठ होने से एकराजा। हरिस्सवण्णो, हरि जैसा रग, अर्थात् स्वर्ण-वर्ण। पठवि को प्रकाशित करता है, इसलिए पठविप्पभासो। तं त नमस्सामि इसलिए ऐसे उन्हे नमस्कार करता हूँ, वन्दना करता हूँ। तयज्जगुत्ता विहरेमु दिवसं, उससे सुरक्षित होकर, उसकी हिफाजत मे हम आज का दिन सुख-पूर्वक उठ-बैठ चल-फिर कर गुजारें।

इस प्रकार बोधिसत्त्व इस गाथा से सूर्य्य को नमस्कार कर इस दूसरी गाथा से अतीत काल में परिनिर्वाण को प्राप्त हुए बुद्धो तथा बुद्ध-गुणो को स्मरण करते—

ये ब्राह्मणा वेदगु सब्ब धम्मे
ते मे नमो ते च मं पालयन्तु

नमत्थु बुद्धानं नमत्थु बोधिया
नमो विमुत्तानं नमो विमुत्तिया
इमं सो परित्तं कत्वा मोरो चरति एसना ॥

[जो ब्राह्मण सब धर्मो के जानने वाले है, उन्हे मेरा नमस्कार है। वे मेरी रक्षा करें। बुद्धो को नमस्कार है। बोधि को नमस्कार है। विमुक्तो को नमस्कार है। विमुक्ति को नमस्कार है—वह मोर इसे अपनी रक्षा (का साधन) बना खोजता रहता था।]

ये ब्राह्मणा, जिन्होने पापो को वहा दिया है, जो विशुद्ध होने से ब्राह्मण कहे गए है। **वेदगु,** जो वेद के पार गए वह भी वेदगु और वेद द्वारा जो पार गए वह भी **वेदगु**। यहाँ मतलब है कि जितने सस्कृत असस्कृत धर्म है उन सभी को प्रकट करके गए इसलिए वेदगु। तभी कहा गया है—**सब्ब धम्मे**। सब स्कन्ध, आयतन, धातु धर्मो को स्वलक्षण तथा सामान्य लक्षण की दृष्टि से अपने ज्ञान को प्रकट करके गए अथवा तीनो **मारो** के मस्तक को मर्दित कर दस सहस्र लोकधातु को उन्नादित कर बोधि-वृक्ष के नीचे सम्यक् सम्बुद्धत्व प्राप्त कर ससार के पार पहुँचे। **ते मे नमो,** वे मेरे इस नमस्कार को स्वीकार करे। **ते च मं पालयन्तु** इस प्रकार मुझसे नमस्कृत वे भगवान् मेरी पालना करे, रक्षा करे, हिफाजत करे। **नमत्थु बुद्धानं नमत्थु बोधिया नमो विमुत्तानं नमो विमुत्तिया,** यह मेरा नमस्कार अतीत में परि-निर्वाण को प्राप्त हुए बुद्धो को पहुँचे, उन्ही की चार-मार्गो तथा चार-फलो का ज्ञान स्वरूप जो बोधि है उस बोधि को पहुँचे, उन्ही की अर्हत्व-फल रूपी विमुक्ति को प्राप्त करने वाले विमुक्तो को पहुँचे, जो उनकी पाँच प्रकार की विमुक्ति है अर्थात् **तदंग-विमुत्ति, विक्खम्भन-विमुत्ति, समुच्छेद-विमुत्ति, पटिप्पस्सद्ध-विमुत्ति** तथा **निस्सरण-विमुत्ति;** उस विमुक्ति को भी पहुँचे। **इमं सो परित्तं कत्वा मोरो चरति एसना,** यह दो पद शास्ता ने बुद्धत्व प्राप्त करके कहे। इनका अर्थ है "भिक्षुओ वह मोर इसे परित्राण बना, उसे रक्षा का साधन बना अपने गोचर-भूमि में फल-फूल के लिए नाना प्रकार से खोजता फिरता था।"

इस प्रकार दिन भर घूम कर शाम को पर्वत के शिखर पर बैठ डूबते हुए सूर्य्य को देख बुद्धगुणो का ध्यान कर निवास-स्थान की रक्षा के लिए फिर ब्रह्म-मन्त्र बाँधता हुआ 'अपेतय' आदि कहता—

अपेतयं चक्खुमा एकराजा
हरिस्सवण्णो पठविप्पभासो
तं तं नमस्सामि हरिस्सवण्णं पठविप्पभासं
तयज्ज गुत्ता विहरेमु रत्तिं ॥
ये ब्राह्मणा वेदगु सब्बधम्मे
ते मे नमो ते च मं पालयन्तु
नमत्थु बुद्धानं नमत्थु बोधिया
नमो विमुत्तानं नमो विमुत्तिया
इमं सो परित्तं कत्वा मोरो वासमकप्पयि ॥

[ये अस्त हो रहा है। इसे रक्षा (का साधन) बना वह मोर रहने को गया।]

अपेति, जाता है, अस्त को प्राप्त होता है। **इदं सो परित्तं कत्वा मोरो वासमकप्पयि**, यह भी बुद्धत्व प्राप्त करने पर कहा। इसका अर्थ है—भिक्षुओ! वह मोर इसे परित्राण बना, इसे रक्षा (का साधन) बना, अपने निवासस्थान पर रहने लगा। इस परित्राण के प्रताप से उसे न दिन में डर लगा, न रात में, न रोमाञ्च हुआ।

उस समय वाराणसी से कुछ ही दूर पर शिकारियों का एक गाँव था। वहाँ के निवासी एक शिकारी ने हिमालय-प्रदेश में घूमते हुए उस दण्डक-हिरण्य पर्वत पर बैठे हुए बोधिसत्व को देख आकर पुत्र को कहा।

वाराणसी-नरेश की खेमा नामक देवी ने स्वप्न में देखा कि सुनहरे रंग का मोर धर्मोपदेश कर रहा है। उसने राजा से कहा—"देव! मैं सुनहरे रंग के मोर से धर्मोपदेश सुनना चाहती हूँ।"

राजा ने अमात्यों से पूछा। अमात्य बोले—ब्राह्मण जानते होंगे। ब्राह्मणों ने कहा—सुनहरे रंग के मोर होते हैं। "कहाँ होते हैं?" पूछने पर बोले—"शिकारी जानते होंगे।"

राजा ने शिकारियों को इकट्ठा कर पूछा। वह शिकारी-पुत्र बोला—"महा-

राज ! हाँ ! दण्डक-हिरण्य नाम का पर्वत है। वहाँ सुनहरे रंग का मोर रहता है।"

"तो उसे बिना मारे, जीवित ही बाँध कर लाओ।"

शिकारी ने जाकर उसके घूमने की भूमि पर जाल फैलाया। मोर के आने की जगह पर भी जाल न कसा। शिकारी उसे न पकड सका। सात साल घूमते रह कर वह वही मर गया।

खेमा देवी की भी इच्छा पूरी न हुई। वह भी मर गई।

राजा को क्रोध आया कि मोर के कारण मेरी रानी की जान गई। उसने एक सोने के पट्टे पर लिखाया—"हिमालय प्रदेश मे दण्डक-हिरण्य नाम का पर्वत है। वहाँ सुनहरे रग का मोर रहता है। जो उसका मास खाते है वह अजर-अमर हो जाते है।" उस सोने के पट्टे को उसने एक सन्दूकची मे रखवा दिया।

उसके मरने पर दूसरे राजा ने उस स्वर्ण-पट्टे को पढकर अजर-अमर होने की इच्छा से दूसरे शिकारी को भेजा। वह भी जाकर बोधिसत्त्व को न पकड सका। वही मर गया। इस प्रकार छ राज-पीढियाँ गईं।

सातवें राजा ने राज्य पाकर एक शिकारी को भेजा। उसने जाकर देखा कि बोधिसत्त्व की चलने-फिरने की जगह पर भी फदा नही लगता। वह समझ गया कि अपनी रक्षा करके ही मोर चरने आता है। वह देहात में आया और वहाँ से एक मोरनी ले, उसे ऐसी शिक्षा दी कि वह ताली बजाने पर नाचने लगती और चुटकी बजाने पर आवाज लगाती। ऐसा सिखा कर वह मोरनी को लेकर गया। प्रात काल ही जब अभी मोर ने परित्राण द्वारा अपने को रक्षित नही किया था उसने फदे के खूँटे गाड, फदा फैला मोरनी से आवाज लगवाई। मोर ने जब मोरनी का असाधारण शब्द सुना तो कामासक्त हो परित्राण न कर सकने के कारण जाकर फदे में फँस गया।

शिकारी ने उसे पकड ले जाकर वाराणसी के राजा को दिया। राजा ने उसका सौदर्य्य देख प्रसन्न हो उसे आसन दिलाया।

बोधिसत्त्व ने बिछे आसन पर बैठ, पूछा—"महाराज ! मुझे क्यो पकडवाया ?"

"जो तेरा मास खाते हैं, वह अजर-अमर हो जाते हैं। मैने तेरा मास खाकर अजर-अमर होने की इच्छा से तुझे पकडवाया है।"

"महाराज ! मेरा मास खाने वाले तो अमर हो, और मुझे मरना होगा ?"

"हाँ, मरना होगा।"

"जब मै मरूँगा, तो मेरा मास खाने वाले किस लिए नही मरेंगे ?"

"तू सुनहरे रग का है, इसलिए तेरा मास खाने वाले अजर-अमर होगे।"

"महाराज! मै यू ही सुनहरे रग का पैदा नही हुआ हूँ। पहले मै इसी नगर मे चक्रवर्ती राजा था। मैने अपने आप भी पाँच शीलो की रक्षा की और सारे चक्रवाल के निवासियो से भी करवाई। मर कर मै त्रयोत्रिंश लोक में पैदा हुआ। वहाँ आयु भर रह कर एक दूसरे पाप-कर्म के फलस्वरूप मोर होकर पैदा हुआ, लेकिन पुराने सदाचार के प्रताप से सुनहरे रग का हुआ।"

"तू चक्रवर्ती होकर (पच-) शील की रक्षा कर उसी के फलस्वरूप सुनहरे रग का हुआ, इस बात पर हम कैसे विश्वास करें? तेरा कोई साक्षी है?"

"महाराज! है।"

"कौन है?"

"महाराज! जब मै चक्रवर्ती था, तो रत्नमय रथ में बैठ कर आकाश में विचरता था। वह मेरा रथ मङ्गल-पुष्करिणी के अन्दर जमीन मे गडवाया हुआ है। उसे मङ्गल-पुष्करिणी से निकलवायें। वह रथ मेरे कथन का साक्षी होगा।"

राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार कर पुष्करिणी में से पानी निकलवा रथ को बाहर करवाया। तब उसे बोधिसत्त्व की बात पर विश्वास हुआ।

बोधिसत्त्व ने राजा को धर्म उपदेश दिया—"महाराज! अमृत महा निर्वाण को छोड शेष जितने भी सस्कृत धर्म है, वे सब पैदा होकर अभाव को प्राप्त होते है, अनित्य है, क्षय होने वाले है, व्यय होने वाले है।" फिर राजा को पच-शील में प्रतिष्ठित किया।

राजा ने प्रसन्न हो बोधिसत्त्व की राज्य से पूजा की और बडा सत्कार किया। उसने राज्य राजा को ही वापिस लौटा कुछ दिन रह कर राजा को उपदेश दिया कि महाराज! अप्रमादी रहें।

फिर आकाश में उडकर दण्डकहिरण्य नाम के पर्वत को ही चला गया।

राजा भी बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार चल दान आदि पुण्य-कर्म कर कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला आर्य-सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया।

सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर उद्विग्न-चित्त भिक्षु अर्हत्व में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय राजा आनन्द था। सुनहरे रग का मोर तो मैं ही था।

१६०. विनीलक जातक

"**एवमेव नून राजानं** " यह शास्ता ने वेळुवन मे रहते समय देवदत्त के वुद्ध की नकल करने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

जब देवदत्त गया-शीर्ष पर गए हुए दोनो प्रधान श्रावको के सामने बुद्ध का रग-ढग वनाकर लेट रहा, तो दोनो स्थविर धर्मोपदेश दे अपने शिष्यो को लेकर वेळुवन चले आए।

शास्ता ने पूछा—"सारिपुत्र! तुम्हें देखकर देवदत्त ने क्या किया?"

"भन्ते! सुगत का रग-ढग दिखाकर महाविनाश को प्राप्त हुआ।"

"सारिपुत्र! न केवल अभी देवदत्त मेरी नकल करके विनाश को प्राप्त हुआ है, पहले भी प्राप्त हुआ है।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में, विदेह राष्ट्र मे, मिथिला मे विदेहराज के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उसकी पटरानी की कोख से पैदा हुए। वडे होने पर तक्षशिला जाकर सब विद्याऐं सीखी। पिता के मरने पर राज्य गद्दी पर बैठे।

उस समय एक स्वर्ण-हसराज का चुगने की जगह पर एक कौवी से सहवास

हो गया। उसे पुत्र हुआ। वह न माता के सदृश था, न पिता के सदृश। उसका रूप रंग भद्दा नीला होने से उसका नाम विनीलक ही हो गया।

हंसराज सदैव पुत्र को देखने जाता। उसके दो दूसरे हंस-बच्चे पुत्र थे। उन्होंने पिता को हमेशा बस्ती की ओर जाते हुए देखकर पूछा—"तात! तुम हमेशा बस्ती की ओर क्यों जाते हो?"

"तात! एक कौवी से सहवास होकर मुझे एक पुत्र हुआ। उसका नाम विनीलक है। मैं उसे देखने जाता हूँ।"

"वह कहाँ रहते हैं?"

"विदेह राष्ट्र में मिथिला के पास अमुक जगह पर एक ताड़ के वृक्ष पर रहते हैं।"

"तात! बस्ती सशंकित जगह है। वहाँ खतरा होता है। तुम न जाओ। हम जाकर उसे ले आएँगे।"

दोनों हंस-बच्चे पिता के बताए हुए निशान से वहाँ पहुँच उस विनीलक को एक डण्डे पर बिठा चोंच से डण्डे के सिरों को पकड़ मिथिला नगर के ऊपर से चले।

उस समय विदेह राज सर्वश्वेत चार सैन्धव घोड़ों वाले रथ में बैठकर नगर की परिक्रमा कर रहे थे। विनीलक ने उसे देख मन में कहा—"मुझमें और विदेह राज में क्या अन्तर है? यह चार सैन्धव घोड़ों वाले रथ में बैठकर नगर में घूमता है। मैं हंस जुते रथ में बैठकर जा रहा हूँ।" उसने आकाश से जाते हुए यह गाथा कही—

एवमेव नून राजानं वेदेहं मिथिलग्गहं,
अस्सा वहन्ति आजञ्ञा यथा हंसा विनीलकं॥

[जैसे हंस विनीलक को ढो रहे हैं उसी तरह से श्रेष्ठ घोड़े मिथिला के विदेह-राजा (के रथ) को खींचते हैं।]

एवमेव, उसी तरह, नून, संकल्प-विकल्प विषयक निपात है। 'निश्चय से' भी ठीक अर्थ है। वेदेहं, वेदेह, राष्ट्र के स्वामी को। मिथिलग्गहं, मिथिलागेह मिथिला में घर लेकर रहने वाला। आजञ्ञा, कारण, अकारण जानने वाले,

यथा हंसा विनीलकं, जैसे यह हस मुझ विनीलक को ढो रहे हैं, उसी प्रकार खीच रहे है ।

हस-बच्चो ने उसकी बात सुनी तो उन्हे क्रोध आया । उन्होने सोचा इसे यही गिरा जाये । लेकिन फिर सोचा ऐसा करने से हमारा पिता हमे क्या कहेगा ? इसकी निन्दा के डर से वे उसे पिता के पास ले गए और उसकी करतूत पिता से कही ।

पिता को क्रोध आया । वह बोला—'क्या तू मेरे पुत्रो से बढकर है जो उनको नीचा दिखा रथ में जुतनेवाले घोडो के समान बनाता हे ? अपनी बिसात नही जानता ? यह स्थान तेरे योग्य नहीं है । जहाँ तेरी माँ रहती है, वही जा ।' इस प्रकार धमकाकर दूसरी गाथा कही—

विनील ! दुग्गं भजसि अभूमिं तात ! सेवसि,
गामन्तिकानि सेवस्सु एतं मातालयं तव ॥

[विनील ! तू दुर्ग में रहता है । तात ! तू अयोग्य स्थान मे रहता है । तू ग्राम के आस-पास रह । वह तेरा मातृ-गृह हे ।]

विनील उसे नाम से बुलाता है । **दुग्गं भजसि,** इनके साथ गिरि-दुर्ग मे रहता है । **अभूमिं तात ! सेवसि** तात ! गिरि विषम स्थान, तेरे लिए अयोग्य स्थान है । तू अभूमि में वास करता है । **एतं मातालयं तव,** यह ग्राम के सिरे पर जो कूड़ा फेंकने की जगह है तथा कच्चा श्मशान है वही तेरी माता का निवास-स्थान है । तू वही जा ।

इस प्रकार उसे धमका कर पुत्रो को आज्ञा दी—जाओ, इसे मिथिला नगर की कूडा डालने की जगह पर ही उतार आओ । उन्होने वैसा ही किया ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया ।

उस समय विनीलक देवदत्त था । दो हस-बच्चे दो अग्र-श्रावक थे । पिता आनन्द था । विदेहराज तो मैं ही था ।

दूसरा परिच्छेद

२. सन्थव वर्ग

१६१. इन्दसमानगोत्त जातक

"न सन्थवं कापुरिसेन कयिरा ..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक ऐसे भिक्षु के बारे में कही जो किसी की बात न मानता था।

क. वर्तमान कथा

उसकी कथा नौवें परिच्छेद में गिज्झ जातक[1] में आएगी। शास्ता ने उस भिक्षु को कहा—हे भिक्षु! तूने पहले भी किसी की बात न मानने वाला होने से पण्डितों का कहना न माना और मस्त हाथी के पैरों से रौंदा जाकर चूर-चूर हुआ। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। वड़े होने पर घर-वार छोड ऋषियों के ढग की प्रव्रज्या ग्रहण कर पांच सौ ऋषियों के दल का नेता वन हिमालय प्रदेश में रहने लगे। उन तपस्वियों में एक इन्दसमानगोत्त नाम का तपस्वी था—किसी की वात न मानता था, किसी का कहना न करता था।

---

[1] गिज्झ जातक (४२७)।

उसने एक हाथी-बच्चा पाल रक्खा था। वोधिसत्त्व ने सुना तो उसे बुलाकर पूछा—'सचमुच! तू हाथी-बच्चे को पाल-पोस रहा है?'

'सचमुच आचार्य्य! एक हाथी-बच्चा है, जिसकी माँ मर गई है, उसे पोस रहा हूँ।'

'हाथी वडे होने पर पालन-पोसन करने वाले को ही मारते है, तू उसे मत पोस।'

'आचार्य्य! उसके विना नही रह सकता।'

'अच्छा! तो पता लगेगा।'

उससे पोसा जाकर वह हाथी-बच्चा आगे चल कर वडे भारी शरीर वाला हो गया।

एक समय वे ऋपिगण जगल से फल-मूल लाने के लिए दूर चले गए और कुछ दिन वही रहे। हाथी को श्रेष्ठ दक्षिण हवा लगी तो उसका मद फूट पडा। उसने उस तपस्वी की पर्णकुटी नष्ट कर डाली। पानी का घडा फोड दिया। पत्थर का तख्ता फेंक दिया। आलम्बन-तख्ता[1] नोच डाला। फिर उस तपस्वी को मार डाल कर ही जाने के विचार से एक घनी जगह में छिपकर उसके आने के रास्ते की ओर देखता हुआ खडा रहा।

इन्दसगोत्त अपना फल-मूल ले, सबके आगे-आगे आ रहा था। उसे देख वह साधारण स्वभाव से ही उसके पास गया।

हाथी ने घनी जगह से निकल, उसे सूण्ड से पकड, जमीन पर गिरा, सिर पैर से दवा, मार डाला। फिर उसे मसलता हुआ क्रौञ्चनाद करके जगल में चला गया। शेप तपस्वियो ने वोधिसत्त्व से वह समाचार कहा। वोधिसत्त्व ने यह कहते हुए कि वुरे आदमी से दोस्ती नही करनी चाहिए, यह गाथा कही—

न सन्थवं कापुरिसेन कयिरा
अरियो अनरियेन पजानमत्थ
चिरानुवुत्थो पि करोति पाप
गजो यथा इन्दसमानगोत्तं॥

---

[1] जिसके सहारे से वैठ सकें।

यं त्वेव जञ्ञा सदिसो मम
सीलेन पञ्ञाय सुतेन चापि
तेनेव मेत्ति कयिराथ सद्धि
सुखावहो सप्पुरिसेन सगमो ॥

[श्रेष्ठ आदमी अर्थ-अनर्थ को जानता हुआ बुरे आदमी से दोस्ती न करे। चिरकाल तक साथ रह कर भी बुरा आदमी बुराई करता है, जैसे हाथी ने इन्द्रसमान-गोत्र की बुराई की।

जिसके सदाचार, प्रज्ञा तथा ज्ञान को अपने बराबर का समझे, उसी के साथ मैत्री करे। सत्पुरुष के साथ की गई मैत्री सुख को देने वाली होती है।]

न सन्थव कापुरिसेन कयिरा, घृणित, क्रोधी आदमी के साथ आसक्ति वा मैत्री न करे। अरियो अनरियेन पजानमत्थ; आर्य्य चार प्रकार के होते हैं (१) आचार-आर्य्य, (२) लिङ्ग-आर्य्य, (३) दर्शन-आर्य्य, (४) प्रतिवेध-आर्य्य। इनमे यहाँ आचार्य्य-आर्य्य से मतलब है। जो अर्थ को जानता है, अर्थ को पहचानता है, आचार में स्थित है—ऐसा आर्य्य-पुद्गल, अनार्य्य, निर्लज्ज, दुश्शील के साथ मैत्री न करे। क्यों? चिरानुवुयोपि करोति पापं, क्योकि अनार्य्य चिरकाल तक एक साथ रह कर भी, उस एक साथ रहने का ख्याल न कर पाप, पाप-कर्म, बुरा-कर्म करता है। जैसे क्या? गजो यथा इन्दसमानगोत्त जैसे उस हाथी ने इन्द्रसमान-गोत्र को मार कर पाप किया।

य त्वेव जञ्ञा सदिसो मम, इत्यादि में जिस आदमी को जाने कि यह आदमी शील आदि में मेरे समान है, उसी के साथ मैत्री करे। सत्पुरुष के साथ मेल-जोल सुखदायी होता है।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने उपदेश दिया कि बात न मानने वाला नहीं होना चाहिए, कहना मानने वाला होना चाहिए। यू ऋषिगण को उपदेश दे इन्द्रसमान-गोत्र का शरीर-कृत्य करवा ब्रह्म-विहारो की भावना करते हुए वह ब्रह्म-लोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय इन्द्रसमानगोत्त यह वात न मानने वाला भिक्षु था। ऋषिगण का शास्ता मैं ही था।

१६२. सन्थव जातक

"न सन्थवस्मा परमत्थि पापियो..." यह शास्ता ने जेतवन मे रहते समय अग्नि-हवन करने के वारे में कही।

क. वर्तमान कथा

इसकी कथा वैसी ही है जैसी **नंगुट्ठ जातक**[1] में है। भिक्षुओ ने उन्हे अग्नि-हवन करते देख भगवान् से पूछा—"भन्ते! जटिल-साधु नाना प्रकार के मिथ्या-तप करते हैं। इनसे कुछ उन्नति होती है?" शास्ता ने उत्तर दिया—"भिक्षुओ, इससे कुछ लाभ नही। पुराने पण्डितो ने अग्नि-हवन करने से उन्नति होगी समझ चिरकाल तक अग्नि-हवन किया। लेकिन जब उससे हानि ही होती देखी, तो उन्होंने उसे पानी डाल कर वुझा दिया और शाखा आदि से पीटकर चले गए। फिर मुड कर उस तरफ देखा तक नही।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पुराने समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व ब्राह्मण कुल मे पैदा हुए। माता-पिता ने उसके पैदा होने के दिन से अग्नि सभाल कर रख, उसके सोलह वर्ष का होने पर पूछा—'तात! जन्म-दिन से रक्खी हुई अग्नि

---

[1] **नंगुट्ठ जातक** (१४४)।

लेकर जगल मे जा अग्नि की परिचर्य्या करोगे? अथवा तीनो वेद सीखकर कुटुम्ब का पालन करते हुए घर पर रहोगे?'

उसे घर रहने की इच्छा नही थी। इसलिए वह जगल में जा, अग्नि की पूजा कर, ब्रह्मलोक-गामी होने की इच्छा से जन्म-दिन से रक्खी हुई आग ले, माता-पिता को प्रणाम कर जगल चला गया। वहाँ पर्ण-कुटी में रहता हुआ अग्नि की पूजा करने लगा।

एक दिन वह किसी निमन्त्रित स्थान पर गया। वहाँ उसे घी के साथ खीर मिली। उसने सोचा इस खीर से महा-ब्रह्मा का यज्ञ करूँगा। उसने खीर ला आग जलाई। फिर सोचा घी मिश्रित खीर भगवान्-अग्नि को पिलाऊँ और खीर को आग में फेंका। बहुत चिकनाई वाली खीर के आग मे पडते ही आग जोर से जली और उसकी जोर से उठी लपट ने पर्ण-कुटी जला डाली।

ब्राह्मण डरकर, घबरा कर भाग गया। बाहर खडे होकर उसने सोचा कि बुरे से दोस्ती नहीं करनी चाहिए। अब इसने बडी कठिनाई से बनाई मेरी कुटिया जला डाली। इतना कह यह गाथा कही—

न सन्थवस्मा परमत्थि पापियो
यो सन्थवो कापुरिसेन होति,
सन्तप्पितो सप्पिना पायसेन
किच्छा कतं पण्णकुटिं अदड्ढहि॥

[बुरे आदमी की मैत्री से बढकर बुरा कुछ नही। आग को घी वाली खीर से सन्तर्पित किया। उसने कठिनाई से बनी पर्ण-कुटी जला दी।]

न सन्थवस्मा, आसक्ति और मैत्री, यह जो दोनो प्रकार की दोस्ती है, इससे बढकर दूसरी बुरी बात नही है। यो सन्थवो कापुरिसेन, जो पापी बुरे आदमी के साथ दोनो तरह की दोस्ती है, इस दोस्ती से बढकर और बुरा कुछ नही। किस लिए? सन्तप्पितो अदड्ढहि, क्योकि घी और खीर से सन्तर्पित की गई इस आग ने भी बडी कठिनाई से बनाई हुई मेरी पर्ण-कुटी जला दी।

इतना कह, 'उस मित्र-द्रोही से मुझे कुछ मतलब नही' सोच उसे पानी से बुझा, शाखाओ से पीट, हिमालय में चला गया। वहाँ उसने जब एक श्यामा मृगी को सिंह, व्याघ्र और चीते का मुँह चाटते देखा, तो 'सत्पुरुष से मित्रता करने से बढकर कुछ नही है' सोच दूसरी गाथा कही—

न सन्थवस्मा परमित्थ सेय्यो
यो सन्थवो सप्पुरिसेन होति,
सीहस्स व्यग्घस्स च दीपिनो च
सामा मुखं लेहति सन्थवेन॥

[सत्पुरुष से जो स्नेह होता है, उस स्नेह से बढकर श्रेष्ठ कुछ नही है। श्यामा मृगी स्नेह से सिंह, व्याघ्र और चीते का मुँह चाटती है।]

सामा मुखं लेहति सन्थवेन, श्यामा मृगी इन तीनो जनो का मैत्री से, स्नेह से मुँह चाटती है।

इस प्रकार कह, बोधिसत्त्व हिमालय में चले गए। वहाँ ऋषियो की प्रव्रज्या ग्रहण कर, अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर, मरने पर ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय तपस्वी मैं ही था।

१६३. सुसीम जातक

"काळामिग्गा सेतदन्ता तव इमे ..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय छन्दक-दान[1] के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में कभी एक ही परिवार भिक्षुसंघ को जिसमें बुद्ध मुख्य रहते थे दान देता था, कभी बहुत से लोग एक साथ इकट्ठे हो दल बना कर दान देते थे, कभी एक-एक गली के लोग मिलकर देते थे और कभी सारे नगर के लोग सबसे इकट्ठा करके दान देते थे।

उस समय सारे नगर निवासियों में दान इकट्ठा किया गया। सारा सामान तैयार हो गया। दाताओं में दो पक्ष थे। कुछ ने कहा यह सामान अन्य-तैर्थिकों को दें। कुछ ने कहा संघ को, जिसके प्रमुख बुद्ध हैं। इस प्रकार बार-बार बात होने पर भी दोनों पक्षों का अपना-अपना आग्रह रहा—अन्य-तैर्थिकों के शिष्य उन्हें दान दिये जाने के पक्षपाती रहे और बुद्ध के शिष्य बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसंघ को। तब यह हुआ कि बहुमत देखा जाय। बहुमत लिए जाने पर अधिक लोग यही कहने वाले हुए कि बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को ही दिया जाए। उन्हीं की बात स्थिर रही। अन्य-तैर्थिकों के शिष्य बुद्ध को दिए जाने वाले दान में बाधा नहीं डाल सके।

नगर के लोगों ने बुद्ध की प्रमुखता में भिक्षुसंघ को निमन्त्रित कर महा-दान दिया और सातवें दिन सब वस्तुओं का दान किया।

शास्ता अनुमोदन कर जनता को मार्ग तथा फल का बोध करा जेतवन विहार

---

[1] वह दान जिसके देने में छन्द (vote) दिया गया हो।

मे चले गए। वहाँ भिक्षुसघ द्वारा आदर प्रदर्शित किए जाने पर गन्ध-कुटी के सामने खडे हो उपदेश दे गन्धकुटी मे प्रवेश किया।

शाम को धर्म-सभा में एकत्रित हुए भिक्षुओ ने वातचीत चलाई—आयुष्मानो! दूसरे तैथिक श्रावको ने वुद्ध को मिलने वाले दान मे विघ्न डालने की कोशिश की, किन्तु वे सफल नही हुए। सभी वस्तुओ का दान वुद्धो के ही चरणो पर आ पहुँचा। ओह! वुद्धो की महानता!

शास्ता ने आकर पूछा! भिक्षुओ, इस समय वैठे क्या वातचीत कर रहे हो? 'अमुक वातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—'भिक्षुओ, यह दूसरे मतो के अनुयायी न केवल अभी मुझे मिलने वाले दान मे विघ्न डालने का प्रयत्न करते है, पहले भी किया है! लेकिन दान की वह वस्तुएँ हमेशा मेरे ही चरणो मे आ जाती रही है'—इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे सुसीम नाम का राजा था। वोधिसत्त्व ने उसके पुरोहित की व्राह्मणी के कोख से जन्म ग्रहण किया। सोलह वर्ष की आयु होने पर उसका पिता मर गया। जिस समय वह जीवित था उस समय वह राजा का हाथी-मङ्गल-कारक[1] था। हाथी को माङ्गलिक करने के स्थान पर जो सामान, भाण्डे तथा हाथी के अलकार आते, वह सव उसी को मिलते। इस प्रकार एक-एक मङ्गलोत्सव में उसे करोड करोड धन मिलता।

उस समय हाथी-मङ्गलोत्सव आया। शेष व्राह्मणो ने राजा के पास जाकर कहा—"महाराज! हस्ति-मङ्गलोत्सव आया है। उत्सव करना चाहिए। पुरोहित-व्राह्मण का लडका वहुत छोटा है। वह न तीनो वेद जानता है, न हस्ती-सूत्र। हम हस्ती-मङ्गल करेंगे।"

राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। व्राह्मण प्रसन्न हो इधर-उधर विचरते थे कि अव पुरोहित-व्राह्मण के लडके को हस्ती-मङ्गल न करने देकर हम हस्ती-मङ्गल करेंगे और धन लेगे।

वोधिसत्त्व की माता ने जव यह सुना कि आज से चौथे दिन मङ्गल होगा तो

---

[1] हाथी को माङ्गलिक करने की पूजा आदि करने वाला।

वह यह मोचकर रो पड़ी कि सात पीढ़ी से हाथी-मङ्गल करने का अधिकार हमारे वंश का रहा है। अब हमारा वंश पीछे पड़ जाएगा और हमें धन न मिलेगा।

बोधिसत्त्व ने पूछा, "माँ! तू क्यों रोती है?" उसने कारण बताया। तब बोधिसत्त्व ने कहा—"माँ, मै मङ्गल करूँगा।"

"तात! न तू तीन वेद जानता है और न हस्ती-सूत्र। तू कैसे मङ्गल करेगा?"

"माँ, हस्ती-मङ्गल कब करेंगे?"

"तात! अब से चौथे दिन।"

"माँ! तीन वेदों तथा हस्ती-सूत्र के जानकार आचार्य्य कहाँ रहते है?"

"तात! एसे प्रसिद्ध आचार्य्य यहाँ से एक सौ बीस योजन पर गन्धार देश में तक्षशिला में रहते है।"

"माँ! मै अपने वंश को नष्ट होने न दूँगा। कल एक दिन मे तक्षशिला पहुँच, एक ही रात में तीनो वेद और हस्ती-सूत्र सीख, फिर एक दिन में वापिस लौट चौथे दिन हस्ती-मङ्गल करूँगा। मत रो।"

इस प्रकार माँ को आश्वासन दे बोधिसत्त्व अगले दिन प्रातःकाल ही खाकर, अकेले ही निकल, एक दिन में तक्षशिला जा, आचार्य्य को प्रणाम कर, एक ओर बैठे।

आचार्य्य ने पूछा—"तात! कहाँ से आया?"

"वाराणसी से।"

"किस उद्देश्य से?"

"आपसे तीनो वेद तथा हस्ती-सूत्र सीखने के लिए।"

"तात! अच्छा सीख।"

बोधिसत्त्व ने कहा—'मेरा कार्य्य बहुत जल्दी का है' और सब हाल सुनाकर निवेदन किया—'मै एक रात में एक सौ बीस योजन आया हूँ। आज की रात मुझे ही सिखाने की आज्ञा दें। आज से तीसरे दिन हस्ती-मङ्गल होगा। मैं एक ही बार पाठ सुनने से सब सीख लूँगा।"

इस प्रकार आचार्य्य की आज्ञा पा, बोधिसत्त्व ने आचार्य्य के खा चुकने पर अपने खा, आचार्य्य के पाँव धो, हजार की थैली उनके सामने रक्खी। फिर प्रणाम करके एक ओर बैठ पाठ आरम्भ कर अरुणोदय होने तक तीनो वेद और हस्ती-सूत्र समाप्त कर पूछा—'आचार्य्य! और भी कुछ बाकी है?'

"तात। नहीं, सब समाप्त हो गया।"

"आचार्य्य। इस ग्रथ मे इतना खो गया है, पाठ में इतना सदोष है। अब से शिष्यो को इस प्रकार पढाया करे।"

इस तरह आचार्य्य की विद्या को निर्दोष बना, प्रात काल ही खाकर आचार्य्य को प्रमाण कर एक ही दिन मे वाराणसी आ माता को प्रमाण किया।

"तात। तूने विद्या सीख ली?"

"हाँ, सीख ली" कह माँ को सन्तुष्ट किया।

अगले दिन मङ्गलोत्सव की तैयारी हुई। सौ हाथियो को सोने के गहनो, सोने की ध्वजाओ के साथ सुनहरी जालो से ढक कर खडा किया गया। राजाङ्गण अलकृत हुआ। ब्राह्मण लोग प्रसन्नचित्त सजधज कर खडे थे कि हम हस्ती-मङ्गल करेंगे, हम करेंगे। सुसीम राजा भी गहने और भाण्डे लिवा जाकर मङ्गल-स्थान पर खड़ा हुआ।

बोधिसत्त्व ने भी एक कुमार के लिए जिस ढग से अलकृत होना उचित है, उस तरह अलकृत हो, अपनी परिषद का नेता बन राजा के पास जाकर पूछा—"महाराज! क्या आपने सचमुच ऐसी बात कही है कि हमारे वश को नाश करके, दूसरे ब्राह्मणो से हस्ती-मङ्गल करवा, हाथियो के अलङ्कार तथा दूसरे सामान उनको देंगे?" इतना कह, पहली गाथा कही—

काळा मिगा सेतदन्ता तव इमे
परोसतं हेमजालाभिसञ्छन्ना
ते ते ददामीति सुसीम! ब्रूसि
अनुस्सरं पेत्तिपितामहानं॥

[सुसीम। क्या तुम अपने और हमारे पूर्वजो को याद करके भी यह कहते हो कि सोने के जाल से ढके हुए सौ से अधिक काले हाथी, जिनके दाँत सफेद है, तुमको देंगे, तुमको देंगे?]

ते ते ददामीति सुसीम! ब्रूसि, वह यह अथवा तुम्हारे पास के, **काळा मिगा सेत दन्ता,** ऐसे नाम वाले सौ से अधिक सब अलकारो से सजे हाथी दूसरे ब्राह्मणो को देता हूँ, हे सुसीम। क्या तू यह सचमुच कहता है। **अनुस्सर पेत्ति पितामहानं,** हमारे और अपने वश के पिता-पितामह आदि को याद करते हुए। महाराज।

सात पीढ़ियों से हमारे पिता-पितामह हस्ती-मङ्गल करते रहे हैं। सो आप इसे याद करके भी क्या सचमुच हमारे और अपने वंश (के सम्बन्ध) को नष्ट करके ऐसा कहते हैं?

मुनीम ने बोधिसत्त्व की बात सुन दूसरी गाथा कही—

काळा मिगा सेतदन्ता मम इमे
परोसतं हेमजालाभिसञ्छन्ना
ते ते ददामीति वदामि माणव!
अनुस्सरं पेत्तिपितामहान ॥

[माणव ! हाँ अपने और तुम्हारे पूर्वजों को याद करके भी यह कहता हूँ कि यह अपने स्वर्ण-जाल से ढके हुए सौ से अधिक हाथी, जिनके सफेद दाँत हैं, तुमको देता हूँ।]

ते ते ददामि, वे यह हाथी दूसरे ब्राह्मणों को देता हूँ। माणव ! यह मैं सत्य ही कहता हूँ। अथवा तेरे हाथी ब्राह्मणों को देता हूँ, यह भी अर्थ है। अनुस्सरं, पिता-पितामह की कृति भी याद है, नहीं याद है सो नहीं। हमारे पिता-पितामह के हस्ती-मङ्गल को तुम्हारे पिता-पितामह करते थे, इसे याद करता हुआ भी यह कहता हूँ।

बोधिसत्त्व ने कहा—"महाराज ! हमारे और अपने वंश को याद रखते हुए आप क्यों मुझे छोड़ दूसरों से हस्ती-मङ्गल करवाते हैं?"

"तात ! मुझे कहा गया है कि तू तीन वेद और हस्ती-सूत्र नहीं जानता है। इसीलिए मैं दूसरे ब्राह्मणों से करवाता हूँ।"

बोधिसत्त्व सिंह की तरह गर्ज कर बोला—"तो महाराज ! इतने ब्राह्मणों में जो एक भी ब्राह्मण मेरे साथ तीनों वेद तथा हस्ती-सूत्र का कुछ हिस्सा भी कह सकता हो, वह उठे। तीन वेदों और हस्ती-सूत्र के साथ हस्ती-मङ्गल करनेवाला मुझे छोड़ कोई दूसरा सारे जम्बूद्वीप में नहीं।"

एक ब्राह्मण भी प्रतिपक्षी बनकर खड़ा नहीं हो सका। बोधिसत्त्व ने अपने

कुलवश को प्रतिष्ठित कर हस्ती-मङ्गल किया और बहुत धन ले अपने घर गए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला आर्य-(सत्यो) को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। कोई स्रोतापन्न हुए। कोई सकृदागामी, कोई अनागामी और कोई अर्हत्।

तब माँ महामाया थी। पिता शुद्धोदन महाराज थे। सुसीम राजा आनन्द था। चारो दिशाओ मे प्रसिद्ध आचार्य्य सारिपुत्र था। माणव तो मैं ही था।

१६४. गिज्झ जातक

"**यं ननु गिज्झो योजनसतं** " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय माता-पिता का पोषण करने वाले एक भिक्षु के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

इसकी कथा **साम जातक**[1] में आएगी। शास्ता ने उस भिक्षु से पूछा—'भिक्षु! क्या तू सचमुच गृहस्थो का पोषण करता है?' 'हाँ! सचमुच' कहने पर पूछा—'वह तेरे क्या लगते है?'

"भन्ते! वे मेरे माता पिता है।"

"बहुत अच्छा! बहुत अच्छा!" कह अन्य भिक्षुओ को शास्ता ने मना किया—"भिक्षुओ! इस भिक्षु पर क्रोध न करें। पुराने समय मे पण्डितजन गुणो का ख्याल करके भी रिश्तेदारो का उपकार करते रहे है। इसका तो कर्तव्य है कि यह माता-पिता की सेवा करे" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पुराने समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व गृध्र-पर्वत पर गृध्र होकर पैदा हो माता पिता का पोषण करते थे।

---

[1] **साम जातक (५४०)।**

एक वार वडा आँधी-पानी आया। गृध्र आँधी-पानी न सह सकने के कारण शीत से डरकर वाराणसी जा वहाँ चारदीवारी के पास, खाई के निकट सर्दी से काँपते हुए बैठे। वाराणसी-सेठ नगर से निकल कर नहाने जा रहा था। उसने उन गृध्रों को कष्ट में देखकर एक ऐसी जगह पहुँचवा दिया जहाँ वर्षा नही हो रही थी। फिर वहाँ आग जलवाई। मुर्दा गौ फेंकने के स्थान से गो-मास मँगवा कर उन्हें दिलवाया। उनकी रक्षा का प्रवन्ध किया।

आँधी-पानी के वन्द होने पर गृध्र स्वस्थ-शरीर हो पर्वत को ही लौट गए। उन्होंने वहाँ इकट्ठे हो, इस प्रकार मन्त्रणा की। 'वाराणसी-सेठ ने हमारा उपकार किया। उपकार करने वाले का प्रत्युपकार करना चाहिए। इसलिए अव से तुम में से जिस किसी को जो वस्त्र वा आभरण मिले, उसे चाहिए कि वह वाराणसी-सेठ के घर में खुले आँगन में गिरा दे।'

उस समय से गृध्र, आदमियों के धूप में सुखाने के लिए डाले हुए वस्त्राभरणों को, उन्हें लापरवाह देख, जिस तरह से चील मास के टुकडे को एकदम उठा ले जाती है, उसी तरह उठा ले जाकर, वाराणसी-सेठ के खुले आँगन में गिरा देते। सेठ ने यह मालूम करके कि वह वस्त्राभूषण गृध्र ला-लाकर डालते है, उन्हें पृथक एक ओर रखा।

राजा के पास खवर पहुँची कि गृध्र नगर उजाड रहे हैं। उसने कहा कि किसी एक गृध्र को पकड लो। सव माल मँगवा लूँगा। राजा ने जहाँ-तहाँ जाल और पाश फैलवाए। माता-पिता का पोषण करने वाला गृध्र जाल में फँस गया। उसे पकडकर राजा को दिखाने के लिए ले चले।

वाराणसी-सेठ ने राजा की सेवा में जाते समय उन मनुष्यों को गृध्र पकड कर ले जाते हुए देखा। उसने सोचा कि यह इस गृध्र को कष्ट न दें, इसलिए साथ हो लिया। गृध्र को राजा के पास ले गए। राजा ने पूछा—

"तुम नगर पर डाका डालकर वस्त्र आदि ले जाते हो?"

"महाराज! हाँ।"

"वह किसे दिए है?"

"वाराणसी-सेठ को।"

"क्यों?"

"हमें उसने जीवन-दान दिया था। उपकार करने वाले का प्रत्युपकार करना चाहिए। इसलिए दिए।"

राजा ने उसे यह कहते हुए कि गृध्र तो सौ योजन की दूरी से लाश को देख लेते हैं, तूने अपने लिए फैलाए फंदे को क्यो नही देखा, (कह) पहली गाथा कही—

यं ननु गिज्झो योजनसत कुणपानि अवेक्खति,
कस्मा जालं च पासं च आसज्जापि न बुज्झसि ॥

[गृध्र तो सौ योजन दूरी पर से लाश को देख लेता है। तू पास से भी जाल और फदे को क्यो नही देख सका ?]

यं निपात मात्र है। **नु**, निपात ही है। **गिज्झो योजनसतं** (गीध सौ योजन) दूर पर पडी हुई **कुणपानि अवेक्खति** देखता है। **आसज्जापि**, पास आकर भी, पहुँच कर भी, तू अपने लिए फैलाए जाल और फदे के पास पहुँच कर भी उसे क्यो न **बुज्झसि** (यह) पूछा।

गृध्र ने उसकी वात सुन दूसरी गाथा कही—

यदा पराभवो होति पोसो जीवितसंखये,
अथ जालं च पास च आसज्जापि न बुज्झति ॥

[जव विनाश का समय आता है, जब जीवन पर सकट आता है, तव प्राणी पास मे पडे हुए जाल और फदे को भी नही देखता।]

पराभवो, विनाश। **पोसो,** प्राणी।

गृध्र की वात सुनकर राजा ने सेठ से पूछा—

"महासेठ! क्या यह वात सच है? क्या गृध्र तुम्हारे घर वस्त्र आदि लाया है?"

"देव! सच है।"

"वह कहाँ है?"

"देव! मैंने सब पृथक रक्खे हैं। जो जिसका है, वह उसे दूंगा। इस गृध्र को छोड दें।"

गृध्र को छुडवाकर महासेठ ने जो जिसका था, वह सब को दिलवाया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला आर्य (-सत्यो) को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया।

सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर माता-पिता का पोषण करने वाला भिक्षु स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय राजा आनन्द था। वाराणसी सेठ सारिपुत्र था। माता-पिता का पोषण करने वाला गृध्र तो मैं ही था।

१६५. नकुल जातक

"सन्धि कत्वा अमित्तेन.." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय दो श्रेणियो के कलह के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

इसकी कथा उपरोक्त उरग जातक' की तरह ही है। इसमें शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ! इन दो महा-मन्त्रियो का न केवल अभी मैंने मेल कराया है। पहले भी मैंने इन दोनो का मेल कराया है।" यह कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व एक ब्राह्मण कुल मे पैदा हुए। बडे होने पर तक्षशिला जाकर सब विद्याएँ सीखी। फिर गृहस्थी छोड ऋषियो के प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रज्या ली। अभिज्ञा तथा समा-

---

' उरग जातक (१५४)।

पत्तियाँ प्राप्त कर फल-मूल चुग-चुग कर खाते हुए हिमालय-प्रदेश में रहने लगे।

उनके चङ्क्रमण करने के स्थान के एक सिरे पर वाम्वी में एक नेवला और उसी के पास वृक्ष की खोह मे एक सर्प रहता था। वह दोनो नेवला और साँप हमेशा आपस में झगडते रहते थे।

वोधिसत्त्व ने उनको झगडने का दुष्परिणाम और मैत्री-भावना का लाभ समझा कर कहा कि कलह न करके मिलकर रहना चाहिए। इस प्रकार उन दोनो का मेल करा दिया।

साँप के वाहर निकलने के समय नेवला चङ्क्रमण-भूमि के सिरे पर वाँवी के द्वार में से सिर निकाल मुह खोल श्वास-प्रश्वास लेता हुआ लेट कर सो रहा। वोधिसत्त्व ने उसे इस प्रकार सोते हुए देख 'तुझे किस कारण से भय लगा है?' पूछते हुए यह पहली गाथा कही—

सन्धि कत्वा अमित्तेन अण्डजेन जलावुज!
विवरिय दाढं सयसि कुतो तं भयमागतं॥

[हे नकुल! तू साँप से दोस्ती करके भी मुह खोले पडा है। तेरे भयभीत होने का क्या कारण है?]

सन्धि कत्वा मैत्री करके, **अण्डजेन,** अण्डे से पैदा हुए नाग से, **जलावुज**[1]! नकुल को पुकारता है। वह गर्भ से पैदा होने के कारण जलावुज कहलाया। **विवरिय,** खोलकर।

इस प्रकार वोधिसत्त्व के कहने पर नेवला वोला—आर्य! शत्रु की ओर से असावधान नही होना चाहिए। सशकित ही रहना चाहिए। यह कहते हुए नेवले ने दूसरी गाथा कही—

संकेथेव अमित्तस्मिं मित्तस्मि पि न विस्ससे
अभया भयमुप्पन्नं अपि मूलं निकन्तति॥

---

[1] जलावुज (=जरायुज)।

[शत्रु से सशंकित रहे। मित्र पर भी विश्वास न करे। अभय से जो भय पैदा होता है वह जड़ भी खोद देता है।]

अभया भयमुप्पन्न यहाँ से तुझे भय नही है, ऐसा अभय (देने वाला) कौन है ? मित्र ! मित्र मे भी विश्वास करने पर उससे जो भय उत्पन्न होता है वह जड भी खोद देता है। मित्र को सब छिद्र मालूम होते है, इसलिए वह जड खोदने का काम करता है।

बोधिसत्त्व ने कहा—"डर मत। मैंने ऐसा कर दिया है कि सर्प अब तुझसे द्वेष नही करेगा। तू अब से उससे सशकित मत रह।" इस प्रकार उपदेश दे, चारो ब्रह्म-विहारो की भावना कर बोधिसत्त्व ब्रह्मलोकगामी हुए। वे भी कर्मानुसार (परलोक) सिधारे।

शास्ता ने यह धर्मोपदेश दे जातक का मेल बैठाया। उस समय सर्प और नेवला यह दोनो प्रधान थे। तपस्वी तो मै ही था।

१६६. उपसाळहक जातक

उपसाळहक नामान, यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय उप-साळहक नाम के एक ब्राह्मण के बारे में जिसे श्मशान की शुद्धि का बहुत ख्याल था कही।

क. वर्तमान कथा

यह ब्राह्मण बड़ा धनवान था। लेकिन क्योकि वह एक मिथ्या-मत का शिकार था, इसलिए वह पास के विहार में रहने वाले बुद्धो की भी सेवा नही करता था। हाँ, उसका पुत्र पण्डित था, ज्ञानी था।

उस ब्राह्मण ने बूढ़ा होने पर पुत्र को कहा—"तात ! मुझे किसी ऐसे श्मशान

मे मत जलाना जहाँ कोई चाण्डाल जलाया गया हो। मुझे किसी ऐसे ही श्मशान मे जलाना जहाँ पहले कही कोई न जलाया गया हो।"

"तात! मै नही जानता कि आपको मुझे कहाँ जलाना चाहिए। बहुत अच्छा हो, मुझे साथ ले जाकर आप बता दे कि मुझे तुम इस जगह जलाना।"

ब्राह्मण ने 'तात! अच्छा' कह, और उसे ले जा नगर से निकल गृध्रकूट पर्वत पर चढ कहा—'तात! यहाँ पहले कोई चाण्डाल नही जलाया गया है। मुझे यहाँ जलाना।'

फिर वह पुत्र के साथ पर्वत से उतरने लगा।

शास्ता ने प्रात काल ही ऐसे लोगो का विचार करते हुए जिनकी उस दिन ज्ञानप्राप्ति की सम्भावना थी उन पिता-पुत्र की स्रोतापत्ति-मार्गारूढ होने की सम्भावना को देखा।

इसलिए मार्ग पकड, एक शिकारी की तरह पर्वत की तराई में पहुँच, उनके पर्वत से उतरते समय उनकी प्रतीक्षा करते हुए बैठे। उन्होने उतरते समय शास्ता को देखा। शास्ता ने कुशल-क्षेम पूछते हुए कहा—"ब्राह्मण! कहा गए थे?"

माणवक ने वह बात कही। शास्ता ने कहा—'तो आओ, तुम्हारे पिता ने जो स्थान बताया है, वहाँ चलें।' उन दोनो को साथ लेकर पर्वत के शिखर पर चढ पूछा—'कौन सी जगह है?'

माणवक ने कहा—"भन्ते! इन तीनो चोटियो के बीच मे बताया है।"

शास्ता बोले—'माणवक! तेरे पिता केवल अभी श्मशान की शुद्धि मानने वाले नही हैं, पहले भी श्मशान की शुद्धि मानने वाले रहे हैं। न केवल अभी इसने तुझे कहा है कि मुझे इस स्थान पर जलाना, पहले भी इसने इसी स्थान पर जलाने के लिए कहा है।' इतना कह, माणवक के प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में इसी राजगृह में यही उपसाल्हक ब्राह्मण था, यही इसका पुत्र था।

उस समय बोधिसत्त्व मगध देश में ब्राह्मण कुल मे पैदा हो, सब विद्याएँ सीख, ऋषियो के प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रजित हो, अभिञ्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर ध्यान-

क्रीड़ा करते हुए हिमालय प्रदेश में चिरकाल तक रहे। फिर नमक-खटाई खाने के लिए गृध्रकूट पर पर्ण-कुटी में रहने लगे।

उस समय उस ब्राह्मण ने इसी तरह से पुत्र को कह, पुत्र के यह कहने पर कि 'तुम्हीं मुझे उस तरह का स्थान बता दो' यही स्थान बताया। फिर पुत्र के साथ उतरते हुए ब्राह्मण बोधिसत्त्व को देख उनके पास पहुँचा।

बोधिसत्त्व ने इसी तरह पूछ माणवक की बात सुन, कहा—'आ, तेरे पिता द्वारा बताए गए स्थान की परीक्षा करें कि वहाँ पहले कोई जलाया गया है, वा नहीं ?' फिर उनके साथ पर्वत-शिखर पर चढ़, जब माणवक ने कहा कि यह तीनो चोटियो के बीच का स्थान ऐसा है जहाँ कोई नही जलाया गया, कहा—"माणवक ! इसी स्थान पर जलाए गयो का हिसाब नही है। तेरा पिता इसी राजगृह में ब्राह्मण कुल में ही पैदा होकर, उपमाळहक नाम से ही इन्ही चोटियों के बीच मे चौदह हजार बार जलाया गया है। पृथ्वी में ऐसी कोई जगह नही है, जहाँ कोई न कोई जलाया न गया हो, जहाँ श्मशान न बना हो, जहाँ सिर न कटे हो।" पूर्व-जन्मो का ज्ञान होने से, उघाड़ कर यह दो गाथाएँ कही—

उपसाळहक नामानं सहस्सानि चतुद्दस
अस्मिं पदेसे दड्ढानि नत्थि लोके अनामतं॥
यम्हि सच्चं च धम्मो च अहिंसा सयमो दमो
एतदरिया सेवन्ति एत लोके अनामतं॥

[उपसाळहक नाम से ही चौदह हजार व्यक्ति इसी स्थान मे जलाए गए। लोक में ऐसी जगह नहीं है जहाँ कोई न कोई मरा न हो।

जिसमें सत्य है, धर्म है, अहिंसा है, सयम है उसे आर्य्य-जन सेवन करते है। यही लोक मे नहीं मरता है।]

अनामत, मृत-स्थान को ही व्यवहार से अ-मृत-स्थान कहा गया है। उसका प्रतिषेध करते हुए अनामत कहा है। अनमत, भी पाठ है। लोक मे ऐसी जगह नहीं है जहाँ श्मशान न बना हो, जहाँ कोई न मरा हो। **यम्हि सच्चं च धम्मो च,** जिस व्यक्ति मे चार आर्य-सत्य, पूर्व-भाग-सत्य ज्ञान[1] तथा लोकुत्तर धर्म है,

[1] मार्ग प्राप्ति से पहले का आर्य-सत्यों का ज्ञान।

अहिंसा, दूसरो को कष्ट न देना, **संयमो,** सदाचार, **दमो** इद्रियो का दमन। जिस आदमी मे यह गुण है, **एतदरिया सेवन्ति** वुद्ध, प्रत्येक-वुद्ध तथा वुद्ध-श्रावक आर्य-जन इस स्थान का सेवन करते है। इस प्रकार के आदमी के पास जाते है, उसकी सगति करते है। **एतं लोके अनामतं,** यही गुण लोक मे अमृतत्व का साधन होने से अमृत कहलाते है।

इस प्रकार वोधिसत्त्व पिता तथा पुत्र को धर्मोपदेश दे चारो ब्रह्मविहारो की भावना कर ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने इस धर्मोपदेश को ला (आर्य-) सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल वैठाया। सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर दोनो पिता पुत्र स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुए।

उस समय के पिता पुत्र ही अव के पिता पुत्र हुए। तपस्वी तो मै ही था।

१६७. समिद्धि जातक

"अभुत्वा भिक्खसि भिक्खु .." यह शास्ता ने राजगृह के **तपोदाराम में** विहार करते हुए **समिद्धि** स्थविर के वारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन आयुष्मान् समिद्धि सारी रात योगाभ्यास करके अरुणोदय के समय स्नान कर अपने स्वर्ण-वर्ण शरीर को सुखा रहे थे। उन्होने **अन्तरवासक** पहन लिया था और **उत्तरासंग** उनके हाथ में था। वे सोने की सुन्दर प्रतिमा की तरह प्रतीत होते थे। उनका शरीर समृद्ध से ही उनका नाम समिद्धि था।

उनके शरीर का सौन्दर्य देख एक देव-कन्या उन पर आसक्त हो गई और बोली—"भिक्षु! तू तरुण है, तू युवा है, तेरे केश सुन्दर तथा काले है, तू श्रेष्ठ यौवन से युक्त है, तू मनोरम है, तू दर्शनीय है, तू मन को प्रसन्न करने वाला है। तेरे जैसे शरीर वाले को काम-भोगो को न भोग प्रव्रजित होने में क्या लाभ? अभी तू

काम-भोगो को भोग। पीछे प्रव्रजित होकर श्रमण-धर्म का पालन करना।"

उसे स्थविर ने उत्तर दिया—"हे देव-कन्या! मै नही जानता कि मै किस आयु में मरूँगा। मेरी मृत्यु मुझसे छिपी है। इसलिए तरुणाई की अवस्था में ही श्रमण-धर्म करके दु ख का अन्त करूँगा।"

स्थविर ने उसका स्वागत नही किया। वह वही अन्तर्धान हो गई।

स्थविर ने शास्ता के पास जाकर यह बात कही। शास्ता बोले—"समिद्धि! न केवल तुझे ही अब देव-कन्या ने प्रलोभित किया है, पूर्व में भी देव-कन्याओ ने प्रव्रजितो को प्रलोभित किया है।"

शास्ता ने उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व काशी-गाँव में ब्राह्मण कुल मे पैदा हो, बडे होने पर सब विद्याओ में पारङ्गत हो, ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर हिमालय-प्रदेश मे एक तालाब के पास रहने लगे।

वह सारी रात योगाभ्यास करते रहे। अरुणोदय होने पर स्नान किया। फिर एक वल्कल-चीर पहन, एक हाथ मे ले शरीर को सुखाने लगे। उसका सुन्दर शरीर देख एक देव-कन्या उस पर आसक्त हो, बोधिसत्त्व को ललचाती हुई यह पहली गाथा बोली—

> अभुत्वा भिक्खसि भिक्खु! नहि भुत्वान भिक्खसि।
> भुत्वान भिक्खु! भिक्खसु मा तं कालो उपच्चगा[1]॥

[भिक्षु! तू बिना काम-भोगो को भोगे भिक्षु बना है। काम-भोगो को भोग कर भिखारी नही बना है। भिक्षु! काम-भोगो का भोग करके तू भिखारी बन। यह तेरा काम-भोगो को भोगने का समय न बीत जाए।]

अभुत्वा भिक्खसि भिक्खु, भिक्षु! तू तरुणाई में काम-भोगो को न भोग कर भिक्षाचार करता है। नहि भुत्वान भिक्खसि, क्या पाँच प्रकार के काम-भोगो

---

[1] देवता संयुक्त, संयुक्त निकाय।

को भोग कर ही भिखारी नही वनना चाहिए ? तू काम-भोगो को न भोग कर ही भिखारी बना है। **भुत्वान भिक्खु ! भिक्खसु,** भिक्षु ! अभी तरुणाई मे काम-भोगो को भोग कर पीछे बृद्ध होने पर भिखारी वनना । **मा तं कालो उपच्चगा,** यह काम-भोगो के उपभोग करने की आयु, यह तरुणाई यूँ ही न विता।

बोधिसत्त्व ने देव-कन्या की वात सुन अपना विचार प्रकट करने के लिए दूसरी गाथा कही—

कालं वोहं न जानामि, छन्नो कालो न दिस्सति।
तस्मा अभुत्वा भिक्खामि, मायं कालो उपच्चगा॥

[मै मृत्यु के समय को नही जानता। छिपा हुआ समय दिखाई नही देता। इसलिए बिना काम-भोगो का उपभोग किए ही भिक्षु बना हूँ। मेरा यह समय न बीत जाए।]

कालं वोहं न जानामि, 'वो' केवल निपात है। मैं प्रथम आयु मे मरूँगा, मध्यम-आयु में अथवा आखिरी में—अपना मरने का समय नही जानता हूँ।

अत्यन्त पण्डित आदमी को भी—

जीवितं व्याधि कालो च देहनिक्खेपनं गति
पञ्चेते जीवलोकस्मि अनिमित्ता न ञायरे॥

[जीव-लोक में इन पॉच बातो का पता नही लगता—(१) जीने की आयु, (२) रोग, (३) मृत्यु-समय, (४) शरीर के पतन का स्थान, (५) मरने पर क्या गति होगी ?]

छन्नो कालो न दिस्सति, इसलिए इस आयु में अथवा इस समय वा हेमन्त आदि ऋतुओ मे से इस ऋतु मे मुझे मरना होगा, यह मुझसे भी छिपा हुआ मृत्यु-समय दिखाई नही देता। अच्छी प्रकार ढका होने से प्रकट नही है। **तस्मा अभुत्वा भिक्खामि** इसलिए काम-भोगो को न भोग भिखारी वना हूँ। **मा मं कालो उपच्चगा,** मेरा श्रमण-धर्म करने का समय वीत न जाए। इसलिए तरुणाई मे ही प्रव्रजित होकर श्रमण-धर्म करता हूँ।

देव-कन्या बोधिसत्त्व की बात सुन वही अन्तर्धान हो गई।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय देव-कन्या यही देव-कन्या थी। मैं ही उस समय तपस्वी था।

१६८. सकुणग्घि जातक

"सेमो वलसा पतमानो" यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय अपने विचार के द्योतक सकुणोवाद सूत्र[1] के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन शास्ता ने भिक्षुओ को सम्बोधन कर उपदेश दिया "भिक्षुओ! जो तुम्हारे योग्य हो उसमे विचरो। जो तुम्हारा पैतृक विषय हो उसमें।" यह संयुक्त निकाय के महावर्ग का सूत्र है[2]। इसका उपदेश करते हुए कहा—"तुम अपनी बात रहने दो। पूर्व समय में जानवर भी अपने पैतृक-विषय को छोड अयोग्य-स्थान में विचरने से शत्रुओ के हाथ में पड अपनी वुद्धि तथा उपाय-कौशल से शत्रुओ के हाथ से मुक्त हुए।" इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व वटेर होकर पैदा हुआ। वह हल चलाने की जगह पर ढेलो मे रहता था।

एक दिन अपनी गोचर-भूमि को छोड दूसरे की गोचर-भूमि मे जाने की इच्छा से वह जगल तक चला गया। उसे वहाँ घूमता देख, एक बाज ने यकायक आकर पकड लिया। जब उसे बाज पकड कर ले जा रहा था, तो वह इस प्रकार

---

[1] महावग्ग।

[2] सतिपट्ठान संयुत्त, अम्बपालि वग्ग।

रोने लगा—"हम अत्यन्त अभाग्यवान् है। हमारा पुण्य बहुत कम है। हम दूसरो के स्थान में चरने गए। यदि आज हम अपने पैतृक-स्थान में ही चरते तो यह बाज मेरे साथ युद्ध करने में समर्थ न होता।"

"लापक! तेरा स्वकीय पैतृक-स्थान कौन सा है?"

"यही जहाँ हल चलाने की जगह पर ढेले है।"

बाज ने अपने बल को ढीला कर उसे छोड दिया और कहा—'हे बटेर तू जा! मै तुझे वहाँ भी जाकर पकड लूगा।'

बटेर ने वहा जा एक बडे से ढेले पर चढ बाज को ललकारा—'बाज! अब तू आ।'

बाज़ ने अपना बल सँभाल, दो पखो को उठा बटेर को एकदम घेर लिया। उस बटेर ने समझा कि बाज मेरे बहुत समीप आ गया, तो वह पलट कर उस ढेले के अन्दर चला गया।

बाज़ अपने जोर को न रोक सका। उसकी छाती ढेले से टकराई। इस प्रकार उसका कलेजा चूर चूर हो गया। आँखे निकल आईं। वह मर गया।

शास्ता ने यह अतीत-कथा सुना कहा—"भिक्षुओ! इस प्रकार जानवर भी अयोग्य स्थान पर चरने से शत्रु के हाथ में पड जाते हैं। योग्य स्थान मे, अपने पैतृक-स्थान मे चरते हुए शत्रुओ को जीत लेते है। इसलिए तुम भी अयोग्य स्थान मे, जो तुम्हारा विषय नही है, मत विचरो। अयोग्य स्थान मे, जो अपना विषय नही है, विचरने वाले पर भिक्षुओ! मार आक्रमण करता है। वह मार का निशाना बनता है। भिक्षुओ! भिक्षुओ के लिए अयोग्य स्थान, जो उनका विषय नही है, क्या है? जो यह पॉच प्रकार के कामोपभोग है। कौन से पाँच? आँख से देखे जाने वाले (प्रिय) रूप, कान से सुने जाने वाले शब्द, नाक से सूघी जाने वाली सुगन्धियाँ, जिह्वा से मज़ा लिए जाने वाले रस और शरीर से छुए जाने वाले स्पर्श—भिक्षुओ, यह भिक्षुओ के लिए अयोग्य-स्थान हैं। यह उनका विषय नही है।"

इतना कह सम्यक् सम्बुद्ध हुए रहने की अवस्था मे प्रथम गाथा कही—

सेनो बलसा पतमानो लापं गोचरठायिनं,[1]
सहसा अज्झपत्तो मरणं तेनुपागमि॥

---

[1] अगोचर ठायिनं के स्थान पर गोचर ठायिनं श्रेयस्कर प्रतीत होता है।

[बाज़ अपने बल को न रोक करके अपने योग्य-स्थान पर विचरने वाले पर झपटा। इसीसे वह मर गया।]

बलसा पतमानो, बटेर को पकड़ने की इच्छा से जोर से गिरने वाला, **गोचरठायिनं,** अपने विषय (प्रदेश) से निकल जंगल तक चरने के लिए स्थित। **अज्झपत्तो,** पहुँचा। **मरणं तेनुपागमि,** इस कारण से मर गया।

उसके मरने पर बटेर ने निकल कर, शत्रु की पीठ देख कर, सन्तुष्ट हो, उनकी छाती पर खड़े हो उल्लास पूर्वक दूसरी गाथा कही—

सोहं नयेन सम्पन्नो पेत्तिके गोचरेरतो
अपेतसत्तु मोदामि सम्पस्सं अत्थमत्तनो॥

[मैं उपाय से अपने पैतृक-प्रदेश में चरता हुआ, अपनी उन्नति देखता हुआ प्रसन्न हूँ, क्योंकि मेरा शत्रु नहीं रहा है।]

नयेन, उपाय से, **अत्थमत्तनो,** अपनी आरोग्य नामक उन्नति।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर बहुत से भिक्षुओं ने स्रोतापत्ति आदि फल प्राप्त किए।

उस समय बाज़ देवदत्त था। बटेर तो मैं ही था।

१६९. अरक जातक

"यो वे मेत्तेन चित्तेन ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय मेत्तसुत्त[1] के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय शास्ता ने भिक्षुओ को सम्बोधन कर कहा—"भिक्षुओ, मैत्री-भावना जो कि चित्त की विमुक्ति (का साधन) है, का सेवन करने से, की भावना करने से, को बढाने से, को जारी रखने से, का अभ्यास करने से, का अनुष्ठान करने से, का अच्छी तरह आरम्भ करने से ग्यारह लाभो की आशा करनी चाहिए। कौन से ग्यारह? सुख पूर्वक सोता है, सुख से जागता है, बुरा स्वप्न नही देखता, मनुष्यो का प्रिय होता है, अ-मनुष्यो का प्रिय होता है, देवता रक्षा करते है, इस पर अग्नि, विष, वा शस्त्र का आक्रमण नही होता, चित्त जल्दी शान्त हो जाता है, मुख-वर्ण सुन्दर होता है, होश रखकर शरीर छोडता है तथा अधिक कुछ (निर्वाण-मार्ग) न प्राप्त कर सकने पर ब्रह्मलोकगामी अवश्य होता है। भिक्षुओ, मैत्री-भावना जो कि चित्त की विमुक्ति (का साधन) है, का सेवन करने से इन ग्यारह लाभो की आशा करनी चाहिए।" इन ग्यारह लाभो वाली मैत्री-भावना की प्रशसा कर आगे कहा—"भिक्षुओ, भिक्षु को सभी प्राणियो के प्रति खास तौर पर, साधारण तौर पर, मैत्री-भावना करनी चाहिए। हितैषी का भी हितचिन्तक होना चाहिए, जो हितैषी न हो उसका भी हितचिन्तक होना चाहिए, जो मध्यस्थ-वृत्ति हो उसका भी हितचिन्तक होना चाहिए। इस प्रकार सभी प्राणियो के प्रति खास तौर पर, तथा साधारण तौर पर मैत्री-भावना करनी चाहिए। करुणा-भावना की भावना करनी चाहिए। मुदिता-भावना की भावना करनी चाहिए। उपेक्षा-

[1] अंगुत्तर निकाय, एकादसक निपात।

भावना की भावना करनी चाहिए। इन चारो ब्रह्म-विहारो का अभ्यास करना ही चाहिए। इस प्रकार अभ्यास करने से यदि मार्ग तथा फल की प्राप्ति न भी हो तो भी ब्रह्मलोकगामी होता है। पुराने समय में भी पडित लोग सात वर्ष तक मैत्री-भावना करके सात सवत-विवर्त कल्प तक ब्रह्मलोक में ही रहे।" इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे एक कल्प में बोधिसत्त्व एक ब्राह्मण-कुल मे पैदा हुए। बडे होने पर काम-भोगो को छोड ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो चारो ब्रह्म-विहारो को प्राप्त कर अरक नाम के उपदेशक हुए। वह हिमालय प्रदेश मे रहते थे। उनके बहुत अनुयायी थे। वे ऋषि-गणो को उपदेश देते हुए कहते—"प्रव्रजित को मैत्री-भावना का अभ्यास करना चाहिए। करुणा-भावना, मुदिता-भावना तथा उपेक्षा-भावना का अभ्यास करना चाहिए। मैत्री-पूर्ण चित्त अर्पणा-समाधि तथा ब्रह्मलोक-परायणता तक को प्राप्त कराता है।" इस प्रकार मैत्री-भावना की प्रशसा करते हुए उन्होने यह गाथा कही—

यो वे मेत्तेन चित्तेन सब्बलोकानुकम्पति
उद्ध अधो च तिरियं च अप्पमाणन सब्बसो
अप्पमाण हित चित्त परिपुण्ण सुभावित
यं पमाणकत कम्म न तं तत्रावसिस्सति

[जो अप्रमाण मैत्री चित्त से ऊपर-नीचे तथा तिर्यक् दिशा में सारे लोको पर अनुकम्पा करता है, उसके प्रमाण रहित, परिपूर्ण अच्छी तरह से भावना किए गए मैत्री-चित्त के (फल) के आगे जो सीमित कर्म है उसका फल नही ठहरता।]

यो वे मेत्तेन चित्तेन सब्बलोकानुकम्पति, क्षत्रिय आदि में अथवा श्रमण-ब्राह्मण आदि मे जो कोई अर्पणा-प्राप्त चित्त से सारे प्राणियो पर अनुकम्पा करता है, उद्ध पृथ्वी से नेवसञ्ञानासञ्ञायतन ब्रह्मलोक तक अधो पृथ्वी से नीचे उस्सद नाम के महानरक तक, तिरियं, मनुष्य लोक में जितने चक्रवाल है उन सब में जितने प्राणी है वह सभी वैर-रहित हो, क्रोध-रहित हो, दुःख-रहित हो, इस प्रकार भावना

किए गए मैत्री-चित्त से। **अप्पमाणेन** अप्रमाण प्राणियो के कारण असीम आलम्वन होने से अप्रमाण। **सब्बसो** सब तरह से ऊपर, नीचे तथा तिर्यक् इस प्रकार सब सुगति तथा दुर्गति में। **अप्पमाणं हितं चितं** सभी प्राणियो के प्रति मैत्री की असीम भावना। **परिपुण्णं** सम्पूर्ण **सुभावितं** अच्छी प्रकार उन्नत, इसका मतलव है अर्पणा-चित्त। **यं पमाण कतं कम्मं** जो यह अप्पमाण-अप्पमाणारम्मण, परित्त-अप्पमाणारम्मण तथा अप्पमाणं-परित्तारम्मणं तीन प्रकार के आरम्मण पर पूर्ण अधिकार करते हुए उसे न वढा कर जो सीमित कामावचर कर्म किया जाता है। **न त तत्रावसिस्सति** वह सीमित (परित्त-) कर्म जो अप्रमाण मैत्री-चित्त रूपी रूपावचर कर्म है, उसके सामने नही ठहरता। जैसे वाढ के आने पर सीमित पानी उससे पृथक नही रह सकता है, नही ठहरता है, वह वाढ मे ही मिल जाता है। उसी प्रकार वह सीमित कर्म उस महान् कर्म के अन्दर, उस महान् कर्म में मिलकर, फल देने मे असमर्थ हो रहता है, अपना फल नही दे सकता।

वह महान् कर्म ही उसे ढक देता है, महान् कर्म ही फल देने वाला रहता है।

इस प्रकार वोधिसत्त्व अपने शिष्यो को मैत्री-भावना का फल कह ध्यान में अवस्थित रह ब्रह्मलोक मे पैदा हो सात सवर्त-विवर्त कल्प तक फिर इस लोक में नही आए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल वैठाया।

उस समय ऋषि-गण वुद्ध-परिषद् थी। अरक नाम का उपदेशक तो मैं ही था।

१७०. ककण्टक जातक

"नायं पुरे ओनमति ..." यह ककण्टक जातक महाउम्मग जातक[1] में आएगी।

---

[1] महाउम्मग जातक (५४६)।

दूसरा परिच्छेद

३. कल्याणधम्म वर्ग

१७१. कल्याणधम्म जातक

"कल्याणधम्मो ..." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक बहरी सास के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में एक कुटुम्बिक रहता था। वह श्रद्धावान् था। वह प्रसन्नचित्त था। वह त्रिशरण ग्रहण किए था और पंचशील भी।

एक दिन वह घी आदि बहुत सी औषधियाँ,[1] पुष्प, सुगन्धियाँ तथा वस्त्र ले शास्ता से धर्म सुनने की इच्छा से जेतवन गया।

उसके वहाँ गए रहने पर सास खाद्य-भोजन ले लड़की को देखने की इच्छा से लड़की के घर आई। वह थोड़ी बहरी थी। जब लड़की के साथ खाना खा चुकी, तो भोजनोपरान्त आराम करते हुए उसने लड़की से पूछा—"अम्म! क्या तेरा पति तुझसे प्रसन्न है? क्या वह विवाद न करता हुआ, प्रेमपूर्वक रहता है?"

"अम्म! क्या कहना! जैसा तुम्हारा जँवाई है, वैसा शीलवान् तथा सदाचारी प्रव्रजित भी मिलना दुर्लभ है।"

उस उपासिका ने लड़की की सारी बात पर भली प्रकार ध्यान न दे केवल प्रव्रजित शब्द को सुन चिल्लाना शुरू किया—'अम्म! तेरा स्वामी प्रव्रजित क्यों हो गया?'

उसकी बात सुन सारे घर वाले रोने लगे—'हमारे घर का मालिक प्रव्रजित हो गया।'

---

[1] घी, मक्खन आदि औषध रूप से भिक्षु अपराण्ह में भी ग्रहण कर सकता है।

उनका रोना सुन दरवाजे से गुजरने वाले लोग पूछने लगे कि रो क्यो रहे हैं ? "इस घर का मालिक प्रव्रजित हो गया है।"

वह कुटुम्बिक भी बुद्ध का उपदेश सुन, विहार से निकल नगर मे प्रविष्ट हुआ। एक आदमी ने उसे रास्ते मे ही देख कर कहा—'सौम्य ! तेरे घर पर तेरे लडके स्त्री आदि सम्बन्धी रो रहे हैं कि तू प्रव्रजित हो गया।'

उसने सोचा—मैं प्रव्रजित नही हूँ, तो भी मुझे लोग प्रव्रजित समझ रहे हैं। मेरी प्रशंसा होने लगी है। उसे गँवाना नही चाहिए। आज ही मुझे प्रव्रज्या ग्रहण करनी चाहिए।

वह वही से वापिस लौट कर शास्ता के पास गया। शास्ता ने पूछा—"उपासक ! अभी तू बुद्ध की सेवा मे आकर लौटा, और तुरन्त फिर आया है ?"

उसने वह बात कह निवेदन किया—"भन्ते ! मेरी प्रशसा होने लगी है। इस शुभ-नाम को गँवाना नही चाहिए। इसलिए मैं प्रव्रजित होने की इच्छा से आया हूँ।"

प्रव्रज्या और उपसम्पदा प्राप्त कर वह अच्छी तरह से जीवन व्यतीत करता हुआ थोडी ही देर मे अर्हत् हुआ।

यह बात भिक्षुसघ में प्रकट हुई। एक दिन धर्म-सभा मे भिक्षुओ ने बात-चीत चलाई—"आयुष्मानो ! अमुक कुटुम्बिक ने सोचा कि उसकी जो प्रशसा होने लगी है, इस शुभ-नाम का लोप नही होना चाहिए। वह प्रव्रजित होकर अर्हत् हो गया।"

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ ! बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?" "अमुक बातचीत" कहने पर, शास्ता ने कहा—'भिक्षुओ, पुराने समय मे पण्डित जन भी यही सोचकर कि जो प्रशसा होने लगे उस शुभ-नाम का लोप नही होने देना चाहिए प्रव्रजित ही हुए।'

इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व एक सेठ के घर में पैदा हुए। बडे होने पर पिता के मरने के बाद सेठ का पद मिला। वह एक दिन घर से निकल राजा की सेवा में पहुँचा।

उसकी सास अपनी लडकी को देखने की इच्छा से उसके घर आई। वह थोडी वहरी थी। आगे की सब कथा 'वर्तमान-कथा' सदृश ही है।

उसे राजा की सेवा करके अपने घर लौटते समय एक आदमी ने देख कर कहा—'तुम्हारे घर पर सब लोग रो पीट रहे हैं कि तुम प्रव्रजित हो गए।'

बोधिसत्त्व ने सोचा कि जो प्रशसा होने लगी है, उस शुभ-नाम को नष्ट नही होने देना चाहिए। वह वही से लौट कर राजा के पास पहुँचे। राजा ने पूछा—

"महासेठ! अभी जाकर अभी फिर क्यो लौट आए?"

"देव! घर के लोग मुझ अप्रव्रजित को ही प्रव्रजित हुआ समझ कर रोते पीटते है। यह जो मुझे शुभ-नाम मिला है, इसको लुप्त होने देना ठीक नही। मै प्रव्रजित होऊँगा। मुझे प्रव्रजित होने की आज्ञा दें।"

सेठ ने इस भाव को प्रकट करने वाली दो गाथाएँ कही—

कल्याणधम्मोति यदा जनिन्द
लोके समञ्ञा अनुपापुणाति,
तस्मा न हीयेथ नरो सपञ्ञो
हिरियापि सन्तो धुरमादियन्ति॥
साय समञ्ञा इध मज्ज पत्ता
कल्याणधम्मोति जनिन्द लोके,
ताहं समेक्खं इध पब्बजिस्सं
नहि मत्थि छन्दो इध कामभोगे॥

[हे राजन्! जब लोक में किसी की कीर्ति होती है, उसे शुभ-नाम मिलता है, तो बुद्धिमान् आदमी को उसे छोडना नही चाहिए। श्रेष्ठ पुरुष लज्जा से भी (प्रव्रज्या-) धुर को प्राप्त करते है।

हे राजन्! आज मुझे वह कीर्ति उत्पन्न हुई है, शुभ-नाम मिला है। उसे देखकर मैं प्रव्रजित होऊँगा। मुझे काम-भोगो की इच्छा नही रही है।]

कल्याणधम्मो, सुन्दर धर्म, समञ्ञ अनुपापुणाति जब शीलवान, सदाचारी, या प्रव्रजित इस प्रकार की कीर्ति तथा लोक-व्यवहार आरम्भ हो जाता है। **तस्मा**

न हीयेय, उस श्रमणत्व (की ख्याति) से न हटे। हिरियापि सन्तो धुरमादियन्ति महाराज! सत्पुरुष अपने अन्दर से उत्पन्न लज्जा से, वाह्य-निन्दा से पैदा हुए भय से भी इस प्रव्रज्या को ग्रहण करते हैं।

इध मज्ज, यहाँ मेरे द्वारा आज ताहं समेक्ख मैं उस श्रमणत्व को गुण-रूप से देखता हुआ नहि मत्थि छन्दो मुझ मे इच्छा नही है, इध कामभोगे, इस दुनिया मे वस्तु-कामना वा कामेच्छा।

वोधिसत्त्व ने यह कह राजा से प्रव्रज्या की आज्ञा ली। फिर हिमालय-प्रदेश मे जा ऋषि-प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रजित हो अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर ब्रह्मलोक गामी हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल वैठाया।

उस समय राजा आनन्द था। वाराणसी सेठ तो मैं ही था।

१७२. दद्दर जातक

"को नु सद्देन महता . . " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोकालिक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय अनेक वहुश्रुत भिक्षुसघ के वीच में ऐसे पाठ करते थे जैसे मनोशिला के नीचे तरुण सिंह गरज रहा हो, अथवा आकाश से गगा उतारी जा रही हो।

कोकालिक भिक्षु अपने तुच्छ-ज्ञान का विचार न कर जिस समय भिक्षु पाठ करते थे, स्वय भी पाठ करने की इच्छा से भिक्षुओ के वीच में जाकर सघ का नाम ले कहता कि भिक्षु मुझे पाठ करने नही देते, यदि पाठ करने दें तो मैं भी पाठ करूँ। इस प्रकार वह जहाँ तहाँ कहता हुआ घूमता था।

उसकी वह बात भिक्षुसघ में प्रकट हो गई। भिक्षुओं ने सोचा इसकी परीक्षा करें। इस विचार से उन्होंने कहा—"आयुष्मान! कोकालिक! आज सघ के सम्मुख पाठ कर।" उसने अपना बल न पहिचान कर स्वीकार कर लिया कि मैं आज सघ के सम्मुख पाठ करूँगा।

तब उसने अपने को अनुकूल पड़ने वाला यवागु पिया। भोजन किया। अनुकूल दाल ही ली।

सूर्यास्त होने पर धर्म सुनने के समय सूचना देने पर भिक्षुसघ एकत्र हुआ। वह कुण्ठ-पुष्प सदृश कापाय-वस्त्र पहन और कनेर पुष्प सदृश लाल चीवर ओढ सघ के बीच जा, स्थविरो को प्रणाम कर, अलकृत रत्न-मण्डप के बीच बिछे हुए श्रेष्ठ आसन पर चढ, चित्रित पखा हाथ में ले पाठ करने के लिए बैठा। उसी समय उसके शरीर से पसीना बहने लगा। वह लज्जित हो गया। वह पूर्व-गाथा[1] का प्रथम पाद भर कह सका। उसके आगे उसे नही सूझा। वह काँपता हुआ आसन से उतर आया। लज्जित हो सघ के बीच से गुजर वह अपने परिवेण में चला गया।

किसी दूसरे ही बहुश्रुत भिक्षु ने पाठ किया। उस समय से भिक्षु जान गए कि वह अज्ञानी है।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बात चलाई—"आयुष्मानो! पहले कोकालिक के ज्ञान की तुच्छता अज्ञात थी। अब इसने अपने ही बोलकर उसे प्रकट कर दिया।"

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "अमुक बातचीत" कहने पर शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ, न केवल अभी कोकालिक ने बोलकर अपने आपको प्रकट किया है, पहले भी बोलकर प्रकट किया है।"

यह कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

---

[1] धर्मोपदेश देने के लिए जिस गाथा का आधार लिया जाता है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व हिमा-नय-प्रदेश में सिह के रूप मे पैदा हुए। वह वहुत से सिहो के राजा वने।

अनेक सिंहो के साथ वह रजत-गुफा मे रहते थे। उसके पास ही एक गुफा मे एक सियार रहता था। एक दिन वर्पा हो चुकने पर सब सिंह सिहराज के गुफा-द्वार पर इकट्ठे हो सिंह-नाद करते हुए सिंह-क्रीडा करने लगे।

उनके इस प्रकार दहाडते हुए क्रीडा करने के समय वह सियार भी चिल्लाया। सिंहो ने जब उसकी आवाज सुनी तो वह यह सोचकर लज्जा के मारे चुप हो गए कि यह मियार भी हमारे माथ आवाज लगा रहा है। उनके चुप हो जाने पर वोधि-नत्त्व के पुत्र सिह-वच्चे ने पूछा—"तात ! यह सिंह दहाड दहाड कर सिह-क्रीडा-करते हुए किमी एक की आवाज सुनकर लज्जा से चुप हो गए। यह कौन है जो अपने शब्द से अपने को प्रकट कर रहा है ?" इस प्रकार पिता से पूछते हुए सिंह-वच्चे ने पहली गाथा कही—

को नु सद्देन महता अभिनादेति दद्दर
किं सीहा न पटिनन्दन्ति को नामेसो मिगाधिभु॥

[हे मृगराज ! यह कौन है जो वडे शव्द से दद्दर पर्वत को गुजा रहा है ? यह कौन है जिसके कारण सिंह नही वोलते हैं ?]

अभिनादेति दद्दरं, दद्दर पर्वत को गुजा रहा है। **मिगाधिभु** पिता को सम्वो-धन करता है। यहाँ यह अर्थ है। मिगाधिभु ! मृग-ज्येष्ठ ! सिंहराज ! मैं तुझे पूछता हूँ कि यह कौन है ?

उसकी वात सुन पिता ने दूसरी गाथा कही—

अधमो मिगजातानं सिगालो तात वस्सति
जातिमस्स जिगुच्छन्ता तुण्ही सीहा समच्छरे॥

[तात ! पशुओ मे जो सवसे नीच सियार है वही चिल्लाता है। सिंह उसकी जाति से घृणा करने के कारण चुप हो गए है।]

समच्छरे, स केवल उपसर्ग है। अच्छा समझते है अर्थ है। तुण्ही, बैठते है, चुप होकर बैठते है, यही अर्थ है। पुस्तको मे समच्छरे लिखते है।

शास्ता बोले—"भिक्षुओ! कोकालिक ने केवल अभी अपनी वाणी से अपने को प्रकट नही किया, पहले भी किया ही है।"

यह धर्म-देशना ला शास्ता ने जातक का मेल बैठाया।

उस समय का सियार कोकालिक था। सिंह-बच्चा राहुल। सिंह-राज मैं ही था।

१७३. मक्कट जातक

"तात! माणवको एसो ..." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक ढोंगी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह कथा प्रकीर्णक परिच्छेद की उद्दालक जातक[1] में आएगी। उस समय शास्ता ने 'भिक्षुओ, यह भिक्षु केवल अभी ढोंगी नही है, इसने पहले भी जब यह बन्दर था अग्नि के लिए ढोंग किया है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व किसी काशी-ग्राम में ब्राह्मण कुल मे पैदा हुए। बडे होने पर तक्षशिला जा विद्या सीख घर बसाया।

उनकी ब्राह्मणी ने एक पुत्र को जन्म दिया। जब लडका दौडने भागने लग गया, तो वह मर गई।

---

[1] उद्दालक जातक (४८७)।

बोधिसत्त्व ने उसका शरीर-कृत्य करके सोचा, अब मुझे घर मे रहने से क्या लाभ ? मैं पुत्र को लेकर प्रव्रजित हो जाऊँ। रोते हुए रिश्तेदारो तथा मित्र-समूह को छोड वह पुत्र को ले हिमालय मे प्रविष्ट हुआ। वहाँ ऋषियो के ढग से प्रव्रजित हो फल-मूल खाता हुआ रहने लगा।

एक दिन वर्षा-ऋतु में जब वर्षा हुई, तो वह सूखी लकडियाँ जलाकर आग तापते हुए एक तख्ते पर लेटा था। इसका पुत्र तपस्वी-कुमार भी इसके पैरो को दबाता हुआ बैठा था। एक जगली बन्दर ने शीत से पीडित हो उस पर्ण-कुटी में आग देख कर सोचा—"यदि मै यहाँ प्रवेश करूँगा, तो 'बन्दर है, बन्दर है' कह मुझे पीट कर निकाल देंगे। मुझे आग तापना न मिलेगा। एक उपाय है। मैं तपस्वी-वेश बना ढोंग करके प्रवेश करूँ।"

उसने एक मृत तपस्वी के वल्कल वस्त्र पहन लिए। फिर खारी ले, पर्ण-कुटी के द्वार पर एक ताड-वृक्ष के नीचे सिकुड कर बैठा।

तपस्वी-कुमार ने उसे देख, बन्दर न समझ सोचा—शीत से पीडित एक बूढा तपस्वी आग तापने आया होगा। तपस्वी को कह कर इसे पर्ण-कुटी मे ला आग तपवाऊँ।

उसने पिता को सम्बोधन कर यह पहली गाथा कही—

तात! माणवको एसो तालमूल अपस्सितो,
अगारकञ्चिदं अत्थि हन्द देमस्स गारकं॥

[तात! यह एक माणवक ताड-वृक्ष को आश्रय करके बैठा है। यह घर है। हन्त! हम इसे गृह दें।]

माणवको एसो, प्राणी वाची शब्द है। तात! यह एक माणवक प्राणी है। 'एक तपस्वी है' यही प्रकट करता है। **तालमूलं अपस्सितो,** ताड का वृक्ष के आश्रय है। **अगारकञ्चिदं अत्थि,** यह हमारा प्रव्रजितो का घर है। पर्ण-कुटी को लेकर कहा है। हन्द, निश्चय के अर्थ में निपात है। **देमस्सगारकं,** इसे एक कोने में रहने के लिए घर दे।

बोधिसत्त्व ने पुत्र की बात सुन उठकर पर्ण-कुटी के दरवाजे पर खडे हो देख-कर पहचान लिया कि वह बन्दर है। उन्होने कहा—'तात! मनुष्यो का मुँह

ऐसा नहीं होता। यह बन्दर है। इसे यहाँ नहीं बुलाना चाहिए ।' यह कहते हुए दूसरी गाथा कही—

मा खो तं तात! पक्कोसि दूसेय्य नो अगारकं
नेतादिसं मुख होति ब्राह्मणस्स सुसीलिनो॥

[तात! इसे मत बुला। यह हमारे घर को खराब कर देगा। सदाचारी ब्राह्मण का ऐसा मुह नहीं होता ।]

दूसेय्य नो अगारक, यह यहाँ प्रवेश पाकर इस कठिनाई से बनाई हुई पर्ण-कुटी को या तो आग से जलाकर अथवा मल त्याग कर खराब कर दे सकता है। नेतादिसं शीलवान् ब्राह्मण का ऐसा मुह नहीं होता।

'यह बन्दर है' कह बोधिसत्त्व ने एक जलती हुई लकडी फेंकी कि यहाँ क्यो बैठा है? इस प्रकार उसे भगा दिया। बन्दर वल्कल वस्त्र छोड़ वृक्ष पर चढ वन में चला गया। बोधिसत्त्व चारो ब्रह्म-विहारो की भावना कर ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय बन्दर यह ढोंगी भिक्षु था। तपस्वी-कुमार राहुल। तपस्वी तो मै ही था।

१७४. दुब्बभियमक्कट जातक

"अदम्ह ते वारि बहूतरूप "यह शास्ता ने वेळुवन मे रहते समय देवदत्त के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

एक दिन धर्मसभा मे बैठे हुए भिक्षु देवदत्त के अकृतज्ञता तथा मित्र-द्रोही भाव की चर्चा कर रहे थे। शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त अकृतज्ञ तथा मित्र-द्रोही है। पहले भी वह ऐसा ही था।" इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व किसी काशीग्राम में ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बडे होने पर घर बसाया। उस समय काशी राष्ट्र की एक बडी चलने वाली सडक पर एक गहरा कुआँ था। जानवरो की उस तक पहुँच नही हो सकती थी। इसलिए रास्ता चलने वाले पुण्यार्थी मनुष्य, लम्बी रस्सी बँधे बर्तन से पानी निकाल एक द्रोणी में भर जानवरो को पानी पिलाते थे।

उसके चारो तरफ भारी जगल था। उसमे बहुत से बन्दर रहते थे।

दो तीन दिन उस मार्ग से आदमियो का आना जाना न हुआ। जानवरो को पानी न मिला। एक प्यासा बन्दर पानी खोजता हुआ कुएँ के आस पास घूमता था। बोधिसत्त्व किसी काम से उस रास्ते से आए। जब वह वहाँ जा, पानी निकाल, पी, हाथ पाँव धो कर खडे थे, उन्होने उस बन्दर को देखा। यह जानकर कि वह प्यासा है उन्होने पानी निकाल द्रोणी में डाल कर उसे दिया। पानी देकर वह विश्राम करने के लिए एक वृक्ष के नीचे लेटे।

बन्दर ने पानी पी, पास बैठ, नकल बनाते हुए, बोधिसत्त्व को डराया। बोधिसत्त्व ने उसकी वह करतूत देख 'अरे दुष्ट बन्दर! मैंने तुझे प्यास से कष्ट पाते हुए को पानी दिया। तू मुझे चिढ़ाता है? अहो! पापी पर किया गया उपकार निरर्थक होता है' कहते हुए पहली गाथा कही—

अदम्ह ते वारि बहूतरूप
घम्माभितत्तस्स पिपासितस्स
सो दानि पीत्वान किंकि करोसि,
असगमो पापजनेन सेय्यो॥

[धूप से तप्त तुझ प्यासे को हमने बहुत सा पानी दिया। अब तू पानी पी कर चिढ़ाने के लिए 'किंकि' आवाज करता है। पापी से दूर रहना ही अच्छा है।]

सो दानि पीत्वान किंकि करोसि, सो अब तू मेरा दिया हुआ पानी पीकर (मुझे) चिढ़ाता हुआ 'किंकि' आवाज करता है। **असगमो पापजनेन सेय्यो,** पापी जन के साथ मिलना अच्छा नहीं। दूर रहना ही अच्छा है।

उसे सुन वह मित्र-द्रोही बन्दर बोला—क्या तू समझता है कि यह इतने से ही समाप्त हो गया? अब तेरे सिर पर पाखाना करके जाऊँगा। यह कहते हुए उसने दूसरी गाथा कही।

को ते सुतो वा दिट्ठो वा सीलवा नाम मक्कटो
इदानि खो त ऊहच्च एसा अस्माक धम्मता॥

[तूने कौन सा बन्दर सदाचारी है, सुना वा देखा? अभी मैं तुझे मैला करके (जाऊँगा) यही हमारा स्वभाव है।]

संक्षिप्तार्थ यह है—हे ब्राह्मण मक्कटो कृतज्ञ, सदाचारी सीलवा नाम है यह तूने कभी सुतो वा दिट्ठो वा? इदानि खो मैं त ऊहच्च तेरे सिर पर पाखाना करके चला जाऊँगा। अस्माकं हि बन्दरों का एसा धम्मता, यह जातीय स्वभाव है कि जो उपकार करने वाले के सिर पर मल त्यागना चाहिए।

इसे सुन वोधिसत्त्व उठकर चलने लगे। बन्दर उसी क्षण उछल, शाखा पर वैंठ, लकडी छोडने की तरह उसके सिर पर पाखाना गिरा, चिल्लाता हुआ बन मे घुस गया। वोधिसत्त्व नहा कर चले गए।

शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त अकृतज्ञ है, पहले भी मेरे किए उपकार को नही जानता था।

इतना कह, यह धर्मदेशना ला शास्ता ने जातक का मेल वैठाया।

उस समय वन्दर देवदत्त था। ब्राह्मण मैं ही था।

१७५. आदिच्चुपट्ठान जातक

"सव्वेसु किर भूतेसु " यह शास्ता ने जेतवन मे रहते समय एक ढोगी के बारे में कही। वर्तमान-कथा उक्त ही की तरह है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व काशी-राष्ट्र मे ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। वडे होने पर तक्षशिला जा, विद्या सीख, ऋषियो की प्रव्रज्या के ढग पर प्रव्रजित हुए। अभिञ्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर, अनेक अनुयायियो के साथ उनके गण-शास्ता वन, हिमालय मे रहने लगे।

वह वहाँ चिरकाल तक रह कर, निमक-खटाई खाने के लिए पर्वत से उतर, प्रत्यन्त-देश में किसी ग्राम के पास एक पर्णकुटी में रहने लगे।

जिस समय ऋषि-गण भिक्षा के लिए जाते, एक लोभी बन्दर आश्रम पर आकर पर्ण-कुटी का फूस उजाड देता, पानी के घडो में से पानी गिरा देता। कुण्डियाँ तोड देता और अग्नि-शाला में पाखाना कर देता।

तपस्वियो ने वर्षा भर रह कर सोचा कि अब हेमन्त ऋतु आ गई है। फल

फूल वहुत हो गए हैं। (प्रदेश) रमणीय है। वहीं चलकर रहें। उन्होने प्रत्यन्त गाँव के वासियो से विदा माँगी।

मनुष्य वोले—भन्ते! हम कल आश्रम पर भिक्षा लेकर आएँगे। उसे ग्रहण कर जाएँ।

दूसरे दिन वे वहुत सारा खाद्य-भोज्य लेकर वहाँ पहुँचे।

उसे देख वन्दर ने सोचा मैं भी ढोंग करके मनुष्यो को प्रसन्न कर अपने लिए खाद्य-भोज्य मँगवाऊँ।

वह तप करते तपस्वी की तरह हो, सदाचारी की तरह हो, तपस्वियो से कुछ ही दूर पर सूर्य्य को नमस्कार करता हुआ खडा हुआ। मनुष्यो ने उसे देख सोचा कि सदाचारियो के पास रहने वाले सदाचारी होते हैं और पहली गाथा कही—

सब्बेसु किर भूतेसु सन्ति सीलसमाहिता,
पस्स साखामिगं जम्म आदिच्चमुपतिट्ठति ॥

[सभी प्राणियो में सदाचारी होते हैं। सूर्य्य की पूजा करते हुए नीच वन्दर को देखो।]

सन्ति सीलसमाहिता, शील से युक्त है, शीलवान, तथा समाहित वा एकाग्रचित है, यह भी अर्थ है। जम्म नीच, आदिच्चमुपतिट्ठति, सूर्य्य को नमस्कार करते हुए ठहरा है।

इस प्रकार उन मनुष्यो को उसकी प्रशंसा करते देख वोधिसत्त्व ने कहा कि तुम इस ढोंगी वन्दर के आचरण को न जानकर अयोग्य-जगह में ही श्रद्धावान् हुए हो, और यह दूसरी गाथा कही—

नास्स सील विजानाथ अनञ्ञाय पसंसथ
अग्गिहुत्तञ्च उहन्त द्वे च भिन्ना कमण्डलु ॥

[तुम इसके स्वभाव को नहीं जानते। विना जाने ही प्रशंसा कर रहे हो। इसने अग्नि-शाला खराब कर दी और दो कमण्डलु तोड डाले।]

अनञ्ञाय बिना जाने। ऊहन्तं इस दुष्ट वन्दर द्वारा मैली की गई। कमण्डलु कुण्डी, द्वे च कुण्डियाँ उसके द्वारा भिन्ना। इस प्रकार उसके दुर्गुण कहे।

मनुष्यो ने वन्दर का ढोग जान, ढेले और लाठियाँ ले, पीट कर भगा दिया। तब ऋषिगण को भिक्षा दी। ऋषि भी हिमालय प्रदेश में ही जा ध्यानावस्थित हो ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय वन्दर यह ढोगी था। ऋषि-गण बुद्ध-परिषद थी। गण-शास्ता तो मैं ही था।

१७६. कळायमुट्ठि जातक

"**बालो वतायं दुमसाखगोचरो** " यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय कोशल नरेश के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

एक बार वर्षा-ऋतु के समय कोशल नरेश के इलाके में बगावत हुई। वहाँ जो योधा थे, उन्होंने दो तीन युद्ध किए। जब वह शत्रुओ को न जीत सके तो उन्होने राजा के पास सन्देश भेजा।

राजा वर्षा-ऋतु मे असमय मे ही निकल पडा। जेतवन के समीप पडाव डलवाकर उसने सोचा—मैं असमय में निकल पडा हूँ। कन्दराएँ और दरारे, पानी से भरी है। मार्ग दुर्गम है। मै शास्ता के पास जाता हूँ। वे मुझे पूछेंगे 'महाराज ! कहाँ जाते हो ?' मै उन्हें यह बात कहूँगा। शास्ता मुझे केवल पारलौकिक उपदेश ही नही देते है, वह मुझे इस लोक में भी लाभ की बात बताते है। इसलिए यदि जाने से मेरी हानि होती होगी तो वह कह देंगे, 'महाराज ! यह असमय है।' यदि लाभ होगा, तो वह चुप रहेंगे।

वह जेतवन जा शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठा।

शास्ता ने पूछा—महाराज! दिन चढे तुम कैसे आए?

"भन्ते! मै इलाके को शान्त करने के लिए निकला हूँ। तुम्हे प्रणाम करके जाने की इच्छा मे आया हूँ।"

शास्ता ने कहा—'महाराज! पूर्व समय में भी सेना के तैयार होने पर, पण्डितो का कहना मान राजा लोग असमय मे सेना को चढा कर नही ले गए।'

फिर उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उसके अर्थ-धर्मानुशासक सर्वार्थ-अमात्य थे। राजा के इलाके के बगावत करने पर प्रत्यन्त के योधाओ ने सन्देशा भेजा।

राजा वर्षा-ऋतु मे निकला। उसका पडाव उद्यान में लगा। बोधिसत्त्व राजा के पास खडे थे। उस समय घोडो के लिए मटर भिगो ला कर द्रोणियो मे डाल रहे थे। उद्यान के वन्दरो मे से एक वन्दर वृक्ष से उतरा। उसने वहाँ से मटर लिए, मुँह भरा, हाथ भी भरे और कूद कर वृक्ष पर चढ, खाना शुरू किया।

खाते समय उसके हाथ से एक मटर भूमि पर गिर पडा। वह हाथ मे और मुँह में जितने मटर थे उन्हे छोड वृक्ष से उतर उस मटर को ढूढने लगा। जब उसे वह मटर नहीं दिखाई दिया तो वह फिर वृक्ष पर चढा और वहाँ जुए में हजार हार गए की तरह चिन्ता करता हुआ रोनी-शक्ल बना वृक्ष की शाखा पर बैठा।

राजा ने वन्दर की करतूत देख बोधिसत्त्व को सम्बोधन कर पूछा—'मित्र! वन्दर ने यह क्या किया?', बोधिसत्त्व ने कहा—'महाराज! बहुत की ओर ध्यान न दे, थोडे की ओर ध्यान देने वाले दुर्बुद्धि मूर्ख-जन ऐसा करते ही है।' इतना कह, पहली गाथा कही—

बालो वतायं दुमसाखगोचरो
पञ्ञा जनिन्द! नयिमस्स विज्जति,
कळायमुट्ठिं अवकिरिय केवलं
एकं कळाय पतितं गवेसति॥

[राजन् ! यह वृक्षो की शाखाओ पर घूमने वाला वन्दर मूर्ख है। इसे प्रज्ञा नही है। यह मटर की सारी मुट्ठी को वखेर कर गिरे हुए एक मटर को खोजता है।]

दुमसाखगोचरो वन्दर, वह वृक्षो की शाखा पर रहता है, इसके रहने की जगह इसके घूमने की जगह है, इसलिए वृक्षो की शाखा पर घूमने वाला कहलाया। **जनिन्द,** राजा को सम्वोधन करता है, परम ऐश्वर्यशाली होने से, राजा जनता के इन्द्र है, इसीलिए जनिन्द। **कळायमुट्ठिं** मटर की मुट्ठि, काले मास की मुट्ठि भी कहते है। **अवकिरिय** वखेर कर केवल सव गवेसति भूमि पर गिरे एक ही मटर को खोजता है।

ऐसा कहकर वोधिसत्त्व ने फिर राजा को सम्वोधन कर दूसरी गाथा कही—

एवमेव मयं राज! ये चञ्ञे अतिलोभिनो
अप्पेन वहूजिय्याम कळायेनेव वानरो ॥

[इसी प्रकार हे राजन् ! हम और दूसरे अत्यन्त लोभी लोग थोडे के लिए वहुत की हानि कर देते है, जैसे वन्दर ने एक मटर के लिए।]

सक्षिप्तार्थ इस प्रकार है—महाराज ! **एवमेव मयं** और अञ्ञे च सभी लोभी जन **अप्पेन वहुं जिय्याम** हम ही अव इस वर्षा काल मे, इस अयोग्य समय मे रास्ते पर चलकर थोडे से लाभ के लिए वहुत सी हानि करेंगे। **कळायेनेव** वानरो जैसे इस वन्दर ने एक मटर को ढूंढते हुए, उस एक मटर के कारण सब मटर गँवाए, उसी प्रकार हम भी असमय में जव कन्दराएँ और दरारे पानी से भरी है, चलने पर थोडे से लाभ के लिए वहुत से हाथी घोडो तथा सेना को गँवाएँगे। इसलिए असमय में जाना उचित नही। यू राजा को उपदेश दिया।

राजा उसकी वात सुन वही से लौट कर वाराणसी नगर में वापिस चला गया। चोरो ने सुना कि राजा चोरो को दवाने के लिए नगर से निकल पडा है, वे इलाके से भाग गए। वर्तमान समय में भी चोरो ने जव यह सुना कि कोशल राजा निकल पडा है, वह भाग गए।

राजा ने शास्ता का धर्मोपदेश सुना। फिर आसन से उठ, प्रणाम और प्रदक्षिणा कर श्रावस्ती को चला गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय राजा आनन्द था। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

१७७. तिन्दुक जातक

"धनुहत्थकलापेहि ..." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय प्रज्ञा पारमिता के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

महाबोधि जातक[1] तथा उम्मग्ग जातक[2] (में आए वर्णन) की तरह शास्ता ने अपनी प्रज्ञा की प्रशंसा सुन कर कहा—"भिक्षुओ! तथागत केवल अभी प्रज्ञावान् नहीं है, पहले भी प्रज्ञावान् तथा उपायकुशल रहे है।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व एक वानर के रूप में पैदा हो अस्सी हजार वन्दरों की मण्डली के साथ हिमालय में रहने लगे।

वहीं पास ही एक प्रत्यन्त-गाँव था, जो कभी बसता था, कभी उजड जाता था। उस गाँव के बीच में शाखा-पत्तों तथा मधुर फलों से युक्त एक तिन्दुक-वृक्ष था। जब गाँव बसा न होता, तो वानर आकर उस वृक्ष के फल खाते।

---

[1] महाबोधी जातक (५२८)।

[2] उम्मग जातक (५४६)।

अगली वार फलो का मौसम आने पर वह गाँव बसा हुआ था। उसके चारो ओर वाँसो का घेरा था और एक फाटक था। उस वृक्ष की शाखाएँ भी फलो के भार से झुकी हुई थी।

वानर सोचने लगे—हम पहले अमुक गाँव मे तिन्दुक फल खाते थे। इस बार वह वृक्ष फला है वा नही ? उस गाँव में बस्ती है वा नही ? यह सोच उन्होने एक वानर को समाचार मालूम करने के लिए भेजा।

उसने लौट कर कहा कि वृक्ष फला है और गाँव मे घनी बस्ती है। बानरो ने जब सुना कि वृक्ष फला है तो उन्हे वडी खुशी हुई कि मीठे मीठे फल खाने को मिलेंगे। वहुत सारे वानरो ने वानरेश को जाकर कहा। बानरेश ने पूछा—"गाँव वसा है वा नही ?"

"देव! वसा है।"

"तो (लौट) जाओ। मनुष्य बहुत मायावी होते है।"

"देव! आधी रात के समय जब मनुष्य सो जायँगे, तब खाएँगे।"

वहुत से वानरो ने जाकर बानरेश को मना लिया। फिर हिमालय से उतर, उस ग्राम से थोडी ही दूर पर वह मनुष्यो के सोने के समय की प्रतीक्षा करते हुए एक वडे भारी पत्थर पर सो रहे। आधी रात को जब मनुष्य सो रहे थे उन्होने वृक्ष पर चढ फल खाए।

एक आदमी शौच के लिए घर से निकला। उसने गाँव के बीच जाने पर वानरो को देखा तो और आदमियो को खबर दी। बहुत से आदमी तीर कमान तैयार कर, नाना प्रकार के आयुध ले, ढेले-डण्डे आदि के साथ वृक्ष को घेर कर खडे हो गए कि रात वीतने पर बानरो को पकडेंगे।

अस्सी हजार वानरो ने मनुष्यो को देखा तो उन्हें डर लगा कि अब मरे। उन्होने सोचा कि वानरेश को छोड उन्हें और कही शरण न मिलेगी। वे उसके पास गए और पहली गाथा कही—

धनुहत्थकलापेहिनेत्तिसवरधारिहि।
समन्ता परिकिण्णम्हा कथं मोक्खो भविस्सति॥

[तीर कमान हाथ में लिए तथा उत्तम खड्ग धारण किए हुए आदमियो से हम घिरे है। कैसे मुक्त होगे ?]

धनुहत्थकलापेहि, धनुष और (तीर-) समूह जिनके हाथ में है, धनुष और तीर-समूह लेकर जो खडे है। **नेत्तिसवरधारिहि,** नेत्तिस कहते है खड्ग को, उत्तम खड्गधारियो से, **परिकिण्णम्हा,** हम घिरे हुए है, **कथं,** किस उपाय से हमारा मोक्ष होगा।

उनकी बात सुन वानरेश ने कहा—"डरो मत। मनुष्यो को बहुत काम रहते है। अभी आधी रात है। यह हमें मारने के लिए खड़े है। इस (हमारे मारने के) काम में विघ्न करने वाला दूसरा काम पैदा कर दें।" इस प्रकार उन्हे आश्वासन देते हुए दूसरी गाथा कही—

अप्पेव बहुकिच्चानं अत्थो जायेथ कोचि नं
अत्थि रुक्खस्स अच्छिन्नं खज्जतञ्ञेव तिन्दुकं ॥

[इन बहुत काम वालो को कोई न कोई काम पैदा हो सकता है। वृक्ष पर अभी फल लगे है। तिन्दुक को खाओ।]

न निपातमात्र है। **अप्पेव बहुकिच्चानं,** मनुष्यों को दूसरा **कोचि अत्थो** उत्पन्न हो सकता है। **अत्थि रुक्खस्स अच्छिन्नं** इन वृक्षो पर से तोड़ने उतारने की बहुत जगह है। **अत्थोखज्जतञ्ञेतिन्दुकं** तिन्दुक फल खाओ। तुम्हें जितनी जरूरत है उतने फल खाओ। हमें मारने का समय आएगा तब देखेंगे।

इस प्रकार महासत्त्व ने सब को दिलासा दिया। यह आश्वासन न मिलता तो डर था कि सभी हृदय फट कर मर जाते।

महासत्त्व ने इस प्रकार वनारो को दिलासा दे कहा—सभी वानरो को इकट्ठा करो। इकट्ठे होने पर बोधिसत्त्व के सेनक नाम भानजे को न देखकर वह बोले कि सेनक नहीं आया। यदि सेनक नही आया तो मत डरो। वह अब कुछ अच्छा काम करेगा।

वानरो के आने के समय सेनक सोता रह गया था। पीछे उठ कर जब उसने किसी को न देखा तो वह भी वानरों के पीछे पीछे आया। रास्ते में उसने आदमियो को देखकर सोचा कि वानरो के लिए खतरा पैदा हो गया। उसने गाँव के किनारे

पर अग्नि जला कर कातती हुई एक स्त्री के पास जा, खेत पर जाने वाले लडके की तरह उससे मशाल ले, जिघर की हवा थी उघर खडे हो गाँव में आग लगा दी।

आदमी बानरो को छोड कर आग बुझाने दौड पडे। वानर भागे, लेकिन भागते हुए सेनक के लिए एक एक फल तोड कर लेते गए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय भानजा सेनक महानाम शाक्य था बानर समह बुद्ध-परिषद् थी। वानरेश तो मैं ही था।

१७८. कच्छप जातक

"जनित्तम्मे भवित्तम्मे. "यह शास्ता ने जेतवन मे रहते समय एक ऐसे आदमी के बारे में कही जो प्लेग से मुक्त हो गया था।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती मे एक कुल में प्लेग[1] पैदा हुई। माता पिता ने पुत्र से कहा—तात ! इस घर में मत रह। दीवार तोड कर भाग जा। जहाँ कही जाकर जान बचा, पीछे आना। इस जगह पर बहुत सा खजाना गडा है। उसे निकाल, परिवार के साथ सुख से रहना।

पुत्र उनकी बात स्वीकार कर दीवार तोड भाग गया। फिर अपना रोग शात होने पर उसने आकर खजाना निकाल घर बसाया।

एक दिन वह घी तेल आदि तथा वस्त्र-ओढन आदि लिवाकर जेतवन गया। वह शास्ता को प्रणाम कर बैठा। शास्ता ने उसका कुशल-क्षेम जान कर पूछा—'सुना तुम्हारे घर में प्लेग रोग घुस गया था। तुम उससे कैसे बचे ?'

उसने अपना हाल कहा। शास्ता बोले—"उपासक ! पूर्व समय में भी

---

[1] अहिवातकरोग।

ऐसे लोगों ने जो खतरा आने पर आसक्ति के कारण अपने घर को छोडकर अन्यत्र नहीं चले गए, जान गँवाई। आसक्ति न कर दूसरी जगह जाने वालों ने जान बचा ली।"

उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व एक गांव में कुम्हार का काम करके स्त्री-बच्चों को पालते थे।

उस समय वाराणसी की महानदी के साथ मिला हुआ एक बडा तालाब था। अधिक पानी होने पर वह नदी के साथ मिल जाता। कम होने पर पृथक हो जाता। मछलियां और कछुवे पहले से जान जाते थे कि इस वर्ष अच्छी वर्षा होगी, इस वर्ष कम होगी। एक वर्ष तालाब में पैदा हुई मछलियाँ और कछुवे यह जानकर कि इस वर्ष अच्छी वर्षा न होगी, जिस समय अभी तालाब और नदी एक थे, उसी समय उस तालाब से निकल नदी में चले गए।

एक कछुवे ने कहा—यहाँ मैं पैदा हुआ हूँ। यहीं बडा हुआ हूँ। यहीं मेरे माता-पिता रहे हैं। मैं इसे नहीं छोड सकता। वह नदी में नहीं गया।

गरमी पडने पर उस तालाब का पानी सूख गया। वह कछुआ जिस जगह बोधिसत्त्व मिट्टी खोदते थे, उसी जगह जमीन खोदकर उसमें घुसा था। बोधिसत्त्व ने मिट्टी लेने के लिए वहाँ जाकर बडी कुदाल से जमीन खोदते हुए उसकी पीठ तोड़ कर, मिट्टी के ढेर की ही तरह उसे भी कुदाल से उठाकर स्थल पर गिराया।

उसने वेदना से पीडित हो कहा कि मैं घर के प्रति आसक्ति को त्याग, उसे छोड न सका, इसलिए विनाश को प्राप्त हुआ। रोते हुए यह गाथाएँ कही—

जनित्तम्मे भवित्तम्मे इति पङ्के अवस्सयिं
तं मं पङ्को अज्झभवि यथा दुब्बलकं तथा
तं तं वदामि भग्गव ! सुणोहि वचनं मम॥
गामे वा यदि वा रञ्ञे सुखं यत्राधिगच्छति
तं जनित्तं भवित्तं च पुरिसस्स पजानतो
यम्हि जीवे तम्हि गच्छे न निकेतहतो सिया॥

[मैं यहाँ पैदा हुआ। मैं इसी में बढ़ा। यह सोच कर मैं पंक में ही रहा। लेकिन मुझ दुर्बल को जैसे पंक ने परास्त किया, हे कुम्हार! मैं वैसे वैसे तुझे कहता हूँ सुन—

ग्राम या अरण्य में जहाँ आदमी को सुख प्राप्त हो, वही बुद्धिमान आदमी की जन्म-भूमि है, वही पलने की जगह है। जहाँ रह कर जी सकता हो, वहीं जाए। घर में रहकर मरने वाला न बने।]

जनित्तम्मे भवित्तम्मे यह मेरे पैदा होने की जगह है, यह बढने की जगह है। **इति पंके अवस्सयिं** इस हेतु से मैंने इस कीचड में आश्रय लिया, पडा रहा, रहने लगा। **अज्झभवि,** पराभूत हुआ, विनाश को प्राप्त हुआ। **भग्गव** कुम्हार को बुलाता है। कुम्हारो का यही नाम गोत्र तथा प्रज्ञप्ति है—यह भाग्यवान्।[1] सुख, शारीरिक तथा मानसिक आनन्द। **तं जनित्तं भवित्तञ्च** वह पैदा होने का तथा पलने का स्थान है। **जानितं भावित** दीर्घाकार भी पाठ है, अर्थ वही है। **पजानतो,** जो अर्थ अनर्थ तथा कारण अकारण को जानता है। **न निकेतहतो सिया,** घर मे आसक्ति कर, किसी दूसरी जगह न जा, घर मे मरा। इस प्रकार मरण रूपी दुःख को प्राप्त करने वाला न बने।

इस प्रकार वह बोधिसत्त्व से बोलते ही बोलते मर गया। बोधिसत्त्व ने उसे ले ग्राम के सारे निवासियो को इकट्ठा कर उन्हें उपदेश देते हुए कहा—"इस कछुए को देखते हैं? जब दूसरी मछलियाँ तथा कछुए महानदी में चले गए तो यह अपने निवास-स्थान में आसक्ति न छोड सकने के कारण उनके साथ नहीं गया। जहाँ से मिट्टी ली जाती है, वही पड रहा। मैंने मिट्टी खोदते हुए, महाकुदाल से इसकी पीठ तोडकर इस मिट्टी के ढेले की तरह इसे जमीन पर गिरा दिया। इसे अपना किया याद आया। दो गाथाएँ कह यह रोता हुआ मर गया। इस प्रकार यह अपने निवास-स्थान के प्रति आसक्ति कर मर गया। तुम भी इस कछुए की तरह न होना। अब से तृष्णा के वश होकर उपयोग करते हुए यह मत समझो कि यह रूप मेरा है, यह शब्द मेरा है, यह सुगन्ध मेरी है, यह रस मेरा है,

---

[1] आजकल कुम्हारो को कहीं कहीं 'प्रजापति' कहते हैं।

यह स्पर्शितव्य मेरा है, यह पुत्र मेरा है, यह लडकी मेरी है, यह दास-दासियाँ तथा यह सोना मेरा है। यह प्राणी अकेला ही तीनो भवो में चक्कर काटता है।"

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने बुद्ध-लीला से जनता को उपदेश दिया। वह उपदेश सारे जम्बूद्वीप मे फैल कर सात सौ वर्ष[1] रहा। जनता बोधिसत्त्व के उपदेश के अनुसार चल दान आदि पुण्य कर्म कर स्वर्ग को गई।

बोधिसत्त्व ने भी उसी तरह पुण्य कर्म करते हुए स्वर्ग का रास्ता लिया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला (आर्य-) सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर वह कुल-पुत्र स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय काश्यप आनन्द था। कुम्हार तो मै ही था।

१७९. सतधम्म जातक

"तञ्च अप्प ..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय इक्कीस तरह की अनुचित जीविका के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय भिक्षु इक्कीस तरह के ऐसे कर्मो से जीविका चलाते थे जैसे वैद्यक, दूत बनकर जाना, सन्देश लेकर जाना, पैदल दौड कर (सन्देस ले) जाना, भिक्षा (-पिण्ड) के बदले में भिक्षा लेना आदि।

शास्ता ने उन भिक्षुओं का उस उस तरह जीविका चलाना जान सोचा—"इस समय भिक्षु अनुचित ढग से जीविका चलाते है। इस प्रकार से जीविका चलाने से ये यक्ष-योनि से वा प्रेत-योनि से मुक्त न होगे। जुए के बैल होकर पैदा होगे। नरक में जन्म ग्रहण करेंगे। उनके हित के लिए, सुख के लिए अपने विचारानुकूल तथा प्रतिभा के अनुसार एक धर्मोपदेश देना चाहिए।"

---

[1] फौसबॉल की प्रति में 'वस्स सहस्सानि' पाठ है।

तव भगवान् ने भिक्षुओ को इकट्ठा करवा उपदेश दिया—"भिक्षुओ! इक्कीस तरह के अनुचित तरीको से जीविका नही चलानी चाहिए। अनुचित तरीको से जो भिक्षा मिलती है, वह लोहे के तप्त गोले के समान है, हलाहल विष की तरह है। अनुचित तरीको से जीविका चलाने की वुद्ध, प्रत्येक-वुद्ध तथा श्रावको सभी ने निन्दा की है, निकृष्ट वताया है। अनुचित तरीको से जिस भिक्षा की प्राप्ति होती है, उसे खाने वाले के मुँह पर मुस्कराहट नही आ सकती, उसका मन प्रसन्न नही हो सकता। अनुचित तरीके से जो भिक्षा मिलती है, वह मेरे मत मे चाण्डाल के जूठे भोजन की तरह है। उसका खाना ऐसा ही है, जैसे सतधम्म माणवक ने चाण्डाल का जूठा भोजन खाया।" इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी में व्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व ने चाण्डाल का जन्म ग्रहण किया। वडे होने पर किसी काम से उन्होने रास्ते मे खाने के लिए चावल और भात की पोटली ले रास्ता पकडा।

उसी समय में वाराणसी मे एक माणवक था। नाम था सतधम्म। उदीच्च गोत्र के महाधनवान् कुल में पैदा हुआ था। वह भी किसी काम से रास्ते में खाने के लिए चावल वा भात की पोटली विना लिए ही निकल पडा।

उन दोनो की महामार्ग में भेंट हुई। माणवक ने वोधिसत्त्व से पूछा—"तेरी जात क्या है?" उसने कहा—"मैं चाण्डाल हूँ" और माणवक से पूछा—"तेरी जात क्या है?" "मैं उदीच्च व्राह्मण हूँ।" "अच्छा, तो चले" कह दोनो ने रास्ता पकडा।

वोधिसत्त्व ने प्रात काल का भोजन करने के समय एक ऐसी जगह जहाँ पानी की सुविधा थी, बैठ हाथ धो भात की पोटली खोल माणवक से पूछा—

"भात खाओगे?"

"रे चाण्डाल! मुझे भात की जरूरत नही है।"

वोधिसत्त्व वोला "अच्छा।" फिर भात की पोटली को जूठा न कर, अपनी आवश्यकता भर भात एक दूसरे पत्ते में डाल, पोटली को वाँध कर एक ओर रख दिया। भोजन कर, पानी पी, हाथ पैर धो, चावल तथा शेष भात ले माणवक से कहा "माणवक, चलें", और रास्ता पकड़ा।

वे सारा दिन चलकर, पानी की सुविधा की एक जगह में नहा कर बाहर निकले।

बोधिसत्त्व ने आराम की जगह बैठ भात की पोटली खोल माणवक को बिना पूछे ही खाना आरम्भ किया। दिन भर चलने से माणवक थक गया था और उसे खूब भूख लगी थी। वह बोधिसत्त्व की ओर देखने लगा—"यदि यह भात देगा, तो खा लूंगा।" लेकिन बोधिसत्त्व बिना कुछ बोले खाते रहे।

माणवक ने सोचा—यह चाण्डाल बिना मुझे पूछे ही सब खाए जा रहा है। इससे जबरदस्ती छीनकर भी, ऊपर का जूठा भात हटा कर शेष खाना चाहिए। उसने वैसा कर जूठा भात खाया।

भात खाने के ही साथ माणवक के मन में बड़े ज़ोर का पश्चात्ताप पैदा हुआ। वह सोचने लगा—"मैंने अपनी जाति, गोत्र तथा प्रदेश के योग्य कार्य्य नही किया। मैंने चाण्डाल का जूठा भात खा लिया।" उसी समय उसके मुँह से रक्त सहित भात बाहर आया।

इस बडे शोक से शोकातुर हो कि मैंने ज़रा सी बात के लिए अनुचित कर्म किया, उसने रोते हुए यह पहली गाथा कही—

तञ्च अप्पञ्च उच्छिट्ठं तञ्च किच्छेन नो अदा,
सोहं ब्राह्मणजातिको य भुत्तं तम्पि उग्गतं॥

[वह थोडा सा था। जूठा था, और वह भी उसने कठिनाई से दिया। ब्राह्मण जाति का होकर मैंने वह खाया। जो खाया सो भी निकल गया।]

जो मैंने खाया वह अप्पं उच्छिट्ठं तं च नो, उस चाण्डाल ने अपनी इच्छा से नहीं बल्कि जबर्दस्ती करने पर किच्छेन, कठिनाई से दिया। सोहं परिशुद्ध ब्राह्मण जाति का होकर (खाया) उसीसे मैंने य भुत्तं तम्पि रक्त के साथ उग्गतं।

इस प्रकार माणवक रो पीट कर 'मैंने ऐसा अनुचित काम किया, अब मैं जी कर क्या करूँगा' सोच जंगल में चला गया। वहाँ सबसे छिपे रह कर अनाथ-मरण मरा।

शास्ता ने यह पूर्व की बात कह उपदेश दिया—"भिक्षुओ, जैसे सतधम्म

माणवक को उस चाण्डाल का जूठा भात खाने से, अपने लिए अनुचित भात खाया रहने से, न हँसी आई न मन प्रसन्न हो सका, इसी प्रकार जो इस शासन में प्रव्रजित हो अनुचित ढग से जीविका चलाता है और उससे प्राप्त पदार्थों का उपभोग करता है, बुद्ध द्वारा निन्दित, बुद्ध द्वारा निकृष्ट कही गई जीविका से जीविका चलाने के कारण उसके मुंह पर न हँसी आती है, न प्रसन्नता।

शास्ता ने सम्बुद्धत्व प्राप्त किए रहने पर यह दूसरी गाथा कही—

एवं धम्मं निरंकत्वा यो अधम्मेन जीवति
सतधम्मोव लाभेन लद्धेनपि न नन्दति ॥

[इस प्रकार धर्म छोड जो अधर्म से जीता है। वह सतधर्म की तरह लाभ होने पर भी प्रसन्न नही होता।]

धम्म जीविका को शुद्ध रखने के सदाचार का धर्म। **निरंकत्वा,** बाहर करके, छोड कर। **अधम्मेन,** इक्कीस तरह के अनुचित तरीको से जीविका खोजना। **सतधम्मो** उसका नाम है। **न नन्दति** जैसे सतधम्म माणवक चाण्डाल का जूठा मुझे मिला सोच उस लाभ से प्रसन्न नही होता। इसी प्रकार इस शासन में प्रव्रजित कुलपुत्र अनुचित ढग से प्राप्त लाभ का परिभोग करता हुआ प्रसन्न नही होता, सन्तुष्ट नही होता। निन्दित जीविका से जीता हूँ सोच दु खी ही होता है। इस-लिए अनुचित ढग से जीविका खोजने वाले के लिए यही अच्छा है कि वह सतधम्म माणवक की तरह जगल में जा अनाथ की तरह मर जाए।

इस प्रकार शास्ता ने यह धर्मोपदेश कर चार आर्य (-सत्यो) को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर बहुत से भिक्षुओ को स्रोतापत्ति आदि फल की प्राप्ति हुई।

उस समय मैं ही चाण्डालपुत्र था।

१८०. दुद्दद जातक

"दुद्ददं ददमान ..." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय सामूहिक दान के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में कुटुम्ब-पुत्र परस्पर मित्रों ने चन्दा इकट्ठा करके सभी आवश्यक वस्तुओं से युक्त दान की तैयारी कर भिक्षुसंघ को जिसके प्रमुख बुद्ध थे, निमन्त्रित कर एक सप्ताह तक महादान दिया[1]। सातवें दिन सब आवश्यक वस्तुएँ दीं।

उनमें जो मण्डली का प्रधान था उसने शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठ कर कहा—'भन्ते! इस दान में अधिक देने वाले भी सम्मिलित हैं, थोड़ा देने वाले भी सम्मिलित हैं। यह दान सभी के लिए महान् फलदायी हो।' यह कह कर उसने दान दिया।

शास्ता बोले—'उपासको! भिक्षुसंघ को, जिसके प्रमुख बुद्ध हैं दान देते हुए जो तुमने इस प्रकार दान दिया, यह महान् कर्म है। पुराने समय में पण्डितों ने भी दान देते हुए इसी प्रकार दिया।'

उनके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व काशी देश में ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला जा वहाँ सब विद्याएँ सीखीं। फिर घर छोड़, ऋषियों के ढंग से प्रव्रज्या ग्रहण कर, मण्डली का नेता बन हिमालय

---

[1] सात दिन तक नियमित भोजन कराया।

प्रदेश मे चिरकाल तक रहे। निमक-खटाई के लिए वस्ती मे घूमते हुए, आकर वाराणसी पहुँचे। वहाँ राजोद्यान मे रह कर अगले दिन परिषद सहित दरवाजे पर के गाँव मे भिक्षाटन किया। मनुष्यो ने भिक्षा दी। अगले दिन वाराणसी मे भिक्षाटन किया। आदमियो ने श्रद्धावान् हो भिक्षा दे, टोली वना कर चन्दा इकट्ठा कर दान की तैयारी की और ऋषिगण को महादान दिया। दान की समाप्ति पर टोली के नेता ने इसी प्रकार कह कर दातव्य-वस्तुओ का परित्याग किया।

वोधिसत्त्व ने, "आयुष्मानो! श्रद्धा होने पर दान कभी थोडा नही होता" कह दानानुमोदन करते हुए यह गाथा कही—

दुद्ददं ददमानानं दुक्करं कम्मकुब्बतं।
असन्तो नानुकुब्बन्ति सत धम्मो दुरन्नयो॥
तस्मा सतञ्च असतञ्च नाना होति इतो गति।
असन्तो निरयं यन्ति सन्तो सग्गपरायणा॥

[कठिनाई से जो दिया जा सके देने वाले, कठिनाई से जो किया जा सके करने वाले सत्पुरुषो का धर्म दुर्ज्ञेय है, असत्पुरुष इसे नही करते। इसलिए सत्पुरुषो और असत्पुरुषो की गति भिन्न भिन्न होती है। सत्पुरुष स्वर्ग जाने वाले होते है और असत्पुरुष नरक मे।]

दुद्दद लोभ आदि से युक्त अपण्डित-जन दान नही दे सकते। इसलिए दान को कठिनाई से दिया जा सकने योग्य कहा। उसे **ददमानानं। दुक्कर कम्मकुब्बतं** उसी दान कर्म को सव नही कर सकते, इसलिए उस दुष्कर कर्म को करने वाले। **दुरन्नयो** फल-सम्बन्ध की दृष्टि से दुर्ज्ञेय—इस प्रकार के दान का इस प्रकार का फल होता है, यह जानना कठिन है, और भी **दुरन्नयो** कठिनाई से प्राप्य, मूर्ख जन दान देकर भी दान का फल नही प्राप्त कर सकते। **नाना होति इतो गति** यहाँ से च्युत होकर परलोक जाने वालो को नाना प्रकार से जन्म ग्रहण करने होते है। **असन्तो निरयं यन्ति,** मूर्ख दुश्शील लोग दान न दे, तथा सदाचार की रक्षा न कर नरक को जाते है। **सन्तो सग्गपरायणा,** पण्डित लोग दान देकर, शील की रक्षा

कर, उपोसथ-व्रत रख, तीनो प्रकार के सुचरित्र[1] पूरे कर स्वर्गगामी होते हैं। महान् स्वर्ग-सुख सम्पत्ति का आनन्द लूटते हैं।

इस प्रकार वोधिसत्त्व (दान-) अनुमोदन कर वर्षा के चार महीने वही रहे। वर्षा-ऋतु समाप्त होने पर ध्यान-प्राप्त कर ध्यान-युक्त ही ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल वैठाया। उस समय ऋषि-गण वुद्धपरिषद थी। मण्डली का नेता तो मैं ही था।

---

[1] काय, वाक् तया वाणी के शुभ कर्म।

दूसरा परिच्छेद

४. असदिस वर्ग

१८१. असदिस जातक

"धनुग्गहो असदिसो " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय महाभिनिष्क्रमण के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन धर्म सभा में बैठे हुए भिक्षु भगवान् की नैष्क्रम्यपारमी की प्रशसा कर रहे थे। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "अमुक बातचीत" "भिक्षुओ! तथागत ने केवल अभी अभिनिष्क्रमण नही किया, पहले भी श्वेत-छत्र छोडकर अभिनिष्क्रमण किया है।" इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पुराने समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने उसकी रानी की कोख में जन्म ग्रहण किया।

सकुशल पैदा हुए उस राजकुमार का, नामग्रहण के दिन नाम रक्खा गया असदिसकुमार। जिस समय वह दौड भाग कर चलने फिरने लगा, एक दूसरे पुण्यवान् प्राणी ने देवी की कोख में जन्म ग्रहण किया। सकुशल पैदा हुए उस कुमार का नाम रक्खा गया ब्रह्मदत्त कुमार।

उन दोनो में से बोधिसत्त्व सोलह वर्ष की आयु होने पर तक्षशिला जा, वहाँ प्रसिद्ध आचार्य्य से तीनो वेद तथा अट्ठारह विद्याएँ सीख, तीर चलाने में बेजोड हो, वाराणसी लौटे। राजा ने मरते समय कहा, असदिसकुमार को राजा तथा ब्रह्मदत्त कुमार को उपराजा बनाना। इतना कह वह मर गया।

उसके मर जाने पर जब बोधिसत्त्व को राज्य दिया जाने लगा, उसने मना कर दिया कि मुझे राज्य की जरूरत नही है। ब्रह्मदत्त का राज्य भिषेक कर दिया गया। बोधिसत्त्व ने कहा कि मुझे यश नही चाहिए, और किसी भी चीज़ की इच्छा नही की। छोटे भाई के राज्य करते हुए वह जैसे साधारण ढग से रहते थे, उसी तरह रहते रहे।

राजा के नौकर चाकरो ने राजा को यह कह कर कि बोधिसत्त्व राज्य चाहते हैं, राजा का मन बोधिसत्त्व की ओर से फेर दिया। उसने उनका विश्वास कर, चित्त में सन्देह पैदा हो जाने के कारण मनुष्यो को आज्ञा दी कि मेरे भाई को पकडो।

बोधिसत्त्व के किसी हितचिन्तक ने उन्हें इसकी सूचना दी। छोटे भाई से क्रुद्ध हो बोधिसत्त्व किसी दूसरे राष्ट्र में चले गए। वहाँ राजद्वार पर पहुँच कहलवाया कि एक धनुर्धारी आया है। राजा ने पूछा कि क्या वेतन लेगा? उत्तर दिया—एक वर्ष के लिए एक लाख। राजा ने आज्ञा दी 'अच्छा आ जाए।' उसके समीप आकर खडे होने पर पूछा—

"तू धनुर्धारी है?"

"देव! हाँ।"

"अच्छा! मेरी सेवा में रह।"

तब से वह राजा की सेवा मे रहने लगे। उन्हे जो वेतन मिलता था, उसे देख पुराने धनुर्धारी बहुत क्रुद्ध हुए कि इसे बहुत मिलता है।

एक दिन राजा उद्यान गया। वहाँ मङ्गल-शिला की शैया के पास कनात तनवा आम के वृक्ष के नीचे महाशय्या पर लेटा। ऊपर देखते हुए उसने एक आम देखा। उसे लगा कि इस आम को चढ कर नही तोडा जा सकता। इसलिए उसने धनुर्धारियो को बुलवा कर पूछा—"क्या इस आम को तीर मार कर गिरा सकते हो?'

'देव! यह हमारे लिए कठिन कार्य्य नही है। लेकिन! देव! हमारा कौशल तो आपने पहले अनेक बार देखा है। जो नया धनुर्धर आया है, वह हमारी अपेक्षा बहुत पाता है। उससे गिरवाएँ।"

राजा ने बोधिसत्त्व को बुलाकर पूछा—"तात! इसे गिरा सकते हो?"

"महाराज! हाँ! थोडी जगह मिलने पर गिरा सकूँगा।"

"जगह कहाँ चाहिए ?"

"जहाँ आपकी शय्या है।"

राजा ने शय्या हटवा कर जगह करा दी। बोधिसत्व हाथ मे धनुप नही रखते थे। वह कपडो के नीचे छिपाए रहते थे। इसलिए कहा कि कनात चाहिए। राजा ने कहा 'अच्छा' और कनात मँगवा कर तनवा दी। बोधिसत्त्व कनात के अन्दर चले गए। वहाँ पहुँच उन्होने ऊपर पहना श्वेत वस्त्र उतार एक लाल कपडा पहना। फिर कच्छ पहन, थैली से जुडने-वाली तलवार निकाल, बाई ओर बाँधी। तब सुनहरी वस्त्र पहन, कमर पर तरकश बाँध, जुडने वाला, मेढे की सीग का बना बडा धनुष ले, मूंगे के रग की डोरी बाँध, सिर पर पगडी धारण की। तेज तीर को नाखून पर घुमाते हुए वह कनात के दो हिस्से कर ऐसे निकला मानो पृथ्वी फाड कर अलकृत नाग-कुमार बाहर आया हो। फिर बोधिसत्त्व तीर चलाने की जगह पर जा, तीर को तैयार कर राजा से बोले—

"महाराज! इस आम को ऊपर जाने वाले तीर से गिराऊँ, अथवा नीचे जाने वाले तीर से ?"

"तात! मैने ऊपर जाने वाले तीर से बहुत गिराते देखा है, लेकिन नीचे जाने वाले तीर से गिराते नही देखा है। नीचे जाने वाले तीर मे गिराएँ।"

"महाराज! यह तीर दूर तक जाएगा। चातुर्महाराजिक भवन तक जाकर स्वय नीचे उतरेगा। जब तक यह नीचे उतरे, तब तक आपको प्रतीक्षा करनी होगी।"

राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

बोधिसत्त्व ने फिर कहा—"महाराज! यह तीर ऊपर जाता हुआ आम की डठल को ठीक बीच में से छेदता हुआ ऊपर जाएगा, और नीचे उतरता हुआ केशाग्रमात्र भी इधर उधर न हो, निश्चित जगह पर लग, आम को लेकर नीचे उतरेगा। महाराज! देखें।"

तब बोधिसत्त्व ने जोर लगा कर तीर छोडा। आम की डठल को बीच में से छेदता हुआ तीर ऊपर चढा। बोधिसत्त्व ने यह समझ कि अब वह तीर चातुर्महाराजिक भवन पहुँचा होगा, पहले तीर से भी अधिक जोर से एक दूसरा तीर चलाया। वह तीर जाकर पहले छोडे हुए तीर के पख मे लगा और उसे लौटा स्वय तावतिंस भवन को चला गया। उसे वहाँ देवताओ ने पकड लिया। जो तीर लौट रहा

था उसके हवा छेदते हुए आने की आवाज़ विजली की आवाज के समान थी।

लोगो ने पूछा—"यह कैसी आवाज़ है?"

वोधिसत्त्व ने उत्तर दिया—"यह तीर के लौटने की आवाज है।"

लोगो को डर लगने लगा कि उनमें से किसी के वदन पर न गिरे। वोधिसत्त्व ने उन्हें आश्वासन दिया कि मैं तीर को जमीन पर गिरने न दूगा।

उतरते हुए तीर ने वाल की नोक भर भी इधर उधर न जा निश्चित स्थान पर गिर आम को तोड़ा। वोधिसत्त्व ने तीर तथा आम को ज़मीन पर गिरने न दे, आकाश में ही रोक कर एक हाथ में तीर और दूसरे में आम लिया।

जनता उस आश्चर्य को देख "ऐसा तो हमने कभी पहले नही देखा" कहते हुए महापुरुष की प्रशसा करने लगी, चिल्लाने लगी, तालियाँ पीटने लगी, अँगुलियाँ चटखाने लगी, और सहस्रो वस्त्रो को ऊपर उछालने लगी। सन्तुष्ट चित्त राज्य-परिषद ने वोधिसत्त्व को एक करोड़ धन दिया। राजा ने भी धन की वर्षा करते हुए इसे वहुत सा धन तथा यश दिया।

इस प्रकार आदृत तथा सत्कृत होकर वोधिसत्त्व के वहाँ रहते समय सात राजाओ ने यह जान कि अव असदिसकुमार वाराणसी में नही है, वाराणसी को घेर लिया और सदेस भेजा कि चाहे राज्य दें, चाहे युद्ध करें। राजा ने मरने से भयभीत हो पूछा—"इस समय मेरा भाई कहाँ है?"

"एक सामन्त राजा की सेवा में है।"

उसने दूत भेजे—यदि भाई नही आएगा, तो मेरी जान नही वचेगी। जाओ, मेरी ओर से उनके चरणों में प्रणाम कर, क्षमा माँग उन्हें लिवा कर आओ।

उन्होंने जाकर वोधिसत्त्व को वह समाचार कहा। वोधिसत्त्व ने उस राजा को पूछ, वाराणसी लौट कर अपने भाई को आश्वासन दिया कि मत डरें। फिर उसने एक तीर पर यह लिखा कि मैं असदिसकुमार आ गया हूँ। दूसरा तीर चला कर सब की जान ले लूँगा। इसलिए जिन्हें जान प्यारी हो, वह भाग जाएँ। उस तीर को उसने अट्टालिका पर चढ़ ऐसे चलाया कि वह जहाँ सातो राजा भोजन कर रहे थे वहाँ सोने की थाली के ठीक वीच में जाकर गिरा। उन अक्षरो को देख मरने के भय से वह सभी भाग गए।

इस प्रकार वोधिसत्त्व ने, छोटी मक्खी जितना खून पीती है उतना खून भी

विना वहाए सातो राजाओ को भगा दिया। फिर छोटे भाई से भेंट कर, काम-भोग के जीवन को त्याग ऋषियो के प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रज्या ग्रहण की। अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर जीवन समाप्त होने पर ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने बुद्ध हुए रहने पर "भिक्षुओ! असदिसकुमार ने सात राजाओ को भगा, सग्राम विजयी हो, ऋषियो के क्रम से प्रव्रज्या ग्रहण की" कह, यह गाथाएँ कही—

धनुग्गहो असदिसो राजपुत्तो महब्बलो।
दूरेपाती अक्खणवेधी महाकायप्पदालनो॥
सब्बामित्ते रणं कत्वा न च किञ्चि विहेठयि।
भातरं सोत्थि कत्वान सञ्ञमं अज्झुपागमि॥

[महावलशाली, वडी वडी चीजो को वीधनेवाले, अचूक निशाना लगाने वाले, धनुर्धारी असदिस राजपुत्र ने जो तीर को दूर गिराता था, विना किसी को कष्ट दिए सभी शत्रुओ से युद्ध कर भाई का उपकार किया। वह स्वय सन्यासी हो गया।]

असदिसो केवल नाम से ही नही, वल, वीर्य्य तथा प्रज्ञा में भी असदृश **महब्बलो** शरीर-वल तथा ज्ञान-वल, दोनो वलो से वलशाली। **दूरेपाती** चातुर्महाराजिक भवन तथा तावतिंस भवन तक तीर पहुँचाने की सामर्थ्य रखने से दूर गिराने वाला। **अक्खणवेधि** अचूक निशाने वाला, अथवा अक्खणा कहते हैं विजली को, जितनी देर एक वार विजली चमकती है, एक वार विजली चमकने के, उतनी ही देर के प्रकाश में सात आठ वार तीर लेकर वीधने वाला। **महाकायपद्दालनो** वडी चीजो को वीधने वाला। चर्म-काय, लकडी-काय, लोह-काय,[1] अयस्-काय, वालू-काय, उदक-काय तथा स्फटिक-काय, यह सात महाकाय हैं। कोई दूसरा चर्म-काय को वीधने वाला केवल भैंस के चर्म को वीधता है। वह सात भैंस-चर्मों को वीधता। दूसरा कोई आठ अगुल मोटे अजीर के तख्ते को, वा चार अगुल मोटे असन वृक्ष के तख्ते को वीधता है। वह एक साथ सौ तख्ते वँधे हो, तो उनको भी बीधता। उसी तरह दो अगुल मोटे ताम्वे के तख्ते, वा अगुल मोटे अयस्-तख्ते को अथवा बालू की गाडी,

---

[1] लोह=ताँबा।

वा तख्तो की गाडी, वा पराल की गाडी मे पीछे से तीर मार कर आगे निकाल देता। पानी में सामान्यतया चार ऋषभ की दूरी पर तीर पहुँचा देता, स्थल मे आठ ऋषभ की दूरी पर। इस प्रकार इन सात कायो को वीधने वाला होने से महाकाय वीधने वाला। **सब्बामित्ते,** सभी शत्रु। **रणं कत्वा,** युद्ध करके भगा दिए। **न च किञ्चि विहेठयि,** किसी एक को भी कष्ट नही दिया। विना कष्ट दिए उनके साथ केवल तीर भेज कर ही युद्ध करके। **सञ्ञाम अज्झुपागमि** शील-सयम रूपी प्रव्रज्या को प्राप्त किया।

इस प्रकार शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय छोटा भाई आनन्द था। असदिसकुमार तो मैं ही था।

१८२. संगामावचर जातक

"संगामावचरो सूरा. . . " यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय नन्द स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

जिस समय शास्ता पहली बार कपिलपुर[1] गए, उन्होने छोटे भाई नन्दकुमार को प्रव्रजित किया। कपिलपुर से निकल क्रमश श्रावस्ती जाते समय आयुष्मान् नन्द भगवान् का पात्र ले शास्ता के साथ साथ चले। जनपदकल्याणि[2] ने सुना तो आधे बिखरे केशो से झरोखे मे से देख कर कहा कि आर्य्यपुत्र शीघ्र लौटना। नन्द जनपदकल्याणि के इस कथन को याद करता हुआ उत्कण्ठा के कारण शासन में मन न लगा सका। वह पाण्डुवर्ण का हो गया, और उसके शरीर में नसें ही नसे दिखाई देने लगी।

---

[1] कपिलवस्तु।
[2] नन्द की भार्या।

शास्ता ने उसका हाल जान सोचा कि मै नन्द को अर्हत-पद पर प्रतिष्ठित करूँ। इसलिए उन्होने उसके रहने के परिवेण में जा वहाँ विछे आसन पर बैठ पूछा—"नन्द! इस शासन मे तेरा मन लगता है वा नही?"

"भन्ते! जनपदकल्याणि में आसक्ति होने के कारण मन नही लगता।"

"नन्द! तू पहले हिमालय मे चारिका करने गया है?"

"भन्ते! नही गया हूँ।"

"तो! आओ चले।"

"भन्ते! मुझे ऋद्धि (-वल) नही है। मै कैसे जाऊँगा?"

"नन्द! मै तुझे अपने ऋद्धि (-वल) से ले जाऊँगा।"

शास्ता ने स्थविर को हाथ से पकड आकाश मार्ग से जाते हुए रास्ते मे जला हुआ खेत दिखाया। वहाँ जले हुए एक ठूँठ पर एक वन्दरी बैठी दिखाई, जिसके कान, नाक और पूँछ कटी थी, जिसके वाल जल गए थे, जिसकी खाल फट गई थी, जिसकी चमडी मात्र वाकी रह गई थी तथा जिसमें से रक्त वह रहा था।

"नन्द! इस वन्दरी को देखते हो?"

"भन्ते! हाँ।"

"अच्छी तरह से प्रत्यक्ष करो।"

फिर उसे ले साठ योजन का मनोशिला-तल, अनवतप्त आदि सात महासर, पाँच महानदियाँ, स्वर्ण-पर्वत, रजत-पर्वत तथा मणि-पर्वत से युक्त सैकडो रमणीय-स्थान और हिमालय-पर्वत दिखा पूछा—

"नन्द! तूने तावतिंस-भवन[1] देखा है?"

"भन्ते! नही देखा?"

"नन्द! आ तुझे तावतिंस भवन दिखाएँ।"

शास्ता उसे वहाँ ले जा पाण्डु-कम्वल-शिला आसन पर बैठे। दोनो देव-लोको के देवताओ सहित देवेन्द्र शक्र-राजा ने आकर प्रणाम किया और एक ओर वैठ गया। उसकी ढाई करोड सेविकाएँ और कवूतरी की तरह लाल पाँव वाली पाँच सौ अप्सराएँ भी आकर, प्रणाम कर एक ओर वैठी। शास्ता ने नन्द को ऐसा

---

[1] त्रयस्त्रिंशत् देवताओ का भवन।

किया कि वह उन पाँच सौ अप्सराओं पर आसक्त हो उन्हें बार बार देखने लगा।

"नन्द! कबूतरी जैसे पाँव वाली इन अप्सराओं को देखता है?"

"भन्ते! हाँ।"

"क्या यह अच्छी लगती है, अथवा जनपदकल्याणि?"

"भन्ते! जनपदकल्याणि की तुलना में जैसे वह लुजी बन्दरी थी, उसी तरह इनकी तुलना में जनपदकल्याणि है।"

"नन्द! अब क्या करेगा?"

"भन्ते! क्या करने से यह अप्सराएँ मिल सकेंगी?"

"श्रमण-धर्म पूरा करने से।"

"यदि भन्ते! आप मुझे इन्हें दिलाने के जिम्मेवार हों तो मैं श्रमणधर्म पूरा करूँगा।"

"नन्द! कर। मैं जिम्मेवार होता हूँ।"

इस प्रकार देवसमूह के बीच में स्थविर ने तथागत को ज़िम्मेवार ठहरा कर कहा—"भन्ते! देर न करें। आएँ चलें। मैं श्रमण-धर्म करूँगा।"

शास्ता उसे ले जेतवन चले आए। स्थविर ने श्रमण-धर्म करना आरम्भ किया।

शास्ता ने धर्मसेनापति सारिपुत्र को सम्बोधन कर कहा—"सारिपुत्र! मेरे छोटे भाई नन्द ने त्रयस्त्रिंशत् देवलोक में देवसमूह के बीच अप्सराएँ दिलाने के लिए मुझे ज़िम्मेवार ठहराया है। इस उपाय से महामोद्गल्यायन स्थविर, महाकाश्यप स्थविर, अनुरुद्ध स्थविर, धर्मभण्डारी आनन्द स्थविर, अस्सी महाश्रावकों तथा प्रायः करके शेष सभी भिक्षुओं को कहा। धर्मसेनापति सारिपुत्र स्थविर ने नन्द स्थविर के पास जाकर कहा—आयुष्मान्! क्या तूने सचमुच त्रयस्त्रिंशत् लोक में देवसमूह के बीच अप्सराएँ मिलें तो श्रमणधर्म करूँगा, इसके लिए तथागत (बुद्ध) को ज़ामिन ठहराया है? यदि ऐसा है तो तेरा ब्रह्मचर्य-जीवन स्त्रियों के लिए है, आसक्ति के लिए है। यदि तू स्त्रियों के लिए श्रमण-धर्म कर रहा है तो तुझ में और उस मजदूर में क्या अन्तर है जो मजदूरी के लिए काम करता है?" इस प्रकार नन्द स्थविर को लज्जित किया, निस्तेज किया। इसी तरह सभी अस्सी महाश्रावकों ने तथा शेष भिक्षुओं ने उस आयुष्मान् को लज्जित किया।

उसे लज्जा आई और निन्दा-भय के कारण उसने दृढ पराक्रम कर विपश्यना-भावना वढा अर्हत्व प्राप्त किया। फिर शास्ता के पास जाकर कहा—"भन्ते! मैं आपको आपकी ज़िम्मेवारी से मुक्त करता हूँ।" शास्ता ने कहा—"नन्द! जिस समय तूने अर्हत्व प्राप्त किया, उसी क्षण मैं अपनी जिम्मेवारी से मुक्त हो गया।"

यह समाचार सुन भिक्षुओ ने धर्मसभा मे वातचीत चलाई—"यह आयुष्मान् नन्द स्थविर उपदेश के कितने अधिकारी है। एक बार उपदेश देने से ही लज्जा तथा निन्दा-भय का ख्याल कर श्रमण-धर्म करके अर्हत्व प्राप्त कर लिया।" शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?"

"अमुक वातचीत।"

"भिक्षुओ, न केवल अभी, पूर्व मे भी नन्द उपदेश का अधिकारी ही रहा है।"

फिर शास्ता ने पूर्व-जन्म की वात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व हाथी-शिक्षक के कुल मे पैदा हुए। वडे होने पर हाथी-शिक्षा के कार्य्य मे निष्णात हो वाराणसी राजा के एक शत्रु-राजा की सेवा मे रहने लगा। उन्होने उसके मङ्गल हाथी को अच्छी तरह सिखाया। राजा ने वाराणसी राज्य को जीतने की इच्छा से वोधिसत्त्व को साथ ले मङ्गल-हाथी पर चढ, बडी भारी सेना के साथ चढाई की। उसने वाराणसी-नरेश के पास सन्देश भेजा—युद्ध करे वा राज्य दें।

ब्रह्मदत्त ने युद्ध करने का निर्णय किया। उसने चारदीवारी के दरवाज़ो पर, अट्टालिकाओ में, नगर-द्वारो पर सेना को बिठा युद्ध करना शुरू किया।

शत्रु-राजा ने मङ्गल हाथी को कवच बाँध, स्वय भी कवच पहन, हाथी के कन्धे पर बैठ तेज अकुश ले हाथी को नगर की ओर बढाया, ताकि नगर (की चारदीवारी) को तोड शत्रु को मार राज्य को हस्तगत कर सके। हाथी ने जब देखा कि उधर से गर्म-गारा आदि फेंका जा रहा है तथा गुलेल और नाना प्रकार के दूसरे प्रहार किए जा रहे हैं तो वह मरने से भयभीत हो पास न जा सकने के कारण लौट पडा।

हाथी-शिक्षक ने उसके पास जाकर कहा—"तात! तू शूर है। सग्राम-

जित है। इस तरह के मौके पर पीछे लौटना तेरे लिये अयोग्य है।" इतना कह हाथी को उपदेश देते हुए यह दो गाथाएं कही—

सगामावचरो सूरो वलवा इति विस्सुतो
किन्नु तोरणमासज्ज पटिक्कमसि कुञ्जर!
ओमद्द खिप्प पळिघं एसिकानि च अव्वह
तोरणानि पमद्दित्वा खिप्पं पविस कुञ्जर।

[कुञ्जर! यह प्रसिद्ध है कि तू सग्राम-जित है, शूर है, वलवान् है। तोरण के पास पहुँच कर तू क्यो पीछे लौटता है? वाधा को जल्दी तोड डाल। स्तम्भो को उखाड फेंक। कुञ्जर! दरवाजो का मर्दन करके तू जल्दी नगर में प्रविष्ट हो।]

इति विस्सुतो तात! तू ऐसे सग्राम को जिसमें प्रहार मिलते हो मर्दन करके विचरने वाला होने से सगामावचरो, दृढ-हृदय वाला होने से सूरो। वल-सम्पन्न होने से वलवा, यह प्रसिद्ध है, ज्ञात है, प्रकट है। तोरणमासज्ज, नगर-द्वार पर पहुँच पटिक्कमसि किस कारण से पीछे हटता है? किस कारण से रुकता है? ओमद्द, मर्दन कर, नीचे गिरा दे। एसिकानि च अव्वह, नगर-द्वार पर सोलह हाथ या आठ हाथ भूमि के अन्दर प्रवेश करके स्थिर रूप से गाड़े हुए स्तम्भ एसिका-स्तम्भ कहलाते हैं। उन्हें जल्दी उखाड फेंकने की आज्ञा देता है। तोरणानि पमद्दित्वा नगर-द्वार के पीछे के चौखट मर्दित कर। खिप्पं पविस, जल्दी से नगर में प्रवेश कर। कुञ्जर, नाग को सम्वोधित करता है।

उसे सुन वोधिसत्त्व ने एक ही उपदेश से रुक, स्तम्भो को सूण्ड से लपेट, 'साँप की छतरियों' की तरह उखाड़, तोरण का मर्दन कर वाधा को उखाड फेंका। फिर नगर-द्वार को तोड़, नगर में प्रवेश कर राजा को राज्य ले दिया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल वैठाया। उस समय हाथी नन्द था। राजा आनन्द था। हाथी-शिक्षक तो मैं ही था।

१८३. वाळोदक जातक

"वाळोदकं अप्परसं निहीनं . " यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय पाँच सौ जूठन खाने वालो के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती मे पाँच सौ श्रावक घर-गृहस्थी का भार अपने स्त्री-बच्चो को सौंप, शास्ता का धर्मोपदेश सुनते हुए एक साथ रहते थे। उनमे कोई स्रोतापन्न थे, कोई सकृदागामी तथा कोई अनागामी, पृथकजन कोई भी नही था। शास्ता को निमन्त्रित करते तो भी वह मिलकर ही निमन्त्रित करते।

उनको दातुन, मुख धोने का जल, सुगन्धि तथा माला आदि देने वाले उनके पाँच सौ छोटे सेवक जूठन खाकर रहते। वह प्रात काल का भोजन खा, सो जाते और उठ कर अचिरवती नदी के किनारे जा कुश्ती लडते। लेकिन वह पाँच सौ उपासक हल्ला न मचाते हुए ध्यान-रत रहते थे।

शास्ता ने उन जूठन खाने वालो का शोर सुनकर पूछा—

"आनन्द! यह शोर कैसा है?"

"भन्ते! यह जूठन खानेवालो का शब्द है।"

"आनन्द! यह जूठन खाने वाले केवल अभी जूठन खाकर शोर नही मचाते, पहले भी शोर मचाते रहे हैं, और यह उपासक भी न केवल अभी शान्त है पहले भी शान्त रहे हैं।"

स्थविर के प्रार्थना करने पर शास्ताने पूर्व-जन्म की बात कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व अमात्य कुल में पैदा हुए। बडे होने पर राजा के अर्थधर्मानुशासक का पद मिला।

एक बार वह राजा यह सुन कि उसके इलाके में उपद्रव हो गया है, पाँच सौ

सैन्धव घोडे तैयार करा, चतुरङ्गिनी सेना के साथ जा, इलाके को शान्त कर वाराणसी लौट आया। उसने आज्ञा दी कि घोडे थके हैं, इसलिए उन्हें कोई नरम चीज़ अगूर का पेय ही पिलाया जाय।

सैन्धव घोड़े सुगन्धित पेय पीकर अश्व-शाला में आ अपनी-अपनी जगह खडे हो गए। उनको जो रस दिया गया था, उसमें बचा हुआ बहुत कसैला हो गया। आदमियो ने राजा से पूछा—"इसका क्या करें?" राजा ने आज्ञा दी—"इसमें पानी मिला, मोटे कपड़े से छान, जो गधे घोड़ो का चारा ढो कर ले गए थे, उन्हें पिला दो।" पिला दिया गया।

गधे उस कसैले पानी को पी मस्त होकर रेंकते हुए राजाङ्गण में घूमने लगे। राजा ने बडी खिडकी खोल राजाङ्गण को देखते हुए पास खडे बोधिसत्त्व को सम्बोधित करके कहा—"मित्र! यह गधे कसैला पानी पीकर मस्त हो रेंकते हुए उछलते फिरते हैं। सिन्धु-कुल में पैदा हुए सैन्धव घोडे सुगन्धित पेय पीकर नि -शब्द बैठे हुए उछलते कूदते नहीं हैं। इसका क्या कारण है?"

यह पूछते हुए राजा ने पहली गाथा कही—

वाळोदकं अप्परसं निहीनं
पीत्वा मदो जायति गद्रभानं
इमं च पीत्वान रसं पणीतं
मदो न सञ्जायति सिन्धवानं

[गधों को थोडे से रस वाला, तुच्छ, बोरे से छना हुआ पानी पीकर भी मद हो जाता है। सैन्धव घोडों को यह श्रेष्ठ रस पीकर भी मद नहीं होता।]

वाळोदकं बोरे से छाना हुआ पानी, वाळूदकं भी पाठ है। निहीनं हीन रस से युक्त, न सञ्जायति, सैन्धव घोडों को मद नही होता है, क्या कारण है?

इसका कारण कहते हुए बोधिसत्त्व ने दूसरी गाथा कही—

अप्पं पिवित्वान निहीनजच्चो
सो मज्जति तेन जनिन्द फुट्ठो

घोरय्हसीलो च कुलम्हि जातो
न मज्जति अग्गरसं पिवित्वा

[राजन्! हीन कुल मे पैदा हुआ, थोडी भी पी लेने से उसके स्पर्श से (ही) मस्त हो जाता है। स्थिर शील वाला तथा श्रेष्ठ कुल में पैदा हुआ, श्रेष्ठ रस पीकर भी मस्त नही होता।]

तेन जनिन्द फुट्ठो, जनेन्द्र! श्रेष्ठ राजन्! वह हीन कुल में पैदा हुआ, अपने कुल की हीनता के कारण **मज्जति,** प्रमाद को प्राप्त होता है, **घोरय्हसीलो,** स्थिर रूप से वहन करने की योग्यता वाला सैन्धव जाति का घोडा, **अग्गरसं** सबसे पहले लिया हुआ अगूर-रस, **पिवित्वा न मज्जति।**

राजा ने बोधिसत्त्व की बात सुन गधो को राजाङ्गण से निकलवाया। फिर उसी के उपदेशानुसार चल दानादि पुण्यकर्म करते हुए कर्मानुसार परलोक सिधारे।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय पाँच सौ गधे यह जूठन खाने वाले थे। पाँच सौ सैन्धव घोडे यह उपासक। राजा आनन्द। अमात्य-पण्डित तो मै ही था।

१८४. गिरिदत्त जातक

"**दूसितो गिरिदत्तेन** " यह शास्ता ने वेळुवन में रहते समय विरोधी पक्ष का साथ देने वाले एक भिक्षु के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

पहले **महिलामुख जातक**[1] में जो कथा आई है, इसकी कथा भी उसी प्रकार

---

[1] **महिलामुख जातक (१ ३ ६)।**

है। शास्ता ने कहा, भिक्षुओ, यह केवल अभी विरोधी पक्ष का साथ देने वाला नही है, पहले भी यह विपक्ष-सेवी ही रहा है। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी मे सामराजा नाम के राजा का राज्य था। उस समय बोधिसत्त्व अमात्यकुल में पैदा हो बडे होने पर उसके **अर्थ-धर्मानुशासक**[1] हुए।

राजा का पण्डव नाम का मङ्गल घोडा था। उसके शिक्षक का नाम था गिरिदत्त। वह लङ्गडा था। रस्सी पकड कर आगे-आगे (लँगडाते हुए) जाने से घोडे ने सोचा कि यह मुझे सिखाना चाहता है। उसके अनुसार चलने से वह लङ्गडा हो गया। उसके लङ्गडेपन की वात राजा तक पहुँचाई गई। राजा ने वैद्यो को भेजा। उन्होने जब देखा कि घोडे को कोई बीमारी नही है, तो उन्होने राजा से कहा कि घोडे के शरीर में कोई रोग तो नही दिखाई देता।

राजा ने बोधिसत्त्व को भेजा "मित्र! जा, क्या कारण है, पता लगा।" उसने जाकर शिक्षक के लङ्गडे होने के कारण ही यह लङ्गडा हुआ है जान, राजा को सूचना दी, और यह दिखाने के लिए कि खराब संगत से ऐसा हो जाता है, यह गाथा कही—

दूसितो गिरिदत्तेन हयो सामस्स पण्डवो
पोराण पकतिं हित्वा तस्सेव अनुविधीयति॥

[राजा नाम के पण्डव घोडे को गिरिदत्त ने खराब कर दिया। वह अपने पहले स्वभाव को छोड कर उसी का अनुकरण करता है।]

हयो सामस्स नामराजा का मङ्गल घोडा, पोराण पकतिं हित्वा अपनी पुरानी प्रकृति, स्वभाव, छोड कर, अनुविधीयति अनुसार सीखता है।

तब राजा ने पूछा—"मित्र! अब क्या करना चाहिए?" बोधिसत्त्व ने

---

[1] लौकिक तथा नैतिक दोनो विषयो में सलाहकार।

उत्तर दिया—अच्छा शिक्षक मिलने से फिर पहले की तरह हो जाएगा। और यह दूसरी गाथा कही—

सचेव तनुजो पोसो सिखराकारकप्पितो,
आतने तं गहेत्वान मण्डले परिवत्तये,
खिप्पमेव पहत्वान तस्सेव अनुविधीयति॥

[यदि सुन्दर आकार-प्रकार वाला, उस घोडे के अनुरूप शिक्षक उसे मुँह से पकड कर घुमाएगा, तो वह जल्दी ही यह (लङ्गडापन) छोड कर उसका अनुकरण करेगा।]

तनुजो, उसका अनुज, अनुकूल उत्पन्न हुआ होने से अनुज। मतलव यह है—महाराज! यदि उस शृगार-युक्त आचारवान् घोडे के अनुरूप आकार-प्रकार वाला **पोसो**। **सिखराकारकप्पितो** शिखर अर्थात् सुन्दर तरह से जिसकी वाल दाढी कढी है। **तं** घोडे को **आनने गहेत्वा** घोडे के घुमाने की जगह पर घुमाए। तो यह शीघ्र ही लँगडेपन को छोड, यह शृङ्गारयुक्त आचारवान् अश्व-शिक्षक मुझे सिखा रहा है, समझ उसका अनुकरण करेगा, उसके अनुसार सीखेगा, स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त होगा।

राजा ने वैसा करवाया। घोडा स्वाभाविक अवस्था में प्रतिष्ठित हुआ। यह सोच कि वोधिसत्त्व पशुओ तक के आशय को समझते है, उन्हें वहुत धन दिया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल वैठाया।

उस समय गिरिदत्त देवदत्त था। घोडा विरोधी पक्ष का साथ देने वाला भिक्षु। राजा आनन्द। अमात्य पण्डित तो मै ही था।

१८५. अनभिरति जातक

"यथोदके आविले अप्पसन्ने ..." यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक ब्राह्मण कुमार के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती मे तीनो वेदो का जानकार एक ब्राह्मण-कुमार बहुत से क्षत्रिय तथा ब्राह्मणकुमारो को वेद पढाता था। आगे चलकर उसने घर बसाया। वस्त्र, अलंकार, दास, दासी, खेत, वस्तु, गौ, भैंस, पुत्र तथा स्त्री आदि की चिन्ता करने से राग, द्वेष और मोह के वशीभूत हो वह अस्थिर-चित्त हो गया। मन्त्रो को क्रम से न पढा सकता था। जहाँ तहाँ मन्त्र समझ में न आते थे।

एक दिन वह बहुत सी सुगन्धियाँ तथा माला आदि लेकर जेतवन गया। वहाँ शास्ता की पूजा कर एक ओर बैठा। शास्ता ने कुशलक्षेम पूछने के बाद कहा—"माणवक! क्या मन्त्र पढाते हो? मन्त्रो का अभ्यास बना है?"

"भन्ते! पहले मुझे मन्त्र अभ्यस्त थे। लेकिन जब से घर बसाया, तब से मेरा चित्त अस्थिर हो गया। इससे मन्त्रो का अभ्यास नही रहा।"

शास्ता ने उसे कहा—"माणवक! न केवल अभी, पहले भी जब तेरा चित्त स्थिर था, तभी तुझे मन्त्रो का अभ्यास था। रागादि से अस्थिर होने के समय तुझे मन्त्र समझ में नही आए।"

उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते हुए बोधिसत्त्व ब्राह्मणो के एक प्रधान कुल मे पैदा हुए। बडे होने पर तक्षशिला में मन्त्र सीख प्रसिद्ध आचार्य्य हो वाराणसी मे बहुत से क्षत्रिय, ब्राह्मण कुमारो को वेद पढाने लगा।

उसके पास एक ब्राह्मण माणवक ने तीनो वेदो का अभ्यास किया। प्रत्येक

पद तक मे असदिग्ध हो, उपाचार्य्य वन मन्त्र सिखाने लगा। वह आगे चलकर गृहस्थ हो गृहस्थी की चिन्ता से अस्थिर-चित्त होने के कारण मन्त्रो का पाठ नही कर सकता था। आचार्य्य के पास जाने पर आचार्य्य ने पूछा—"माणवक ! क्यो तुझे मन्त्र अभ्यस्त है ?"

"गृहस्थ होने के समय से मेरा चित्त अस्थिर हो गया। मै मन्त्रो का पाठ नही कर सकता।"

ऐसा कहने पर आचार्य्य ने "तात ! अस्थिर चित्त होने से अभ्यस्त मन्त्रो का भी प्रतिभान नही होता, स्थिर चित्त रहने पर विस्मृति होती ही नही " कह यह गाथाएँ कही—

यथोदके आविले अप्पसन्ने
न पस्सति सिप्पिकसम्बुकञ्च
सक्खरं वालुकं मच्छगुम्बं
एव आविले हि चित्ते
न पस्सति अत्तदत्थ परत्थं॥
यथोदके अच्छे विप्पसन्ने
सो पस्सति सिप्पिकसम्बुकस्सञ्च
सक्खरं वालुक मच्छगुम्ब
एवं अनाविले हि चित्ते।
सो पस्सति अत्तदत्थ परत्थ॥

[जिस प्रकार गँदले, मैले पानी में सीपी, शख, ककर, बालू तथा मछलियो का समूह नही दिखाई देता, उसी प्रकार अस्थिर चित्त होने पर आत्मार्थ तथा परार्थ नही सूझता।

जिस प्रकार निर्मल, साफ पानी में सीपी, शख, ककर, बालू तथा मछलियो का समूह दिखाई देता है, उसी प्रकार स्थिर चित्त होने पर आत्मार्थ तथा परार्थ सूझता है।]

आविले कीचड से गँदले हुए, **अप्पसन्ने** उसी गँदलेपन के कारण मैले। **सिप्पिकसम्बुक,** सीपी और शख। **मच्छगुम्बं** मछलियो का समूह। **एव आविले,**

इसी प्रकार रागादि से अस्थिर चित्त अत्तदत्थं परत्थं, न आत्मार्थ न परार्थ देखता है—यही अर्थ है। सो पस्सति, इसी प्रकार स्थिर चित्त होने पर वह आदमी आत्मार्थ तथा परार्थ देखता है।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, आर्य(-सत्यों) को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया।

आर्य (-सत्यों) का प्रकाशन समाप्त होने पर ब्राह्मण कुमार स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय माणवक यही माणवक था। आचार्य्य तो मैं ही था।

१८६. दधिवाहन जातक

"वण्णगन्धरसूपेतो " यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय विरोधी पक्ष का साथ देने वाले के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

जो कथा पहले आ चुकी है,¹ वैसी ही कथा है। शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ! बुरे की संगत बुरी होती है, अनर्थकारी होती है। मनुष्यों के लिए कुसंगति के दुष्परिणाम का क्या कहना? पूर्व समय में अस्वादिष्ट, अमधुर नीम के वृक्ष की संगति के कारण मधुर-रस वाला, दिव्य रस वाला, जड़, आम का वृक्ष भी अमधुर, कड़ुआ हो गया।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय काशी राष्ट्र में चार ब्राह्मण भाई ऋषियों के प्रव्रज्या क्रम से प्रव्रजित हो, हिमवन्त प्रदेश में क्रम से

---

¹ देखो गिरिदत्त जातक (१८४)।

पर्णशालाएँ वना रहने लगे। उनमे से जो ज्येष्ठ था वह मर कर शक्र देवता हुआ।

इस वात को जान वह वीच वीच मे सातवे आठवे दिन अपने उन भाइयो की सेवा मे आता। एक दिन उसने ज्येष्ठ तपस्वी को प्रणाम कर एक ओर बैठ पूछा—"भन्ते! आपको किस चीज की ज़रूरत है?"

पाण्डु-रोग से पीडित तपस्वी ने कहा—"मुझे आग की जरूरत है।" उसने उसे छुरी-कुल्हाडी दी। यह छुरी-कुल्हाडी दस्ते के हिसाब से जैसे दस्ता डाला जाता छुरी भी वन जाती, कुल्हाड़ी भी वन जाती। तपस्वी ने पूछा—"इसे लेकर कौन मेरे लिए लकडियाँ लाएगा?"

शक्र ने कहा—"भन्ते! जव आपको लकडी की जरूरत हो इस कुल्हाडी को हाथ से रगड कर कहे, जाओ मेरे लिए लकडियाँ ला कर आग वना दो। यह लकडियाँ लाकर आग वना देगी।"

उसे छुरी-कुल्हाड़ी दे दूसरे से भी जाकर पूछा—"भन्ते! तुम्हे क्या चाहिए?" उसकी पर्णशाला के पास से हाथियो के आने जाने का रास्ता था। उसे हाथियो का उपद्रव था। इसलिए उसने कहा—"मुझे हाथियो के कारण दु ख होता है। उन्हे भगा दे।"

शक्र ने उसे एक ढोल लाकर दिया और कहा कि इस ओर वजाने से तुम्हारे शत्रु भाग जाएँगे, और इस ओर वजाने से मैत्री भाव युक्त हो चारो प्रकार की सेना सहित तुम्हारे पास आ जाएँगे। इतना कह और वह ढोल दे छोटे भाई के पास जा पूछा—"भन्ते! तुम्हें क्या चाहिए?"

उसकी भी पाण्डुरोग की प्रकृति थी। इसलिए उसने कहा कि मुझे दही चाहिए। शक्र ने उसे एक दही का घडा दिया और कहा—"यदि तुम्हारी इच्छा हो तो इसे उलटना। उलटने पर यह महानदी वहाकर, बाढ लाकर तुम्हे राज्य भी लेकर दे सकेगा।" इतना कह कर इन्द्र चला गया।

उस समय से छुरी-कुल्हाडी ज्येष्ठ भाई के लिए आग वना देती। दूसरा जव ढोल वजाता तो हाथी भाग जाते। छोटा दही खाता।

उस समय किसी उजडे हुए गाँव की जगह पर घूमते हुए एक सूअर ने एक दिव्य मणि-खण्ड देखा। उसने उस मणि-खण्ड को मुँह से उठा लिया। उसके प्रताप से वह आकाश में ऊँचे उडा। वहाँ से उसने समुद्र के बीच मे एक द्वीप पर पहुँच सोचा—मुझे यहाँ रहना चाहिए। इसलिए वहाँ उतर एक गूलर के वृक्ष के नीचे

सुख पूर्वक रहने लगा। एक दिन वह उस वृक्ष के नीचे उस मणि-खण्ड को अपने सामने रख सो गया।

काशी राष्ट्र का एक आदमी, जिसे उसके माता-पिता ने निकम्मा समझ घर से निकाल दिया था, एक पत्तन गाँव पर पहुँचा। वहाँ उसने नाविको के पास नौकरी की। नौका पर चढ कर जा रहा था कि समुद्र के बीच में नौका टूट गई। वह एक लकडी के तख्ते पर बैठा उस द्वीप में पहुँचा। वहाँ फलमूल खोजते हुए उसने उस सूअर को सोते हुए देख आहिस्ता से समीप जा मणि-खण्ड उठा लिया। उसके प्रताप से आकाश में उड गूलर के वृक्ष पर बैठ सोचने लगा—यह सूअर इसी के प्रताप से आकाश में घूमता हुआ यहाँ रहता है। मुझे पहले ही इसे मार कर मास खाकर पीछे जाना चाहिए।

उसने एक डण्डा तोड कर उसके सिर पर गिराया। सूअर ने जागकर जब मणि को न देखा तो वह काँपता हुआ इधर-उधर दौड़ने लगा। वृक्ष पर बैठा हुआ आदमी हँसा। सूअर ने उसे देखा तो वृक्ष से सिर दे मारा; और वहीं मर गया।

उस आदमी ने उतर कर आग बनाई और उसका मास पका कर खाया। फिर आकाश में उडकर हिमालय के ऊपर से जाते हुए उस आश्रम को देख ज्येष्ठ तपस्वी के आश्रम पर उतरा। दो तीन दिन रह कर तपस्वी की सेवा की। वहाँ उसने छुरी-कुल्हाडी की महिमा देखी। 'इसे मुझे लेना चाहिए' सोच उसने तपस्वी को मणि-खण्ड की महिमा बता कर कहा—भन्ते! यह मणि-खण्ड लेकर मुझे यह छुरी-कुल्हाडी दें। आकाश में घूमने की इच्छा से उस तपस्वी ने मणि-खण्ड लेकर वह छुरी-कुल्हाड़ी दे दी।

उसने थोड़ी दूर जा छुरी-कुल्हाडी को हाथ से रगड कर कहा—"छुरी-कुल्हाड़ी! तपस्वी के सिर को काटकर मेरा मणि-खण्ड ले आ।" वह जाकर तपस्वी का सिर काट मणि-खण्ड ले आई।

उस आदमी ने छुरी-कुल्हाडी को एक जगह छिपा कर मँझले तपस्वी के पास जा, कुछ दिन रह, ढोल की महिमा देख मणि-खण्ड दे, भेरी ली। फिर पूर्वोक्त प्रकार से उसका भी सिर कटवा छोटे तपस्वी के पास जा, दही के घड़े की महिमा देख पूर्वोक्त प्रकार से ही उसका भी सिर कटवा, मणि-खण्ड, छुरी-कुल्हाड़ी, ढोल तथा दही का घडा ले, आकाश में उड़ कर वाराणसी के पास पहुँचा। वहाँ से उसने वाराणसी के राजा के पास एक आदमी के हाथ पत्र भेजा—युद्ध करें अथवा राज्य दें।

राजा सन्देश सुनते ही विद्रोही को पकडने के लिए निकल पडा। उसने ढोल के एक तल को बजाया। चारो प्रकार की सेना पहुँच गई। जब उसने देखा कि राजा ने अपनी सेना पक्ति-बद्ध कर ली, उसने दही के घडे को छोडा। बडी भारी नदी वह निकली। जनसमूह दही में डूब गया और निकल न सका। छुरी-कुल्हाडी पर हाथ फेर उसे आज्ञा दी कि जाकर राजा का सिर ले आए। छुरी-कुल्हाडी ने जाकर राजा का सिर ला पैरो पर रख दिया। एक भी आदमी हथियार न उठा सका।

उसने बडी सेना के साथ नगर में प्रवेश कर, अभिषेक करवा, दधिवाहन नाम से धर्मपूर्वक राज्य किया।

एक दिन वह महानदी मे जाल की टोकरी फेंक कर खेल रहा था। कण्णमुण्ड सरोवर से देवताओ के उपभोग में आने वाला एक पका आम आकर जाल में लगा। जाल उठाने वालो ने उसे देख कर राजा को दिया। वह बडा था, घडे के प्रमाण का था, गोलाकार था, सुनहरी रग का था। राजा ने बनचरो से पूछा—"यह किसका फल है?" उन्होने बताया—आम्रफल। राजा ने उसे खाकर उसकी गुठली अपने उद्यान मे लगवा, उसे दूध-पानी से सिंचवाया। पेड लगकर उसने तीसरे वर्ष फल दिया। आम के पेड का बहुत सत्कार होने लगा। दूध-पानी से उसे सीचते, सुगन्धित द्रव्यो के पञ्चागुलि-चिन्ह लगाते, और मालाओ के जाल फेंकते। सुगन्धित तेल के दीपक जलाते। यह कीमती कपडे की कनातो से घिरा रहता। इसके फल मधुर तथा सुनहरी रग के होते।

जब दधिवाहन राजा दूसरे राजाओ के पास आम के फल भेजता तो इस डर से कि कही गुठली से पेड न लग जाए वह अकुर निकलने की जगह को कॉटे से बीध देता। वे आम खाकर गुठली को रोपते। पेड न लगता। उन्होने पूछा तो पता लगा कि क्या कारण है।

एक राजा ने अपने माली को बुलाकर पूछा कि क्या वह दधिवाहन राजा के आमो के रस को नष्ट कर उन्हें कडुवा बना सकेगा? उसने कहा—देव! हाँ! "तो जा" कह, उसे हज़ार देकर विदा किया।

उसने वाराणसी पहुँच राजा के पास खबर भिजवाई कि एक माली आया है। राजा ने उसे बुलवाया। उसने जा राजा को प्रणाम कर "तू माली है?" पूछने पर कहा—"देव! हाँ" और अपनी योग्यता का बखान किया। राजा ने आज्ञा दी—जा हमारे माली के साथ रह।

उस समय से वह दोनो जने बाग की सार सभाल रखते। नए माली ने अकाल-फूल फुला कर और अकाल-फल लगाकर उद्यान को रमणीय बना दिया।

राजा ने उस पर प्रसन्न हो पुराने माली को निकाल उसी को उद्यान सौंप दिया। उसने उद्यान को अपने हाथ में जान, आम के वृक्ष के चारो ओर नीम और कड़वी लताएँ लगा दी। क्रम से नीम के वृक्ष बढे। जडो से जडे तथा शाखाओ से शाखाएँ इकट्ठी हो एक दूसरे में मिल गई। उनके अस्वादिष्ट अमधुर रस के ससर्ग से वैसा मधुर फल वाला आम कडुवा हो गया। उसका रस नीम के पत्ते जैसा हो गया। यह देख कि आम के फल कडुवे हो गए, माली भाग गया। दधिवाहन ने उद्यान में जाकर आम का फल खाया, तो मुँह मे डाला हुआ आम का रस उसे नीम की तरह कसैला लगा। उसे सहन न कर सकने के कारण, उसने खखार कर थूक दिया।

उस समय बोधिसत्त्व उस राजा के अर्थधर्मानुशासक थे। राजा ने बोधिसत्त्व को बुलाकर पूछा—

"पण्डित! इस वृक्ष की जो सेवा पहले होती थी, वह अब भी होती है। ऐसा होने पर भी इसका फल कडुवा हो गया है। क्या कारण है?" ऐसा कहते हुए राजा ने पहली गाथा कही—

वण्णगन्धरसूपेतो अम्बायं अहुवा पुरे,
तमेव पूजं लभमानो केनम्बो कटुकप्फलो॥

[यह आम पहले वर्ण और रस से युक्त था। इसकी वही सेवा होती है, तो भी इसका फल कैसे कडुवा हो गया?]

उसका कारण बताते हुए बोधिसत्त्व ने दूसरी गाथा कही—

पुचिमन्दपरिवारो अम्बो ते दधिवाहन!
मूलं मूलेन संसट्ठं साखा साखा निसेवरे
असातसन्निवासेन तेनम्बो कटुकप्फलो॥

[हे दधिवाहन! तेरा आम्र-वृक्ष नीम से घिरा है। उसकी जड, जड़ से तथा शाखाएँ शाखाओं से सटी हैं। कडुवे के साथ होने से आम का फल कडुवा हो गया।]

पुचिमन्दपरिवारो, नीम के वृक्ष से घिरा हुआ साखा साखा निसेवरे, पुचिमन्द

की शाखाएँ आम की शाखाओ को घेरे हैं। **असातसन्निवासेन** अमधुर नीम के साथ रहने से, **तेन** उस कारण से यह **अम्बो कटुकप्फलो**, अस्वादिष्ट-फल, कड़वे फल वाला हो गया।

राजा ने उसकी बात सुन सभी नीम तथा कड़ुवी लताएँ कटवा कर, जड़ें उखड़वा कर, चारो ओर से अमधुर बालू हटवा कर, उसकी जगह मधुर बालू डलवा कर, दुग्ध-जल से, शक्कर-जल से तथा सुगन्धित जल से आम की सेवा कराई।

मधुर रस के ससर्ग से वह फिर मधुर हो गया। राजा ने जो पहला माली था, उसी को उद्यान सौप दिया। आयु भर जी कर वह कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मै ही पण्डित अमात्य था।

१८७. चतुमट्ठ जातक

"**उच्चे विटभिमारुय्ह** " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक बूढे भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन जब दोनो प्रधान शिष्य बैठे एक दूसरे से प्रश्नोत्तर कर रहे थे, एक बूढा उनके पास गया और उन दोनो मे स्वय तीसरा बन बैठ कर बोला—भन्ते! हम भी आपसे प्रश्न पूछेगे। आप भी हमसे अपनी शकाएँ निवारण करे।

स्थविर उसके प्रति घृणा प्रकट करते हुए उठ कर चले गए। स्थविरो से धर्म सुनने के लिए इकट्ठी हुई परिषद, सभा के टूटने पर, उठ कर शास्ता के पास गई। बुद्ध ने पूछा—असमय कैसे आए? उन्होने वह बात कही। शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ, न केवल अभी सारिपुत्र मौद्गल्यायन इनके प्रति जिगुप्सा दिखा बिना कुछ कहे चल देते है, पहले भी चल दिए थे।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व जगल मे वृक्ष-देवता हुए। दो हस-बच्चे चित्तकूट पर्वत से निकल, उस वृक्ष पर बैठ चुगने जाते। फिर लौटते हुए भी वही विश्राम लेकर, चित्तकूट पर्वत पर जाते। समय बीतते-बीतते उनकी बोधिसत्त्व के साथ मैत्री हो गई। आते जाते एक दूसरे से कुशलक्षेम पूछ धार्मिक-कथा कह जाते।

एक दिन उनके वृक्ष के सिरे पर बैठ बोधिसत्व के साथ बातचीत करते हुए एक गीदड ने उस वृक्ष के नीचे खडे हो उन हस-बच्चो के साथ मन्त्रणा करते हुए पहली गाथा कही—

उच्चे विटभिमारुय्ह मन्तयव्हो रहोगता।
नीचे ओरुय्ह मन्तव्हो मिगराजापि सोस्सति॥

[ऊँचे वृक्ष पर चढ कर एकान्त में मन्त्रणा करते हो। नीचे उतर कर बातचीत करो, जिससे मृगराज भी सुने।]

उच्चे विटभिमारुय्ह, स्वभाव से ही ऊँचे वृक्ष की एक ऊँची टहनी पर चढ कर। मन्तयव्हो मन्त्रणा करते हो, बातचीत करते हो। नीचे ओरुय्ह उतर कर नीचे स्थान पर खडे होकर मन्त्रणा करो। मिगराजापि सोस्सति अपने को मृगराज करके कहता है।

हस-बच्चे घृणा कर उठ कर चित्तकूट ही चले गए। उनके चले जाने पर बोधिसत्त्व ने दूसरी गाथा कही—

यं सुपण्णो सुपण्णेन देवो देवेन मन्तये
किं तेत्य चतुमट्ठस्स विलं पविस जम्बुक॥

[पक्षी पक्षी के साथ, देवता देवता के साथ मन्त्रणा करे तो हे चारो दोषो से युक्त गीदड तुझे क्या? तू बिल मे जा।]

सुपण्णो सुन्दर पक्ष, सुपण्णेन दूसरे हस-बच्चे के साथ। देवो देवेन उन दोनो को ही देवता करके कहता है। चतुमट्ठस्स शरीर से, जाति से, स्वर से तथा गुण

से—इन चारो से मृष्ट वा शुद्ध यही शब्दार्थ है, किन्तु भावार्थ है अशुद्ध। लेकिन उसे प्रशंसा के बहाने निन्दा करते हुए यह कहा—चारो बुराइयो वाले तुम गीदड को यहाँ क्या? यही मतलब है। **बिलं पविस** बोधिसत्त्व ने डर दिखा उसे भगाते हुए यह कहा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। बूढा उस समय का शृगाल था। दो हस-बच्चे सारिपुत्र-मौद्गल्यायन थे। वृक्षदेवता तो मै ही था।

१८८. सीहकोत्थुक जातक

"**सीहङ्गुली सीहनखो** " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोकालिक (भिक्षु) के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन दूसरे बहुश्रुत भिक्षुओ के धर्म बाँचते समय कोकालिक की भी धर्म बाँचने की इच्छा हुई—इस प्रकार सारी कथा उक्त प्रकार से ही विस्तार पूर्वक कहनी चाहिए। उस समाचार को जान शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ, न केवल अभी कोकालिक अपनी वाणी के कारण प्रकट हो गया, वह पहले भी जाहिर हो गया था।" इतना कह शास्ता ने अतीत की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व हिमालय प्रदेश में पैदा हुए। वहाँ उन्हें एक शृगाली के साथ सहवास करने के फलस्वरूप एक पुत्र हुआ। उसकी अँगुलियाँ, उसके नख, उसके केसर, उसका रग, उसका आकार-प्रकार पिता की तरह का था। स्वर माता की तरह का।

एक दिन वर्षा हो चुकने पर सिंहो के दहाड दहाड कर सिंह-क्रीडा करते समय, उसने भी उनके बीच में दहाडने की इच्छा से शृगाल की तरह आवाज की। उसकी

वोली सुनकर सव सिंह चुप हो गए। सिंह का अपना एक स्वजातीय पुत्र था। उसने उसकी आवाज सुनकर पूछा—"तात! यह सिंह वर्ण आदि से तो हमारे ही जैसा है, लेकिन इसका स्वर दूसरी तरह का है। यह कौन है?" ऐसा प्रश्न करते हुए उसने यह गाथा कही—

सीहङ्गुली सीहनखो सीहपादपतिट्ठितो
सो सीहो सीहसङ्घम्हि एको नदति अञ्ञथा॥

[सिंह की सी अँगुलियाँ, सिंह के से नाखून और सिंह के से पैरों वाला वह सिंह सिंहों की जमात में दूसरी तरह की आवाज करता है।]

सीहपादपतिट्ठितो, सिंह के पैरों ही पर प्रतिष्ठित। एको नदति अञ्ञथा अकेला दूसरे सिंहों से भिन्न शृगाल-स्वर से वोलता हुआ अन्यथा वोलता है।

इसे सुन वोधिसत्त्व ने कहा—"तात! यह तेरा भाई शृगाली का लडका है। इसका रूप मेरे जैसा है, आवाज माता जैसी।" फिर शृगाल-पुत्र को वुला-कर कहा—"तात! अव से तू जव तक यहाँ रहे अधिक मत वोलना। यदि फिर ऊँचे वोलेगा, तो तेरा शृगाल होना जान लेंगे।" इस प्रकार उपदेश देते हुए दूसरी गाथा कही—

मा त्वं नदि राजपुत्त! अप्पसद्दो वने वस,
सरेन खो तं जानेय्युं न हि ते पेत्तिको सरो॥

[राजपुत्र! तू ऊँचे स्वर से मत वोल। धीरे वोलता हुआ वन में रह। तेरे स्वर से जान लेंगे, (कि तू गीदड है) क्योंकि तेरा स्वर पिता का स्वर नहीं।]

राजपुत्र, मृगराज सिंह का पुत्र। इस उपदेश को सुनकर उसने फिर जोर से वोलने की हिम्मत नहीं की।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल वैठाया। उस समय शृगाल कोकालिक था। स्वजातीय पुत्र राहुल। मृगराज तो मैं ही था।

१८९. सीहचम्म जातक

"नेतं सीहस्स नदितं . . " यह भी शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय कोकालिक (भिक्षु) के ही बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह (भिक्षु) उस समय स्वर से सूत्र पाठ करना चाहता था। शास्ता ने वह समाचार सुन पूर्व-जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व कृषक कुल मे पैदा हो बडे होने पर खेती करके जीविका चलाते थे।

उस समय एक बनिया गधे पर बोझा लाद कर व्यापार करता हुआ घूमता था। वह जहाँ-जहाँ जाता वहाँ वहाँ गधे की पीठ पर से सामान उतार, गधे को सिह की खाल पहना, धान तथा जौ के खेत में छोड देता। खेत की रखवाली करने वाले उसे देख, शेर समझ, पास न जा सकते थे।

एक दिन उस बनिए ने एक ग्राम-द्वार पर ठहर प्रात काल का भोजन पकाते समय गधे को सिंह की खाल पहना जौ के खेत मे छोड़ दिया। खेत की रखवाली करने वालो ने उसे शेर समझ पास न जा सकने के कारण घर जाकर खबर दी। सारे ग्रामवासी आयुध ले, शङ्ख फूकते तथा ढोल बजाते हुए खेत के समीप पहुँच चिल्लाने लगे। गधे ने मृत्युभय से डर गधे की तरह आवाज की। वह गधा है जान बोधिसत्त्व ने पहली गाथा कही—

नेतं सीहस्स नदितं न व्यग्घस्स न दीपिनो,
पारुतो सीहचम्मेन जम्मो नदति गद्रभो ॥

[न यह शेर की आवाज है, न व्याघ्र की, न चीते की, शेर की खाल पहन कर दुष्ट गधा चिल्लाता है।]

जम्मो, नीच।

ग्रामवासियो ने भी यह जान कि वह गधा है, उसकी हड्डियाँ तोडते हुए उसे पीटा और सिंह की खाल लेकर चले गए। उस वनिए ने आकर जब विपत्ति में पडे उस गधे को देखा तो दूसरी गाथा कही—

चिरम्पि खो तं खादेय्य गद्रभो हरितं यवं,
पारुतो सीहचम्मेन रवमानोव दूसयि॥

[सिंह की खाल पहन कर तू चिरकाल तक हरे जौ खाता रहा। हे गधे तूने बोल कर ही अपने को नष्ट किया।]

त निपात मात्र है। यह गद्रभो अपने गधेपन को छिपा सीहचम्मेन पारुतो चिरम्पि देर तक हरित यव खादेय्य अर्थ है। रवमानोव दूसयि अपने गधे की आवाज करके ही अपने को विपत्ति मे डाला। इसमें सिंह की खाल का दोष नही।

उसके ऐसा कहते ही गधा वहीं गिर कर मर गया। वनिया भी उसे छोडकर चला गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय गधा कोकालिक था। पण्डित काश्यप तो मैं ही था।

१९०. सीलानिसंस जातक

"पस्स सद्धाय सीलस्स " यह शास्ता ने जेतवन मे रहते समय एक श्रद्धावान् उपासक के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रद्धावान् प्रसन्नचित्त आर्य-श्रावक था। एक दिन जेतवन जाते समय उसने शाम को अचिरवती नदी के किनारे पर जाकर देखा कि नाविक नौकाओ को किनारे पर छोड धर्म सुनने के लिए चले गए। वह घाट पर नौका न देख, बुद्ध की याद मे मन को प्रसन्न कर नदी मे उतर पडा। पाँव पानी में नही भीगे। पृथ्वी तल पर चलते हुए की तरह बीच मे पहुँचने पर उसने लहर को देखा। उसकी बुद्ध-भक्ति मन्द पड गई थी, इससे उसके पैर डूबने लगे।

उसने बुद्ध-भक्ति को दृढ कर पानी पर ही चल, जेतवन में प्रवेश कर शास्ता को प्रणाम किया। वह एक ओर बैठा। शास्ता ने उसके साथ बातचीत करते हुए पूछा—"उपासक! क्या रास्ते मे आते हुए अधिक कष्ट तो नही हुआ?" "भन्ते! बुद्ध की याद से मन को प्रीति-युक्त कर, पानी के तल पर प्रतिष्ठित हो मैं पृथ्वी को मर्दन करते हुए की तरह आया हूँ।" "उपासक! न केवल तूने ही बुद्ध के गुणो का स्मरण कर रक्षा प्राप्त की है, पहले भी समुद्र मे नौका के टूटने पर उपासको ने बुद्ध के गुणो की याद कर रक्षा प्राप्त की।" इतना कह, उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में काश्यप सम्यक् सम्बुद्ध के समय मे एक स्रोतापन्न आर्य-श्रावक, एक नाई गृहस्थ के साथ नौका पर चढा। उस नाई की भार्य्या ने उस नाई को उपासक को सौपा—आर्य! इसके सुख दु ख का भार आप पर है।

सातवें दिन वह नौका समुद्र के बीच मे टूट गई। वे दोनो जने एक तख्ते से चिमटे, एक द्वीप पर पहुँचे। वह नाई पक्षियो को मार कर, पका कर खाने के समय उपासक को भी देता। वह उपासक 'मुझे नही चाहिए' कह कर न खाता। वह सोचता त्रिरत्न की शरण को छोड कर हमारे लिए यहाँ कोई दूसरा सहारा नही। उसने त्रिरत्न के गुणो का स्मरण किया।

उसके स्मरण करते करते उस द्वीप के नागराज ने अपने शरीर की महान् नौका बनाई। समुद्र-देवता नौका चलाने वाला बना। नौका सात रत्नो से भरी गई। तीन मस्तूल थे। इन्द्रनीलमणि की जोतें। सोने के चप्पू। समुद्र-देवता ने नौका में खडे होकर घोषणा की—क्या कोई जम्बूद्वीप जाने वाला है? उपासक बोला—हम जाएँगे? तो आ नौका पर चढ। उसने नौका पर चढ नाई को आवाज दी। समुद्र देवता ने कहा—तुझे ही जाना मिलेगा। इसे नही। क्या कारण है? कारण यही है कि यह शीलवान् नही है। मै नौका तेरे लिए लाया हूँ। इसके लिए नही।

"रहो। मै अपने दिए दान का, रक्षा किए गए शील का, तथा भावना की गई भावना का इसे हिस्सेदार बनाता हूँ।"

"स्वामी! मै अनुमोदन करता हूँ।"

"अब मै चलूगा" कह देवता ने उसे भी चढा, दोनो जनो को समुद्र में से निकाल, नदी से वाराणसी पहुँचा अपने प्रताप से उन दोनो के घर पर धन पहुँचा दिया। फिर, 'पण्डित की ही संगति करनी चाहिए। यदि इस नाई की इस उपासक के साथ संगति नही होती, तो यह समुद्र के बीच मे ही नष्ट हो जाता' कहते हुए देवता ने पण्डित की संगति की महिमा बखानते हुए यह दो गाथाएँ कही—

पस्स सद्धाय सीलस्स चागस्स च अयं फलं
नागो नावाय वण्णेन सद्धं वहति उपासकं॥
सब्भिरेव समासेथ सब्भि कुब्बेथ सन्थवं
सतं हि सन्निवासेन सोत्थिं गच्छति नहापितो॥

[श्रद्धा, शील और त्याग के इस फल को देखो। नाग नौका की शकल बना कर श्रद्धावान् उपासक का वहन करता है। सत्पुरुष के साथ रहे, सत्पुरुष के ही साथ दोस्ती करे। सत्पुरुष के साथ रहने से नाई कल्याण को प्राप्त होता है।]

पस्स किसी विशेष को सम्बोधन न कर केवल देखने को कहता है। **सद्धाय** लौकिक तथा लोकोत्तर श्रद्धा से। शील मे भी इसी प्रकार। **चागस्स** दान का त्याग तथा चित्तमैल का त्याग। **अयं फल** यह फल। गुण या परिणाम अर्थ है। अथवा त्याग के फल को देखो। यह नाग नौका की शकल मे, यह अर्थ भी समझना चाहिए। **नावाय वण्णेन** नौका के आकार से। **सद्धं** तीन रत्नो मे प्रतिष्ठित श्रद्धा। **सब्भिरेव** पण्डितो के ही साथ। **समासेथ** एक साथ रहे, निवास करे यही अर्थ है। **कुब्बेथ,** करे। **सन्थवं** मित्रता, तृष्णा-पूर्ण दोस्ती तो किसी से न करनी चाहिए। **नहापितो**—नाई गृहस्थ। **न्हापितो** यह भी पाठ है।

इस प्रकार समुद्र देवता आकाश मे ठहर, धर्मोपदेश दे तथा नसीहत कर, नागराजा को साथ ले अपने विमान को ही चला गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, आर्य-सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। आर्य-सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर उपासक सकृदागामीफल मे प्रतिष्ठित हुआ। तब स्रोतापन्न उपासक परिनिर्वाण को प्राप्त हुआ। नागराजा सारिपुत्र। समुद्रदेवता तो मैं ही था।

दूसरा परिच्छेद

५. रुहक वर्ग

१९१. रुहक जातक

"अम्भो रुहक! छिन्नापि ..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पहली स्त्री से लुभाए जाने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह कथा आठवें परिच्छेद की इन्द्रिय जातक[1] में आएगी। शास्ता ने उस भिक्षु को कहा—"भिक्षु! यह स्त्री तेरा अनर्थ करने वाली है। पहले भी इसने तुझे राजा सहित परिषद के बीच में लज्जित कर घर से बाहर निकलने के योग्य नहीं रक्खा।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसकी पटरानी की कोख से पैदा हुए। बड़े होने पर, पिता के मरने के बाद राजा बन धर्म से राज्य करने लगे। उनका रुहक नाम का पुरोहित था। रुहक की पुराणी नाम की ब्राह्मणी थी।

राजा ने ब्राह्मण को, साज से सजाकर एक घोड़ा दिया। वह उस घोड़े पर चढ़ कर राजा की सेवा में जाता था। उसे अलंकृत घोड़े की पीठ पर आते जाते देख कर जहां तहां खड़े आदमी घोड़े की प्रशंसा करते थे—ओह! अश्व का रूप कैसा है! ओह! अश्व कितना सुन्दर है!

---

[1] इन्द्रिय जातक (४२३)।

उसने घर आ प्रासाद पर चढ भार्य्या को बुलाया—भद्रे ! हमारा घोडा बडा मुन्दर लगता है। दोनो ओर खडे आदमी हमारे घोडे की ही प्रशसा करते है।

वह ब्राह्मणी थोडी धूर्त थी। उसने उसे कहा—आर्य ! तू घोडे के सौन्दर्य्य के कारण को नही जानता। यह घोडा अपने साज के कारण शोभा देता है। यदि तू भी अश्व की तरह सुन्दर लगना चाहता है, तो घोडे का साज पहन, बाजार में उतर, अश्व की तरह पैरो की टाप देते हुए, जाकर राजा को देख। राजा भी तेरी प्रशसा करेगा। आदमी भी तेरी ही प्रशमा करेंगे।

उस पगले ब्राह्मण ने उसकी वात सुन, अमुक कारण से यह ऐसा कहती है न समझ, उसकी वात मे विश्वास कर वैसा किया। जो जो देखते वे वे मजाक करते हुए कहते—आचार्य्य ! खूब शोभा देते हैं।

राजा ने उससे पूछा—"आचार्य्य ! क्या पित्त प्रकोप हुआ है ? क्या तू पगला हो गया है ?" इस प्रकार लज्जित किया।

उस समय ब्राह्मण ने सोचा 'मैंने अनुचित किया।' वह लज्जित हुआ। ब्राह्मणी से क्रुद्ध हो, 'उसने मुझे राजा सहित सेना के बीच में लज्जित किया' सोच उसे पीट कर घर मे निकालने के लिए घर गया। धूर्त ब्राह्मणी को जब मालूम हुआ कि वह उस पर क्रोधित होकर आया है, तो वह पहले ही छोटे दरवाजे से निकल राज-महल मे जा पहुँची। वह चार पाँच दिन वही रही। राजा ने वह समाचार जान पुरोहित को बुला कर कहा—

"आचार्य्य ! स्त्री से दोष होता ही है। ब्राह्मणी को क्षमा करना चाहिए।" उसे क्षमा दिलाने के लिए पहली गाथा कही—

अम्भो रुहक छिन्नापि जिया संधीयते पुन,
सन्धीयस्सु पुराणिया मा कोधस्स वस गमि॥

[भो रुहक ! धनुष की डोरी टूट कर फिर भी जुड जाती है। पुराणि के साथ मेल कर लो। क्रोध के वशीभूत मत हो।]

सक्षेपार्थ—**भो रुहक ! छिन्नापि** धनुष की डोरी जुड ही जाती है। इसी प्रकार तू भी पुराणी के साथ **सन्धीयस्सु कोधस्स वसं मा गमि**।

उसे सुनकर रुहक ने दूसरी गाथा कही—

विज्जमानासु मरुवासु विज्जमानेसु कारिसु
अञ्ञ जिय करिस्सामि अलञ्ञेव पुराणिया॥

[मरुव नाम की छाल के रहते और बनाने वालो के रहते मै दूसरी डोरी बनवा लूगा। मुझे पुरानी की जरूरत नही।]

महाराज! मरव छाल और डोरी बनाने वाले मनुष्यो के रहते दूसरी डोरी बनवा लूगा। इस टूटी हुई पुरानी डोरी की मुझे जरूरत नही। ऐसा कह उसे निकाल दूसरी ब्राह्मणी को ले आया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, आर्य-सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय पुराणि पूर्व-भार्य्या थी। एहक उद्विग्न-चित्त भिक्षु था। वाराणसी राजा तो मै ही था।

१९२. सिरिकालकण्णि जातक

"इत्थी सिया रूपवती..." यह सिरिकालकण्णि जातक महाउम्मग जातक[1] में आयगी।

---

[1] महाउम्मग जातक ५४६।

१९३. चुल्लपदुम जातक

"अयमेव सा अहमपि सो अनञ्ञो ." यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते हुए, उद्विग्नचित्त भिक्षु के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

यह कथा उम्मदन्ति जातक[1] में आयेगी। शास्ता ने पूछा—"भिक्षु! क्या सचमुच उद्विग्न-चित्त है?"

"भगवान्! सचमुच।"

"तुझे किसने उद्विग्न किया है?"

"भन्ते! मैं एक अलङ्कृत सजीधजी स्त्री को देख कर आसक्त होने के कारण उद्विग्न हुआ हूँ।"

"भिक्षु! स्त्री अकृतज्ञ होती है, मित्रद्रोही होती है, कठोर हृदया होती है। पुराने पण्डित दाहिनी जाँघ का लहू पिलाकर भी, जीवनदान देकर स्त्री का चित्त न जीत सके।"

शास्ता ने यह कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उसकी पटरानी की कोख से पैदा हुए। नामकरण के दिन उसका नाम **पदुमकुमार** रक्खा गया। उसके और छ भाई थे। यह सातो जने क्रम से वडे हो, विवाह कर राजा के मित्रो की तरह रहने लगे।

एक दिन राजा ने राजागण में खडे होकर उन्हे बडे ठाट बाट से राजा की सेवा मे आते देख, सोचा—यह मुझे मारकर राज्य भी ले सकते हैं। इस शका से सशकित

---

[1] उम्मदन्ति जातक (५२७)।

थे। उसने उन्हे बुलाकर कहा—तात! तुम इस नगर मे नही रह सकते। दूसरी जगह जाओ। मेरे मरने पर आकर कुल-प्राप्त राज्य ग्रहण करना।

वे पिता का कहना मान रोते पीटते घर गए। अपनी अपनी स्त्रियो को ले, जहाँ कहीं जाकर जीवन बिताने के लिए नगर से निकले। रास्ते चलते हुए वे एक कान्तार मे पहुँचे। वहाँ खाना पीना न मिला। भूख न सह सकने के कारण उन्होने सोचा, जीते रहेंगे तो स्त्रियाँ मिलेगी। सब से छोटे भाई की स्त्री को मारकर उसके तेरह टुकडे कर उनका मास खाया।

बोधिसत्त्व ने अपने और भार्य्या के लिए मिले दो हिस्सो मे से एक रख छोडा, एक को दोनो ने खाया। इस प्रकार छ दिनो मे छ स्त्रियो का मास खाया गया। बोधिसत्त्व ने एक एक कर के छ दिनो मे छ टुकडे रख छोडे। सातवे दिन 'बोधिसत्त्व की भार्य्या को मारेंगे' कहने पर बोधिसत्त्व ने वे छ टुकडे उन्हे देकर कहा कि आज यह खाओ। कल देखेंगे।

जिस समय वह मास खाकर सो रहे थे, बोधिसत्त्व अपनी भार्य्या को लेकर भाग निकले। उसने थोडी दूर चलकर कहा स्वामी! चल नही सकती हूँ। बोधिसत्त्व उसे कन्धे पर लेकर सूर्य्योदय के समय कान्तार से निकले। सूर्य्योदय होने पर उसने कहा—स्वामी! प्यास लगी है। बोधिसत्त्व ने कहा—भद्रे! पानी नही है। लेकिन बार बार मांगने पर बोधिसत्त्व ने अपनी दाहिनी जाँघ में तलवार का प्रहार कर कहा—भद्रे! पानी नही है। यह मेरी दाहिनी जाँघ का लहू पी ले। उसने वैसा किया।

वे क्रम से महानदी पर आए। पानी पी, नहा कर फलमूल खाते हुए, आराम करने की एक जगह पर विश्राम किया। फिर गङ्गा के मोड की जगह पर आश्रम बना कर रहने लगे।

गङ्गा के ऊपर के हिस्से में किसी राज्यापराधी चोर को हाथ पाँव तथा नाक काट कर डोंगे मे बिठा गङ्गा में बहा दिया गया था। वह बहुत चिल्लाता हुआ उस जगह आ लगा। बोधिसत्त्व ने उसकी करुणापूर्ण रोने पीटने की आवाज सुन 'मेरे रहते कहीं दुःख प्राप्त प्राणी नष्ट न हो' सोच गङ्गा किनारे जा, उसे उठा आश्रम पर ला, कषाय से धो लेप कर उसके जख्मों की चिकित्सा की। उसकी भार्या दुष्टा ने उस पर मूरती हुई फिरती थी—इस प्रकार के लुञ्जे को गङ्गा में डालकर इसकी सेवा करते हैं।।।

उसके जखम ठीक होने पर वोधिसत्व उसे और अपनी भार्य्या को आश्रम पर छोड़, जगल मे फलमूल लाकर उसका तथा भार्य्या का पालन करने लगे।

उनके इस प्रकार रहते हुए वह स्त्री उस लुञ्जे से आकृष्ट हो गई। उसने उसके साथ अनाचार किया। फिर किसी उपाय से वोधिसत्व को मार डालना चाहिए, सोच बोली—"स्वामी! मैंने, तुम्हारे कन्धे पर वैठे हुए जिस समय कान्तार से निकल रही थी इस पर्वत को देख कर एक मिन्नत मानी थी—हे पर्वत-निवासी देवता! यदि मै और मेरा स्वामी सकुशल जीते निकल जाएँगे तो मै तुम्हारी वलि चढाऊँगी। सो, वह देवता जिसकी मिन्नत मानी थी तग करता है। उसकी वलि दे।"

वोधिसत्त्व उसकी माया नही जानते थे। उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार किया, और वलिकर्म तैयार कर उससे वलि-पात्र उठवा पर्वत पर चढे।

उस स्त्री ने वोधिसत्त्व से कहा—"स्वामी! देवता से भी वढकर तुम ही उत्तम देवता हो। इसलिए पहले तुम्हे ही वन-पुष्पो से पूज, प्रदक्षिणा कर, वन्दना कर पीछे देवता की वलि दूगी।" उसने वोधिसत्त्व को प्रपात की ओर कर वन-पुष्पो से पूजा की। फिर प्रदक्षिणा कर, प्रणाम करने वाली की तरह हो, पीछे जा, पीठ मे धक्का दे, प्रपात से गिरा दिया। 'शत्रु की पीठ देख ली' सोच सन्तुष्ट हो, वह पर्वत से उतर लुञ्जे के पास गई। वोधिसत्त्व भी प्रपात के किनारे से पर्वत से गिरते हुए, एक गूलर के वृक्ष पर पत्तो से ढके कण्टकरहित गुम्व में जा लगे। पर्वत से नीचे उतरने मे असमर्थ थे। वह गूलर खाकर शाखाओ के वीच में वैठे रहे।

एक गोह, जिसका शरीर वडा था, पर्वत के नीचे से उस गूलर के पेड पर चढ फल खाता था। वह उस दिन वोधिसत्त्व को देखकर भाग गया। अगले दिन आया और एक ओर से फल खाकर चला गया। इस प्रकार वार वार आने से जब वह वोधिसत्त्व का विश्वासी हो गया तो उसने पूछा—"तू इस जगह कैसे आया?" "इस कारण से" वताने पर उसने कहा—"तो मत डर।" उसने वोधि-सत्त्व को अपनी पीठ पर लिटा, उतार कर जगल से निकल, महामार्ग पर ले जाकर कहा—"इस मार्ग से जा।" वोधिसत्त्व को उत्साहित कर वह स्वय जगल मे चला गया।

वोधिसत्त्व एक गामडे मे जाकर रहने लगे। वहाँ रहते हुए, पिता के मरने

का समाचार मिला। वह वाराणसी पहुँच कुलागत राज्य पर अधिकार कर, पदुम-राजा नाम से, दस राजधर्मों से विरुद्ध न जा धर्म से राज्य करने लगे। चारों नगर-द्वारों पर, नगर के बीच में तथा महल के द्वार पर छ दानशालाएँ बनवा प्रति दिन छ हजार खर्च कर दान देते।

वह पापी स्त्री भी उस लुञ्जे को कन्धे पर बिठा जंगल से निकल बस्तियों में भिक्षा माँग कर यागु-भात इकट्ठा कर उस लुञ्जे को पोसती थी। उससे यदि कोई पूछता कि यह तेरा क्या लगता है, तो वह उत्तर देती—"मैं इसके मामा की लड़की हूँ और यह मेरी बुआ का लड़का है। मैं इसीको दी गई। सो मैं अपने स्वामी को—जो इस तरह दण्डित भी किया गया है—उठाए लिए फिर कर, भीख माँग कर पालती हूँ।" मनुष्यों ने समझा—यह पतिव्रता है। उसके बाद और भी यवागु-भात देने लगे। दूसरों ने कहा—"तू इस तरह मत घूम। पदुमराज वाराणसी में राज्य करता है। सारे जम्बुद्वीप को उद्वेलित कर दान देता है। वह तुझे देखकर प्रसन्न होगा। बहुत धन देगा।" उन्होंने उसे एक बेत की टोकरी दी और कहा कि अपने स्वामी को इसमें बिठा कर ले जा। वह अनाचारिणी उस लुञ्जे को बेत की टोकरी में बिठा, टोकरी को उठा वाराणसी पहुँच वहाँ दानशालाओं में खाती हुई घूमने लगी।

बोधिसत्त्व अलंकृत हाथी के कन्धे पर बैठ, दानशाला जा, वहाँ आठ या दस को अपने हाथ से दान देकर घर जाते। वह अनाचारिणी उस लुञ्जे को टोकरी में बिठा, टोकरी उठा, राजा के रास्ते में खड़ी हुई। राजा ने देखकर पूछा—"यह क्या है?"

"देव! एक पतिव्रता है।"

उसे बुलवा कर, पहचान कर, लुञ्जे को टोकरी से निकलवा कर पूछा—"यह तेरा क्या लगता है?"

"देव! यह मेरी बुआ का लड़का है। कुलवालों ने मुझे इसे सौंपा है। यह मेरा स्वामी है।"

मनुष्य उसके भीतर के भेद को न जानते थे। वे उस अनाचारिणी की प्रशंसा करने लगे—अरे! पतिव्रता!

राजा ने फिर उससे पूछा—"तुझे कुलवालों ने इसे सौंपा है? यह तेरा स्वामी है?"

उसने राजा को न पहचानते हुए बीर बन कर कहा—"देव ! हाँ।"

तब राजा ने उससे पूछा—"क्या यह बाराणसी राजा का पुत्र है? क्या तू पदुम-कुमार की भार्य्या अमुक राजा की अमुक नाम की लडकी नही है ? मेरी जाँघ का लहू पीकर इस लुञ्जे के प्रति आसक्त हो मुझे प्रपात से गिरा दिया। वह तू अब अपने सिर पर मृत्यु ले मुझे मरा समझ यहाँ आई है ? मै जीता हूँ।" इतना कह, अमात्यो को बुला राजा ने कहा—"अमात्यो ! क्या मैंने तुम लोगो के पूछने पर यह नही कहा था कि मेरे छ छोटे भाइयो ने छ स्त्रियो को मार कर मास खाया। लेकिन मैंने अपनी स्त्री को सकुशल गङ्गा किनारे लाकर एक आश्रम मे रहते हुए, एक दण्ड-प्राप्त लुञ्जे को (पानी से) निकाल सेवा की। उस स्त्री ने उस आदमी के प्रति आसक्त हो मुझे पर्वत पर से गिरा दिया। मै अपने मैत्रीचित्त के कारण नही मरा। जिसने मुझे पर्वत से गिराया था, वह कोई और नहीथी, यही दुराचारिणी थी। जो दण्ड-प्राप्त लुञ्जा था, वह भी कोई दूसरा न था, यही था।"

यह कह यह गाथाएँ कही—

अयमेव सा अहमपि सो अनञ्ञो,
अयमेव सो हत्थच्छिन्नो अनञ्ञो
यमाह कोमारपती ममन्ति,
वज्झित्थियो नत्थि इत्थीसु सच्चं॥
इमञ्च जम्मं मुसलेन हन्त्वा,
लुद्दं छवं परदारूपसेविं;
इमिस्सा च नं पापपतिब्बताय,
जीवन्तिया छिन्दथ कण्णनासं॥

[यही वह है। मै भी वही हूँ। यह हाथ कटा भी वही है। दूसरा नही है जिसे 'यह मेरा कोमारपति' कहती है। स्त्रियाँ वध्य करने योग्य हैं। उनमे सत्य नही होता।

इस नीच-लोभी, मृतसदृश, पराई स्त्री का सेवन करने वाले को मूसल से मार डालो। और इस पापी पतिव्रता के जीते जी (इसके) कान नाक काट डालो।]

यमाह कोमारपती ममं, जिसे यह मेरा कोमारपति, जिसे मै कुल द्वारा सौंपी

गर्न, स्वामी कहती है। **अयमेव सो न अञ्ञो। यमाहु कुमारपति,** यह भी पाठ है। यही पुस्तकों में लिखा है। उसका भी यही अर्थ है। वचन-भेद मात्र है। जो राजा ने कहा, वही यहाँ आ गया। **वज्झित्थियो,** स्त्रियाँ वध्य होती हैं, वध करने के योग्य ही होती हैं। **नत्थि इत्थीसु सच्च,** इनका स्वभाव एक नहीं रहता। **इमञ्च जम्मं,** यह उन दोनों को दण्ड आज्ञा देने के लिए कहा।

जम्म, नीच। **मुसलेन हन्त्वा,** मूसल से मारकर, पीटकर, हड्डियों को तोड़कर, चूर्ण विचूर्ण करके। **लुद्द** कठोर। **छव** निर्गुण होने से निर्जीव मृत-सदृश। **इमिस्सा च न,** इसमें नं निपातमात्र है। इसके **पापपतिव्वताय** अनाचारिणी दुश्शीला के **जीवन्तियाव कण्ण नास छिन्दथ।**

बोधिसत्त्व ने क्रोध को न सम्भाल सकने के कारण उनको ऐसे दण्ड की आज्ञा दे दी, लेकिन वैसा करवाया नहीं। क्रोध को कम करके उसने टोकरी को उसके सिर पर ऐसे कसकर बँधवाया कि वह उतार न सके। फिर उस लुञ्जे को उसमे बिठवा उसे अपने राज्य से निकलवा दिया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय छ भाई कोई स्थविर थे। भार्य्या चिञ्चामाणविका थी। लुञ्जा देवदत्त था। गोहराज आनन्द था। पदुमराज तो मैं ही था।

१९४. मणिचोर जातक

"न सन्ति देवा पवसन्ति नून . ." यह शास्ता ने वेळुवन मे विहार करते समय बध का प्रयत्न करने वाले देवदत्त के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने यह सुन कर कि देवदत्त मेरे बध के लिए प्रयत्न करता है, "भिक्षुओ, न केवल अभी, पहले भी देवदत्त ने मेरे बध का प्रयत्न किया ही है, लेकिन सफल नही हुआ" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व वाराणसी के समीप के एक गामडे में गृहपति कुल में पैदा हुए। उसके बडे होने पर उसके लिए वाराणसी से एक लडकी लाई गई। वह प्रिया थी, सुन्दर थी, दर्शनीय थी देवअप्सराओ के समान वा पुष्पित लता के समान। वह मस्त किन्नरी की तरह क्रीडा करने वाली थी। नाम था सुजाता। पतिव्रता थी, सदाचारिणी थी और थी कर्त्तव्यपरायणा। पति की सेवा तथा सास ससुर की सेवा वह नित्य करती थी। वह बोधिसत्त्व को प्रिय थी, मन के अनुकूल थी।

वे दोनो प्रसन्नतापूर्वक एक चित्त हो मेल से रहते थे।

एक दिन सुजाता ने बोधिसत्त्व से कहा—मै मातापिता को देखना चाहती हूँ। उसने कहा—भद्रे! अच्छा पर्य्याप्त पाथेय तैयार करो। खाद्य-पकवान पकवा, खाद्य आदि गाडी पर रखवा, गाडी को हाकता हुआ वह स्वय आगे बैठा। वह पीछे बैठी। नगर के समीप पहुँच गाडी खोल नहा कर उन्होने खाया। फिर बोधिसत्त्व ने गाडी जोती और स्वय आगे बैठा। सुजाता कपडे बदल अलकृत हो पीछे बैठी। जिस समय गाडी ने नगर मे प्रवेश किया, उसी समय हाथी के कन्धे पर बैठ नगर की प्रदक्षिणा करता हुआ वाराणसी नरेश उधर आ निकला।

सुजाता उतर कर गाड़ी के पीछे पीछे पैदल चल रही थी। राजा ने उसे देख, उसके सौन्दर्य पर ऐसे मुग्ध हो मानो वह उसकी आँखें खींच ले रहा हो, एक अमात्य को भेजा कि पता लगाए कि उसका स्वामी है वा नहीं? उसने जाकर पता लगाया कि उसका स्वामी है और आकर निवेदन किया—"देव! यह विवाहिता है। गाड़ी में बैठा हुआ आदमी उसका स्वामी है।"

राजा अपनी आसक्ति को हटाने में असमर्थ था। उसने कामातुर हो सोचा, किसी उपाय से इस आदमी को मरवा कर स्त्री को लूँगा, और एक आदमी को बुलाकर कहा—"अरे! यह चूड़ामणि ले जाकर रास्ते चलते हुए की तरह जाते हुए उस उस आदमी की गाड़ी में फेंक कर आओ।" उसे चूड़ामणि देकर भेजा। उसने 'अच्छा' कह उसे ले जाकर गाड़ी में डाल आकर कहा—"देव! मैंने डाल दी।" राजा ने कहा—मेरी चूड़ामणि खो गई। लोगों ने शोर मचा दिया। राजा ने आज्ञा दी—"सब दरवाजों को बन्द कर, रास्ते रोक कर चोर का पता लगाओ।" राजपुरुषों ने वैसा ही किया। नगर एक सिरे से क्षुब्ध हो गया। एक जन आदमियों को लेकर बोधिसत्व के पास जा बोला—"अरे! गाड़ी रोको। राजा की चूड़ामणि खो गई है। गाड़ी की तलाशी लेंगे।" उसने गाड़ी की तलाशी लेते हुए अपनी रक्खी हुई मणि उठा, बोधिसत्व को पकड़, 'यह मणि-चोर है' कहते हुए हाथों और पावों से पीट, उसके हाथों को पिछली तरफ बाँध उसे ले जाकर राजा के सामने पेश किया—यह मणि-चोर है। राजा ने आज्ञा दी—इसका सिर काट डालो।

राजपुरुष उसे चार चार बेंतों से पीटते हुए नगर से बाहर ले गए।

सुजाता भी गाड़ी छोड़ दोनो हाथ उठा 'मेरे कारण स्वामी इस दुःख को प्राप्त हुए' कह रोती पीटती उसके पीछे पीछे चली। राज पुरुषो ने बोधिसत्व का सिर काटने के लिए उसे सीधे लिटाया। उसे देख सुजाता ने अपने सदाचार का ध्यान कर "मालूम होता है इस लोक में कोई ऐसा देवता नहीं है जो पापी दुस्साहसियो को सदाचारियो पर अत्याचार करने से रोक सके" कह, रोते पीटते पहली गाथा कही—

न सन्ति देवा पवसन्ति नून
नहनून सन्ति इध लोकपाला
सहसा करोन्तानं असञ्ञतानं
नहनून सन्ति पटिसेधितारो॥

[असयमी, दुस्साहसिक दुष्कर्म करने वालो को रोकने वाले न देवता है (यदि है तो समय पर चले जाते है) न ही यहाँ लोकपाल है—उन्हे रोकने वाला कोई नही ।]

न सन्ति देवा इस लोक मे सदाचारियो की देख भाल करने वाले तथा पापियो को रोकने वाले देवता नही है । **पवसन्ति नून,** अथवा इस प्रकार के मौको पर वह निश्चय से प्रवास को चले जाते हैं। **इध लोकपाला,** इस लोक मे लोकपाल कहलाने वाले श्रमण-ब्राह्मण भी सदाचारियो पर अनुग्रह करने वाले नह नून सन्ति । **सहसा करोन्तानं असञ्ञतानं,** सहसा विना विचारे दुस्साहस, कठोर-कर्म करने वाले दुराचारियो को । **पटिसेधितारो** इस प्रकार का कर्म मत करो । ऐसा करना नही मिलेगा—इस प्रकार रोकने वाले नही ।

इस प्रकार उस सदाचारिणी के रोने पीटने से देवेन्द्र शक्र का आसन गर्म हुआ । शक्र ने सोचा कौन है जो मुझे मेरे आसन से गिराना चाहता है ? पता लगाने से जव उसे यह कारण मालूम हुआ तो उसने सोचा—'वाराणसी नरेश अत्यन्त निर्दयता का काम कर रहा है । सदाचारिणी सुजाता को कष्ट दे रहा है । अव मुझे पहुँचना चाहिए ।' उसने देवलोक से उतर अपने प्रताप से हाथी की पीठ पर जाते हुए उस पापी राजा को उतार सीस काटने की जगह पर सीधा लिटा, वोधिसत्व को उठा सव अलकारो से अलङ्कृत कर राजवेप पहना हाथी के कन्धे पर विठाया । फरसा उठा कर खडे सीस काटने वालो ने राजा का सिर काट दिया । सीस कट जाने पर ही उन्हें पता लगा कि यह राजा का सिर था ।

देवेन्द्र शक्र ने दिखाई देने वाले शरीर से वोधिसत्त्व के पास जा वोधिसत्त्व को राज्याभिपेक तथा सुजाता को अग्रमहिपीपद दिलवाया । अमात्य तथा ब्राह्मण-गृहपति आदि देवेन्द्र शक्र को देखकर प्रसन्न हुए —अधार्मिक राजा मारा गया । अव हमें शक्र का दिया हुआ धार्मिक राजा प्राप्त हुआ । शक्र ने भी आकाश में खडे हो कहा—"यह शक्र का वनाया हुया राजा अव से धर्मपूर्वक राज्य करेगा । यदि राजा अधार्मिक होता है तो वर्पा असमय होती है, समय पर नही होती है, अकाल-भय तथा शस्त्र-भय वना ही रहता है ।" इस प्रकार उपदेश देते हुए शक्र ने दूसरी गाथा कही—

अकाले वस्सति तस्स काले तस्स न वस्सति
सग्गा च चवतिट्ठाना ननु सो तावता हतो॥

[उसके राज्य में असमय वर्षा होती है, समय पर नहीं होती। वह स्वर्ग-स्थान से गिरता है। निश्चय से वह उतने से मारा गया।]

अकाले, अधार्मिक राजा के राज्य करने के समय—अनुचित समय पर खेती के पकने के समय या कटाई तथा मर्दन करने के समय देव **वस्सति**। काले, योग्य समय पर, वोने के समय, खेती छोटी रहने के समय वा दाना पडने के समय **न वस्सति**। **सग्गा च चवतिट्ठाना**, स्वर्ग-स्थान से अर्थात् देवलोक से। अधार्मिक राजा अप्रति-लाभ होने से देवलोक से च्युत होता है। यह भी अर्थ है कि स्वर्ग में भी राज्य करता हुआ अधार्मिक राजा वहाँ से च्युत होता है। **ननु सो तावता हतो**, निश्चय से वह अधार्मिक राजा इससे मारा जाता है। अथवा "नु" यहाँ एकातवाची है, न केवल वह इतने से मारा गया, वल्कि वह आठ महा नरकों में तथा सोलह उस्सद नरकों मे चिरकाल तक मारा जाएगा।

इस प्रकार शक्र जन-समूह को उपदेश दे अपने देवस्थान को ही चला गया। वोधिसत्त्व ने भी धर्म से राज्य करते हुए स्वर्ग-मार्ग को भरा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल वैठाया। उस समय अधार्मिक राजा देवदत्त था। शक्र अनुरुद्ध था। सुजाता राहुल-माता थी। शक्र का वनाया हुआ राजा तो मैं ही था।

१९५. पब्बतूपत्थर जातक

"पब्बतूपत्थरे रम्मे ..." यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय कोशल राजा के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

कोशल राजा के एक अमात्य ने रनिवास को दूषित किया। राजा ने खोज करके उसे ठीक ठीक जान शास्ता को निवेदन करने की इच्छा से जेतवन जा, शास्ता को प्रणाम कर पूछा—"भन्ते! हमारे रनिवास को एक अमात्य ने दूषित किया है। उसको क्या करना चाहिए?" शास्ता ने पूछा—"महाराज! वह अमात्य उपकारी है? वह स्त्री प्रिया है?"

"हाँ भन्ते! बहुत उपकारी है। सारे राजकुल को सँभालता है। वह स्त्री भी मेरी प्रिया है।"

"महाराज! अपने उपकारी सेवको के प्रति तथा प्रिया स्त्री के प्रति बुरा व्यवहार नही किया जा सकता। पूर्व समय मे भी राजा लोग पण्डितो की बात सुन उपेक्षावान् हो गए थे।"

उनके याचना करने पर शास्ता ने पूर्व जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व अमात्य-कुल मे पैदा हो बडे होने पर उस राजा के अर्थधर्मानुशासक हुए। उस राजा के एक अमात्य ने रनिवास दूषित किया। राजा ने उसका ठीक ठीक पता लगा सोचा—"अमात्य भी मेरा बहुत उपकारी है। यह स्त्री भी प्रिया है। मैं इन दोनो को नष्ट नही कर सकता। पण्डित-अमात्य से प्रश्न पूछकर यदि सहन करने योग्य होगा तो सहन कर लूगा! नही सहन करने योग्य होगा तो नही सहन करूँगा।" उसने बोधिसत्त्व को बुला, आसन दे पूछा—

"पण्डित! प्रश्न पूछता हूँ।"

"महाराज! पूछे, उत्तर दूगा।"

राजा ने प्रश्न पूछते हुए यह पहली गाथा कही—

पब्बतूपत्थरे रम्मे जाता पोक्खरणी सिवा
त सिगालो अपापासि जान सीहेन रक्खित॥

[पर्वत के रम्य दामन मे मुन्दर पुष्करिणी रही। यह जानते हुए भी कि इसे सिंह ने अपने लिए सुरक्षित रक्खा है, उसमें श्रृगाल ने पानी पिया।]

पब्बतूपत्थरे हिमालय पर्वत के दामन मे फैले हुए आगन मे **जाता पोक्खरणी सिवा**, शीतल, मधुर, जल वाली पुष्करिणी पैदा हुई। कमल से ढकी हुई नदी भी पुष्करिणी ही। **अपापासि**, अप उपसर्ग है अपासि अर्थ है। **जान सीहेन रक्खितं**, यह पुष्करिणी सिंह के परिभोग की है, सिंह के द्वारा रक्षित है, उस श्रृगाल ने यह जानते हुए ही कि यह सिंह द्वारा रक्षित है जल पिया। तू क्या समझता है? श्रृगाल सिंह का भय न मान कर इस प्रकार की पुष्करिणी मे जल पिए?

बोधिसत्त्व ने यह समझ कर कि निश्चय से इसके रनिवास को किसी अमात्य ने दूषित किया होगा, दूसरी गाथा कही—

पिपन्ति वे महाराज! सापदानि महानदिं
न तेन अनदी होति खमस्सु यदि ते पिया॥

[महाराज! महानदी पर सभी प्राणी जल पीते है। उससे नदी अनदी नही होती। यदि वह प्रिया है, तो क्षमा करें।]

सापदानि न केवल गीदड ही किन्तु चीते, कुत्ते, खरगोश, बिल्ले, हिरन आदि सभी प्राणी कमल से ढकी हुई होने के कारण पुष्करिणी कहलाने वाली नदी पर पानी पीते ही हैं। **न तेन अनदी होति**, नदी पर दो पैरो वाले, चार पैरो वाले साँप-मत्स्य आदि सभी प्यासे पानी पीते है। उससे वह न अनदी होती है, न जूठी। क्यो? सब के लिए साधारण होने से। जिस प्रकार नदी जिस किसी के पानी पीने से

दूषित नही होती उसी प्रकार स्त्री भी कामुकता के वशीभूत हो अपने पति के अतिरिक्त किसी दूसरे से सहवास करने से अनिस्त्री नही होती। क्यो ? सब के लिए साधारण होने से। न हि स्त्री जूठी होती है। क्यो ? जल-स्नान से शुद्ध हो सकने के कारण। **खमस्सु यदि ते पिया,** यदि वह स्त्री तुझे प्रिया है तथा वह अमात्य बहुत उपकारी है, उन दोनो को क्षमा कर। उपेक्षावान् हो।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने राजा को उपदेश दिया। राजा ने उसका उपदेश मान 'फिर ऐसा पापकर्म न करना' कह दोनो को क्षमा किया। उसके बाद से वह विरत रहे।

राजा भी दानादि पुण्य कर्म करते हुए मरने पर स्वर्ग सिधारे। कोशल नरेश भी यह धर्मदेशना सुन उन दोनो को क्षमा कर उपेक्षावान् हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा आनन्द था। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

१९६. वालाहस्स जातक

"ये न काहन्ती ओवाद " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक उत्कण्ठित भिक्षु के बारें मे कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उस भिक्षु से पूछा—"क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है ?" "सचमुच" कहने पर पूछा—किस कारण से उत्कण्ठित है ? उसने उत्तर दिया—"एक अलङ्कृत स्त्री को देखकर कामुकता का भाव उत्पन्न हो जाने के कारण।" शास्ता ने कहा—"भिक्षु ! स्त्रियाँ अपने रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श तथा हासविलास से पुरुषो को आसक्त कर, जब उन्हें अपने वश मे हुआ समझती है, तो उनका शील

और धन नष्ट कर डालती है। इसीसे यह यक्षिणियाँ कहलाती है। पहले भी यक्षिणियो ने स्त्रियो के हासविलास से एक काफले के पास जा, व्यापारियो को आकृष्ट कर, अपने वशीभूत कर, फिर दूसरे आदमियो को देख पहले के सब आदमियो को मार डाला। और दोनो दाढो से रक्त बहाते हुए, उन्हें मुरमुरे की तरह खा डाला।" इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल मे ताम्रपर्णी द्वीप मे सिरीसवत्यु नाम का यक्षो का नगर था। वहाँ यक्षिणियाँ रहती थी। जिन व्यापारियो की नौकाएँ टूट जाती, उनके आने पर वे सजसजा कर खाद्य-भोज्य लिवा, दासियो से घिरी हुई तथा गोद में बच्चो को उठाए व्यापारियो के पास जाती। उन पर यह प्रकट करने के लिए कि वे मनुष्य-निवास में आए है, जहाँ तहाँ कृषि, गोरक्षा आदि करते हुए आदमी, गौएँ, कुत्ते आदि दिखाती। व्यापारियो के पास जाकर कहती—यह यवागु पीएँ। भोजन करें। खाद्य खाएँ। व्यापारी न जानने के कारण उनका दिया खा लेते।

उनके खा-पीकर विश्राम करने के समय उनसे कुशल क्षेम पूछती—"आप कहाँ के रहने वाले है? कहाँ से आए है? कहाँ जाएँगे? यहाँ किस कार्य्य से आए?" वे कहते कि नौका टूट जाने के कारण इधर आये। तब वे कहती—"आर्यो! अच्छा! हमारे स्वामियो को भी नौका पर चढ कर गए तीन वर्ष हो गए। वे मर गए होगे। आप लोग भी व्यापारी ही है। हम आपकी चरण-सेविकाएँ होकर रहेंगी।"

इस प्रकार वे उन व्यापारियो को स्त्रियो के हासविलास से आसक्त कर यक्ष-नगर ले जाती। यदि पहले से पकडे हुए आदमी (अभी जीवित) होते, तो उन्हें जादू की जजीर से बाध कारा-गृह मे डाल देती। जब उन्हें अपने निवास-स्थान पर ऐसे आदमी जिनकी नौकाएँ टूट गई हो, न मिलते तो उधर कल्याणि (नदी) और इधर नाग द्वीप—इन दोनो के बीच में समुद्र तट पर घूमती। यही उनका स्वभाव था।

एक दिन पाच सौ ऐसे व्यापारी जिनकी नौकाएँ टूट गई थी, उनके नगर के पास उतरे। वे उनके पास गईं और उन्हे लुभा कर यक्ष-नगर ला पहले जिन आदमियो को पकडा था, उन्हे जादू की जजीर मे बाध कारा-गृह में डाल दिया।

ज्येष्ठ यक्षिणी ने ज्येष्ठ व्यापारी को शेष यक्षिणियो ने शेष व्यापारियो को, इस प्रकार उन पाँच सौ यक्षिणियो ने पाच सौ व्यापारियो को अपना पति बनाया।

वह ज्येष्ठ यक्षिणी रात को जिस समय व्यापारी सोए रहते उठ कर जा कारा-गृह मे आदमियो को मार उनका मास खाकर आती। वाकी भी उसी तरह करती। ज्येष्ठ यक्षिणी जिस समय मनुष्य-मास खाकर लौटती उसका शरीर ठडा होता। ज्येष्ठ व्यापारी ने उसका स्पर्श किया तो उसे पता लगा कि यह यक्षिणी है। उसने सोचा यह पाच सौ भी यक्षिणिया ही होगी। हमे भागना चाहिए।

अगले दिन प्रात काल ही मुह धोने जाकर उसने वाकी व्यापारियो को कहा—"यह मानवी नही है। यह यक्षिणियाँ है। दूसरे नौका-टूटे व्यापारियो के आने पर उन्हे स्वामी वना हमे खा डालेगी। हम यहाँ से भागे।"

उनमे से ढाई सौ वोले—"हम इन्हे नही छोड सकते। तुम जाओ। हम नही भागेगे।"

ज्येष्ठ व्यापारी अपनी वात मानने वाले ढाई सौ जनो को ले उनसे डर कर भाग गया।

उस समय वोधिसत्त्व वादल-अश्व की योनि मे पैदा हुए थे। सारा रग श्वेत। सिर कौए जैसा। वाल मूज के से। ऋद्धिमान। आकाशचारी। वह हिमालय से आकाश मे चढ कर ताम्रपर्णी द्वीप जा वहाँ ताम्रपर्णी तालाब के कीचड मे अपने से उगे हुए धान खाकर लौटता। इस प्रकार जाते हुए वह दया से प्रेरित हो तीन वार मानुषी-वाणी वोलता—"कोई जनपद जाने वाला है? कोई जनपद जाने वाला है?"

उन्होने उसकी वात सुन, पास जा हाथ जोड कर कहा—"स्वामी! हम जनपद जाएँगे।"

"तो मेरी पीठ पर चढो।"

कुछ चढे। कुछ ने पूँछ पकडी। कुछ हाथ जोडे खडे ही रहे। वोधिसत्त्व अपने प्रताप से सभी ढाई सौ व्यापारियो को, जो हाथ जोडे खड़े थे उन तक को जनपद ले गए। वहा उन्हे उन उनके स्थान पर पहुँचा स्वय अपने निवास-स्थान को गए। वह यक्षिणियाँ भी औरो के आने पर उन ढाई सौ व्यापारियो को जो पीछे रह गए थे मार कर खा गई।

शास्ता ने भिक्षुओ को सम्वोधन कर कहा—"भिक्षुओ, जैसे उन यक्षिणियो

के वशीभूत हुए व्यापारी विनाश को प्राप्त हुए, वादल-अश्व-राज का कहना मानने वाले अपने अपने स्थान पर पहुँच गए, इसी प्रकार वुद्धो के उपदेश के अनुसार न चलने वाले भिक्षु, भिक्षुणियाँ तथा उपासक और उपासिकाएँ भी चारो नरको तथा पाच प्रकार के वन्धन, दण्ड आदि से महान् दु ख को प्राप्त होते है। उपदेश मानने वाले तीन कुल-सम्पत्तियाँ,[1] छ काम-स्वर्ग तथा वीस ब्रह्मलोको को प्राप्त हो, अमृत महानिर्वाण को साक्षात् कर महान् सुख का अनुभव करते है।" अभिसम्वुद्ध होने पर यह गाथाएँ कही—

ये न काहन्ति ओवादं नरा वुद्धेन देसितं,
व्यसनं ते गमिस्सन्ति रक्खसीहीव वाणिजा ॥१॥
ये च काहन्ति ओवादं नरा वुद्धेन देसितं,
सोत्थि पारगमिस्सन्ति वालाहेनेव वाणिजा ॥२॥

[जो वुद्ध के उपदेश के अनुसार आचरण नही करते वे उसी तरह दु ख को प्राप्त होते है जैसे राक्षसियो द्वारा व्यापारी। जो वुद्ध के उपदेश के अनुसार चलते हैं वे उसी तरह सकुशल पार पहुँच जाते है जैसे वादल (के अश्व) की सहायता से व्यापारी।]

ये न काहन्ति जो नही करेंगे। **व्यसन ते गमिस्सन्ति,** वे महान् दु ख को प्राप्त होगे। **रक्खसीहीव वाणिजा,** राक्षसियो द्वारा लुभाए गए व्यापारियो की तरह। **सोत्थि पारगमिस्सन्ति,** विना किसी विघ्न के निर्वाण को प्राप्त करेंगे। **वालाहेनेव वाणिजा** वादल के घोडे के 'आओ' कहने पर उसका कहना मानने वाले व्यापरियो की तरह। जैसे वह समुद्र पार जाकर अपने अपने स्थान पर पहुँच गए, उसी प्रकार वुद्धो का उपदेश मानने वाले ससार को पार कर निर्वाण को प्राप्त होते है। अमृत महानिर्वाण मे धर्मदेशना को समाप्त किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-) सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल वैठाया। सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर उत्कण्ठित-चित्त भिक्षु स्रोतापत्ति

---

[1] ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य।

फल मे प्रतिष्ठित हुआ। और भी वहुतो को स्रोतापत्ति, सकृदागामी, अनागामी तथा अर्हत फल प्राप्त हुआ।

उस समय वादल अश्व-राज का कहना मानने वाले ढाई सौ व्यापारी वुद्ध-परिषद थे। वादल अश्व-राज तो मैं ही था।

१९७. मित्तामित्त जातक

"न नं उम्हयते दिस्वा "यह शास्ता ने श्रावस्ती में विहार करते समय एक भिक्षु के वारे में कही—

क. वर्तमान कथा

एक भिक्षु ने यह समझ कि मेरे ले लेने पर मेरा उपाध्याय वुरा नही मानेगा, विश्वास कर उसके रखे हुए एक वस्त्र-खण्ड को ले उससे जूता रखने की थैली वना ली। पीछे उपाध्याय को कहा। उपाध्याय ने पूछा—"क्यो लिया?"

"मेरे लेने से आप क्रोधित नही होगे, आपका ऐसा विश्वास करके।"

उपाध्याय ने क्रोध से उठकर पीटा—"तो मेरा विश्वास क्या है?"

उसकी वह करनी भिक्षुओ में प्रकट हो गई। एक दिन भिक्षुओ ने धर्मसभा मे वातचीत चलाई—"आयुष्मानो! अमुक तरुण-भिक्षु ने उपाध्याय का विश्वास कर वस्त्र-खण्ड ले उससे जूता रखने की थैली वनाई। उपाध्याय ने 'तेरा मेरा क्या विश्वास है' कह क्रोध से उठकर पीटा।"

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, वैठे क्या वातचीत कर रहे हो?"

"अमुक वातचीत।"

"भिक्षुओ, यह भिक्षु न केवल अभी अपने शिष्य का अविश्वासी है, पहले भी अविश्वासी ही था।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व काशी देश में ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर ऋषियो के प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रजित हो अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर गण के नेता हो वह हिमालय-प्रदेश मे रहने लगे।

उन ऋषियो के समूह में एक तपस्वी था, जो बोधिसत्त्व का कहना न मान एक हाथी के बच्चे को जिसकी माँ मर गई थी, पालता था। बड़े होने पर वह उस तपस्वी को मार जगल में चला गया। उसका शरीर-कृत्य कर ऋषियो ने बोधिसत्त्व को घेर कर पूछा—"भन्ते! मित्र या अमित्र कैसे पहचाना जा सकता है?"

बोधिसत्त्व न 'इस इस बात से' कहते हुए यह गाथा कही—

न नं उम्हयते दिस्वा न च नं पटिनन्दति
चक्खूनि चस्स न ददाति पटिलोमञ्च वत्तति ॥१॥
एते भवन्ति आकारा अमित्तस्मिं पतिट्ठिता
येहि अमित्तं जानेय्य दिस्वा सुत्वा च पण्डितो ॥२॥

[न उसे देखकर मुस्कराता है, न प्रसन्न होता है। न उसकी ओर आँख करता है, और उलटा बर्तता है। ये अमित्र के रगढग है, उन्हे देखकर सुनकर पण्डित आदमी को अपने अमित्र को पहचानना चाहिए]

न नं उम्हयते दिस्वा जो जिसका अमित्र होता है वह उसे देखकर न मुस्कराता है, न हंसता है, प्रसन्नाकार प्रदर्शित नही करता। **न च नं पटिनन्दति** उसकी बात सुनकर उसे आनन्द नही होता, 'अच्छा' कहा है, 'सुभाषित है' (कह) अनुमोदन नही करता। **चक्खूनि चस्स न ददाति,** आँख से आँख मिलाकर सामने नहीं देखता, आंख दूसरी ओर ले जाता है। **पटिलोमञ्च वत्तति** उसका कार्य-कर्म अथवा वाणी का कर्म भी उसे अच्छा नही लगता, विरोधी भाव ही ग्रहण करता है। **आकारा,** बातें। **येहि अमित्त** जिन बातो से वे बाते। **दिस्वा च सुत्वा च पण्डितो** आदमी को चाहिए कि पहचान करे कि यह मेरा अमित्र है। इससे विरुद्ध बातो से मित्र-भाव जानना चाहिए।

इस प्रकार बोधिसत्त्व मित्र तथा अमित्र के लक्षण कह ब्रह्मविहारो की भावना कर ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय हाथी को पालने वाला तपस्वि शिष्य था। हाथी उपाध्याय था। ऋषिगण बुद्ध-परिषद् थी। गण का नेता तो मैं ही था।

१९८. राध जातक[1]

"पवासा आगतो तात "यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उत्कण्ठित-चित्त भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने पूछा—"भिक्षु, क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है?"

"भन्ते! सचमुच।"

"किस कारण से?"

"एक अलङ्कृत स्त्री को देखकर कामुकता के कारण।"

"भिक्षु, स्त्री की जाति की सँभाल नही की जा सकती। पूर्व समय में द्वार-पाल रखकर हिफाज़त करने वाले भी हिफाज़त नही कर सके। तुझे स्त्री से क्या? मिलने पर भी उनकी हिफाजत नही की जा सकती।" इतना कह शास्ता ने पूर्व जन्म की कथा कही—

---

[1] राध जातक (१४५)।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व तोते की योनि में पैदा हुए। उसका नाम था राध। उसके छोटे भाई का नाम था पोट्ठपाद। उन दोनो को ही, जब वह छोटे ही थे एक चिडीमार ने पकड कर वाराणसी के एक ब्राह्मण को दिया। ब्राह्मण ने उन्हें पुत्र की तरह पाला। उसकी ब्राह्मणी दुराचारिणी थी, उसकी हिफाज़त नही की जा सकती थी।

ब्राह्मण ने व्यापार करने के लिए जाते समय उन तोते-बच्चो को बुलाकर कहा—"तात! मै व्यापार के लिए जाता हूँ। समय असमय तुम अपनी माता की करनी पर नज़र रखना। दूसरे आदमी का अन्दर आना जाना देखना" इस प्रकार वह उन तोते-बच्चो को ब्राह्मणी सौंप कर गया।

वह उसके बाहर जाने के समय से ही अनाचार करने लगी। रात को भी, दिन को भी आने जाने वालो की सीमा न रही। उसे देख पोट्ठपाद ने राध से कहा—"ब्राह्मण इस ब्राह्मणी को हमें सौंप कर गया। यह पाप-कर्म करती है। मै इसे मना करूँ?" राध ने कहा—"मत बोल।" वह उसका कहना न मान बोला—"अम्म! तू पापकर्म किस लिए करती है?"

उसने उसे मार डालने की इच्छा से कहा—"तात! तू मेरा पुत्र है। अब से न करूँगी। जरा, यहाँ आ।" इस प्रकार प्यार करती हुई की तरह उसे बुलाकर, आने पर पकड लिया। फिर 'तू मुझे उपदेश देता है। अपनी हैसियत नही देखता?' कह, गरदन मरोड मारकर चूल्हे मे फेंक दिया। ब्राह्मण ने लौट कर, विश्राम ले बोधिसत्त्व से कहा—"तात राध! तुम्हारी माता अनाचार करती थी वा नही करती थी?" पूछते हुए यह पहली गाथा कही—

> पवासा आगतो तात! इदानि न चिरागतो,
> कच्चिन्नु तात! ते माता न अञ्ञमपसेवति॥

[तात! मैं अब प्रवास से लौट आया हूँ। मै अभी आ रहा हूँ। तात! क्या तेरी माता दूसरे पुरुष का सेवन करती थी?]

मै तात पवासा आगतो, वह मै अभी आया हूँ। **न चिरागतो,** इसीसे समाचार न जानने के कारण पूछता हूँ। **कच्चिन्न तात ते माता अञ्ञं** पुरुष को **न उपसेवति** ?

राध ने 'तात ! पण्डित सत्य या असत्य अकल्याणकर बात कभी नही कहते' प्रकट करते हुए दूसरी गाथा कही—

न खो पनेतं सुभणं गिरं सच्चूपसंहितं,
सयेथ पोट्ठपादोव मम्मुरे उपकूसितो ॥

[वह सच्ची बात सुभापित वाणी नही है, जिसके कहने से पोट्ठपाद की तरह गर्म राख मे भुने।]

गिरं वचनं। वचन को ही जैसे अब 'गिरा' कहते हैं, वैसे ही तब 'गिर' कहते थे। तोता-बच्चा लिङ्ग का ख्याल न कर ऐसा कहता है। लेकिन इसका अर्थ यह है—तात ! पण्डित द्वारा सच्ची, यथार्थ, तथ्य-युक्त स्वाभाविक बात भी अकल्याणकर होने से **न सुभणं।** अकल्याणकर सच्ची बात कहने से **सयेथ पोट्ठपादोव मुम्मरे उपकसितो** जैसे पोट्ठपाद गरम राख मे भुना हुआ सोता है, उस प्रकार सोए। **उपकूजितो** पाठ का भी यही अर्थ है।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ब्राह्मण को धर्मोपदेश दे 'मै भी यहाँ नही रह सकता' कह जगल को गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-)सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया।

सत्यो (का प्रकाशन) समाप्त होने पर उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय पोट्ठपाद आनन्द था। राध तो मै ही था।

१९९. गहपति जातक

"उभयम्मेन खमति " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय उत्कण्ठित-चित्त के ही बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह कथा कहते हुए शास्ता ने 'स्त्री जाति की हिफाजत नही की जा सकती। पाप करके जिस किसी उपाय से स्वामी को ठगती ही है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व ने काशी-राष्ट्र के गृहपति-कुल में जन्म ग्रहण कर बडे होने पर विवाह किया। उसकी भार्य्या दुराचारिणी थी, गाँव के मुखिया के साथ दुराचार करती। वोधिसत्त्व जानकर परीक्षा करते हुए रहने लगे।

उस समय वर्षा काल में वीजो के वह जाने से अकाल हो गया था। खेती में दाना पडा। सारे ग्रामवासियो ने मिलकर निश्चय किया कि अब से दो महीने वाद खेत काटकर धान दे देंगे, और गाँव के मुखिया से एक वूढा वैल ले उसका मास खा गए।

एक दिन गाँव का मुखिया मौका देख, जिस समय वोधिसत्त्व वाहर गया था घर मे घुसा। उनके सुख से लेटने के समय ही वोधिसत्त्व ग्राम-द्वार से प्रविष्ट हो घर की ओर हो लिया। ग्राम-द्वार की ओर देखते हुए उस स्त्री ने सोचा, 'यह कौन है ?' फिर देहली पर खडे होकर देखने से जव उसे निश्चय हुआ कि यह वही है, तो उसने मुखिया से कहा। गाँव का मुखिया डर के मारे काँपने लगा।

उसने कहा—डर मत। एक उपाय है। हमने तेरा दिया गोमास खाया

है । तू मास का मूल्य उगाहने वाले की तरह हो। मैं कोठे पर चढ कोठे के द्वार पर खडी हो कहती हूँ कि धान नही है। तू घर के बीच में खडा होकर बार बार उलाहना दे—'हमारे घर मे बच्चे भूखे है। मेरे मास का मूल्य दो।' इतना कह वह कोठे पर चढ कोठे के दरवाजे पर बैठी। मुखिया घर मे खडा हो कहने लगा—'मास की कीमत दो।' वह कोठे के दरवाजे पर बैठ कहती—'धान नही है। खेत कटने पर देंगे। जा।'

बोधिसत्त्व ने घर मे प्रवेश कर उनकी करतूत देख समझ लिया कि इस पापिन ने यह ढग बनाया होगा। उसने गाँव के मुखिया को बुलाकर कहा—"हे ग्राम-भोजक! हमने तेरे बूढे बैल का मास खाते समय, 'अब से दो महीने बाद धान देंगे' कहकर मास खाया था। अभी आधा महीना भी नही गुजरा। तू अभी से क्यो धान लेना चाहता है? लेकिन तू इस उद्देश्य से नही आया! दूसरे ही उद्देश्य से आया होगा? मुझे तेरी करतूत अच्छी नही लगती। यह भी दुराचारिणी पापिन जानती है कि कोठे में धान नही है। वह अब कोठे पर चढ कहती है—धान नही है। तू भी कहता है—दे। मुझे दोनो की बात अच्छी नही लगती।"

इस भाव को प्रकट करते हुए बोधिसत्त्व ने यह गाथाएँ कही—

उभयम्मे न खमति उभयम्मे न रुच्चति,
या चायं कोट्ठमोतिण्णा न दस्सं इति भासति॥
तं तं गामपति ब्रूमि कदरे अप्पस्मि जीविते,
द्वे मासे कारं कत्वान मंसं जरग्गवं किसं;
अप्पत्तकाले चोदेसि तम्पि मय्हं न रुच्चति॥

[दोनो मुझे पसन्द नही, दोनो मुझे अच्छे नही लगते। यह जो कोठे पर चढ कहती है—(धान) नही दिखाई देते। हे ग्रामपति! मैं यह कहता हूँ कि जीवन इतना कठिन होने पर भी तू बूढे कृष बैल के मास (के मूल्य) का दो महीने का करार करके समय के पूर्व ही उलहना देता है। यह भी मुझे अच्छा नही लगा।]

तं तं गामपति ब्रूमि भो! ग्राम के मुखिया इस कारण से यह कहता हूँ। **कदरे अप्पस्मि जीविते,** हमारा जीवन दुःखी है, जड है, रूखा है, न्यून है, अल्प है, मन्द है, परिमित है। इस प्रकार के जीवन के होने पर **द्वे मासे कारं कत्वान मंसं**

जरग्गवं किसं हमारे मास लेते समय बूढा, कृप, दुर्वल वैल देते हुए तूने दो महीने की अवधि बाँधी थी कि दो महीने में मूल्य देना। इस प्रकार करार करके, अवधि बाँध कर **अप्पत्तकाले चोदेसि,** उस समय के आने से पूर्व ही दोप लगाता है। **तम्पि मय्ह न रुच्चति** यह जो पापिन दुराचारिणी कोठे में धान नही है जानती हुई अनजान की तरह **कोट्ठमोतिण्णा** कोठे के द्वार पर खडी हो **न दस्स इति भासति।** यह भी और यह जो तू असमय माँगता है **तम्पि** यह दोनो न मुझे पसन्द है, न अच्छी लगती है।



इस प्रकार कहते कहते वोधिसत्त्व ने गाँव के मुखिये को केशो से पकड खैंच कर घर के वीच में गिराया। "'मैं गाँव का मुखिया हूँ' समझ दूसरो की रखी, हिफाजत की हुई चीज के प्रति अपराध करता है?" आदि वातो से अपशव्द कह, पीट कर, दुर्वल कर, गरदन से पकड घर से निकाल दिया। उस दुप्ट स्त्री को भी केशो से पकड कोठे से उतार, पीटते हुए डाँटा—"यदि फिर ऐसा करेगी, तो जानेगी?"

इसके वाद से गाँव का मुखिया उस घर की ओर नजर भी नही उठा सका। वह पापिन भी फिर मन में भी दुराचार नही कर सकी।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यो को प्रकाशित किया। सत्यो के अन्त में उत्कण्ठित-चित्त भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय ग्राम के मुखिया को ठीक करने वाला गृहपति मैं ही था।

२००. साधुसील जातक

"सरीरदव्यं . . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक ब्राह्मण के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उस ब्राह्मण की चार लडकियाँ थी। वे चार प्रकार के आदमियो को चाहती थी। उनमे से एक सुन्दर शरीर वाले को, एक आयु में बडे को, एक (ऊँची) जाति वाले को और एक सदाचारी को। ब्राह्मण सोचने लगा! 'लडकियो को (पराए) घर भेजते हुए, उनका विवाह करते हुए उन्हे किसे देना चाहिए? क्या रूपवान् को? क्या आयु में बडे को? क्या जाति में बड़े को अथवा सदाचारी को?"

जब सोचने पर भी वह कुछ निश्चय न कर सका तो उसने विचार किया कि इस बात को सम्यक् सम्बुद्ध जानेंगे। उन्हे पूछ कर, इन चारो में जिसे देना उचित होगा उसे दूँगा। वह गन्धमाला आदि लिवा कर विहार गया, शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठा। उसने आरम्भ से सब बात सुना कर पूछा—"भन्ते! इन चार जनो में से किसे देना उचित है?"

शास्ता ने कहा—"पहले भी पण्डितो ने तेरे इस प्रश्न का उत्तर दिया था। लेकिन वह पूर्व-जन्म की बात होने से तू उसे नही जान सकता।"

ऐसा कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ब्राह्मण-कुल मे जन्म ग्रहण कर बडे हो तक्षशिला गए। वहाँ शिल्प सीख लौट कर वाराणसी मे प्रसिद्ध आचार्य्य हुए।

एक ब्राह्मण की चार लडकियाँ थी। वह इसी प्रकार चार जनो को चाहती थी। ब्राह्मण ने यह न जानते हुए कि किसे दें सोचा कि आचार्य्य को पूछ कर जिसे

देना योग्य होगा, उसी को दूँगा। उसने आचार्य्य के पास जा यह प्रश्न पूछते हुए पहली गाथा कही—

सरीरदव्य वव्यं सोजच्च साधुसीलियं
ब्राह्मणन्तेव पुच्छाम कन्नु तेसं वणिम्हसे॥

[शरीर के सौंदर्य्य वाले को, आयु वडी वाले को, जाति वडी वाले को वा सदाचारी को? हे ब्राह्मण! तुझे पूछते हैं कि उन्हे किसे दें?]

सरीरदव्यं आदि उन चारो में विद्यमान् गुणो का प्रकाशन किया गया है। अभिप्राय यह है—मेरी लडकियाँ चार प्रकार के आदमियो को चाहती हैं। उनमें से एक के पास **सरीरदव्यं** है, शरीर सम्पत्ति है, सौन्दर्य्य है। एक के पास **वद्धव्यं** वृद्धभाव, ज्येष्ठपन है। एक के पास **सोजच्च** अच्छी जाति वाला होना, जाति सम्पत्ति है। **सुजच्चं** भी पाठ है। एक के पास **साधुसीलियं** सुन्दर चरित्र होना सदाचार सम्पत्ति है। **ब्राह्मणन्त्वेव पुच्छाम**; उनमें से यह अमुक को देनी चाहिए, हम इसका निश्चय न कर सकने के कारण आप ब्राह्मण को ही पूछते हैं। **कन्नु तेस वणिम्हसे** उन चार जनो में से किसका वरण करें? किसकी इच्छा करे? पूछता है कि वे कुमारियाँ किसे दें?

इसे सुन आचार्य्य ने कहा—"रूप सम्पत्ति आदि विद्यमान रहने पर भी दु शील निन्दित है। इसलिए वह ठीक नही। हमें शीलवान् ही अच्छा लगता है।"

इस विचार को प्रकट करने के लिए दूसरी गाथा कही—

अत्यो अत्थि सरीरस्मि वद्धव्यस्स नमोकरे,
अत्थो अत्थि सुजातस्मि सील अस्माकरुच्चति॥

[शरीर की भी अपनी विशेषता है, ज्येष्ठ को नमस्कार होता है, सुजात की भी विशेषता है, लेकिन हमे तो शीलवान् अच्छा लगता है।]

अत्यो अत्थि सरीरस्मि, रूपवान् शरीर में भी अर्थ, विशेषता, उन्नति होती है। नही होती है, नही कहते। **वद्धव्यस्स नमो करे,** ज्येष्ठ को हम नमस्कार ही

करते हैं। ज्येष्ठ की ही वन्दना होती है। **अत्यो अत्थि सुजातस्मि,** सुजात पुरुष की भी उन्नति होती है। जाति-सम्पत्ति भी इच्छा करने ही की चीज है। **सीलं अस्माकरुच्चति,** हमें शील ही अच्छा लगता है। शीलवान्, सदाचारी शरीर-सौन्दर्य्य से रहित भी पूज्य प्रशसनीय होता है।

ब्राह्मण ने उसकी बात सुन सदाचारी को ही लडकियाँ दी।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के अन्त में ब्राह्मण स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय ब्राह्मण यही था, प्रसिद्ध आचार्य्य तो मैं ही था।

दूसरा परिच्छेद

६. नतंदळ्ह वर्ग

२०१. बन्धनागार जातक

"न तं दळ्ह वन्धनमाहु धीरा . . ." यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय वन्धनागार के वारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय वहुत से सेध लगाने वाले, वटमार तथा मनुष्यघातक चोरो को लाकर राजा के सामने पेश किया गया। राजा ने उन्हें वेडी से, रस्सी से तथा जजीर से वँधवा दिया।

दिहात के तीस भिक्षु शास्ता का दर्शन करने की इच्छा से आए। दर्शन तथा प्रणाम कर चुकने के अगले दिन भिक्षाटन करते हुए वह वन्धनागार पहुँचे। वहाँ चोरो को देख, भिक्षाटन से लौट, सन्व्या के समय शास्ता के पास जा निवेदन किया —भन्ते! आज हमने भिक्षाटन करते समय, वहुत से चोरो को वेडी आदि मे वँधे हुए महान् दु ख अनुभव करते देखा। वे उन वन्धनो को काटकर भाग नही सकते। क्या उन वन्धनो से वढकर भी कोई वन्धन है?

शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, यह क्या वन्धन है? यह जो धन-धान्य-पुत्र तथा दारा आदि के प्रति तृष्णा रूपी वन्धन है, यह इन वन्धनो से सौ गुणा, हजार गुणा कडा वन्धन है। इस प्रकार के अत्यन्त कठिनाई से टूटने वाले महान् वन्धन को भी, पुराने पण्डितो ने तोड कर हिमालय मे प्रवेश कर प्रव्रज्या ग्रहण की।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व एक दरिद्र गृहस्थ के घर मे पैदा हुआ। उसके वडे होने पर पिता मर गया। वह नौकरी करके माता को पालने लगा।

उसके अनिच्छा प्रकट करने पर भी उसकी माँ ने उसे एक लडकी ला दी, और स्वय मर गई। उसकी भार्य्या की कोख मे गर्भ रह गया। उसे नही मालूम था कि भार्य्या की कोख मे गर्भ है। उसने कहा—"भद्रे! तू नौकरी चाकरी करके अपना पालन पोपण कर। मैं प्रव्रजित होऊँगा।"

उसने उत्तर दिया—"मेरी कोख मे गर्भ है। वच्चो को देख कर प्रव्रजित होना।"

वोधिसत्त्व ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और उसके वच्चे को जन्म देने पर पूछा—भद्रे! तूने कुशलपूर्वक वच्चे को जन्म दिया। अव मैं प्रव्रजित होऊँ?

उसने कहा कि जव तक वच्चा स्तन का दूध पीता है, तव तक प्रतीक्षा करे। इस वीच मे वह फिर गर्भवती हो गई। उसने सोचा इसकी रजामन्दी से जाना न हो सकेगा! इसे विना कहे ही भाग कर प्रव्रजित होऊँगा। वह बिना कहे ही रात को उठकर भाग गया। उसे नगर-रक्षको ने पकडा। वोधिसत्त्व ने कहा—"स्वामी! मैं 'माँ का पोपण करने वाला हूँ'। मुझे छोड दे।"

उनसे अपने आपको छुडा एक स्थान पर ठहर, मुख्य द्वार से ही निकल वोधिसत्त्व ने हिमालय में प्रवेश किया। वहाँ ऋपियो के प्रव्रज्या क्रम के अनुसार प्रव्रजित हो अभिज्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर घ्यान-क्रीडा में रत हो रहने लगा।

वहाँ रहते हुए 'ऐसे दुष्करता से तोडे जा सकने वाले पुत्र-दारा के प्रति आसक्ति के वन्धन को भी तोडते हैं' उल्लास-वाक्य कहते हुए उसने यह गाथाएँ कही—

न तं दळहं वन्धनमाहु धीरा,
यदायसं दारुजं वब्बजञ्च;
सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु,
पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा॥
एतं दळह वन्धनमाहु धीरा,
ओहारिनं सिथिल दुप्पमुञ्चं;
एतम्पि छेत्वान वजन्ति धीरा,
अनपेक्खिनो कामसुखं पहाय॥

[लोहे के, लकडी के या वव्वढ (की रस्सी) के जो वन्धन है, धीर-जन उन्हें (असली) वन्धन नही मानते। यह जो मणि मे, कुण्डलो मे आसक्ति है, यह जो पुत्र-दारा की अपेक्षा है, धीर-जन इन्हे दृढ वन्धन मानते है। यह नीचे गिराने वाले है, शिथिल है और कठिनाई से दूर होते है। धीर-जन इन्हें भी छोड कर, काम-भोगो के सुख को छोड, अपेक्षा रहित हो चल देते है।]

धृतिमान् को ही **धीर**। धिक्कार किया पापो को इसलिए **धीर** या **धी** का मतलव है प्रज्ञा, उस प्रज्ञा से युक्त **धीर बुद्ध**, प्रत्येक-वुद्ध, वुद्ध-श्रावक और वोधिसत्त्व —यह ही धीर है। **यदायस** आदि में **य** जजीर आदि लोहे से वना हुआ **आयसं, अन्दुवन्धन**। **वव्वञ्च**, जो वव्वढ-तृण या अन्य वल्कल आदि की रस्सी से वना हुआ रस्सी-वन्धन। **तं धीरा दळ्ह**, मजवूत नही कहते। **सारत्तरत्ता**, अधिक अनुरक्त होकर आसक्त, वहुत राग से अनुरक्त **मणिकुण्डलेसु**, मणि में और कुण्डलो में अथवा मणियुक्त कुण्डलो में।

एतं दळ्ह, जो मणिकुण्डलो में अत्यन्त अनुरक्त है, उन्ही का जो राग है, **या** उनकी पुत्र-दारा में अपेक्षा है, तृष्णा है, इस वन्धन को ही धीर-जन दृढ वन्धन कहते है। **ओहारिन**, निकाल कर चार नरको में गिराते है, उतारते है, नीचे ले जाते है, इसलिए **ओहारिनं**। **सथिलं** जहाँ वन्धन पडा होता है उस जगह की चमडी या मास नही छिलता, खून भी नही निकलता, 'वन्धन पडा है' यह भी पता नही लगने देते इसलिए सिथिल। **दुप्पमुञ्च**, तृष्णा-लोभ रूप से एक वार भी पैदा हुआ वन्धन उसी तरह कठिनाई से पीछा छोडता है जैसे एक वार किसी को पकड लेने पर कछुआ। **एतम्पि छेत्वान**, ऐसा दृढ वन्धन भी ज्ञान रूपी तलवार से काट कर धीर-जन लोहे की **जजीर** तोडने वाले मस्त हाथी की तरह, पिंजरे को तोड़ने वाले सिंह-वच्चे की तरह, वस्तु-कामना तथा वासना को कूडा फेंकने के स्थान को घृणा करने की तरह **अनपेक्खिनो** होकर **कामसुख पहाय वजन्ति**, चल देते है। चल देकर, हिमवन्त में प्रविष्ट हो ऋषियो के प्रव्रज्या क्रम से प्रव्रजित हो ध्यान-सुख में रत रहते है।

इस प्रकार वोधिसत्त्व यह उल्लास-वाक्य कह ध्यान-युक्त हो ब्रह्मलोक-गामी हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यो का प्रकाशन किया। सत्यो के अन्त मे कोई स्रोतापन्न, कोई सकृदागामी, कोई अनागामी तथा कोई अर्हत हुए।

उस समय माता महामाया थी। पिता शुद्धोदन महाराजा। भार्य्या राहुल-माता। पुत्र राहुल। पुत्र-दारा को छोड, निकल कर प्रव्रजित होने वाला पुरुष मैं ही था।

२०२. केळिसील जातक

"हंसा कोञ्चा मयूरा च . . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहरते समय आयुष्मान् लकुण्टक भद्दिय के सम्वन्ध मे कही।

क वर्तमान कथा

वह आयुष्मान् वुद्ध-शासन मे प्रसिद्ध थे, सर्व-विदित थे, मधुर-स्वर वाले थे, मधुर-धर्मोपदेशक थे, पटिसम्भिदा-ज्ञान प्राप्त थे, महा-क्षीणास्रव थे, लेकिन साथ ही थे अस्सी स्थविरो में कद के ठिगने, श्रामणेर की तरह वौने, खेलने के लिए वनाए खिलौने की तरह छोटे।

एक दिन जव वह तथागत को प्रणाम कर जेतवन के कोठे मे गए थे, देहात के तीस भिक्षु वुद्ध को प्रणाम करने की इच्छा से जेतवन आए। उन्होने विहार के दरवाजे पर स्थविर को देख 'कोई श्रामणेर है' समझ स्थविर को चीवर के सिरे से पकड, हाथो से पकड, सिर से पकड, नाक को रगड, कान पकड, घसीटते हुए, हाथ से गुदगुदी उठाते हुए पात्रचीवर सौंप शास्ता के पास गए। वहाँ शास्ता को प्रणाम कर वैठे। शास्ता ने मधुरवाणी से कुशल-क्षेम पूछा। तव वे बोले—'भन्ते! लकण्टुक भद्दिय नाम के आपके एक शिष्य स्थविर मधुर-भाषी धर्मोपदेशक है। वह इस समय कहाँ है?'

"भिक्षुओ, क्या उसे देखना चाहते हो ?"

"भन्ते ! हाँ।"

"भिक्षुओ, जिसे तुम द्वार-कोठे पर देख, चीवर के कोने आदि से पकड हाथ से छेडते हुए आए, वही यह है।"

"भन्ते ! इस तरह का प्रार्थी,[1] इस तरह का उच्चाभिलापी[2] किस कारण से इतने छोटे आकार का पैदा हुआ ?"

"अपने पूर्व-कृत पापकर्म के कारण।" उनके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व देवेन्द्र शक्र हुए। उस समय ब्रह्मदत्त जीर्ण जरा-प्राप्त हाथी, घोडे वा बैल को नही देख सकता था, देखते ही क्रीडा करने की इच्छा से उसका पीछा करता था। पुरानी गाडी देख कर तुडवा देता, वृद्ध स्त्रियो को देख, उन्हें बुलवा, उनके पेट पर प्रहार दिलवा, उन्हें गिरवा, फिर उठवा डरवाता। वृद्ध आदमियो को देख बाजीगर की तरह कलाबाजियाँ खिलवाता। न दिखाई देने की अवस्था में यदि यह सुन भी लेता कि अमुक घर मे वृद्ध मनुष्य है, तो उसे बुलवा कर खेलता।

मनुष्य लज्जित होकर अपने-अपने माता-पिता को विदेशो मे भेजने लगे। माता की सेवा, पिता की सेवा का कर्तव्य टूटने लगा। राजसेवक भी क्रीडा-प्रिय हो गए। मर-मरकर चारो नरक भरने लगे। देव-परिषद घटने लगी। शक्र ने नये देवपुत्रो को न देख सोचा कि क्या कारण है ? जब उसे पता लगा तो शक्र ने निश्चय किया कि उसका दमन करूँगा। वह बूढे आदमी की शक्ल बना, पुरानी गाडियो पर मट्ठे की दो चाटियाँ रख, दो बूढे बैल जोत, एक उत्सव के दिन जब ब्रह्मदत्त अलकृत हाथी पर चढ अलकृत नगर मे घूम रहा था, स्वय चीथडे पहने हुए उस गाडी को हाँक कर राजा के सामने पहुँचा।

राजा ने पुरानी गाडी को देख कहा—इसे हटाओ।

---

[1]जिसने पूर्व-बुद्धो के पास प्रार्थना की।

[2]जिसने पूर्व-जन्म में ऊँची अभिलाषा से सत्कर्म किए।

मनुष्यों ने पूछा—देव, गाडी कहाँ है। दिखाई नही देती।

शक्र के प्रताप से गाडी केवल राजा को ही दिखाई देती थी।

शक्र ने राजा के पास वार-वार आ उसके ऊपर की ओर रथ हाँकते हुए राजा के सिर पर एक चाटी फोड दी। राजा भीग गया। उसने दूसरी फोड दी। उसके सिर से इधर-उधर से मट्ठा चूने लगा। राजा घबराया, हैरान हुआ, घृणा करने लगा।

जव शक्र ने देखा कि राजा घवरा रहा है तो अपने रथ को अन्तर्धान कर शक्र का असली रूप वना वज्र हाथ में ले आकाश मे खडे हो कहा—अरे पापी अधार्मिक राजा! क्या तू वूढा न होगा? तेरे शरीर पर वुढापा आक्रमण न करेगा? क्रीडा-प्रिय हो कर वृद्धो को कष्ट देता है। तेरे एक के कारण यह करतूत करके मरने वाले नरक भर रहे हैं। आदमियो को माता-पिता की सेवा करनी नही मिलती। यदि इस कर्म से वाज नही आएगा तो वज्र से तेरा सिर फोड दूँगा। इसके वाद से ऐसा कर्म मत करना।

इस प्रकार डराकर, माता-पिता के गुण कह, वडो की सेवा का माहात्म्य प्रकाशित कर, उपदेश दे, शक्र अपने निवास-स्थान को चला गया।

राजा ने उसके वाद वैसा करने का विचार भी नही किया।

शास्ता ने यह पूर्व-जन्म की कथा कह अभिसम्बुद्ध हुए रहने पर यह गाथाएँ कही—

हंसा कोञ्चा मयूरा च हत्थियो पसदा मिगा,
सब्बे सीहस्स भायन्ति नत्थि कायस्मि तुल्यता॥
एवमेव मनस्सेसु दहरो चेपि पञ्ञवा,
सोहि तत्थ महा होति नेव बालो सरीरवा॥

[हस, क्रौञ्च, मोर, हाथी तथा चितकबरा-मृग सभी सिंह से डरते हैं। शरीर से वडा-छोटा नही होता। इसी प्रकार मनुष्यो में चाहे आयु का छोटा हो लेकिन यदि वह वुद्धिमान है तो वह ही वडा है। वडे शरीर वाला मूर्ख वडा नही होता।]

पसदामिगा, पसद नामक मृग, पसद मृग तथा शेष मृग भी अर्थ है। **पसदमिगा,** भी पाठ है। पसद मृग अर्थ है। **नत्थि कायस्मि तुल्यता,** शरीर से वडा छोटा

नही है , यदि हो तो वडे शरीर वाले पसद-मृग और हाथी सिंह को मार डालें। सिंह हसादि क्षुद्र शरीर वालो को ही मारे। छोटे ही सिंह से डरें, वडे नही , ऐसा नही है। इसलिए सभी सिंह से डरते है। सरीरवा मूर्ख वडे शरीर वाला होने पर भी वडा नही होता। इसलिए लकुण्टक भद्दिय यद्यपि शरीर से छोटा है, इससे यह न समझो कि वह ज्ञान मे भी छोटा है।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल वैठाया। सत्यो के अन्त में उन भिक्षुओ मे से कोई स्रोतापन्न, कोई सकृदागामी, कोई अनागामी तथा कोई अर्हत हो गए।

उस समय राजा लकुण्टक भद्दिय था। उसके क्रीडा-प्रिय होने से दूसरे क्रीड़ा-प्रिय हो गए। शक्र मै ही था।

२०३. खन्धवत्त जातक

"विरूपक्खेहि मे मेत्तं " इसे शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक भिक्षु के वारे में कहा।

क. वर्तमान कथा

जिस समय वह अग्नि-गृह[1] के द्वार पर लकडियाँ चीर रहा था, पुराने वृक्ष में से एक साँप ने निकल कर उसे पाँव की उँगलियो में डसा। वह वही मर गया। उसके मरने की खवर सारे विहार मे फैल गई।

धर्मसभा में भिक्षुओ ने वातचीत चलाई—आयुष्मानो ! अमुक भिक्षु अग्नि-गृह के दरवाजे पर लकडियाँ फाडता हुआ सर्प से डसा जाकर वही मर गया।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ ! इस समय वैठे क्या वातचीत कर रहे हो ?

---

[1] जन्ताघर, जिसमें आग जलाकर स्वेद-स्नान लेते थे।

"अमुक वातचीत।"

"भिक्षुओ, यदि वह भिक्षु चारो सर्प-राज कुलो के प्रति मैत्री भावना करता, उसे सर्प न डसता। पुराने तपस्वी भी, जिस समय वुद्ध उत्पन्न नही हुए थे उस समय चारो सर्पराज-कुलो के प्रति मैत्री भावना कर, उन सर्पराज-कुलो से जो भय था उससे मुक्त हुए।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व काशी राष्ट्र मे ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। वडे होने पर गृहस्थी छोड ऋषियो के प्रव्रज्या क्रम से प्रव्रजित हो, अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर, हिमवन्त प्रदेश में एक जगह जहा गङ्गा का मोड था आश्रम वना कर, ध्यान-क्रीडा मे रत हो, ऋषिगणों के साथ रहने लगे।

उस समय नाना प्रकार के सर्प ऋषियो को वाधक होते थे। अधिकाश ऋषि मर जाते। तपस्वियो ने वोधिसत्त्व से यह वात कही। वोधिसत्त्व ने सभी तपस्वियो को इक्ट्ठा कर कहा—"यदि तुम चारो सर्पराज-कुलो के प्रति मैत्री-भावना करो, तो तुम्हें सर्प नही डसेगे। अव से चारो सर्पराज-कुलो के वारे मे इस प्रकार मैत्री भावना करो।"

इतना कह यह गाथा कही—

विरूपक्खेहि मे मेत्तं मेत्तं एरापथेहि मे,
छब्यापुत्तेहि मे मेत्तं मेत्तं कण्हागोतमकेहि च॥

[विरूपक्खो के प्रति मै मैत्री-भाव रखता हूँ, एरापथो के प्रति भी मेरी मैत्री है। छब्यापुत्रो के प्रति मेरी मैत्री है और मैत्री है कण्हागोतमो के प्रति।]

विरूपक्खेहि मे मेत्तं, विरूपक्ख नागराज-कुल के प्रति मेरा मैत्री-भाव है। **एरापथ** आदि में भी इसी प्रकार। यह **एरापथ** नागराज-कुल, **छब्यापुत्त** नागराज-कुल और **कण्हागोतम** नागराज-कुल भी नागराज-कुल ही है।

इस प्रकार चार नागराज-कुल दिखाकर कहा कि यदि तुम इनके प्रति मैत्री-भावना कर सको तो तुम्हे सर्प नही डसेंगे, कष्ट नही देंगे। इतना कह दूसरी गाथा कही ––

अपादकेहि मे मेत्त मेत्त दिपादकेहि मे,
चतुप्पदेहि मे मेत्त मेत्त बहुप्पदेहि मे॥

[जिनके पैर नही है उनसे मेरी मैत्री है, जिनके दो पैर है उनसे मेरी मैत्री है, जिनके चार पैर है उनसे मेरी मैत्री है और जिनके अनेक पैर है उनसे मेरी मैत्री है।]

पहले पद से विशेष रूप से सभी पैर-रहित सर्पो तथा मछलियो के प्रति मैत्री-भावना कही गई। दूसरे पद से मनुष्यो तथा पक्षियो के प्रति। तीसरे से हाथी घोडे आदि सभी चतुप्पदो के प्रति। चौथे पद से बिच्छू, गूजर, कीडे-मकौडे आदि के प्रति।

इस प्रकार मैत्री-भावना का क्रम बता अब प्रार्थना-क्रम कहते हुए यह गाथा कही––

मा म अपादको हिंसि मा मं हिंसि दिपादको,
मा म चतुप्पदो हिंसि मा मं हिंसि बहुप्पदो॥

[जो पैर-रहित है वे मेरी हिंसा न करें, जो द्विपद है वे मेरी हिंसा न करें, जो चतुष्पद है वे मेरी हिंसा न करें और जो अनेक पैर वाले है वे भी मेरी हिंसा न करें।]

मा मं इस प्रकार 'उन पैर-रहित आदि में कोई एक भी मेरी हिंसा न करे मुझे कष्ट न दें' प्रार्थना करते हुए मैत्री-भावना करो––यही अर्थ है।

अब सामान्य रूप से भावना-क्रम प्रकट करते हुए यह गाथा कही––

सब्बे सत्ता सब्बे पाणा सब्बे भूता च केवला,
सब्बे भद्रानि पस्सन्तु मा कञ्चि पापमागमा॥

[सभी सत्व, सभी प्राणी, सारे के सारे जीव, सभी का कल्याण हो। किसी को दुख न हो।]

तृष्णा-दृष्टि के कारण ससार में, पाँच स्कन्धो मे आसक्त, विशेप आसक्त होने से **सत्ता** (सक्ता)। स्वास प्रश्वास कहलाने वाले प्राण के कारण **प्राणी**। भूत (जीवित) भावित (जीने वालो) का जन्म होने से **भूता**। इस प्रकार जानना चाहिए कि वचन-मात्र की ही विशेषता है। सामान्य तौर पर इन सभी पदो का अर्थ सभी प्राणी ही है। **केवला** सकल, यह सर्व शब्द का ही पर्य्यायवाची है। **भद्रानि पस्सन्तु,** यह सभी प्राणी कल्याण को ही प्राप्त हो। **मा कञ्चि पापमागमा,** इनमे से किसी एक भी प्राणी को दुख न हो। सभी वैर-रहित क्रोध-रहित, सुखी तथा दुख-रहित हो।

इस प्रकार सामान्य रूप से सभी प्राणियो के प्रति मैत्री-भावना की बात कह तीनो रत्नो के गुणो की याद दिलाने के लिए कहा—

अप्पमाणो वुद्धो अप्पमाणो धम्मो अप्पमाणो सघो।

सीमित (प्रमाण-सहित) विकारो का अभाव होने से और गुण असीम (अ-प्रमाण) होने से वुद्ध-रत्न असीम (अप्रमाण) है, धर्म, **नौ प्रकार**[1] का लोकोत्तर धर्म, उसकी भी सीमा नही की जा सकती इसलिए असीम (अप्रमाण)। उस असीम (अप्रमाण) धर्म से युक्त होने के कारण सघ भी असीम (अप्रमाण)।

इस प्रकार वोधिसत्त्व उन तीनो रत्नो के गुणो को स्मरण करने के लिए कह तथा उन तीन रत्नो के गुणो का असीम होना दिखा सीमित प्राणियो के बारे में वोले—

पमाणवन्तानि सिरिंसपानि अहिविच्छिका,
सतपदी उण्णानाभि सरबूमूसिका।

---

[1] चार मार्ग, चार फल तथा निर्वाण।

[रेंगने वाले, सर्प, विच्छू, गूजर, मकडी तथा छिपकली—यह सव सीमा वाले है।]

सिरिसपा सव दीर्घाकार प्राणियो का यह नाम है। वे सरक कर चलते है वा सिर से चलते हैं, इसीलिए **सिरिसपा**। **अहि** आदि उनके स्वरूप का वर्णन किया गया है। तत्थ **उण्णानाभि** मकडी, उसकी नाभि से ऊन सदृश सूत निकलता है, इसलिए उण्णानाभि कहलाती है। **सरवू**, छिपकली।

इस प्रकार वोधिसत्त्व ने 'क्योकि इनके अन्दर जो रागादि है वह सीमा वाले धर्म हैं, इसलिए ये सिरिसप आदि सीमा वाले है, दिखा 'तीनो असीम रत्नो के प्रताप से यह सीमा वाले रात-दिन रक्षा करें' कह तीनो रत्नो के गुणो का अनुस्मरण करने को कहा। उसके आगे जो कर्तव्य है वह वताने के लिए यह गाथा कही—

कता मे रक्खा कता मे परित्ता,
पटिक्कमन्तु भूतानि सोहं नमो भगवतो;
नमो सत्तन्नं सम्मासम्वुद्धानं॥

[मैंने अपनी हिफाजत कर ली, मैंने अपना परित्राण कर लिया। (हानिकर) जीव दूर हो। मै भगवान् (वुद्ध) को और सात सम्यक् सम्वुद्धो[1] को प्रणाम करता हूँ।]

कता मे रक्खा, रत्नत्रय का गुणानुस्मरण कर मैंने अपनी रक्षा, हिफाज़त कर ली। **कता मे परित्ता** मैंने अपना परित्राण भी कर लिया। **पटिक्कमन्तु भूतानि**, मेरा अहित चिन्तन करने वाले प्राणी चले जाएँ, दूर हो। **सोहं नमो भगवतो**, सो मै इस प्रकार अपनी रक्षा कर पूर्व के परिनिर्वाण को प्राप्त हुए वुद्ध **भगवतो**, को नमस्कार करता हूँ। **नमो सत्तन्नं सम्मासम्वुद्धान**, विशेष रूप से अतीत के क्रम से परिनिर्वाण को प्राप्त हुए सात वुद्धो को नमस्कार करता हूँ।

---

[1] देखो महापदान सूत्र (दीर्घनिकाय)।

इस प्रकार नमस्कार करते हुए भी सात वुद्धो का अनुस्मरण करो, (करके) वोधिसत्त्व ने ऋषिगण को यह परित्राण-धर्मदेशना रच कर दी।

आरम्भ में दो गाथाओ द्वारा चारो सर्पराज-कुलो मे मैत्री-भावना प्रकट की होने से, विशेष रूप से तथा सामान्य रूप से दोनो मैत्री-भावनाएँ प्रकट की होने से, यह परित्राण-धर्मदेशना ला यहाँ दी गई है। और कारण खोजना चाहिए।

उस समय से ऋषियो का समूह वोधिसत्त्व के उपदेशानुसार चल मैत्री-भावना करने लगा। वुद्ध के गुणो का स्मरण करने लगा। इस प्रकार उनके वुद्ध-गुणो का स्मरण करने ही पर सव साँप चले गए। वोधिसत्त्व भी ब्रह्मविहारो की भावना कर ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल वैठाया। उस समय ऋषि-गण वुद्ध-परिषद थी। गण का शास्ता तो मै ही था।

२०४. वीरक जातक

"**अपि वीरक पस्सेसि. . .**" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय वुद्ध का रग-ढग वनाने के वारे में कही।

क. वर्तमान कथा

देवदत्त की परिषद लेकर स्थविरो के लौट आने पर शास्ता ने पूछा—सारिपुत्तो! तुम्हें देखकर देवदत्त ने क्या किया?

"भन्ते! सुगत का रग-ढग वनाया।"

"सारिपुत्तो! न केवल अभी देवदत्त मेरी नकल करके विनाश को प्राप्त हुआ। पहले भी प्राप्त हुआ है।"

स्थविरो क प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व हिमालय प्रदेश में जल-कौए की योनि में पैदा हो एक तालाव के पास रहते थे। उसका नाम था वीरक।

उस समय काशी देश मे अकाल पडा। मनुष्य कौओ को भोजन देने या यक्ष-नाग वलिकर्म करने में असमर्थ हो गए। अकाल-पीडित प्रदेश से अविकाश कौवे जगल चले गए। वाराणसी वासी सविट्ठक नाम का एक कौआ अपनी कौवी को ले वीरक के निवासस्थान पर जा, उस तालाव के पास एक ओर रहने लगा।

एक दिन उसने उस तालाव मे शिकार खोजते हुए वीरक को तालाव में उतर, मछलियाँ खा, वाहर निकल, शरीर को सुखाते देख सोचा—इस कौवे के आश्रय से मुझे वहुत मछलियाँ मिल सकती है। इसकी सेवा करूँ।

वह कौवे के पास गया। कौवे ने पूछा—

"सौम्य! क्यो"?

"स्वामी! तुम्हारी सेवा में रहना चाहता हूँ।"

उसके 'अच्छा' कह स्वीकार करने पर उस समय से सेवा करने लगा। तव से वीरक भी अपने गुज़ारे लायक खा मछलियाँ निकाल कर सविट्ठक को देता। वह भी अपने गुजारे लायक खा वाकी कौवी को देता।

आगे चलकर उसको अभिमान हो गया। वह सोचने लगा—यह जल-कौआ भी काला है। मै भी काला हूँ। मेरे और इसके आँख, चोच तथा पैरो में भी कोई भेद नही है। अव से इसकी पकडी हुई मछलियो से मुझे सरोकार नही। मै स्वय पकड़ूगा। वोला—"सौम्य! अव से मै स्वय तालाव मे उतर कर मछलियाँ पकड़ूगा।" वीरक ने मना किया—"तू पानी में उतर मछलियाँ पकडने वाले कुल में पैदा नही हुआ। तू अभिमान करता है।" वह वीरक की वात न मान तालाव में उतरा। पानी में प्रवेश कर ऊपर आते समय काई को छेद कर वाहर नही निकल सका। काई में ही फँस गया। केवल चोच का अगला भाग दिखाई दिया। वह साँस घुट कर पानी के अन्दर ही मर गया।

उसकी भार्य्या ने जव उसे आता न देखा तो वह उसका समाचार जानने के

लिए वीरक के पास गई। उसने 'स्वामी ! सविट्ठक दिखाई नही देता। इस समय वह कहाँ है?' पूछते हुए पहली गाथा कही—

अपि वीरक पस्सेसि सकुणं मञ्जुभाणकं,
मयूरगीवसंकासं पतिं मय्हं सविट्ठकं॥

[वीरक ! क्या मधुरभाषी, मोर पक्षी की सी गर्दनवाले मेरे पति सविट्ठक को देखते हो?]

अपि वीरक पस्सेसि स्वामी ! वीरक भी दिखाई देता है? **मञ्जुभाणकं,** सुन्दर-भाषी, वह राग के कारण अपने पति को मधुरभाषी समझती है। इसलिए ऐसा कहा। **मयूरगीवसंकासं,** मोर की गर्दन के समान वर्ण वाला।

यह सुन वीरक ने 'हाँ, मै जानता हूँ कि तेरा स्वामी कहाँ गया है' कह दूसरी गाथा कही—

उदकथलचरस्स पक्खिनो निच्चं आमकमच्छभोजिनो,
तस्सानुकरं सविट्ठको सेवाले पळिगुण्ठितो मतो॥

[सविट्ठक जल और स्थल पर चलने वाले, नित्य कच्ची मछली खाने वाले, पक्षी की नकल करने जाकर काई में फँस कर मर गया।]

उदकथलचरस्स, जो जल और स्थल में चलने में समर्थ है। **पक्खिनो,** अपने सम्बन्ध मे कहता है। **तस्सानुकरं** उसकी नकल करता हुआ। **पळिगुण्ठितो मतो,** पानी मे घुस काई को छेद कर बाहर न निकल सकने के कारण, काई मे उलझ कर पानी के अन्दर ही मर गया। देख, उसकी चोच दिखाई देती है।

इसे सुन कौवी रो-पीट कर वाराणसी ही चली गई।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। तब सविट्ठक देवदत्त था। वीरक मै ही था।

२०५. गङ्गेय्य जातक

"**सोभति मच्छो गंगेय्यो** " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय दो तरुण भिक्षुओ के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वे दो श्रावस्ती-वासी कुलपुत्र वुद्ध-शासन मे प्रव्रजित हो अशुभ-भावना में न लग रूप के प्रशसक हो, रूप को ही प्यार करते हुए घूमते थे। एक दिन उन दोनो मे रूप को लेकर विवाद उठ खडा हुआ। एक ने कहा—मैं शोभा देता हूँ। दूसरे ने कहा—तू नही शोभा देता, मैं शोभा देता हूँ। कुछ ही दूर पर एक वृद्ध स्थविर को वैठे देख उन्होने सोचा—यह जानेंगे। हम में से कौन शोभनीय है, कौन नही? उन्होने पास जाकर पूछा—हम मे से कौन सुन्दर है? स्थविर ने उत्तर दिया—तुम दोनो से मैं ही सुन्दर हूँ।

तरुण भिक्षुओ ने कहा, यह बूढा जो हम पूछते है वह न वता, जो नही पूछते हैं वही कहता है। वे उसकी निन्दा कर चले गए।

उनकी वह करतूत भिक्षु-सघ में प्रकट हो गई। एक दिन धर्मसभा में वातचीत चली—आयुष्मानो, वृद्ध स्थविर ने उन रूप-प्रिय तरुण भिक्षुओ को लज्जित कर दिया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, इस समय वैठे क्या वातचीत कर रहे हो? "यह वातचीत" कहने पर "भिक्षुओ, यह दो तरुण केवल अभी रूप-प्रशंसक नही है, यह पहले भी रूप को ही प्यार करते हुए विचरते थे" कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व गङ्गा के किनारे वृक्ष-देवता थे। उस समय गङ्गा-यमुना के सङ्गम पर गङ्गेय्य और यामुनेय्य नाम की दो मछलियाँ थी। वे आपस में विवाद करने लगी—मैं शोभा

देती हूँ, तू नही शोभती। इस प्रकार रूप के वारे मे विवाद करते हुए उन्होने थोडी दूर पर गङ्गा के किनारे पडे एक कछुए को देखकर सोचा—यह जानेगा कि हम मे कौन सुन्दर है? कौन असुन्दर? उसके पास जाकर उन्होने पूछा—सौम्य! गङ्गेय्य सुन्दर है? अथवा यामुनेय्य?

कछुए ने कहा—गङ्गेय्य भी सुन्दर है, यामुनेय्य भी सुन्दर है, लेकिन मैं तुम दोनो से अधिक सुदर हूँ।

इस वात को प्रकट करते हुए उसने पहली गाथा कही—

सोभति मच्छो गंगेय्यो अथो सोभति यामुनो,
चतुप्पदायं पुरिसो निग्रोधपरिमण्डलो;
ईसकायतगीवो च सब्बेव अतिरोचति॥

[गङ्गेय्य मछली शोभा देती है, यामुनेय्य भी शोभा देती है, लेकिन यह चार पैरो वाला, वड-वृक्ष की तरह गोलाकार, गाडी की वल्ली की तरह लम्वी गर्दन वाला (पुरुप) सव से अधिक सुन्दर है।]

चतुप्पदायं, यह चतुप्पाद **पुरिसो** अपने वारे में कहता है। **निग्रोध परिमण्डलो**, अच्छी तरह उत्पन्न न्यग्रोध वृक्ष की तरह गोलाकार। **ईसकायतगीवो** रथ की छड की तरह लम्वी वल्ली वाला। **सब्बेव अतिरोचति** इस प्रकार के आकार वाला कछुआ सवसे वढकर सुन्दर है, तुम दोनो से वढकर शोभा देता है।

मछलियो ने उसकी वात सुन 'अरे पापी कछुए! हमारी पूछी बात का उत्तर न दे, दूसरी ही कहता है' कह दूसरी गाथा कही—

य पुच्छितो न तं अक्खा अञ्ञं अक्खासि पुच्छितो,
अत्तप्पसंसको पोसो नायं अस्माक रुच्चति॥

[जो पूछा है वह नही कहता, पूछने पर दूसरी बात कहता है। यह अपनी ही प्रशसा करने वाला पुरुष हमें अच्छा नही लगता।]

अत्तप्पसंसको, अपनी प्रशसा करने वाला, अपनी वडाई करने वाला पुरुष। **नायं अस्माक रुच्चति**, यह पापी कछुआ हमे अच्छा नही लगता, रुचिकर नही है। वे कछुए के ऊपर पानी फेंक अपने निवासस्थान को गईं।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल वैठाया। उस समय दो मछलियाँ तरुण भिक्षु थे। कच्छप बूढा था। इस वात को प्रत्यक्ष करने वाला गङ्गा-तट पर पैदा हुआ वृक्ष-देवता मै ही था।

२०६. कुरुङ्गमिग जातक

"**इङ्घ वद्धमय पासं** " यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के सम्वन्ध में कही।

क वर्तमान कथा

उस समय यह सुनकर कि देवदत्त वध के लिए प्रयत्न करता है शास्ता ने कहा, 'भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त मेरे वध के लिए प्रयत्नशील है, उसने पहले भी कोशिश की है।' इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व कुरुङ्ग-मृग की योनि मे पैदा हो जगल में एक तालाव के पास एक झाडी में रहता था। उसी तालाव के नजदीक वृक्ष पर एक कठफोडा[1] और तालाव में कछुआ रहता था। वे तीनो परस्पर प्रेम से रहते थे।

---

[1]कठफोड़ा = शतपत्र।

एक शिकारी जगल मे घूमते हुए पानी पीने के स्थान पर बोधिसत्त्व के पैरो का चिन्ह देख लोहे की जजीर सदृश फदे वा जाल लगा कर गया।

बोधिसत्त्व पानी पीने आकर (रात्रि के) पहले पहर में ही फँस गए, तब फँस जाने की आवाज की। उसकी आवाज सुन वृक्ष-शाखा पर से कठफोडा और पानी मे से कछुआ आया। उन्होने सलाह की—क्या किया जाए? कठ-फोडे ने कछुवे को सम्बोधन कर कहा—मित्र! तेरे दाँत है। तू जाल को काट। मै जाकर ऐसा करूँगा जिसमें वह आने न पाए। इस प्रकार हम दोनो के प्रयत्न से हमारे मित्र की जान बचेगी।

इस बात को प्रकट करते हुए यह गाथा कही—

> इङ्घं वद्धमयं पासं छिन्द दन्तेहि कच्छप
> अहं तथा करिस्सामि यथा नेहिति लुद्दको॥

[देख कछुए! तू दाँतो से चमडे के जाल को काट। मै वैसा करूँगा जिससे शिकारी आने न पावे।]

कछुए ने चमडे की डोरी खानी शुरू की। कठफोडा शिकारी के घर गया। शिकारी प्रात काल ही शक्ति लेकर निकला। पक्षी ने यह जान कि वह घर से निकल रहा है आवाज़ कर, परो को फडफडा कर आगे के द्वार से निकलते हुए उसके मुँह पर चोट की। शिकारी ने सोचा—मनहूस पक्षी ने मुझ पर प्रहार किया।

वह रुका, थोडी देर लेट, फिर शक्ति लेकर उठा। 'पहले यह आगे के द्वार से निकला, अब पीछे के द्वार से निकलेगा' सोच पक्षी जाकर घर के पीछे की ओर बैठा। शिकारी ने भी यह सोचा—आगे के द्वार से निकलते समय मैंने मनहूस पक्षी देखा अब पिछले द्वार से निकलूँगा। वह पीछे के द्वार से निकला। पक्षी ने फिर जाकर आवाज लगा मुँह पर चोट की। शिकारी ने कहा—फिर मुझ पर मनहूस पक्षी ने चोट की। यह मुझे निकलने नही देता। वह रुका, अरुणोदय तक लेटा रहा, फिर अरुणोदय होने पर शक्ति लेकर निकला।

पक्षी ने जल्दी से जाकर बोधिसत्त्व को सूचना दी कि शिकारी आ रहा है। उस समय तक कछुए ने एक को छोड शेष सभी डोरियाँ काट डाली थी। उसके दाँत गिरने वाले हो गए थे, मुँह लोहू से लाल हो गया था। बोधिसत्त्व शिकारी को शक्ति लिए बिजली की तेजी से आता देख बन्धन तोड वन में जा घुसा। पक्षी

वृक्ष-शाखा पर जा बैठा। कछुआ दुर्बलता के कारण वही पडा रहा। शिकारी ने कछुए को एक थैली में डाल किसी ठूँठ पर रख दिया।

वोधिसत्त्व ने रुक कर देखा तो पता लगा कि कछुआ पकडा गया। उसने सोचा—मित्र की जान बचाऊँगा। तव उसने अपने आपको शिकारी को ऐसे दिखाया जैसे वहुत दुर्वल हो गया हो। शिकारी ने सोचा—यह (और) दुर्वल होगा, इसे मारूँगा। उसने शक्ति ले वोधिसत्त्व का पीछा किया। वोधिसत्त्व न वहुत दूर, न वहुत नजदीक चलते हुए उसे ले जगल में गए। जव जाना कि दूर निकल आए तव मुड कर दूसरे रास्ते से हवा की तेजी से जा, सीग से थैली उठा, जमीन पर गिरा, फाड कर कछुए को वाहर निकाला। कठफोडा भी वृक्ष पर से उतरा। वोधिसत्त्व ने दोनो को उपदेश देते हुए कहा—तुम्हारी सहायता से मेरे प्राण वचे। मैंने भी तुम्हारे प्रति मित्र का कर्तव्य पालन किया। अव कही शिकारी आकर तुम्हें पकड न ले, इसलिए मित्र कठफोड, तू अपने पुत्रो को ले दूसरी जगह चला जा, और मित्र कछुए तू पानी में जा।

उन्होने वैसा ही किया। शास्ता ने वुद्ध होने पर दूसरी गाथा कही—

कच्छपो पाविसी वारिं कुरुङ्गो पाविसी वनं
सतपत्तो दुमग्गम्हा दूरे पुत्ते अपानयि।।

[कछुआ पानी में जा घुसा। कुरुङ्ग वन में चला गया। कठफोडा वृक्ष-शाखा पर से अपने पुत्रो को दूर ले गया।]

अपानयि, अपनयि अर्थात् लेकर चला गया।

शिकारी वहाँ आ किसी को न देख फटी थैली ले दुःखी चित्त से अपने घर गया। वे भी तीनो मित्र जीवन भर विश्वास वनाए रखकर यथाकर्म गए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, जातक का मेल वैठाया।

उस समय शिकारी देवदत्त था। कठफोडा सारिपुत्र। कछुआ मोग्गल्लान। कुरुङ्ग-मृग तो मैं ही था।

२०७. अस्सक जातक

"अयमस्सकराजेन   " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पूर्व भार्य्या के प्रलोभन के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उस भिक्षु से पूछा—क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है?

"हाँ, सचमुच।"

"किसने उत्कण्ठित किया?"

"पूर्व-भार्य्या ने।"

शास्ता ने कहा—भिक्षु, उस स्त्री का तेरे प्रति स्नेह नही है। पहले भी तू उसके कारण महान् दु ख भोग चुका है।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में काशी राष्ट्र के पोतली[१] नाम के नगर मे अस्सक नामक राजा राज्य करता था। उसकी उब्बरी नाम की पटरानी थी। वह प्रिया थी, मनोज्ञ थी, सुन्दर थी, दर्शनीय थी और थी मानुषिक और दिव्य-वर्ण के बीच के वर्ण की। वह मर गई। उसकी मृत्यु से राजा शोकाभिभूत हुआ। उसे दु ख हुआ और वह दौर्मनस्य को प्राप्त हुआ। उसने रानी का शरीर द्रोणी में, तेल की कढाई में रखवा उसे अपनी चारपाई के नीचे रखवाया। फिर स्वय बिना कुछ खाए पीए रोता पीटता हुआ चारपाई पर पड रहा।

माता-पिता, अन्य नातेदार, मित्र अमात्य तथा ब्राह्मण गृहपति आदि "महा-

---

[१] 'पोतल' भी पाठ है।

राज! संस्कार अनित्य है. . ." कहते हुए उसे होश मे न ला सके। उसके रोते-पीटते ही सात दिन बीत गए।

उस समय पाँच अभिञ्ञा तथा आठ समापत्तियो के लाभी, तपस्वी होकर हिमवन्त प्रदेश में विचरते हुए बोधिसत्त्व ने प्रकाश फैला दिव्य-चक्षु से जम्बुद्वीप को देखते हुए उस राजा को उस प्रकार रोते देखा। 'मुझे इसकी सहायता करनी चाहिए' सोच ऋद्धिबल से आकाश में उड राजा के बाग में उतर मङ्गल शिला-पट पर सोने की प्रतिमा की तरह बैठे।

पोतली नगर वासी एक ब्राह्मण-माणवक उद्यान मे जा, बोधिसत्त्व को देख प्रणाम करके बैठा।

बोधिसत्त्व ने उससे बातचीत कर पूछा—माणवक! क्या राजा धार्मिक है?

"भन्ते! हाँ राजा धार्मिक है। लेकिन उसकी भार्य्या मर गई है। वह उसके शरीर को द्रोणी में रखवा रोता-पीटता लेटा है। आज उसे सातवाँ दिन हो गया। तुम राजा को इस प्रकार के दुःख से क्यो मुक्त नही करते? क्या यह ठीक है कि तुम्हारे जैसे शीलवान् के रहते राजा इस प्रकार का दुःख अनुभव करे?"

"माणवक! मै राजा को नही जानता। लेकिन यदि वह आकर मुझे पूछे तो मै उसे उसकी भार्य्या का जन्म ग्रहण करने का स्थान बताकर, राजा के सामने ही उससे बातचीत करवाऊँ।"

"भन्ते! तो मैं जब तक राजा को लेकर आऊँ तब तक आप यही बैठे।"

माणवक ने बोधिसत्त्व से वचन ले राजा के पास जा वह बात सुनाकर कहा—उस दिव्य-चक्षुधारी के पास चलना चाहिए।

राजा यह सोच कि उब्बरी को देख सकूँगा सन्तुष्ट हो रथ पर चढ वहाँ गया। बोधिसत्त्व को प्रणाम कर उसने पूछा—क्या तुम सचमुच देवी के जन्म ग्रहण करने की जगह जानते हो?

"महाराज! हाँ।"

"वह कहाँ पैदा हुई है?"

"महाराज! उसने रूप मे मत्त होने के कारण, प्रमादवश कोई अच्छा काम नही किया। इसलिए वह इसी उद्यान में गोबर के कीडे की योनि में पैदा हुई।"

"मैं विश्वास नहीं करता।"

"तो तुझे दिखा कर उससे कहलवाता हूँ।"

"अच्छा, कहलवाएँ।"

बोधिसत्त्व ने अपने प्रताप से ऐसा किया कि दो गोबर-पिण्ड लुढकते हुए राजा के सामने आएँ। वे चले आए। बोधिसत्त्व ने उसे दिखाते हुए कहा—"महाराज! यह तेरी उब्बरी देवी तुझे छोड गोबर के कीडे के पीछे-पीछे आती है। उसे देखें।"

"भन्ते! मैं विश्वास नहीं करता कि उब्बरी गोबर के कीडे की योनि में जन्म ग्रहण करेगी।"

"महाराज! उससे कहलवाता हूँ।"

"भन्ते! कहलवाएँ।"

बोधिसत्त्व ने अपने प्रताप से उसे बुलवाते हुए पूछा—उब्बरी! उसने मानुषी वाणी में कहा—हाँ भन्ते! क्या?

"पूर्व-जन्म में तेरा क्या नाम था?"

"भन्ते! मैं अस्सक राजा की उब्बरी नाम की पटरानी थी।"

"इस समय तुझे अस्सक राजा प्रिय है वा गोबर का कीडा।"

"भन्ते! वह मेरा पूर्व-जन्म था, उस समय मैं उसके साथ इस बाग में रूप, शब्द, गन्ध, रस तथा स्पर्श का आनन्द लेती हुई विचरती थी। लेकिन अब जब से मेरा नया जन्म हुआ है, वह मेरा क्या लगता है? मैं अब अस्सक राजा को मार कर उसकी गर्दन के खून से अपने स्वामी गोबर के कीडे के पैरो को धो सकती हूँ।"

यह कह परिषद के बीच में आदमियो की भाषा मे उसने ये गाथाएँ कही—

अयमस्सकराजेन देसो विचरितो मया,
अनुकामयानुकामेन पियेन पतिना सह॥
नवेन सुखदुक्खेन पोराणं अपिथीयति,
तस्मा अस्सकरञ्ञाव कीटो पियतरो मयं॥

[परस्पर एक दूसरे की कामना करते हुए अपने प्रिय पति इस अस्सक राजा के साथ मैंने इस प्रदेश में विचरण किया। नए सुख-दु ख से पुराना सुख-दु ख

ढका जाता है। इसलिए अस्सक राजा की अपेक्षा यह कीडा ही मेरा अधिक प्रिय है।]

अयमस्सकराजेन देसो विचरितो मया इस रमणीक उद्यान-प्रदेश में पहले मैंने अस्सक राजा के साथ विचरण किया। **अनुकामयानुकामेन; अनु** निपात मात्र है। मै उसकी कामना करती, वह मेरी कामना करता। इस प्रकार परस्पर कामना करते हुए के साथ। **पियेन** उस जन्म में प्रिय।

नवेन सुखदुक्खेन पोराण अपिधीयति, भन्ते! नए सुख से पुराना सुख नए दुख से पुराना दुख ढक जाता है। यही लोक-स्वभाव है—प्रकट करती है। **तस्मा अस्सकरञ्ञाव कीटो पियतरो मम;** क्योकि नवीन से पुराना ढक जाता है इसलिए अस्सक राजा की अपेक्षा कीडा मुझे सौ गुणा प्रिय है।

इसे सुन अस्सक राजा को पश्चात्ताप हुआ। उसने वहाँ खडे ही खडे लाश निकलवा सिर से स्नान कर वोधिसत्त्व को प्रणाम किया। फिर नगर मे प्रवेश कर दूसरी पटरानी वना धर्म से राज्य करने लगा।

वोधिसत्त्व भी राजा को उपदेश दे शोक-रहित कर हिमवन्त चले गए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के अन्त में उत्कण्ठित (भिक्षु) स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय उब्बरी पूर्व-भार्य्या थी। अस्सक राजा उत्कण्ठित भिक्षु था। माणवक सारिपुत्र। तपस्वी तो मैं ही था।

२०८. संसुमार जातक

"अलमेतेहि अम्वेहि..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय देवदत्त के वध करने के प्रयत्न के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने यह सुन कि देवदत्त वध के लिए प्रयत्न करता है, कहा—भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त मेरे वध करने का प्रयत्न करता है, उसने पहले भी किया है, लेकिन त्रास मात्र भी पैदा नही कर सका।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय वोधिसत्त्व हिमालय प्रदेश मे वन्दर की योनि मे पैदा हुए। वह हाथी सदृश बल वाले, शक्ति-सम्पन्न, महान् शरीर धारी, अति सुन्दर थे। गङ्गा के मोड पर जगल मे रहते थे।

उस समय गङ्गा में एक मगरमच्छ रहता था। उसकी भार्य्या ने बोधिसत्त्व को देखा। उसके मन में उसका मास खाने का दोहद उत्पन्न हुआ। उसने मगरमच्छ से कहा—स्वामी! इस कपिराज का कलेजा खाना चाहती हूँ।

"भद्रे! हम जल-चर, वह स्थल-चर, क्या हम उसे पकड सकेंगे?"

"जिस किसी भी तरह हो पकड, यदि नही मिलेगा, मर जाऊँगी।"

"तो डर मत। एक उपाय है। मै तुझे उसका कलेजा खिलाऊँगा।"

उसे आश्वासन दे मगरमच्छ, जिस समय वोधिसत्त्व गङ्गा का पानी पी गङ्गा-तट पर वैठा था, वोधिसत्त्व के पास गया और वोला—वानरराज! यहाँ इन अस्वादिष्ट फलो को खाते हुए तू अभ्यस्त स्थान में ही चरता है? गङ्गा-पार आम, कटहल के मधुर फलो की सीमा नही। क्या तुम्हें गङ्गा-पार जाकर फल-मूल नही खाने चाहिए?

"मगरराज! गङ्गा में पानी वहुत है। वह विस्तृत है। मै उधर कैसे जाऊँ?"

"यदि चले तो मैं तुझे अपनी पीठ पर चढा कर ले जाऊँगा।"

उसने उसका विश्वास कर 'अच्छा' कह स्वीकार किया। 'तो आ मेरी पीठ पर चढ' कहने पर चढ गया। मगरमच्छ थोडी दूर जा उसे डुवाने लगा। वोधिसत्त्व ने पूछा—दोस्त! यह क्या? मुझे पानी में डुवा रहा है?

"मै तुझे धर्म-भाव से नही ले जा रहा हूँ। मेरी भार्य्या के मन में तेरे कलेजे के लिए दोहद उत्पन्न हुआ है। मैं उसे तेरा कलेजा खिलाना चाहता हूँ।"

"दोस्त! तूने कह दिया सो अच्छा किया। यदि हमारे पेट मे कलेजा हो तो एक शाखा से दूसरी शाखा पर घूमते हुए चूर्ण-विचूर्ण हो जाए।"

"तो तुम कहाँ रखते हो?"

वोधिसत्त्व ने पास ही पके फलो से लदा हुआ एक गूलर का पेड दिखाकर कहा—देख, हमारे कलेजे इस गूलर के पेड़ पर लटकते हैं।

"यदि मुझे कलेजा दे, तो मै तुझे नही मारूँगा।"

"तो आ मुझे वहाँ ले चल। मैं तुझे वृक्ष पर लटका हुआ दूँगा।"

वह उसे लेकर वहाँ गया। वोधिसत्त्व ने उसकी पीठ पर से छलाग मार गूलर की शाखा पर वैठ कहा—सौम्य! मूर्ख मगरमच्छ! तूने यह मान लिया कि इन प्राणियो का कलेजा वृक्ष की शाखाओ पर होता है। तू मूर्ख है। मैंने तुझे ठगा है। तेरे फल-मूल तेरे ही पास रहे। तेरा शरीर ही वड़ा है। अकल नही है।

यह कह, इसी वात को प्रकट करते हुए ये गाथाएँ कही—

अलमेतेहि अम्वेहि जम्वूहि पनसेहि च,
यानि पारं समुद्दस्स वरं मय्हं उदुम्वरो॥
महती वत ते वोन्दि न च पञ्ञा तदूपिका,
सुंसुमार वञ्चितो मेसि गच्छ दानि यथासुखं॥

[यह जो तू समुद्र-पार आम, जामुन और कटहल वताता है, मुझे यह नही चाहिए। मुझे गूलर ही अच्छा है। तेरा शरीर वडा है, लेकिन तेरी प्रज्ञा उसके समान नही। मगरमच्छ! तू मेरे द्वारा ठगा गया है। अव तू सुखपूर्वक जा।]

अलमेतेहि, जो तूने द्वीप मे देखे, वह मुझे नही चाहिए। **वरं मय्हं उदुम्बरो** मुझे यह उदुम्बर वृक्ष ही अच्छा है। **बोन्दि** शरीर। **तद्रूपिका**, तेरी प्रज्ञा तेरे शरीर के अनुकूल नही है। **गच्छदानि यथासुखं**, अब सुखपूर्वक जा, तेरे (लिए) कलेजा नही है।

मगरमच्छ (जूए मे) हजार हार जाने की तरह दु खी, दौर्मनस्य को प्राप्त हो, चिन्ता करता हुआ अपने निवास-स्थान को चला गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मगरमच्छ देवदत्त था। मगरमच्छी चिञ्चामाणविका। कपिराज तो मै ही था।

२०९. कक्कर जातक

"**दिट्ठा मया वने रुक्खा** " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय धर्मसेनापति सारिपुत्र के शिष्य तरुण भिक्षु के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह अपने शरीर की रक्षा करने में होशियार था। शरीर के लिए सुखकर न होगा, इस डर से किसी अति-शीत वा अति-उष्ण चीज का उपयोग न करता था। सर्दी-गर्मी से शरीर को कष्ट होगा, इस डर से बाहर नही निकलता था। बहुत पका या जला भात नही खाता था। उसकी वह शरीर रक्षा की होशियारी सघ में प्रकट हो गई। धर्मसभा में भिक्षुओ ने बातचीत चलाई—आयुष्मानो! अमुक तरुण शरीर-रक्षा के काम में होशियार है।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? "यह बातचीत" कहने पर "भिक्षुओ! यह तरुण अपने शरीर-रक्षा के काम में न केवल अभी होशियार है, पहले भी होशियार था।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व जगल में वृक्ष-देवता हुए।

एक चिडीमार पालतू वटेर, वालो का फदा तथा लाठी ले जगल में वटेरो को फँसाता हुआ, भाग कर जंगल में चले गए एक वटेर को फाँसने लगा। वह वाल के फदे में होशियार होने के कारण फदे मे नही आता था। वह उठ-उठ कर छिप जाता।

शिकारी अपने आपको शाखा-पत्तो से ढक वार-वार लकडी और फदा लगाता। वटेर ने उसे लज्जित करने के लिए मानुषी भाषा बोलते हुए पहली गाथा कही—

दिट्ठा मया वने रुक्खा अस्सकण्णविभीटका,
न तानि एवं सक्कन्ति यथा त्वं रुक्ख सक्कसि॥

[मैंने इस वन के अनेक अस्सकण्ण (अश्वकर्ण) और विभीटका (विभीतक) वृक्ष देखे, लेकिन तू वृक्ष जिस तरह से इधर-उधर चलता है, वह नही चलते।]

मित्र शिकारी **मया** इस **वने** पैदा हुए वहुत से अस्सकण्ण तथा विभीटक देखे। **तानि** वृक्ष **यथा त्वं सक्कसि,** तू सक्रमण करता है, इधर उधर विचरता है **एवं न सक्कन्ति,** नही सक्रमण करते हैं, नही विचरते हैं।

ऐसा कह वह वटेर भाग कर दूसरी जगह चला गया। उसके भाग जाने के समय चिडीमार ने दूसरी गाथा कही—

पुराणकक्करो अयं भेत्वा पञ्जरमागतो,
कुसलो वाळपासानं अपक्कमति भासति॥

[यह पुराना वटेर पिंजरा तोड कर चला आया। वाल के फदे में होशियार परिहास कर के चल देता है।]

कुसलो वाळपासान, बाल के फंद मे होशियार अपने को न बांधने देकर अप-क्कमति और भासति, बोलकर भाग जाता है। ऐसा कह चिडीमार जगल मे घूम जो मिला लेकर घर गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शिकारी देवदत्त था। बटेर अपनी शरीर-रक्षा करने मे होशियार तरुण भिक्षु। उस बात को प्रत्यक्ष देखने वाला वृक्ष-देवता तो मै ही था।

२१०. कन्दगळक जातक

"अम्भो कोनामय एक्खो, ." यह शास्ता ने वेळुवन मे विहार करते समय सुगत का रग-ढग बनाने के बारे मे कही ।

क. वर्तमान कथा

तब शास्ता ने यह सुन कि देवदत्त ने सुगत का रग-ढग बनाया कहा—"भिक्षुओ! न केवल अभी देवदत्त मेरी नकल करके विनाश को प्राप्त हुआ, पहले भी प्राप्त हुआ है।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व हिमवन्त प्रदेश मे कठफोरनी पक्षी होकर उत्पन्न हो खदिरवन मे ही रहने लगे। उसका नाम खदिरवनी ही हो गया। उसका एक कन्दगळक नाम का मित्र था। वह पाळिभद्दक वन मे रहता था। एक दिन वह खदिरवनी के पास गया। खदिरवनी ने 'मेरा मित्र आया है' सोच कन्दगळक को ले खदिरवन मे प्रवेश कर खदिर के तने को चोच से ठोंगे मार कीडे निकाल कर दिए। कन्दगळक जो जो पाता मीठे पूए

की तरह तोड तोड कर खाता। उसे खाते समय ही अभिमान हो गया। यह भी कठफोरनी योनि में पैदा हुआ है, मैं भी। मुझे इसके दिए शिकार से क्या प्रयोजन, मै स्वय ही शिकार करूँगा। उसने खदिरवनी से कहा—"मित्र! तू कष्ट मत उठा। मै ही खदिरवन मे शिकार करूँगा।"

उसने उसे कहा—"मित्र! तू सेमर पाळिभद्दक आदि वन मे निस्सार लकडी मे शिकार करने वाले कुल मे पैद हुआ है। खदिर की लकडी सारवान् होती है, कठोर होती है। तू यह इच्छा मत कर।"

कन्दगळक बोला—क्या मै कठफोरनी की योनि मे पैदा नही हुआ? उसने उसका कहना न मान जल्दी से जा खदिर वृक्ष पर चोच से ठोगें मारी। उसी समय उसकी चोच टूट गई। आँखे बाहर निकली सी हो गईं। सीस फट गया। वह तने पर खडा न रह सकने के कारण जमीन पर गिरा और पहली गाथा कही—

अम्भो को नामय रुक्खो सीनपत्तो सकण्टको,
यत्थ एकप्पहारेन उत्तमङ्ग विसाटित॥

[भो! इस पतले पत्तो वाले काँटेदार वृक्ष का क्या नाम है, जिस पर एक ही चोट करने से मेरा सिर फट गया।]

अम्भो को नामय रुक्खो, भो खदिरवनी! इस वृक्ष का क्या नाम है? **को नाम सो** यह भी पाठ है। **सीनपत्तो** सूक्ष्म पत्तो वाला। **यत्थ एकप्पहारेन,** जिस वृक्ष पर एक ही चोट लगाने से **उत्तमग विसाटित** सिर फूट गया, न केवल सिर ही फूटा चोच भी टूट गई। वह वेदना से पीडित हो खदिर-वृक्ष को न जान सका कि यह खदिर-वृक्ष है, और इस गाथा से विलाप किया—

इसे सुन खदिरवत्ती ने दूसरी गाथा कही—

अचारुताय[1] वितुद वनानि कट्ठङ्गरुक्खेसु असारकेसु,
अथासदा खदिर जातसार यत्थब्भिदा गरुळो उत्तमङ्गं॥

---

[1]अचारिताय भी पाठ है।

[अभीतक सार-रहित काठ के वृक्षो वाले वनो को ठोग मारी। अब यह सारवान् खदिर-वृक्ष को प्राप्त हुआ, जहाँ पक्षी ने सिर तुडवाया।]

अचारुताय, उसने आचरण किया। **वितुद वनानि** सार रहित सेमर पाळिभद्दक के वन आदि को ठोग मारते हुए वीधते हुए। **कट्ठंगरुक्खेसु असारकेसु,** बन की सामान्य लकडी सार रहित पाळिभद्दक सेमर आदि मे। **अथासदा खदिरं जातसारं,** छोटेपन से सारवान् खदिर-वृक्ष को प्राप्त हुआ। **यत्थब्भिदा,** जिस खदिर-वृक्ष से लगकर तोड लिया फाड लिया **गरुळो** पक्षी। सभी पक्षियो के लिए आदर का शब्द है।

खदिरवनी ने उसे यह सुना कर कहा—कन्दगळक! जहाँ तूने सिर तुडाया यह खदिर नाम का सारवान् वृक्ष है। वह वही मर गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना सुना जातक का मेल बैठाया।

उस समय कन्दगळक देवदत्त था। खदिरवनी तो मै ही था।

बैल माग। "तात! राजा की सेवा मे रहते थोड़े ही दिन हुए है। अभी बैल मागना ठीक नहीं। आप ही मागे।"

"तात! तू मेरे अधिक लज्जाशील होने को नही जानता? मै दो तीन जनो के सामने बोल नही सकता। यदि मै राजा के पास बैल माँगने जाऊँगा, तो यह भी देकर आऊँगा।"

"तात! जो होना हे सो हो। मै राजा से नही माँग सकता। लेकिन मै तुम्हे बोलने का अभ्यास करा दूगा।"

"तो अच्छा, मुझे अभ्यास करा।"

बोधिसत्त्व उसे ऐसे श्मशान मे ले गए, जहाँ बीरण-घास के झुड थे। वहाँ घास के पूले बाधकर 'यह राजा है', 'यह उपराजा है', 'यह सेनापति है' नाम रख क्रम से पिता को दिखा कर कहा—"तात! तू राजा के पास जा 'महाराज की जय हो' कह, इस तरह यह गाथा कह बैल मागना। गाथा सिखाई—

द्वे मे गोणा महाराज येहि खेत्त कसामसे,
तेसु एको मतो देव दुतिय देहि खत्तिय॥

[महाराज! मेरे दो बैल थे, जिनसे खेती होती थी। देव! उसमे से एक मर गया। राजन! दूसरा दे।]

ब्राह्मण ने एक वर्ष मे गाथा का अभ्यास कर बोधिसत्त्व को कहा—तात! सोमदत्त! मुझे गाथा (कहने) का अभ्यास हो गया। अब मै इसे जिस किसी के सामने कह सकता हूँ। मुझे राजा के पास ले चल।

उसने कहा 'तात अच्छा' और योग्य भेट लिवा पिता को राजा के पास ले गया। ब्राह्मण ने 'महाराज की जय हो' कह भेट दी। राजा ने पूछा—

'सोमदत्त! यह ब्राह्मण तेरा क्या लगता है?'

"महाराज! मेरा पिता है।"

"किस मतलब से आया है?"

उस समय ब्राह्मण ने बैल माँगने के लिए गाथा कहते हुए कहा—

द्वे मे गोणा महाराज येहि खेत्त कसामसे,
तेसु एको मतो देव दुतियं गण्ह खत्तिय॥

दूसरा परिच्छेद

७. बीरणत्थम्भक वर्ग

२११. सोमदत्त जातक

"अकासि योग " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय लालुदायी स्थविर के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

दो तीन जनो के बीच में वह एक शब्द भी न बोल सकता। अधिक लज्जाशील होने के कारण कुछ कहने जाकर कुछ दूसरा ही कह देता। धर्मसभा में बैठे हुए भिक्षु उसके बारे में चर्चा कर रहे थे। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "अमुक बातचीत" "भिक्षुओ, लालुदायी केवल अभी अधिक लज्जाशील नही है, पहले भी लज्जाशील ही रहा है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व काशीदेश में एक ब्राह्मण-कुल मे पैदा हुए। बडे होने पर तक्षशिला में विद्या सीख घर लौटे। यह देख कि माता-पिता बहुत दरिद्र है, उसने सोचा कि दुर्गति को प्राप्त माता-पिता की अवस्था सुधारूँगा। माता-पिता की आज्ञा ले वह वाराणसी जा राजा की सेवा में रहने लगा। वह राजा को प्रिय हुआ, उसके मन को अच्छा लगने वाला हुआ।

उसका बाप दो बैलो से खेती कर पेट पालता था। एक बैल मर गया। उसने बोधिसत्त्व से कहा—तात! एक बैल मर गया। खेती नही होती। राजा से एक

[महाराज! मेरे दो वैल थे, जिनसे खेती होती थी। देव! उनमें से एक मर गया। राजन्! दूसरा लें।]

राजा ब्राह्मण से विमुख हो गया। उसके कहने का भाव जान मुस्कराया और वोला—सोमदत्त! तुम्हारे घर में मालूम होता है वहुत वैल हैं।

"महाराज! आप देंगे तो हो जाएँगे।"

राजा ने वोधिसत्त्व पर प्रसन्न हो ब्राह्मण को सोलह अलङ्कृत वैल और उसका रहने का गाव ब्रह्मदान दे, वहुत से धन के साथ विदा किया।

ब्राह्मण सर्व श्वेत सैन्धव घोडे जुते रथ पर चढ वहुत से अनुयायियो के साथ गाव आया। वोधिसत्त्व ने रथ में वैठ, पिता के साथ आते हुए कहा—तात! मैंने साल साल तुम्हे अभ्यास कराया, लेकिन अन्त मे तुमने अपना वैल राजा को दिया।

इतना कह यह गाथा कही—

अकासि योग्ग धुवमप्पमत्तो
सवच्छरं वीरणत्थम्भकस्मि,
व्याकासि सञ्ञ परिस विगय्ह
न निय्यमो तायति अप्पपञ्ञ॥

[आलस्य रहित हो नित्य साल भर तक वीरण-घास के झुडो वाले श्मशान मे अभ्यास किया, लेकिन परिपद मे जाकर भूल गया। अल्प-प्रज्ञा आदमी का अभ्यास भी त्राण नही करता।]

अकासि योग्गं धुवमप्पमत्तो सवच्छर वीरणत्थम्भकस्मि, तू नित्य प्रमादरहित हो वीरण के झुड वाले श्मशान में वर्ष भर अभ्यास करता रहा। **व्याकासि सञ्ञं परिस विगय्ह**, परिपद में आकर उस सञ्ञा को विकृत कर दिया, मतलव वदल दिया। **न निय्यमो तायति अप्पपञ्ञं**, अल्प प्रज्ञा वाले आदमी का नियम, अभ्यास त्राण नही करता, रक्षा नही करता।

उसकी वात सुन ब्राह्मण ने दूसरी गाथा कही—

द्वयं याचनको तात सोमदत्त निगच्छति
अलाभ धनलाभञ्च एवंधम्मा हि याचना॥

[तात सोमदत्त ! मागने वाले की दो ही हालतें होती हैं—धन मिलना है या नहीं मिलता। माँगने का यह स्वभाव ही है।]

एवंधम्मा हि याचना; मागने का यही स्वभाव है।

शास्ता ने "भिक्षुओ-लालुदायी केवल अभी अधिक लज्जाशील नहीं है, पहले भी अधिक लज्जाशील ही था" कह यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय सोमदत्त का पिता लालुदायी था। सोमदत्त मैं ही था।

२१२. उच्छिट्ठभत्त जातक

"**अञ्ञो उपरिमो वण्णो . .**" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पूर्व भार्य्या की आसक्ति के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने पूछा—भिक्षु, क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है?

"सचमुच।"

"तुझे किसने आकर्षित किया?"

"पूर्व भार्य्या ने।"

"भिक्षु! यह स्त्री तेरा अपकार करने वाली है। पहले भी इसने तुझे अपने जार का जूठा खिलाया है।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

२१३. भरु जातक

"इसीनमन्तर कत्वा " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोशल राजाओ के वारे में कही।

क. वर्तमान कथा

भगवान् के भिक्षुसघ का लाभ तथा सत्कार वहुत था। जैसे कहा है—"उस समय भगवान् का सत्कार होता था, गौरव होता था, मान होता था, पूजा होती थी, आदर होता था और उन्हें चीवर, पिण्डपात (=भिक्षा), शयनासन, रोगी की दवाई आदि चीजे मिलती थी, भिक्षुसघ का भी सत्कार होता था, गौरव होता था, मान होता था, पूजा होती थी, आदर होता था और उसे चीवर, पिण्डपात, शयनासन, रोगी की दवाई आदि चीजें मिलती थी। लेकिन दूसरे तैर्थिक परिव्राजको का न सत्कार होता था, न गौरव होता था, न मान होता था, न पूजा होती थी, न आदर होता था और न उन्हें चीवर, पिण्डपात, शयनासन, रोगी की दवाई आदि चीजे ही मिलती थी।" इस प्रकार जव उनका लाभ सत्कार जाता रहा तो वे दिन रात छिपकर इकट्ठे हो विचार करते कि जव से श्रमण गौतम पैदा हो गया है तभी से हमारा लाभ मत्कार जाता रहा; श्रमण गौतम को ही श्रेष्ठ लाभ तथा यश मिलता है। क्या करण है कि इसे यह सव मिलता है?

कुछ ने कहा—श्रमण गौतम सकल जम्बूद्वीप में उत्तम स्थान श्रेष्ठ-भूमि पर रहता है। इसीसे उसे लाभ सत्कार की प्राप्ति होती है। वाकी वोले—यही कारण है। हम भी जेवतन में तैर्थिक आश्रम वनवाएँ। इससे हमको भी लाभ होगा।

उन सव ने 'यह ठीक है' निश्चय कर सोचा—यदि हम राजा को विना सूचित किए आश्रम वनवाएँगे तो भिक्षु रोक देंगे। कुछ पाकर पक्षपात न करनेवाला कोई नहीं है। इसलिए राजा को रिश्वत दे आश्रम के लिए जगह लेंगे।

यह सलाह कर, उपस्थापको से माग, राजा को लाख दे कहा—महाराज ! हम जेतवन मे तैर्थिक-आश्रम बनाएँगे। यदि भिक्षु तुम्हें कहे कि हम बनाने नही देंगे तो उनकी बात स्वीकार न करना।

राजा ने रिश्वत के लोभ से 'अच्छा' कह स्वीकार किया। तैर्थिको ने राजा को मिला बढइयो को बुलवा काम शुरु किया। बडा शोर हुआ। शास्ता ने पूछा—आनन्द ! यह हल्ला करने वाले, शोर मचाने वाले कौन है ?

"भन्ते ! अन्य तैर्थिक जेतवन मे तैर्थिक-आश्रम बनवा रहे हैं। वही यह शोर हो रहा है।"

"आनन्द ! यह स्थान तैर्थिको के योग्य नही है। तैर्थिक शोर प्रिय होते है। उनके साथ रहना नही हो सकता।"

शास्ता ने भिक्षु-सघ को एकत्र कर कहा—'भिक्षुओ, जाओ राजा को कह कर तैर्थिक-आश्रम का बनवाना रुकवाओ।"

भिक्षु जाकर राजा के प्रवेशद्वार पर खडे हुए। राजा ने यह सुना कि भिक्षु आए है तो यह समझकर कि तैर्थिको के आश्रम के ही बारे मे आए होगे रिश्वत लिए रहने के कारण कहलवा दिया कि राजा घर मे नही है। भिक्षुओ ने जाकर शास्ता से कहा। शास्ता ने 'रिश्वत के कारण ऐसा करता है' सोच दोनो प्रधान शिष्यो को भेजा। राजा ने उनका भी आना सुन वैसे ही कहलवा दिया। उन्होने भी आकर शास्ता से कहा।

'सारिपुत्र ! अब राजा को घर मे बैठना न मिलेगा, बाहर निकलना ही होगा' कह शास्ता अगले दिन पूर्वाह्न समय पहन कर, पात्र चीवर ले पाच सौ भिक्षुओ के साथ राजा के प्रवेशद्वार पर पहुँचे। राजा ने सुना तो वह महल से उतर पात्र ले शास्ता को (अन्दर) लिवा भिक्षुसघ को, जिसमें मुख्य बुद्ध थे, यवागु-खाद्य दे, शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठा। शास्ता ने राजा को एक तरह का धर्मोपदेश करते हुए कहा—महाराज ! पुराने राजाओ ने रिश्वत ले शीलवानो मे परस्पर झगडा कराया। वे अपने देश के स्वामी नही रहे और महान् विनाश को प्राप्त हुए।

उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल मे भरु राष्ट्र मे भरु राजा राज्य करता था। उस समय बोधिसत्त्व पाँच अभिञ्ञा तथा आठ समापत्ति प्राप्त थे। वे गण-शास्ता तपस्वी हो, हिमालय प्रदेश मे चिरकाल तक रह नमक-खटाई खाने के लिए पाँच सौ तपस्वियो को साथ ले हिमवन्त से उतरे। क्रमश भरु नगर पहुँच, वहाँ भिक्षा माँग, नगर से निकल, उत्तर-द्वार पर टहनी-टहनी वाले वट वृक्ष के नीचे बैठ, भोजन कर वही रहने लगे। इस प्रकार जब उस ऋषि-समूह को वहाँ रहते आधा महीना हुआ, एक दूसरा गण-शास्ता पाँच सौ तपस्वियो सहित आ, नगर मे भिक्षा माँग, नगर से निकल, दक्षिण-द्वार पर उसी वट वृक्ष के नीचे बैठ, भोजन कर वही रहने लगा। वे दोनो ऋषि-समूह वहाँ यथारुचि रह कर हिमालय चले गए। उनके चले जाने पर दक्षिण-द्वार का वट वृक्ष सूख गया। अगली बार आने पर दक्षिण-द्वार के वट-वृक्ष के नीचे रहनेवालो ने पहले पहुँच जब यह देखा कि उनका वट-वृक्ष सूख गया है, तो वे भिक्षा माग, नगर से निकल, उत्तर-द्वार पर वट-वृक्ष के नीचे जा, भोजन कर वही रहने लगे। दूसरे ऋषि पीछे आकर, नगर में भिक्षा माग, अपने वृक्ष के नीचे पहुँच भोजन कर वहाँ रहने लगे।

उन दोनो में 'यह तुम्हारा वृक्ष है' 'यह हमारा वृक्ष है' करके झगडा हो गया। झगडा बढ गया। एक पक्ष ने कहा कि हम यहाँ रहते थे, इसलिए इस स्थान पर तुम्हारा अधिकार नही। दूसरे ने कहा कि इस वार हम यहाँ पहले आए, इसलिए तुम्हारा अधिकार नही। इस प्रकार वे दोनो 'हम स्वामी' 'हम स्वामी' करके वृक्ष के नीचे की जगह के लिए झगडा करते हुए राज-कुल गए। राजा ने पहले रहे ऋषि-समूह को ही स्वामी बनाया। दूसरो ने कहा अब हम यह नही कहलाएँगे कि इनसे हार गए। उन्होने दिव्य-चक्षु से चक्रवर्ती राजा के योग्य एक रथ का चौखटा देख, ला, राजा को रिश्वत दे कहा--- महाराज! हमें भी (उस स्थान का) स्वामी बनाएँ।

राजा ने रिश्वत ले दोनो समूह रहे (कह) दोनो को स्वामी बनाया। दूसरे ऋषियो ने उस रथ के चौखटे के रत्नो के पहिए लाकर रिश्वत दे कहा---महाराज! हमें ही स्वामी करें।

राजा ने वैसा ही किया।

ऋषियो ने सोचा कि हम काम-भोगो को छोड प्रव्रजित हुए। फिर वृक्ष के नीचे की जगह के लिए झगडते हुए रिश्वत देने लगे। हमने यह अनुचित किया। इस प्रकार पश्चात्ताप कर वे जल्दी से भाग कर हिमालय ही चले गए।

सकल भरु राष्ट्रवासी देवताओ ने एकत्र होकर कहा—राजा ने शीलवानो मे झगडा पैदा करके अच्छा नही किया। उन्होने क्रोधित हो तीन सौ योजन के भरु राष्ट्र को समुद्र मे तूफान लाकर नष्ट कर दिया। इस प्रकार एक भरु राजाओ के कारण सारा राष्ट्र विनाश को प्राप्त हुआ (कह) शास्ता ने यह पूर्व-जन्म की कथा ला अभिसम्बुद्ध होने पर यह गाथाएँ कही—

इसीनमन्तर कत्वा भरुराजाति मे सुतं,
उच्छिन्नो सहरट्ठेन स राजा विभवं गतो॥
तस्मा हि छन्दागमन नप्पसंसन्ति पण्डिता,
अदुट्ठचित्तो भासेय्य गिरं सच्चूपसंहित॥

[ऐसा मैने सुना कि ऋषियो मे भेद करके भरु राजा अपने राष्ट्र सहित विनाश को प्राप्त हुआ। इसलिए पण्डित लोग पक्षपात की प्रशसा नही करते। द्वेषरहित चित्त से सच्ची बात कह देनी चाहिए।]

अन्तरं कत्वा, पक्षपात के कारण भेद करके। **भरु राजा** भरु राष्ट्र का राजा। **इति मे सुतं** ऐसा मैने पहले सुना। **तस्मा हि छन्दागमनं,** क्योकि पक्षपात करके भरु राजा राष्ट्र सहित नष्ट हुआ इसलिए पण्डित पक्षपात की प्रशसा नही करते। **अदुट्ठचित्तो,** विकारो से मलिन चित्त न हो। **भासेय्य गिरं सच्चे पसंहितं** यथार्थ, अर्थयुक्त, सकारण वाणी ही वोले।

जिन्होने भरु राजा के रिश्वत लेते समय 'यह उचित नही है' कह निन्दा करते हुए सच्ची वात कही, वे जहाँ खडे थे वहाँ नारियल के द्वीप में आज भी हजारो दीपक (जलते) दिखाई देते है।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला 'महाराज, पक्षपात नही करना चाहिए, प्रव्रजितो मे झगडा नही कराना चाहिए' कह जातक का मेल बैठाया।

मै उस समय में ज्येष्ठ ऋषि था।

राजा ने तथागत के भोजन करके चले जाने पर आदमियों को भेज कर तैर्थिको का आश्रम विध्वस करा दिया। तैर्थिक अप्रतिष्ठित हो गए।

२१४. पुण्णनदी जातक

"पुण्ण नदिं " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय प्रज्ञा पारमिता के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन धर्मसभा मे भिक्षुओं ने तथागत की प्रज्ञा के बारे मे बातचीत चलाई—आयुष्मानो! सम्यक् सम्बुद्ध महाप्रज्ञा है, विस्तृतप्रज्ञा है, प्रसन्नप्रज्ञा है, क्षिप्र-प्रज्ञा है, तीक्ष्ण-प्रज्ञा उनकी प्रज्ञा बीधने वाली है, वे उपाय कुशल है। शास्ता ने आकर पूछा—'भिक्षुओ! यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर भिक्षुओ, तथागत केवल अभी प्रज्ञावान् तथा उपायकुशल नही है, पहले भी थे' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व पुरोहित कुल में पैदा हुए। बडे होने पर तक्षशिला जा सब शिल्प सीख पिता के मरने पर पुरो-हित का पद पा राजा के अर्थधर्मानुशासक हुए।

आगे चलकर राजा ने चुगली करने वालो की बात का विश्वास कर क्रोधित हो बोधिसत्त्व को 'मेरे पास मत रह' कह निकाल दिया। बोधिसत्त्व स्त्री-बच्चो को ले काशी के एक गामडे में रहने लगे। फिर राजा को बोधिसत्त्व के गुणो की याद आई। उसने सोचा कि किसीको भेजकर मेरे लिए आचार्य्य को बुलाना ठीक

नही। एक गाथा रच, पत्र लिख, कौवे का मास पकवा, सफेद वस्त्र में लपेट, राजकीय मोहर लगाकर भेजूगा। यदि पण्डित होगा, पत्र पढ कर कौवे के मास का भाव समझ कर चला आएगा। नही, तो नही आएगा। उसने यह गाथा पत्र मे लिखी—

पुण्णं नदिं येन च पेय्यमाहु,
जातं यवं येन च गुय्हमाहु॥
दूरं गत येन च अव्हयन्ति,
सो त्यागतो हन्द च भुञ्ज ब्राह्मण॥

[जिसके पीने योग्य होने से नदी पूर्ण समझी जाती है, जिसको छिपा सकने योग्य होने से जौ उत्पन्न हुए समझे जाते हैं, जिसके बोलने से दूर गए आने वाले समझे जाते हैं, वह तेरे लिए आया है। ब्राह्मण ! इसे खा।]

पुण्णं नदिं येन च पेय्यामाहु, 'काकपेय्य नदी' कहते हुए पूर्णनदी को ही पेय्य कहते है। अपूर्ण नदी काकपेय्य नदी नही कहलाती, जब नदी किनारे खडे हो गरदन पसार कर कौआ भी पी सकता है, तभी उसे काकपेय्य कहते हैं। **जात यवं येन च गुय्हमाहु,** जो शोर्षक मात्र है। यहाँ सभी पैदा हुई, उत्पन्न हुई, तरुण खेती से मतलव है। वह जब अन्दर दाखिल हुए कौवे को छिपा सकती है तभी गोपन करने वाली होने से गुय्ह कहलाती है। किसे छिपाती है ? कौवे को। इस प्रकार कौवे को छिपाने से काक-गुय्ह। काक-गुय्ह कहने वाले (लोग) गुह्य-वचन का कारण कौआ होता है इसलिए काक-गुय्ह कहते है। इसीलिए कहा है—**येन च गुह्यमाहु। दूरं गत येन च अव्ह्यान्ति** दूर गया हुआ प्रवासी प्रिय-जन होने पर, जिसके आकर बैठने पर (लोग) कहते है कि यदि अमुक नाम का व्यक्ति आने वाला है तो कौवे बोल अथवा जिसके बोलने पर लोग समझते हैं क्योंकि कौवा बोलता है, इसलिए अमुक नाम का व्यक्ति आएगा, इस तरह कहने वाले जिसके कारण कहते है, विचार करते हैं, व्यक्त करते है। **सो त्यागतो** वह तेरे लिए लाया गया है। **हन्द च भुञ्ज ब्राह्मण,** ब्राह्मण ग्रहण कर, खा। मतलब इससे कौवे के मास को खा।

इस प्रकार राजा ने इसे पत्र में लिख बोधिसत्त्व के पास भेजा। उसने पत्र बाँच 'राजा मुझे देखना चाहता है' कह दूसरी गाथा लिखी—

यतो म सरती राजा वायसम्पि पहेतवे,
हंसा कोञ्चा मयूरा च असतियेव पापिया॥

[जब राजा कौवे का मास पाकर भी मुझे भेजना याद रखता है, तो हंस क्रौञ्च और मयूर की तो बात ही क्या? याद न आना ही बुरा है।]

यतो म सरति राजा वायसम्पि पहेतवे, जब राजा कौवे का मास पाकर भी मुझे उसे भेजना याद रखता है। **हंसा कोञ्चामयूरा च,** जब इसके लिए हंस आदि लाए जाएँगे, यह हंसमास आदि पाएगा, तब मुझे क्यो न याद करेगा? अट्ठकथा में **हंसकोञ्चमयूरान** पाठ है। वह सुन्दरतर है। अर्थ यही है कि इन हंस आदि का मास पाकर मुझे क्यो न याद करेगा? **असतियेव पापिया** यह या वह मिलने पर याद आना ही अच्छा है। दुनिया में याद न आना ही बुरा है, याद न करना ही हीन है, खराब है। वह हमारे राजा नही है। राजा मुझे याद करता है। मेरे आने की प्रतीक्षा करता है। इसलिए जाऊँगा।

गाडी जुडवा, जाकर राजा को देखा। राजा ने सन्तुष्ट हो पुरोहित का ही पद दिया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा आनन्द था। पुरोहित मैं ही था।

२१५. कच्छप जातक

"अवधी वत अत्तान . . " यह शास्ता ने जेतवन मे रहते समय कोकालिक के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

यह कथा महातक्कारि[1] जातक मे आएगी। उस समय शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, कोकालिक केवल अभी अपनी वाणी से नही मारा गया, पहले भी मारा गया। यह कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व अमात्य-कुल में पैदा हो, बड़े होने पर उसके अर्थधर्मानुशासक हुए। वह राजा बहुत बोलने वाला था। वह बोलता तो दूसरो को बोलने का मौका न मिलता। बोधिसत्त्व उसकी वाचालता हटाने का कोई उपाय सोचते हुए घूमते थे।

उस समय हिमालय-प्रदेश के किसी तालाब मे एक कछुआ रहता था। दो हस-बच्चो ने शिकार के लिए घूमते हुए उससे दोस्ती कर ली। उसके प्रति दृढ विश्वासी हो एक दिन हस-बच्चो ने कछुवे से कहा—दोस्त कछुवे! हमारे हिमवन्त मे चित्रकूट पर्वत के नीचे कञ्चन गुफा में रहने का रमणीक स्थान है। हमारे साथ चलेगा?

"मै कैसे चलूंगा?"

"हम तुझे लेकर चलेगे, यदि तू अपने मुंह पर काबू रख सकेगा, किसी को कुछ न कहेगा।"

"स्वामी! काबू रक्खूंगा। मुझे लेकर चलें।"

---

[1] महातक्कारि जातक (४८१)

उन्होने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। एक लकडी को कछुवे के मुंह में दे, उसके दोनो सिरो को अपने मुंह में ले, वे आकाश मे उडे। उसे इस प्रकार हसो द्वारा लिए जाते देख गाँव के लडको ने कहा—दो हस कछुवे को डडे पर लिए जाते हैं।

हसो की गति तेज होने के कारण वे वाराणसी नगर के राजमहल के ऊपर आ पहुँचे थे। कछुवे ने "दुष्ट छोकरो! यदि मेरे मित्र मुझे ले जाते हैं तो इसमें तुम्हारा क्या ?" कहने की इच्छा से उस लकड़ी को जहाँ से पकडा था छोड दिया। वह खुले आगन में गिर दो टुकडे हो गया। एक शोर हुआ—कछुआ खुले आँगन मे गिर दो टुकडे हो गया।

अमात्यो से घिरे हुए राजा ने बोधिसत्त्व को साथ ले उस जगह पहुँच, कछुवे को देख पूछा—पण्डित! यह कैसे गिरा ?

बोधिसत्त्व ने सोचा—मैं बडी देर से राजा को उपदेश देने की इच्छा से किसी उपाय की खोज में घूमता हूँ। इस कछुवे की हसो के साथ दोस्ती हुई होगी। वे 'इसे हिमवन्त ले चले' सोच लकडी मुंह में दे आकाश में उडे होगे। इसने किसी की बात सुन जबान पर काबू न होने से कुछ कहने की इच्छा से डण्डा छोड़ दिया होगा। इस प्रकार आकाश से गिर कर मरा होगा। वह बोला—"हाँ! महाराज! जो वाचाल होते हैं, जिनके वचन की सीमा नही होती वे इस प्रकार दुःख को प्राप्त होते हैं।" इतना कह यह गाथाएँ कही—

अवधी वत अत्तान कच्छपो व्याहरं गिर,
सुग्गहीतस्मि कट्ठस्मि वाचाय सकिया वधि॥
एतम्पि दिस्वा नरविरिय सेट्ठ!
वाचं पमुञ्चे कुसल नातिवेलं,
पस्ससि बहुभाणेन कच्छप व्यसन गतं॥

[कछुवे ने वाणी का प्रयोग करके अपने को मार डाला। अच्छी तरह लकड़ी को पकडे हुए अपनी वाणी के कारण (उसे छोड कर) अपने को मारा। नरवीर्य्य श्रेष्ठ! इसे भी देख कर (आदमी को) कुशल-वाणी-ही बोलनी चाहिए और वह भी समय (की सीमा) लाँघ कर नही। देखते ही हो, अधिक बोलने से कछुवा मर गया।]

अवधी वत घात किया। **व्याहरं** व्यवहार करते हुए। **सुग्गहीतस्मि कट्ठस्मि** मुख से अच्छी तरह लकड़ी को पकडे हुए। **वाचाय सकिया वधि** वाचाल होने से अनुचित समय पर वोल कर पकडी हुई जगह को छोड़ अपनी उस वाणी के कारण अपने को मार डाला। इस प्रकार यह मरा। किसी दूसरे कारण से नही।

एतम्पि दिस्वा यह बात भी देखकर **नरविरिय सेट्ठ** नरो मे श्रेष्ठ-वीर्य्य! उत्तमवीर राजवर! **वाच पमुञ्चे कुसल नातिवेलं** सत्यादि से युक्त कुशल वाणी ही पण्डित आदमी बोले, वह भी हितकर समयानुकूल। समय (की सीमा) लाँघ कर असीम वाणी न वोले, **पस्ससि** प्रत्यक्ष देखता है **बहुभाणेन** अधिक वोलने से **कच्छपं व्यसनं गतं,** यह कछुआ मर गया।

राजा ने 'मेरे लिए कह रहा है' सोच पूछा—पण्डित ! मेरे बारे में कह रहा है ?

वोधिसत्त्व—महाराज ! चाहे आप हो, चाहे कोई और हो, जो कोई सीमा लाँघ कर वोलता है वह इसी प्रकार दु ख भोगता है। यह स्पष्ट करके कहा।

उस समय से राजा सयम कर मितभाषी हो गया। शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल वैठाया।

उस समय कछुआ कोकालिक था। दो हंस-बच्चे दो महास्थविर। राजा आनन्द। अमात्य पण्डित तो मै ही था।

२१६. मच्छ जातक[1]

"न मायमग्गि तपति..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पूर्व-भार्य्या के आकर्षण के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उसे पूछा—भिक्षु! क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है? "भन्ते, सचमुच" कहने पर शास्ता ने पूछा—"किसने उत्कण्ठित किया?" जवाब दिया—पूर्व-भार्य्या ने। शास्ता ने "भिक्षु! यह स्त्री तेरा अनर्थ करने वाली है। पहले भी तू इसके कारण काँटे से बीधा जाकर, अङ्गारों पर पकाया जाकर खाया जाने वाला था। पण्डित की सहायता से जान बची" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उसके पुरोहित हुए। एक दिन मछुए जाल में फँसे मच्छ को निकाल कर, गर्म-बालू पर डाल, 'उसे अङ्गारों मे पका कर खाएँगे' सोच शूल तराशने लगे। मच्छ ने मछली के बारे में रोते हुए यह गाथा कही—

न मायमग्गि तपति न सूलो साधु तच्छितो,
यञ्च मं मञ्ञति मच्छी अञ्ञं सो रतिया गतो॥
सो मं दहति रागग्गि चित्तं वूपतपेति मं,
जालिनो मुञ्चयथिरा मं न कामे हञ्ञते क्वचि॥

---

[1] देखो मच्छ जातक (१.४ ३४)

[न मुझे, अग्नि तपाती है, न अच्छी तरह से छीला हुआ शूल ही। यह जो मुझे मछली समझेगी कि रति के कारण वह दूसरी मछली के पास चला गया—इसी का मुझे शोक है। मुझे वह रागाग्नि जला रही है। मेरे चित्त को तपाती है। हे मछुओ, मुझे छोड दो। कामी कही नही मारा जाता है।]

न मायमग्गि तपति, न मुझे यह आग जलाती है, न तपाती है, अर्थ है शोक नही है। **न सूलो** यह शूल भी **साधुतच्छितो** न मुझे ताप देता है, न शोक उत्पन्न करता है। **यञ्च मं मञ्ञति,** जो मुझे मछली ऐसा कहेगी कि वह पच कामगुणो से प्रेरित हो दूसरी मछली के पास चला गया, यही मुझे तपाता है, यही शोक उत्पन्न करता है।

सो मं दहति, जो यह रागाग्नि है वह मुझे जलाती है। **चित्त वूपतपेति मं,** रागयुक्त मेरा चित्त ही मुझे तपाता है, कष्ट देता है, पीडा देता है। **जालिनो** कैवर्त्तो (मछुओ) को सम्बोधन करता है। वह जाल के अर्थी होने से **जालिनो** कहलाते हैं। **मुञ्चथयिरा मं,** स्वामी मुझे छोड दे, यही याचना करता है **न कामे हञ्ञते क्वचि,** काम मे प्रतिष्ठित, काम मे वहता हुआ प्राणी कही नही मारा जाता, तुम्हारे जैसो को मारना उसे योग्य नही। अथवा **कामे** हेतु के अर्थ मे सप्तमी का प्रयोग है। काम-हेतु से मछली के पीछे-पीछे चलने वाला कही भी तुम्हारे जैसो से नही मारा जाता।

उसी समय वोधिसत्त्व ने नदी किनारे जा, उस मच्छ का रोना सुन, मछुओ के पास पहुँच, उस मच्छ को छुडाया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल वैठाया। सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय मछली पूर्व-भार्य्या थी। उत्कण्ठित भिक्षु मच्छ था। पुरोहित मैं ही था।

२१७. सेग्गु जातक

"सब्बो लोको ," यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक तरकारी बेचने वाले उपासक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह कथा पहले परिच्छेद मे आ ही चुकी है।[1] इस कथा में शास्ता ने पूछा—उपासक! क्यो देर करके आया है?

"भन्ते! मेरी लडकी सदैव हँसमुख रहती थी। मैंने उसकी परीक्षा कर उसे एक तरुण को दिया। सो यह करने से आपके दर्शन के लिए आने का समय नही मिला।"

"उपासक! वह अब ही सदाचारिणी नही है। पहले भी सदाचारिणी थी। तूने न केवल अभी उसकी परीक्षा नही की है, पहले भी की ही थी।"

इतना कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व वृक्ष-देवता हुए। उस समय उसी तरकारी बेचने वाले उपासक ने लडकी की 'परीक्षा करने के लिए' उसे जगल मे ले जा काम-भोग चाहने वाले की तरह उसे हाथ से पकडा। वह रोने लगी। उसे यह पहली गाथा कही—

सब्बो लोको अत्तमनो अहोसि,
अकोविदा गामधम्मस्स सेग्गु॥
कोमारि को नाम तवज्ज धम्मो,
यं त्वं गहिता पवने परोदसि॥

---

[1] पण्णिक जातक (१०२)

[सारा लोक (इससे) आनन्दित (होता) है। सेग्गु तू इस ग्राम्य-धर्म से अपरिचित है। कुमारी! यह तेरा क्या धर्म है कि तू वन मे पकडने पर रोती है।]

सब्बो लोको अत्तमनो अहोसि, अम्म! सारे प्राणी इस काम-भोग के सेवन से सन्तुष्ट (होते) हैं। **अकोविदा गामधम्मस्स सेग्गु,** सेग्गु उसका नाम है। सो अम्म सेग्गु! तू इस ग्राम्य-धर्म मे, इस चाण्डाल-कर्म मे दक्ष नही है। **कोमारि को नाम तवज्ज धम्मो,** अम्म कुमारी! यह आज तेरा क्या स्वभाव है? **यं त्व गहिता पवने परोदसि,** जो तू मेरे द्वारा इस वन मे कामभोग के लिए पकडी जाने पर रोती है। स्वीकार नही करती। यह तेरा क्या स्वभाव है? क्या तू कुमारी ही है?—पूछता है।

इसे सुन कुमारी ने कहा—हाँ तात! मै कुमारी ही हूँ। मै मैथुन-धर्म को नही जानती हूँ। ऐसा कह, रोती हुई वह दूसरी गाथा बोली—

यो दुक्खफट्ठाय भवेय्य ताणं,
सो मे पिता दूभि वने करोति॥
सा कस्स कन्दामि वनस्स मज्झे,
यो तायिता सो सहसा करोति॥

अर्थ उपरोक्त प्रकार[1] से ही है।

तब वह तरकारी बेचने वाला उस लडकी की परीक्षा कर, घर ले जा, तरुण को दे, यथा-कर्म सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यो का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर तरकारी बेचने वाला स्रोतापत्ति-फल मे प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय लडकी (अब की) लड़की ही थी। पिता पिता ही हुआ। उस बात को प्रत्यक्ष करने वाला वृक्ष-देवता मैं ही था।

---

[1] **पण्णिक जातक (१०२)**

२१८. कूटवाणिज जातक

"सठम्स साठेय्यमिदं..." यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक कूट व्यापारी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कूट व्यापारी और पण्डित व्यापारी दो श्रावस्ती निवासी व्यापारियो ने साझा व्यापार करना आरम्भ करके, सामान की पाँच सौ गाडियाँ भरी। वे पूर्व से पश्चिम घूमते हुए व्यापार कर वहुत मुनाफा कमा श्रावस्ती लौटे। पण्डित व्यापारी ने कूट व्यापारी को कहा—दोस्त! सामान वॉट लें।

कूट व्यापारी ने सोचा—यह वहुत दिनो तक आराम से सोना तथा अच्छा भोजन न मिलने के कारण थका हुआ अपने घर जाकर नाना प्रकार के अच्छे-अच्छे भोजन खाएगा, वदहजमी से मरेगा। तव यह सारा सामान मेरा ही हो जाएगा। इसलिए वह 'आज नक्षत्र अच्छा नही, कल देखेंगे', 'आज दिन अच्छा नही, कल देखेंगे' करता हुआ समय विताने लगा।

पण्डित व्यापारी ने उसे मजवूर कर सामान वॅटवाया। फिर गन्धमाला ले शास्ता के पास जा, पूजा-वन्दना कर एक ओर वैठा। शास्ता ने पूछा—कव आया?

"भन्ते! मुझे आए आधा महीना हुआ।"

"तो इस प्रकार देर करके क्यो वुद्ध की सेवा मे आया है?"

उसने वह हाल कहा। शास्ता ने 'उपासक! यह केवल अभी ठग व्यापारी नहीं है, पहले भी ठग व्यापारी ही था' कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय वोधिसत्त्व अमात्य-कुल मे पैदा हो, वडे होने पर उस राजा के **विनिश्चय-अमात्य**[1] हुए।

उस समय एक ग्राम-वासी तथा एक नगर-वासी दो बनियो की आपस मे मित्रता थी। ग्रामवासी ने नगरवासी के पास पाँच सौ फाल रक्खे। उसने उन फालो को वेच, कीमत ले, जिस जगह पर फाल रक्खे थे वहाँ चूहो की मेगने फैला दी। समय वीतने पर ग्रामवासी ने आकर कहा—मेरे फाल दे। कुटिल बनिए ने चूहे की मेगने दिखाकर कहा कि तेरे फालो को चूहे खा गए।

दूसरे ने 'अच्छा खा गए सो खा गए, चूहो के खा लेने पर क्या किया जा सकता है' कह नहाने के लिए जाते समय उसके पुत्र को साथ ले जा एक मित्र के घर मे विठा कर कहा—इसे कही न जाने दे। फिर स्वय नहा कर कुटिल बनिए के घर गया।

उसने पूछा—मेरा पुत्र कहाँ है ?

"मै तेरे पुत्र को किनारे वैठा कर पानी मे डुवकी लगा रहा था। एक चिडिय आई और तेरे पुत्र को पजो मे ले आकाश मे उड गई। मैने हाथ पीटे, चिल्लाया, कोशिश की—लेकिन तव भी उसे न छुडा सका।"

"तू झूठ वोलता है। चिडिया वच्चो को लेकर नही जा सकती।"

"मित्र, हो, असम्भव होने पर भी मै क्या करूँ ? तेरे पुत्र को चिडिया ही ले गई है।"

उसने डराते हुए कहा—'अरे मनुष्यघातक, दुष्ट चोर! अभी अदालत मे जाकर निकलवाता हूँ।' यह कह वह चला। 'जो तुझे अच्छा लगे कर' कहते हुए वह भी उसके साथ अदालत गया। कुटिल व्यापारी ने वोधिसत्त्व से कहा—"स्वामी! यह मेरे पुत्र को लेकर नहाने गया। अव 'मेरा पुत्र कहाँ है ?' पूछने पर कहता है कि उसे चिडिया ले गयी। इस मुकद्दमे का फैसला करे।"

बोधिसत्त्व ने दूसरे से पूछा—

"क्या यह सच है ?"

---

[1] **मुकदमो का फैसला करने वाला अमात्य।**

"स्वामी! मैं उसे लेकर गया। चिड़िया के उसे ले जाने की वात सच ही है।"

"क्या इस दुनिया मे चिडियाँ वच्चो को ले जाती है?"

"स्वामी! मै भी आप से पूछना चाहता हूँ कि चिडियाँ तो वच्चो को लेकर आकाश में नही उड सकती, तो क्या चूहे लोहे के फाल खा सकते है?"

"इसका क्या मतलव है?"

"स्वामी! मैंने इसके घर में पाँच सौ फाल रक्खे। यह कहता है कि तेरे फालो को चूहे खा गए और 'यह तेरे फालो को खाने वाले चूहो की मेंगनी है' वह मेगनी दिखाता है। स्वामी! यदि चूहे फाले खाते है, तो चिडियाँ भी बच्चे ले जाती है। यदि नही खाते है, तो वाज तक भी नही ले जा सकते है। यह कहता है कि तेरे फालो को चूहे खा गए। उन्होने खाए, वा नही खाए—इसकी परीक्षा करें। मेरे मुकद्दमे का फैसला करे।"

वोधिसत्त्व ने सोचा—इसने शठ के प्रति शठता का व्यवहार करके जीतने की वात सोची होगी। उसने कहा—तूने ठीक सोचा है। और यह गाथा कही—

सठस्स साठेय्यमिदं सुचिन्तत,
पच्चोड्डित पतिकूटस्स कूट।
फालञ्चे अदेय्युं मूसिका,
कस्मा कुमारं कुळला नो हरेय्युं॥
कूटस्स हि सन्ति कूटकूटा,
भवति चापि निकतिनो निकत्या।
देहि पुत्तनट्ठ फालनट्ठस्स फालं,
मा ते पुत्तमहासि फालनट्ठो॥

[शठ के प्रति शठता, यह अच्छा सोचा है। कुटिल के प्रति कुटिलता का जाल फैलाया है। यदि चूहे फाल खा जाएँगे, तो चिडियाँ वच्चे को क्यो नही ले जाएँगी?

कुटिल के प्रति कुटिलता का व्यवहार करने वाले ठग है। ठग को भी ठगने वाले होते है। हे पुत्र-नष्ट! जिसकी फाल खोई गई है उसकी फाल दे। तेरे पुत्र को, जिसकी फाल नष्ट हुई है, वह न ले जाए।]

सठस्स, शठता से, धोखे से कोई ढग निकाल कर दूसरे का माल खाना चाहिए, ऐसा समझने वाले शठ के प्रति। **साठेमिदं सुचिन्ततं,** जो यह शठता का व्यवहार सोचा है, सो तूने ठीक सोचा है। **पच्चोड्डित पतिकूटस्स कूटं,** कुटिल आदमी के प्रति तूने कुटिलता का जाल ठीक फैलाया, उसकी चाल का जवाब दे, जाल फैलाने सा ही किया—यही अर्थ है। **फालञ्चे अदेय्यु मूसिका,** यदि चूहे फाल खाएँ। **कस्मा कुमारं कुळला नो हरेय्यु,** जब चूहे फाल खा जाते है तो चिडियाँ क्यो बच्चो को नही ले जाएँगी ?

कूटस्सहि सन्ति कूटकूटा, तू समझता है कि मै ही चूहो को फाल खिला देने वाला कुटिल पुरुष हूँ, तेरे जैसे कुटिल पुरुष के साथ कुटिलता करने वाले इस लोक मे बहुत कुटिल है। कुटिल के (भी) कुटिल यह कुटिल के प्रति कुटिलता करने वालो का नाम है। यही कहा गया है कि कुटिल के प्रति कुटिलता करने वाले है। **भवति चापि निकतिनो निकत्या,** ठगने वाले को ठगने वाला भी दूसरा आदमी होता है। **देहि पुत्तनट्ठ फालनट्ठस्स फालं,** भो पुत्र-नष्ट-पुरुष ! जिसकी फाल नष्ट हुई है उसकी फाल दे। **मा ते पुत्तमहासि फालनट्ठो,** यदि इसकी फाल नही देगा, तो यह तेरे पुत्र को ले जाएगा। जिससे यह न ले जाए। इसलिए इसकी फाल दे।

"स्वामी ! मै इसकी फाल देता हूँ, यदि यह मेरा पुत्र दे।"

"स्वामी ! मै देता हूँ, यदि यह मेरे फाल दे।"

इस प्रकार जिसका पुत्र खोया गया था उसने पुत्र पाया। जिसकी फाल खोई गई थी उसने फाल पाई। दोनो कर्मानुसार गए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना सुना जातक का मेल बैठाया। उस समय का कुटिल व्यापारी ही कुटिल व्यापारी था। पण्डित व्यापारी ही पण्डित व्यापारी था।

मुकदमा फैसला करने वाला अमात्य मै ही था।

२१९. गरहित जातक

"हिरञ्ञम्मे सुवण्णम्मे " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक भिक्षु के बारे में कही जिसका मन बुद्ध-शासन मे नही था, जो उत्कण्ठित था।

क. वर्तमान कथा

इस (भिक्षु) का ध्यान किसी भी बात मे एकाग्र नही होता था। इस अन्यमनस्क हो, जीवन बिताते हुए को शास्ता के पास लाए। शास्ता ने पूछा—क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है?

"हाँ! सचमुच।"

"किस कारण से?"

"कामासक्ति के कारण।"

"भिक्षु, कामासक्ति की पूर्व समय मे पशुओ ने भी निन्दा की है। तू इस प्रकार के शासन मे प्रव्रजित हो, जिन कामभोगो की पशुओ तक ने निन्दा की है, उनके कारण क्यो उत्कण्ठित हुआ है?"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व हिमालय में वानर की योनि मे पैदा हुए।

एक वनचर ने उसे पकड लाकर राजा को दिया। वह चिरकाल तक राजभवन में रहने के कारण सभ्यता सीख गया। राजा ने उसके सभ्य-व्यवहार से प्रसन्न हो वनचर को बुलाकर आज्ञा दी—इस वानर को जहाँ से पकड़ा है, वही छोड़ आओ। उसने वैसा ही किया।

वानरो ने जब सुना कि बोधिसत्त्व आया है, तो उसे देखने के लिए महान्

शिला-तल पर इकट्ठे हुए। उन्होने बोधिसत्त्व से कुशल-समाचार की बात कर पूछा—"मित्र, इतने दिन तक कहाँ रहे?"

"वाराणसी मे, राजभवन मे।"

"कैसे छूटे?"

"राजा ने मुझे खेल करने वाला वन्दर बना, मेरे करतबो से प्रसन्न हो, मुझे छोड़ दिया।"

"आप मनुष्य लोको का बरताव जानते हैं। हमे भी कहे। हम सुनना चाहते है।"

"मनुष्यो की करनी मुझसे मत पूछो।"

"कहे। हम सुनना चाहते है।"

बोधिसत्त्व ने, "मनुष्य चाहे क्षत्रिय हो, चाहे ब्राह्मण हो, सभी मेरा-मेरा करते है। वस्तुएँ अस्तित्व मे आकर विनष्ट हो जाती है, इस अनित्यता को वे नही जानते। अब उन अन्धे मूर्खो की बात सुनो" कह यह गाथाएँ कही—

हिरञ्ञम्मे सुवण्णम्मे ऐसा रत्तिन्दिवा कथा,
दुम्मेधान मनस्सान अरियधम्म अपस्सतं॥
द्वे द्वे गहपतयो गेहे एको तत्य अमस्सुको,
लम्बत्यनो वेणिकतो अथो अकितकण्णको;
कीतो धनेन बहुना सो तं वितुदते जनं॥

[आर्यधर्म को न जानने वाले मूर्ख मनुष्य दिन रात यही बातचीत करते रहते है—मेरा हिरण्य, मेरा सोना।

घर मे दो दो जने रहते है। एक को मूछ नही होती। उसके लम्बे स्तन होते है, वेणि होती है और कानो मे छेद होते है। उसे बहुत धन से खरीदा होता है। वह सब जनो को कष्ट देता है।]

हिरञ्ञम्मे सुवण्णम्मे, यह शीर्षकमात्र है। इन दो पदो से दसो तरह के रत्न अगली-पिछली फसल, सब द्विपद तथा चतुष्पदो का ग्रहण कर 'यह मेरा यह मेरा' कहा गया है। **एसा रत्तिन्दिवा कथा**, मनुष्य-लोग रात दिन यही बातचीत करते रहते है। वे पाञ्च स्कन्ध अनित्य है, उत्पन्न होकर विनष्ट हो जाते है आदि नही

जानते हैं। इस प्रकार रोते हुए भटकते हैं। **दुम्मेधानं** अज्ञानियो की **अरियधम्मं अपस्सतं,** वृद्धादि आर्य्यों के धर्म को न देखते हुए लोगो की अथवा नौ प्रकार के निर्दोप लोकोत्तर आर्य-धर्म[1] को न देखते हुए लोगो की यही वातचीत होती है, अन्य अनित्यता वा दु ख की वातचीत उनकी नही होती।

गहपतयो घर के मालिक। **एको तत्थ** उन दो घर के मालिको में से एक अर्थात् स्त्री। **वेणिकतो** कृतवेणि, नाना प्रकार से जिसने अपने वालो को क्रम से गठिया रक्खा है। **अयो अंकितकण्णको,** वह विंधे हुए कानो वाला, वा छिदे हुए कानो वाला। लम्वे कानो के वारे में कहा। **कीतो धनेन वहुना,** यह मूछ-विरहित, लम्वे-स्तन वाला, वेणिधारी, छिदे कान वाला माता-पिता को वहुत धन देकर खरीदा गया, सजा कर, गहने पहना कर, गाडी में विठा, वडी शान-शौकत से घर मे लाया गया। **सो तं वितुदते जनं,** वह गृहस्वामी (स्वामिनी) जिस समय से आता है उस समय से दासो, मजदूरो आदि को 'अरे दुप्ट दास! यह नही करता है, अरी दुप्ट दासी! यह नही करती है' आदि वचन-रूपी मुखशक्ति से वींधता है। स्वामी की तरह से व्यवहार करता है। इस प्रकार मनुष्यलोक में वहुत अनुचित है—मनुष्य-लोक की निन्दा की।

यह सुन सभी वन्दरो ने दोनो हाथो से अपने कान जोर से वन्द कर लिए—मत कहे। मत कहें। न सुनने योग्य वात हमने सुनी। इस स्थान पर हमने अनुचित वात सुनी। इसलिए उस स्थान की भी निन्दा कर अन्यत्र चले गए। उस पापाण-शिला का नाम निन्दित-पापाण शिला हो गया।

शास्ता ने यह धर्म देशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल वैठाया। सत्यो के प्रकाशन के अन्त में वह भिक्षु स्रोतापत्तिफल मे प्रतिप्ठित हुआ।

उस समय के वानर-गण वुद्ध-परिपद् थी। वानरेन्द्र तो मैं ही था।

---

[1] चार लोकोत्तर मार्ग + चार लोकोत्तरफल + निर्वाण।

२२०. धम्मद्ध जातक

"सुखं जीवितरूपोसि...." यह शास्ता ने वेळुवन मे विहार करते समय वध का प्रयत्न करने के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त ने मेरे वध के लिए प्रयत्न किया है, पहले भी किया है, लेकिन त्रासमात्र भी पैदा नही कर सका' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल मे वाराणसी मे पायासपाणी नाम का राजा राज्य करता था। काळक नामका उसका सेनापति था। उस समय बोधिसत्त्व उसी के पुरोहित थे। नाम था धर्मध्वज। राजा के सिर को अलकृत करने वाले नाई का नाम था छत्तपाणी।

राजा धर्म-पूर्वक राज्य करता था; लेकिन उसका सेनापति मुकद्दमो का फैसला करता हुआ रिश्वत खाता था। चुगल-खोर रिश्वत लेकर स्वामी को अस्वामी कर देता था।

एक दिन मुकद्दमे में हारे हुए आदमी ने बाहें पकड कर रोते हुए, अदालत से निकल राज-सेवा मे जाते हुए बोधिसत्त्व को देखा। उसने उसके पाँव मे गिरकर कहा—स्वामी! तुम्हारे सदृश राजा के अर्थधर्मानुशासक के होते हुए काळक सेनापति रिशवत लेकर अस्वामी को स्वामी बना देता है, और अपने मुकद्दमे हारने की बात कही।

बोधिसत्त्व ने मन में करुणा का भाव ला कर कहा—अरे, आ तेरे मुकद्दमे का फैसला करूँगा। वह उसे लेकर मुकद्दमे की जगह गए। जन-समूह इकट्ठा हो गया। बोधिसत्त्व ने उस मुकद्दमे के फैसले को उलटते हुए फिर स्वामी को

ही स्वामी वना दिया। जन-समूह ने 'वाह-वाह' की। वडा शोर हुआ। राजा ने सुनकर पूछा—यह क्या आवाज है ?

"देव ! धर्मध्वज पण्डित ने एक ऐसे मुकद्दमे का जिसका ठीक फैसला नही हुआ था, ठीक फैसला किया है। उसीमें यह 'वाह-वाह' हो रही है।"

राजा ने सन्तुष्ट हो वोधिसत्त्व को वुलाकर पूछा—"आचार्य्य ! तुमने मुकद्दमे का फैसला किया ?"

"हाँ महाराज ! काळक ने जिस मुकद्दमे का ठीक फैसला नही किया, उसका फैसला किया।"

"अव से तुम ही मुकद्दमे का फैसला किया करो। मेरे कानो को सुख मिलेगा। जनता की उन्नति होगी।"

उसके इच्छा न करने पर भी राजा ने "प्राणियो पर दया करने के लिए न्याय की गद्दी पर वैठें" प्रार्थना कर राजी किया। तब से वोधिसत्त्व न्याय की गद्दी पर वैठने लगे। स्वामी को ही स्वामी वनाते।

उसके वाद से जव काळक को रिशवत न मिलने के कारण लाभ की हानि हुई तो उसने "महाराज ! धर्मध्वज पण्डित आपका राज्य चाहता है" कह राजा और वोधिसत्त्व मे भेद पैदा करने की कोशिश की।

राजा ने अविश्वास करते हुए मना किया—ऐसा मत कहो। वह वोला—यदि मेरा विश्वास नही करते तो उसके आने के समय झरोखे से देखें। तव देखेंगे कि इसने सारे नगर को अपने हाथ में कर लिया है। राजा ने उसके पास मुकद्दमे के लिए आए लोगो को उसी के आदमी समझ विश्वास कर पूछा—

"सेनापति ! क्या करे ?"

"देव ! इसे मार डालना चाहिए।"

"कोई वडा दोष न दिखाई देने पर कैसे मारें ?"

"एक उपाय है।"

"कौन सा उपाय ?"

"इसे कोई असम्भव कार्य्य करने के लिए कह कर उसके न कर सकने पर, उस दोष का दोषी वना मारेंगे।"

"कौन सा असम्भव कार्य्य ?"

"महाराज, जरख़ेज़ भूमि में लगाने पर, देखभाल करने पर उद्यान दो चार

साल में फल देता है। आप उसे बुलाकर कहे कि कल हम उद्यान में खेलेगे। हमारे लिए उद्यान बनाओ। वह न बना सकेगा। तब उसे इस अपराध के कारण मार देंगे।"

राजा ने बोधिसत्त्व को बुलाकर कहा—"पण्डित ! पुराने उद्यान मे हम बहुत खेले। अब नए उद्यान मे क्रीडा करने की इच्छा है। कल क्रीडा करेंगे। हमारे लिए उद्यान बनाएँ। यदि न बना सकोगे तो तुम्हारी जान नही बचेगी।"

बोधिसत्त्व समझ गए कि काळक को रिशवत न मिलने से उसने राजा को फोड लिया होगा। वह "महाराज! कर सका तो देखूगा" कह घर जा, प्रणीताहार ग्रहण कर चारपाई पर लेट सोचने लगे। शक्रभवन गर्म हो गया। शक्र ने ध्यान लगा कर देखा। बोधिसत्त्व की पीडा को जान उसने जल्दी से आ, सोने के कमरे मे प्रवेश कर आकाश मे खडे हो पूछा—"पण्डित क्या चिन्ता कर रहे हो?"

"तू कौन है?"

"मैं शक्र हूँ।"

"राजा ने मुझे उद्यान बनाने को कहा है। उसकी चिन्ता कर रहा हूँ।"

"पण्डित चिन्ता न कर। मैं तेरे लिए नन्दनवन चित्रलतावन सदृश उद्यान बना दूगा। किस जगह पर बनाऊँ?"

"अमुक स्थान पर बना।"

शक्र बनाकर देवपुर चला गया। अगले दिन बोधिसत्त्व ने उद्यान को प्रत्यक्ष देख जाकर राजा को कहा—

"महाराज, मैंने उद्यान समाप्त कर दिया है। खेलें।"

राजा ने जाकर देखा अठारह हाथ की, मनोशिलावर्ण की दीवार से घिरा; द्वार-अट्टालिका सहित, फूल फल के भार से लदा हुआ, नाना प्रकार के वृक्षो से सजा हुआ उद्यान है। उसने काळक से पूछा—पण्डित ने हमारा कहना किया। अब क्या करे?

"महाराज, जो एक रात में उद्यान बना सकता है वह राज्य ले सकता है वा नही?"

"अब क्या करे?"

"उससे दूसरा असम्भव कार्य्य कराएँ।"

"कौन सा काम?"

"सात रत्नो वाली पुष्करिणी बनवाएँ।"

राजा ने 'अच्छा' कह बोधिसत्त्व को बुलाकर कहा—

"आचार्य्य! तुमने उद्यान तो बना दिया अब इसके योग्य सात रत्नो वाली पुष्करिणी बनाएँ। यदि नही बना सकोगे तो तुम्हारी जान जाएगी।"

बोधिसत्त्व ने कहा—महाराज, अच्छा। बना सकेंगे तो बनाएँगे।

शक्र ने सुन्दर, सौ तीर्थों वाली, हजार जगह से मुडी, पाँच प्रकार के कमलो से ढकी, नन्दन-पुष्करिणी[1] सदृश बना दी। बोधिसत्त्व ने उसे भी प्रत्यक्ष देख राजा से जाकर कहा—देव, पुष्करिणी बना दी।

राजा ने उसे देख काळक से पूछा—अब क्या करे? 'देव, उद्यान के योग्य घर बनाने को कहे।' राजा ने बोधिसत्त्व को बुलाकर कहा—"आचार्य्य, इस उद्यान और पुष्करिणी के अनुकूल एक ऐसा घर बनाएँ जो सारा का सारा हाथी-दाँत का हो। यदि नही बनाएँगे तो तुम्हारी जान न रहेगी।"

शक्र ने उसका घर भी बना दिया। अगले दिन बोधिसत्त्व ने उसे भी प्रत्यक्ष देख राजा को कहा। राजा ने उसे भी देख काळक से पूछा—अब क्या करे? 'महाराज, घर के योग्य मणि बनाने को कहे।' राजा ने बोधिसत्त्व को बुलाकर कहा—"पण्डित, इस हाथीदाँत के घर के अनुकूल मणि बनाओ। मणि के प्रकाश मे घूमेंगे। यदि नही बना सकोगे, तो तुम्हारी जान जाएगी।"

शक्र ने उसकी मणि भी बना दी। अगले दिन बोधिसत्त्व ने उसे भी प्रत्यक्ष देख राजा को कहा। राजा ने देखकर पूछा—अब क्या करे? "महाराज! मालूम होता है कि ऐसा देवता है जो धम्मध्वज ब्राह्मण को जो जो वह चाहता है, देता है। अब जिसे देवता भी न बना सके, ऐसी आज्ञा दे। चारो अङ्गो[2] से युक्त मनुष्य को देवता भी नही बना सकता। इसलिए उसे कहें कि मुझे चारो अङ्गो से युक्त उद्यानपाल बनाकर दे।"

राजा ने बोधिसत्त्व को बुलाकर कहा—"आचार्य्य, तूने हमारे लिए उद्यान, पुष्करिणी, हाथी-दाँत का प्रासाद, उसमे प्रकाश करने के लिए मणि-रत्न बनाया।

---

[1] सिंहल में 'नन्दा पोक्खरणि' पाठ है।

[2] चार गुणो।

अब मेरे उद्यान की रक्षा करने वाला चारो-अङ्गो से युक्त उद्यानपाल बनाएँ। यदि नही बनाएँगे तो तुम्हारी जान न रहेगी।"

बोधिसत्त्व 'होवे, मिलने पर देखूँगा' कह, घर जा प्रणीत भोजन खा, सोकर जब प्रात काल उठा तो शय्या पर बैठ कर सोचने लगा—देवराज शक्र ने जो स्वय बना सकता था, बनाया। वह चारो अङ्गो से युक्त उद्यानपाल नही बना सकता। ऐसा होने पर दूसरो के हाथ से मरने की अपेक्षा जगल मे अनाथ की तरह मरना ही अच्छा है।

वह बिना किसी से कहे, प्रासाद से उतर, मुख्यद्वार से ही नगर से निकल, जगल मे प्रवेश कर एक वृक्ष के नीचे बैठ सत्पुरुषो के धर्म का ध्यान करने लगा। शक्र को जब यह पता लगा तो उसने एक बनचर की शक्ल बना बोधिसत्त्व के पास जा पूछा—"ब्राह्मण ! तू सुकुमार है। तूने पहले दु ख नही देखा सा है। तू इस अरण्य मे दाखिल हो बैठा क्या कर रहा है?" यह पूछते हुए पहली गाथा कही—

सुखं जीवितरूपोसि रट्ठा विवनमागतो,
सो एकको अरञ्ञस्मि रुक्खमले कपणो विय झायसि॥

[तू सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने वाले सा है। जनाकीर्ण स्थान से निर्जन स्थान में आया है। तू जगल में वृक्ष के नीचे अकेला बैठ कृपण की तरह (क्या) सोचता है?]

सुखं जीवितरूपोसि, तू सुख से जीने वाले, सुख से रहने वाले, सुख से पालन हुए की तरह है। **रट्ठा** जनाकीर्ण स्थान है। **विवनमागतो,** जनरहित स्थान जगल मे दाखिल हुआ। **रुक्खमूले,** वृक्ष के पास। **कपणो विय झायसि,** कृपण की तरह अकेला बैठा हुआ ध्यान करता है, विशेष ध्यान करता है। तू यह क्या सोच रहा है?—यही पूछा।

इसे सुन बोधिसत्त्व ने दूसरी गाथा कही—

सुखं जीवितरूपोस्मि रट्ठा विवनमागतो,
सो एकको अरञ्ञस्मि रुक्खमूले;
कपणो विय झायामि सत धम्मं अनु सर॥

[सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने वाला हूँ। जनाकीर्ण स्थान से निर्जन स्थान में आया हूँ। अरण्य मे वृक्ष के नीचे अकेला ही कृपण की तरह श्रेष्ठ पुरुषो के धर्म को स्मरण करता हुआ ध्यान लगा रहा हूँ।]

सत धम्मं अनुस्सरं, मित्र, यह सत्य ही है कि मै सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करने वाला जनाकीर्ण स्थान से निर्जन स्थान में आया हूँ। मै इस जगल मे वृक्ष के नीचे अकेला ही वैठकर कृपण की तरह ध्यान करता हूँ। जो तू पूछता है कि क्या सोच रहा हूँ। वह कहता है मै श्रेप्ठ (पुरुषो के) धर्म को स्मरण करता हुआ यहाँ वैठा हूँ। **सत धम्म** वुद्ध, प्रत्येक-वुद्ध, श्रावको का, श्रेष्ठ सत्पुरुपो का, पण्डितो का धर्म—लाभ, हानि, अपकीर्ति, कार्ति, निन्दा, प्रगसा, सुख, दुख, यह आठ प्रकार का लोक-धर्म है। इनसे आघात पाने पर सत्पुरुप काँपते नही है, चचल नही होते है। यह न काँपना सत्पुरुपो का धर्म है। इस सत्पुरुपो के धर्म को स्मरण करता हुआ वैठा हूँ—यही प्रकट करता है।

शक्र ने पूछा—ब्राह्मण! ऐसा है तो इस जगह क्यो वैठा है?

"राजा चारो-अङ्गो से युक्त उद्यानपाल मँगवाता है। वैसा नही मिल सकता है। सो मै यह सोचकर कि किसी के हाथ से मरने से क्या लाभ, जगल मे प्रविष्ट हो अनाथ की तरह मरूँगा, (इसलिए) यहाँ आकर वैठा हूँ।"

"ब्राह्मण! मै देवराज शक्र हूँ। मैने तेरे लिए उद्यान आदि वनाए। चारो अङ्गो से युक्त उद्यानपाल नही वना सकता। तुम्हारे राजा के वालो को सजाने वाला छत्तपाणी नाम का नाई है। चारो अङ्गो से युक्त उद्यानपाल की आवश्यकता होने पर, उसे उद्यानपाल वनाने के लिए कहना।"

शक्र वोधिसत्त्व को यह उपदेश दे, 'डर मत' कह आश्वासन दे, अपने देवनगर को गया।

वोधिसत्त्व प्रात काल का भोजन कर राजद्वार गया। वही छत्तपाणी को देख हाथ मे पकड पूछा—मित्र, क्या तू चारो अङ्गो से युक्त है?

"तुझे किसने कहा है कि मै चारो अङ्गो से युक्त हूँ।"

"देवराज शक्र ने।"

"किस कारण से कहा?"

"इन कारण से" कह सब कहा। वह बोला—"हाँ, मै चारो अङ्गो से युक्त हूँ।"

बोधिसत्त्व उसे हाथ से पकडे ही पकडे राजा के पास ले जाकर बोले—"महाराज, यह छत्तपाणी चारो अङ्गो से युक्त है। उद्यानपाल की आवश्यकता होने पर इसे उद्यानपाल बनावे।"

राजा ने उसे पूछा—क्या तू चारो अङ्गो से युक्त है? "हाँ महाराज।" "किन चारो अङ्गो से युक्त है?" उत्तर दिया—

अनुसुय्यको अहं देव अमज्जपायको अह,
निस्नेहको अहं देव अक्कोधन अधिट्ठितो॥

[महाराज! मुझ मे ईर्ष्या नही है। मैंने कभी शराब नही पी है। देव! मुझमे दूसरे के प्रति न स्नेह है, न क्रोध है। मै इन चारो अङ्गो से युक्त हूँ।]

राजा ने पूछा—छत्तपाणी! तू अपने आपको ईर्ष्या-रहित कहता है?

—हाँ देव! मै ईर्ष्या रहित हूँ।

"किस बात को देखकर ईर्ष्या-रहित हुआ?"

'देव! सुनें' कह अपने ईर्ष्या-रहित होने का कारण बताते हुए यह गाथा कही—

इत्थिया कारणा राज वन्धापेसि पुरोहित,
सो मं अत्थे निवेसेसि तस्माह अनुसुय्यको॥

[राजन! स्त्री के कारण मैंने पुरोहित को बँधवाया। उसने मुझे सदर्थ मे लगाया। इसलिए मै ईर्ष्या-रहित रहूँ।]

इसका अर्थ है कि देव! मै पहले इसी वाराणसी नगर मे तुम्हारे जैसा ही राजा था। मैंने स्त्री के लिए पुरोहित को बँधवाया।

"अवद्धा तत्थ वज्झन्ति यत्थ बाला पभासरे,
बद्धापि तत्थ मुच्चन्ति यत्थ धीरा पभासरे॥"

इस जातक[1] में आए अनुसार ही एक समय इसे जब यह छत्तपाणी राजा था, चौसठ नौकरो के साथ अनाचार कर बोधिसत्त्व के द्वारा अपनी इच्छा-पूर्त्ति न होने के कारण बोधिसत्त्व को नष्ट करने की इच्छा से देवी ने इसे फोडा। इसने बोधिसत्त्व को बँधवा दिया। तब बाँधकर लाए गए बोधिसत्त्व ने देवी का यथार्थ दोप कह स्वय मुक्त हो, राजा के बँधवाए हुए सभी नौकरो को मुक्त करवा, राजा को उपदेश दिया कि इनका और देवी का अपराध क्षमा करें। सब पूर्वोक्त प्रकार से विस्तार से कहनी चाहिए। इसीके बारे मे कहा है—

इत्थिया कारणा राज बन्धापेसिं पुरोहितं,
सो मं अत्थे निवेसेसि तस्माह अनुसुय्यको॥

तव मै सोचने लगा—मै सोलह हजार स्त्रियाँ छोड इस अकेली से कामासक्त हो, इसे भी सन्तुष्ट न कर सका। इस प्रकार बडी कठिनाई से सन्तुष्ट की जा सकने वाली स्त्रियो पर क्रोध करना वैसा ही है जैसे कोई कपडो के पहनने पर उनके मैले होने से क्रोध करे कि यह मैले क्यो होते हैं, अथवा जैसे कोई खाए भोजन के गूह बनने पर क्रोध करे कि यह ऐसा क्यो होता है? तब मैंने दृढ सकल्प किया कि अब से जब तक अर्हत्व प्राप्त न हो जाए तब तक कामभोग के प्रति मेरी ईर्ष्या न हो। उस समय से ईर्ष्या-रहित हो गया। इस सम्बन्ध से ही **तस्माहं अनुसुय्यको** कहा।

तब राजा ने पूछा—मित्र छत्तपाणि! किस बात को देखकर तू अमद्यप हो गया? उसने वह बात कहते हुए यह गाथा कही—

मत्तो अह महाराज पुत्तमंसानि खादयि,
तस्स सोकेनह फुट्ठो मज्जपान विवज्जयिं॥

[महाराज! मैंने मद्य पी बेहोश हो अपने पुत्र के मास को खाया। उस शोक मे शोकाभिभूत हो मैंने मद्यपान छोड दिया।]

महाराज! पूर्वकाल में मै तुम्हारी ही तरह वाराणसी का राजा था। शराब के बिना न रह सकता था। बिना मास का भोजन न खा सकता था। नगर मे

---

[1] बन्धनमोक्ख जातक (१२०)

उपोसथ के दिनों में पशु-हत्या बन्द रहती। रसोइये ने पक्ष की त्रयोदशी को ही मांस लाकर रख लिया। असावधानी से रखा रहने से उसे कुत्ते खा गए। रसोइये ने उपोसथ के दिन मांस न पा, राजा के लिए नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन बना प्रासाद पर चढ़ राजा के पास भोजन ले न जा सकने के कारण देवी के पास जाकर पूछा—देवी! आज मुझे मांस नहीं मिला। बिना मांस का भोजन राजा के पास नहीं ले जा सकता। क्या करूँ?

"तात! मेरा पुत्र राजा को अत्यन्त प्रिय है। पुत्र को देख कर राजा उसे चूमता हुआ, गले लगाता हुआ अपना अस्तित्व भी भूल जाता है। मैं पुत्र को सजाकर राजा की गोदी में बिठा दूँगी। उसके पुत्र के साथ खेलते समय तू भोजन लाना।"

ऐसा कह उसने अपने प्रिय सुन्दर बालक को सजाकर राजा की गोद में बैठाया। राजा के पुत्र के साथ खेलते समय रसोइया भोजन लाया। शराब के नशे में बेहोश राजा ने थाली में मांस न पा पूछा—मांस कहाँ है? 'देव! आज दिन पशु-हत्या बन्द रहने से मांस नहीं मिला।' राजा ने 'मुझे मांस नहीं मिलेगा' कह गोद में बैठे प्रिय पुत्र की गर्दन मरोड़, जान से मार रसोइये के सामने फेंका और आज्ञा दी—जल्दी से पका कर ला। रसोइये ने वैसा किया। राजा ने पुत्र-मांस के साथ भोजन किया। राजा के भय से न कोई रो पीट सका न कुछ कह ही सका।

राजा ने भोजन खा, शय्या पर सो, प्रातःकाल उठ नशे के उतरने पर कहा—"मेरे पुत्र को लाओ।" उस समय देवी रोती हुई चरणों पर गिर पड़ी। राजा ने पूछा—'भद्रे! क्या हुआ?' बोली—'देव! कल आपने पुत्र को मारकर पुत्र-मांस के साथ भोजन खाया।' राजा ने पुत्रशोक से अभिभूत हो रो पीट कर 'मुझे यह दुःख सुरापान के कारण हुआ' समझ सुरापान में दोष देख बालू से मुह पोछते हुए प्रतिज्ञा की—"अब से मैं अर्हत्व प्राप्त होने तक ऐसी विनाशकारिणी सुरा को कभी नहीं पीऊँगा।" तब से मद्य नहीं पी। इसीलिए **मत्तो अहं महाराज,** यह गाथा कही।

तब राजा ने पूछा—मित्र! क्या देखकर तू स्नेह-हीन हो गया? उस बात को कहते हुए यह गाथा कही—

कितवासो नामहं राजा पुत्तो पच्चेकबोधिमे,
पत्त भिन्दित्वा चवितो निस्नेहो तस्स कारणा ॥

[मै कितवास नाम का राजा था। मेरा पुत्र पच्चेकवुद्ध के पात्र को फोड कर मर गया। उस कारण से मै स्नेह-रहित हो गया।]

महाराज! पहले मै वाराणसी मे कितवास नाम का राजा था। मुझे पुत्र हुआ। लक्षण जानने वालो ने उसे देखकर कहा कि इसकी मृत्यु पानी न मिलने से होगी। उसका नाम दुष्टकुमार रखा गया। बालिग होने पर वह उपराजा बना।

राजा दुष्टकुमार को सदैव अपने आगे पीछे रखता। पानी न पाकर मरण के भय से, उसके लिए चारो दरवाजो पर और नगर के भीतर जहाँ तहाँ पुष्क-रणिया बनवा दी। चौरस्तो आदि पर मण्डप बनवा पानी की चाटियाँ रखवाई।

उसने एक दिन सजधज कर अकेले ही उद्यान जाते हुए रास्ते मे प्रत्येकवुद्ध को देखा। जनता भी प्रत्येकवुद्ध को देखकर उन्ही को प्रणाम करती, प्रशसा करती। उन्ही को हाथ जोडती। राजकुमार सोचने लगा—मेरे जैसे के साथ चलते हुए लोग इन सिर-मुण्डे को प्रणाम करते है, प्रशसा करते है, हाथ जोडते है। उसने क्रोधित हो, हाथी से उतर प्रत्येकवुद्ध के पास जाकर पूछा—

"श्रमण! तुझे भोजन मिला?"

"राजकुमार! हाँ मिला।"

उसने प्रत्येकवुद्ध के हाथ से पात्र ले, उसे जमीन पर पटक, भोजन सहित पाँव से मर्दन कर, पाँव की ठोकर से चूर चूर कर दिया। प्रत्येकवुद्ध उसके मुह की ओर देखने लगे—अब यह प्राणी नष्ट हुआ। कुमार बोला—श्रमण! मै कितवास राजा का पुत्र हूँ। मेरा नाम है दुष्टकुमार। तू मुझ पर क्रोधित हो आँखे फाड फाड कर देखने से मेरा क्या करेगा? प्रत्येक-वुद्ध का भोजन नष्ट हो गया। वे आकाश मे उडकर उत्तर हिमालय मे नन्दमूल पब्भार पर ही चले गए। राजकुमार के पापकर्म ने भी उसी क्षण फल दिया। उसके शरीर में दाह पैदा हुआ। वह 'जल रहा हूँ' कहता हुआ वही गिर पडा। उतना पानी भी समाप्त हो गया। सारी चाटियाँ सूख गई। वही उसका प्राणान्त होकर वह अवीची नरक में पैदा हुआ।

राजा ने वह समाचार सुन पुत्रशोक मे अभिभूत हो सोचा—मेरा यह शोक प्रिय-वस्तु से उत्पन्न हुआ। यदि मै स्नेह न करता, तो शोक न होता। उसने निश्चय किया कि अब मै किसी भी चीज मे—चाहे वह जानदार हो चाहे बेजान हो—

स्नेह पैदा न हो। उस समय से लेकर उसे स्नेह नहीं है। उसी सम्बन्ध से **कितवासी नामहं** गाथा कही।

पुत्तो पच्चेकवोधिमे पत्तंभिन्दित्वा चवितो का अर्थ है कि मेरा पुत्र प्रत्येक-वुद्ध का पात्र तोडकर मर गया। **निस्नेहो तस्स कारणा,** उस समय उत्पन्न स्नेह के कारण स्नेह-रहित हो गया।

तव राजा ने उसे पूछा—मित्र! किस वात को देखकर तू क्रोध-रहित हो गया? उसने वह वात वताते हुए यह गाथा कही—

अरको हुत्वा मेत्तचित्त सत्त वस्सानि भावयिं,
सत्त कप्पे व्रह्मलोके तस्मा अक्कोधनो अहं॥

[महाराज! मैं अरक नामक तपस्वी हो, सात वर्ष तक मैत्री चित्त की भावना कर, सात सवर्त-विवर्त कल्पो तक व्रह्मलोक में रहा। इसलिए मैं दीर्घकाल तक मैत्रीभावना का अभ्यास करने से क्रोध-रहित हो गया।]

इस प्रकार छत्तपाणि के अपने चारो अङ्ग कहने पर राजा ने परिषद को इशारा किया। उसी क्षण अमात्यो तथा व्राह्मण गृहपति आदि ने उठकर 'अरे! रिश्वतखोर! दुष्ट चोर! तू रिश्वत न पाकर पण्डित की निन्दा कर उसे मारना चाहता था' कह काळक के हाथ पाँव पकड, राजमहल से उतार, जो जो हाथ मे आया पत्थर, मुद्गर आदि से सिर फोड मार डाला। फिर पॉव से घसीट कर कूडे की जगह पर फेंक दिया।

उसके वाद से राजा धर्मपूर्वक राज्य करता हुआ कर्मानुसार (परलोक) गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल वैठाया। उस समय काळक सेनापति देवदत्त था। छत्तपाणि नाई सारिपुत्र। धर्मध्वज तो मैं ही था।

दूसरा परिच्छेद

८. कासाव वर्ग

२२१. कासाव जातक

"अनिक्कसावो कासावं   " यह धर्मदेशना ला शास्ता ने जेतवन मे रहते समय देवदत्त के बारे मे कही। घटना राजगृह मे घटी।

क. वर्तमान कथा

एक समय धर्मसेनापति (सारिपुत्र) पाँच सौ भिक्षुओ के साथ वेळुवन में रहते थे। देवदत्त भी अपने जैसी दुराचारी-परिषद से घिरा हुआ गयाशीर्ष पर रहता था।

उस समय राजगृह निवासी चन्दा इकट्ठा करके दान की तैयारी करते थे। व्यापार के लिए आए एक बनिए ने एक मूल्यवान् सुगन्धित काषाय वस्त्र देकर कहा कि इस वस्त्र का दान कर मुझे भी (दान में) हिस्सेदार बनावे। नागरिको ने महादान दिया। सब चन्दा करके इकट्ठे किए गए कार्षापणो से ही पूरा हो गया। वह वस्त्र बच गया। लोग इकट्ठे होकर सोचने लगे कि यह वस्त्र किसे दें? क्या सारिपुत्र स्थविर को? अथवा देवदत्त को? कुछ ने कहा सारिपुत्र स्थविर को। दूसरो ने कहा—सारिपुत्र स्थविर कुछ दिन रह कर यथारुचि चल देगा। देवदत्त स्थविर सदैव हमारे नगर ही के पास रहता है। मङ्गल-अमगल में यही हमारा सहायक होता है। देवदत्त को दे। राय लेने पर 'देवदत्त को दें' कहने वालो की सख्या अधिक निकली। उन्होने देवदत्त को दे दिया। देवदत्त ने उसकी इसे कटवा, ओवट्टक वस्त्र सिलवा, रँगवा कर सुनहरी रेशम सदृश बना पहना।

उस समय तीस भिक्षुओ ने राजगृह से श्रावस्ती पहुँच, शास्ता को प्रणाम कर कुशल समाचार पूछे जाने पर वह समाचार कह निवेदन किया कि भन्ते!

इस प्रकार देवदत्त ने अपने अयोग्य चीवर (=अर्हत-ध्वजा) को धारण किया। शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त ने अपने अयोग्य चीवर को धारण किया, पहले भी धारण किया है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल मे वाराणमी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व हिमालय प्रदेश मे हाथी के कुल मे पैदा हुए। वडे होने पर वह अस्सी हजार मस्त हाथियो के नायक वन जगल मे रहने लगे।

एक गरीव आदमी ने वाराणमी मे दन्तकार गली मे हाथी-दाँत का काम करने वालो को चूडी आदि वनाते देख कर पूछा—हाथी-दाँत मिले तो लोगे? उन्होने कहा—लेगे। वह शस्त्र ले, कापाय वस्त्र पहन, प्रत्येक-वुद्ध का वेप वना, टोपा पहन, हाथियो की गली मे जा, आयुध से हाथियो को मार, दाँत ला, वाराणमी में वेच, जीविका चलाता था। आगे चलकर उसने वोधिसत्त्व के दल के सवसे अन्तिम हाथी को मारना आरम्भ किया। रोज रोज हाथियो को कम होते देख हाथियो ने वोधिसत्त्व से कहा—किस कारण से हाथी कम हो रहे हैं?

वोधिसत्त्व ने देखभाल करते हुए सोचा—एक आदमी प्रत्येक-वुद्ध का वेष पहनकर हाथियो की कतार के सिरे पर रहता है। कही वही तो नही मारता है। उसका पता लगाऊँगा। एक दिन हाथियो को आगेकर स्वय पीछे पीछे चला। वह आदमी वोधिसत्त्व को देखते ही शस्त्र लेकर कूदा। वोधिसत्त्व ने रुक कर खडे हो, उसे जमीन पर गिरा, कुचल कर मार डालने के लिए सूण्ड उठाई। (लेकिन) उसके पहने कापाय वस्त्रो को देख सोचा—इस अर्हतध्वजा का मुझे आदर करना चाहिए। उसने सूण्ड लपेट कर "भो पुरुष! यह अर्हत-ध्वजा तेरे योग्य नही है। तू इसे क्यो धारण करता है?" कहते हुए ये गाथाएँ कही—

अनिक्कवासो कासावं यो वत्थं परिदहेस्सति,
अपेतो दमसच्चेन न सो कासावमरहति॥
यो च वन्तकसावस्स सं लेसु सुसमाहितो,
उपेतो दमसच्चेन स वे कासावमरहति[1]॥

---

[1] धम्म पद (१/९, १०)

[जो अपने मन को स्वच्छ किए विना कापाय-वस्त्र को धारण करता है, सत्य और सयम से रहित वह व्यक्ति काषाय-वस्त्र का अधिकारी नही।

[जिसने अपने मन के मैल को दूर कर दिया है, जो सदाचारी है, सत्य और सयम से युक्त वह व्यक्ति ही कापाय-वस्त्र का अधिकारी है।]

अनिक्कसावो, कसाव (=मैल) कहते है राग को, द्वेष को, मूढता को, म्रक्ष (=दूसरे के गुणो को माखना) को, प्लास (=दूसरे गुणी के साथ अपनी तुलना करना) को, ईर्ष्या को, मात्सर्य को, माया को, शठता को, अकड को, स्पर्धा को, मान को, अतिमान को, मद को, प्रमाद को—सभी अकुशल-धर्मो को, सभी दुश्च-रित्रो को, ससार के सभी डेढ हजार वन्धन-क्लेशो को। वे जिस आदमी के प्रहीण नही हुए, जिसके (चित्त-) सतान से नही निकले, नही उखडे, वह आदमी **अनिक्क-सावो**। **कासावं** कापाय रस (रग) पी हुई अर्हत्ध्वजा। **यो वत्थं परिदहेस्सति,** जो ऐसा होकर इस प्रकार का वस्त्र धारण करेगा, पहनेगा। **अपेतो दमसच्चेन,** इन्द्रिय-दमन नामक सयम से तथा निर्वाण नामक परमार्थ-सत्य से दूर। अथवा अपादान(-विभक्ति) के अर्थ में **कर्ण,** मतलव हुआ इस सयम-सत्य से दूर। सत्य का मतलव यहाँ वाणी का सत्य और चार (आर्य-) सत्य भी है। **न सो कासावमरहति,** वह आदमी कासावरहित न होने से काषाय रग की अर्हत-ध्वजा का अधिकारी नही। वह इसके योग्य नही। **यो च वन्तकसावस्स,** जो आदमी उक्त प्रकार के कासाव से मुक्त होने के कारण कासाव-रहित है। **सीलेसु सुस-माहितो,** मार्ग-शील तथा फल-शील में सम्यक् स्थित, लाकर स्थापित कर दिए की तरह उनमे प्रतिष्ठित, उन शीलो से युक्त के लिए यह प्रयोग है। **उपेतो,** सम्पन्न, युक्त। **दमसच्चेन,** उक्त प्रकार के दमन मे तथा सत्य से। **स वे कासावम रहति,** वह इस प्रकार का आदमी ही इस कापायवर्ण की अर्हत्ध्वजा का अधिकारी है।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने उस आदमी को यह बात कह, 'इसके बाद इधर न आना, यदि आया तो तेरी जान नही बचेगी' डराकर भगा दिया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय हाथी मारने वाला आदमी देवदत्त था। दलपति मै ही था।

२२२. चुल्लनन्दिय जातक

"इदं तदाचरियवचो " यह शास्ता ने वेळुवन मे विहार करते समय देवदत्त के बारे मे कही।

एक दिन धर्मसभा मे भिक्षुओ ने बातचीत चलाई—आयुष्मानो! देवदत्त कठोर है, परुष है, दुस्साहसी है, उसने सम्यक्-सम्बुद्ध को मारने वाले नियुक्त किए, उन पर दुश्शीलता का आरोप लगाया, नालागिरि (हाथी) का प्रयोग किया, तथागत के प्रति उसकी शान्ति, मैत्री, दया कुछ भी नही।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? "अमुक बातचीत।" "भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त कठोर, परुष तथा दयाहीन है, वह पहले भी कठोर, परुष तथा दयाहीन ही रहा है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व हिमालय प्रदेश में नन्दिय नामक वानर हुए। उसके छोटे भाई का नाम था चुल्लनन्दिय। वे दोनो अस्सी हजार वानरो के नेता हो हिमालय प्रदेश में अन्धी माता की सेवा करते हुए रहते थे। वे माता को झाडी में सुला, स्वय जगल मे जा, वहाँ से मीठे-मीठे फल ले, माता के पास भेजते। लाने वाले उसे न देते। वह भूख से पीडित हो हड्डी-चर्म मात्र रह गई।

बोधिसत्त्व ने कहा—"मा, हम तुम्हें मधुर फल भेजते है। तुम किसलिए कुम्हला रही हो?"

"तात!, मुझे नही मिलते।"

बोधिसत्त्व ने सोचा—यदि मै दल की नेतागिरी करता रहा तो माता मर जाएगी। मै दल को छोड माता की ही सेवा करूँगा।

उसने चुल्लनन्दिय को बुलाकर कहा—तात! तू दल की नेतागिरी कर।

मै माता की सेवा करूँगा। उसने भी अपने भाई से कहा—मुझे दल की नेतागिरी से काम नही। मै भी माता की ही सेवा करूँगा। वे दोनो एकमत हो दल को त्याग, माता को ले, हिमवन्त को छोड, सीमान्त में न्यग्रोध-वृक्ष के नीचे रहते हुए माता की सेवा करने लगे।

एक वाराणसी-वासी ब्राह्मण-विद्यार्थी ने तक्षशिला मे सर्वप्रसिद्ध आचार्य्य के पास सब विद्यायें ग्रहण कर पूछा—अब मै जाऊँ ? आचार्य्य ने विद्या के प्रताप से उसका कठोर, परुष तथा दुस्साहसी स्वभाव जान 'तात ! तू कठोर, परुष तथा दुस्साहसी है। ऐसे लोगो को सब समय एक सा ही नही होता। महा-विनाश, महा-दुख को प्राप्त होते हैं। तू कठोर मत हो। ऐसा काम मत कर जिससे पीछे पछताना पडे' उपदेश दे विदा किया।

उसने आचार्य्य को प्रणाम कर,वाराणसी पहुँच, घर बसा, सोचा कि मैं किसी दूसरे शिल्प से जीविका न चला सकूगा। इसलिए मै धनुष के सिरे से जीवित रहूँगा। मै शिकारी का काम कर जीविका चलाऊँगा। वह वाराणसी से निकल सीमान्त के गाँव में रहते हुए धनुप-तरकस बाँध,जगल मे जा,नाना प्रकार के पशुओ को मार मास बेचकर जीविका चलाने लगा।

एक दिन उसे जगल में कुछ नही मिला। घर लौटते हुए उसने खुले मैदान के एक सिरे पर एक वट-वृक्ष देखा। शायद यहाँ कुछ मिले सोच वह वट-वृक्ष की ओर गया।

उसी समय दोनो भाई माँ को फल खिला, उसे आगे करके वृक्ष के नीचे बैठे थे। जब उन्होने उस शिकारी को आते देखा, तो सोचा कि हमारी मा को देखकर भी क्या करेगा ? वे स्वय शाखाओं के बीच मे छिप गए। उस निर्दयी आदमी ने भी वृक्ष के नीचे पहुँच, उनकी उस बुढापे से दुर्बल अन्धी माँ को देख कर सोचा—"खाली हाथ जाने से मुझे क्या लाभ ? इस बन्दरी को मार कर जाऊँगा।"

उसने उसे मारने के लिए धनुप हाथ में लिया। बोधिसत्व ने यह देख चुल्ल-नन्दिय को कहा—"तात ! यह आदमी मेरी माँ को बीधना चाहता है। मैं इसे अपना जीवन दान दूगा। तू मेरे मरने पर माता की सेवा करना।" फिर शाखाओ की ओट मे निकल 'हे पुरुष ! मेरी माँ को मत मार। यह अन्धी है। फिर बुढापे से दुर्बल है। मैं इसे जीवन दान देता हूँ। तू इसे न मार कर मुझे मार' कह उससे प्रतिज्ञा करा जाकर तीर-के पास बैठा।

उस निर्दयी ने वोधिसत्व को वीध, गिराकर फिर उसकी माँ को भी मारने को धनुष उठाया। इसे देख चुल्लनन्दिय ने सोचा—यह मेरी माँ को मारना चाहता है। एक दिन भी यदि मेरी माँ जी सके, तो 'प्राण वचे' ही कहा जाएगा। मैं इसे अपना जीवनदान दूगा। उसने शाखाओ की ओट से निकल कर कहा—"भो पुरुष! मेरी माँ को मत मार। मैं इसे जीवन-दान देता हूँ। तू मुझे मार। हम दोनो भाइयो को ले जाकर हमारी माँ को जीवनदान दे।" उससे प्रतिज्ञा ले, वह तीर के पास जा वैठा। शिकारी उसे मार 'यह घर पर वच्चो के लिए होगी' सोच, उनकी माता को भी मार, तीनो जनो को लेकर घर की ओर गया।

इस पापी के घर पर विजली गिर पडी। उसकी भार्य्या और दो लड़के घर के साथ ही जल गए। पृष्ठ-वाँस और थम्वा मात्र वचे।

गाँव के दरवाजे पर ही एक आदमी ने उसे देख यह समाचार कहा। वह स्त्री-वच्चो के शोक से इतना अभिभूत हुआ कि उसी जगह पर मास की वहँगी और धनुष छोड, वस्त्र उतार, नगा हो, वाँहे पकड रोताहुआ घर गया। वह खम्भा टूट कर सिर पर गिर पडा। सिर फट गया। पृथ्वी ने विवर दे दिया। अवीचि नरक से अग्नि-ज्वाला निकली। जव वह पृथ्वी से निगला जा रहा था, उसने आचार्य्य के उपदेश को याद कर 'इसी वात को देख पाराशर्य ब्राह्मण ने मुझे उपदेश दिया था' रोते हुए इन दो गाथाओ को कहा—

इदं तदाचरियवचो पारासरियो यदब्रवी,
मासु त्व अकरा पापं यं त्वं पच्छा कतं तपे॥
यानि करोति पुरिसो तानि अत्तनि पस्सति,
कल्याणकारी कल्याणं पापकारी च पापकं,
यादिस वपते बीजं तादिसं हरते फलं॥

इसका अर्थ—जो पारासरिय (पाराशर्य) ब्राह्मण ने कहा कि तू पापकर्म मत कर, पीछे तुझे ही कष्ट देगा—यह उस आचार्य्य का वचन है। आदमी शरीर, वाणी अथवा मन से जो भी कर्म करता है उनका फल पाता हुआ उन्ही कर्म्मों को अपने मे देखता है। शुभकर्म करने वाला शुभफल पाता है, पापकर्म करनेवाला बुरा अनिष्टकर फल पाता है। दुनिया में भी जैसा बीज बोता है, वैसा ही फल

पाता है। बीज के अनुसार बीज के अनुकूल ही फल ले जाता है, ग्रहण करता है, भोगता है।

इस प्रकार रोता हुआ वह पृथ्वी में दाखिल हो अवीची महानरक में पैदा हुआ।

शास्ता ने, "भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त कठोर, परुष तथा दयाहीन है, वह पहले भी कठोर, परुष तथा दयाहीन ही रहा है" कह यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय शिकारी देवदत्त था। चारो दिशाओ में प्रसिद्ध आचार्य्य सारिपुत्र। चुल्लनन्दिय आनन्द। माता महाप्रजापति गौतमी। महानन्दिय तो मै ही था।

२२३. पुटभत्त जातक

"नमे नमन्तस्स   " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक कुटुम्वी के वारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती नगर निवासी एक गृहस्थ जनपदनिवासी एक गृहस्थ के साथ लेन-देन करता था। वह अपनी भार्य्या लेकर अपने करजदार के पास गया। उसने 'दे नही सकता हूँ' कह, कुछ न दिया। वह क्रुद्ध हो विना कुछ खाए ही चल दिया।

रास्ते मे उसे भूख से पीडित देख, रास्ता चलने वाले आदमियो ने भात की पोटली दी—भार्य्या को भी देकर खाओ। उसने वह ले उसे न देने की इच्छा से कहा—भद्रे, यह चोरो के ठहरने का स्थान है। तू आगे आगे जा। फिर सव भात खा चुकने पर उसे खाली पोटली दिखा कहा—'भद्रे, उन्होंने भात-रहित खाली पोटली ही दी।' यह जान कि वह अकेला ही खा गया, उसे दु ख हुआ।

वे दोनो जेतवन मे विहार की पिछली तरफ से जाते हुए पानी पीने के लिए जेतवन में प्रविष्ट हुए। शास्ता भी उनके आने की प्रतिक्षा करते हुए गन्धकुटी की छाया मे वैसे ही वैठे जैसे रास्ता घेर कर कोई शिकारी वैठा हो। वे दोनो शास्ता को देख, पास जा, प्रणाम कर वैठे।

शास्ता ने उनका कुशल समाचार पूछ स्त्री से प्रश्न किया—"भद्रे! क्या यह तेरा स्वामी तेरा हितैपी है, क्या तेरे प्रति स्नेह रखता है?"

"भन्ते, मेरा तो इसके प्रति स्नेह है, किन्तु यह मेरे प्रति स्नेह-रहित है। और दिनो की वात रहने दे आज ही इसे रास्ते में भात की पोटली मिली। यह बिना मुझे दिए ही स्वय खा गया।"

"उपासिके, तू नित्य इसकी हितैषिणी तथा इसके प्रति स्नेह रखती रही है। यह स्नेह-रहित ही रहा है। लेकिन जव इसे पण्डितो की जवानी तेरे गुण मालूम होते रहे है, तो यह तुझे सारा ऐश्वर्य दे देता रहा है।"

उसके प्रार्थना करने पर (भगवान् ने) पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व अमात्य कुल में पैदा हो बड़े होने पर उसके अर्थधर्मानुशासक हुए।

राजा ने अपने पुत्र पर षड्यन्त्र का सन्देह कर उसे निकाल दिया। वह अपनी भार्य्या सहित नगर से निकल काशी के एक गामड़े में रहने लगा।

आगे चलकर जब उसने पिता के मरने का समाचार सुना तो कुलागत राज्य को लेने के लिए वापिस बनारस आया। रास्ते में उसे भार्य्या को भी देकर खाने के लिए भात की पोटली मिली। उसने भार्य्या को न दे अकेले ही खाया। भार्य्या कठोर-हृदय जान बड़ी दुखी हुई।

वह वाराणसी का राजा हो उसे पटरानी बना 'इतना ही इसके लिए पर्य्याप्त है' समझ उसका और कोई सत्कार सम्मान न करता। कैसे दिन कटते है? तक न पूछता। बोधिसत्त्व ने सोचा—यह देवी राजा का बहुत उपकार करने वाली है, उसके प्रति स्नेह रखती है, लेकिन राजा इसे कुछ नही मानता। इसका सत्कार-सम्मान करवाऊँगा।

बोधिसत्त्व ने पास जा आदर पूर्वक एक ओर खड़े हो 'तात क्या है?' पूछने पर बातचीत चलाने के लिए कहा—देवी! हम तुम्हारी सेवा करते है। क्या बड़े बूढ़ों को वस्त्र-खण्ड या भात नही देना चाहिए?

"तात, मैं स्वय कुछ नही पाती। तुम्हे क्या दूँगी। जब मिलता था दिया। अब राजा मुझे कुछ नही देता। दूसरी किसी चीज की बाते जाने दे। राज्य ग्रहण करने के लिए आने के समय रास्ते में भात की पोटली पा मुझे भात तक न दे अपने ही खाया।"

"अम्म! क्या राजा के सामने ऐसा कह सकेगी?"

"तात! कह सकूगी।"

"तो आज ही जब मैं राजा के सामने खड़ा होकर पूछू तो ऐसा कहना। मैं आज ही तेरे गुण प्रकट करूँगा।"

ऐसा कह बोधिसत्त्व पहले से जाकर राजा के सामने खड़ा हुआ। वह भी जाकर राजा के सामने खड़ी हुई।

वोधिसत्त्व ने उसे कहा—अम्म ! तुम अति कठोर-हृदया हो। क्या वड़े वूढो को वस्त्र या भात नही देना चाहिए ?

"तात ! मुझे ही राजा से कुछ नही मिलता। तुम्हें क्या दूँगी।"

"क्या पटरानी नही हो ?"

"तात ! कुछ सम्मान न मिलने पर पटरानी होने से क्या होगा ? अब मुझे तुम्हारा राजा क्या देगा। उसने रास्ते मे भात की पोटली पा, उसमें से कुछ भी न दे स्वय खाया।"

वोधिसत्त्व ने पूछा—

"महाराज, क्या ऐसी वात है ?"

राजा ने स्वीकार किया। वोधिसत्त्व ने राजा 'स्वीकार करता है' जान देवी को कहा—

"देवी ! राजा को अप्रिय होने पर तुम्हे यहाँ रहने से क्या लाभ ? ससार मे अप्रिय का साथ दुखदायी होता है। तुम्हारे यहाँ रहने से राजा को अप्रिय के साथ रहने का दुख होगा। 'प्राणी मिलने वाले के साथ मिलते हैं, न मिलने वाले के साथ नही मिलते' जान दूसरी जगह चला जाना चाहिए। दुनिया वहुत वड़ी है।"

इतना कह ये गाथाएँ कही—

नमे नमन्तस्स भजे भजन्तं
किच्चानुकुब्बस्स करेय्य किच्च,
नानत्थकामस्स करेय्य अत्थं
असम्भजन्तम्पि न सम्भजेय्य ॥१॥
चजे चजन्त वणथ न कयिरा
अपेतचित्तेन न सम्भजेय्य
द्विजो दुमं खीणफल ति ञत्वा
अञ्ञं समेक्खेय्य महा हि लोको ॥२॥

[झुकनेवाले के सामने झुके। सगति करने वाले के साथ सगति करे। जो अपने काम आता हो उसका काम करे। अनर्थ चाहने वाले का अर्थ न करे। जो सगति करना चाहता न हो, उससे सगति न करे ॥१॥

[छोडने वाले को छोड दे। ऐसे से स्नेह न करे। जिसका दिल विमुख हो गया हो, उससे सगति न करे। जिस तरह पक्षी वृक्ष को फलरहित जानकर दूसरे (वृक्ष) को ढूंढते है, उसी तरह दूसरे को ढूढे। ससार वडा है।।२।।]

नमे नमन्तस्स भजे भजन्तं जो अपने सामने झुके उसी के सामने झुके। जो सगति करता है उसी से सगति करे। **किच्चानुकुब्बस्स करेय्य किच्चं**, काम पडने पर जो काम आवे, काम पडने पर उसका भी काम करे।

चजे चजन्तं वणथ न कयिरा अपने को छोडने वाले को छोड ही दे। उससे तृष्णा नामक स्नेह न करे। **अपेतचित्तेन** विगत चित्त से वा वदले हुए चित्त (वाले) के साथ। **न सम्भजेय्य** वैसे के साथ न मिले जुले। **द्विजो दुम** जैसे पक्षी पहले फले होने पर भी जव वृक्ष के फल नही रहते तो क्षीणफल हुआ जान उसे छोड दूसरे को देखता है, खोजता है उसी तरह **अञ्ञं समेक्खेय्य महा हि यह लोको**। तुम्हें स्नेह करने वाला एक न एक आदमी मिल जायगा।

यह सुन वाराणसी राजा ने देवी को सव ऐश्वर्य्य दिये। तव से लगाकर वे मिल-जुलकर प्रसन्नता पूर्वक रहने लगे।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल वैठाया। सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर दोनो पति-पत्नी स्रोतापत्तिफल मे प्रतिष्ठित हुए।

उस समय पति पत्नी यह दोनो पति पत्नी थे। पण्डित अमात्य तो मै ही था।

२२४. कुम्भाल जातक[1]

"यस्सेते चतुरो धम्मा . " यह शास्ता ने वेळुवन मे विहार करते समय देवदत्त के बारे मे कही।

यस्सेते चतुरो धम्मा वानरिन्द यथा तव,
सच्चं धम्मो धिति चागो दिट्ठं सो अतिववत्तति ॥
यस्स चेते न विज्जन्ति गुणा परमभद्दका,
सच्चं धम्मो धिति चागो दिट्ठ सो नातिवत्तति ॥

[वानरेन्द्र, जिनमे तेरे समान यह चारो गुण हैं—सत्य, धर्म, धृति और त्याग—वह शत्रु को जीत लेता है। जिसमे यह चार परम श्रेष्ठ गुण नही हैं—सत्य, धर्म, धृति और त्याग—वह शत्रु को नही जीत सकता।]

गुणा परमभद्दका जिसमे यह चार परम श्रेष्ठ एकत्रित होकर सक्षिप्त रूप से गुण नही है, वह शत्रु को नही जीत सकता है।

वाकी सव पूर्वोक्त कुम्भील जातक[2] मे कहे अनुसार ही है, मेल वैठाना भी।

---

[1] देखें वानरिंद जातक (५७)। कथा- समान है। केवल एक गाथा अधिक है।

[2] कुम्भील जातक=वानरिंद जातक (१ ६ ५७)

२२५. खन्तिवण्णन जातक

"अत्थि मे पुरिसो देव "यह शास्ता ने जेतवन मे रहते समय कोशल राजा के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उसके एक बहुत उपकारी अमात्य ने अन्त पुर दूपित किया। राजा ने 'मेरा उपकारी है' मोच सहन करके शास्ता से कहा। शास्ता ने कहा—"महाराज! पुराने राजाओ ने भी इस प्रकार महन किया है।" उसके प्रार्थना करने पर (शास्ता) ने पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के ममय एक अमात्य ने उसके रणवास को दूपित किया। अमात्य के सेवक ने उसके घर को दूषित किया। अमात्य ने उसके अपराध को सहन न कर सकने के कारण उसे राजा के पास ले जाकर पूछा—देव! मेरा एक सेवक है। वह मेरे सभी काम करने वाला है। उसने मेरे घर में दूपित-कर्म किया है। उसका क्या करना चाहिए? इस प्रकार पूछते हुए पहली गाथा कही—

अत्थि मे पुरिसो देव! सब्बकिच्चेसु व्यावटो,
तस्स चेको पराधत्थि तत्थ त्वं किन्ति मञ्ञसि ॥

[देव! मेरा एक मभी काम करने वाला आदमी है। उसका एक अपराध है। उस विपय में आप क्या कहते है?]

तस्स चेको पराधत्थि उस पुरुप का एक अपराध है। **तत्थ त्वं किन्ति मञ्ञसि**

उन पुरुष के अपराध के बारे मे आप क्या करना चाहिए मानते है ? जैसे आपके मन में आए वैसा दण्ड दे।

यह सुन राजा ने दूसरी गाथा कही—

अम्हाकञ्चत्थि पुरिसो एदिसो इध विज्जति,
दुल्लभो अंगसम्पन्नो खन्तिरस्माकरुच्चति ॥

[हमारा भी ऐसा आदमी यहाँ है। सब गुणो से युक्त आदमी दुर्लभ है। हमे (इस विषय मे) सहन करना ही अच्छा लगता है।]

अम्हाकम्पि राजाओ का भी एदिसो बहुत उपकारी (किन्तु) घर मे दूषित कर्म करने वाला आदमी है। और वह इध विज्जति अभी भी यही रहता है। हम राजा होते हुए भी बहुत उपकारी होने से सहन करते हैं। तुम्हे राजा न होने पर भी सहना भार हुआ। अगसम्पन्नो सभी गुणो से युक्त मनुष्य दुल्लभो इस कारण से अस्माक ऐसे स्थानो पर सहन करना ही रुच्चति।

अमात्य समझ गया कि राजा ने उसीके बारे मे कहा है। उसके बाद से उसने रणवास को दूषित करने का साहस नही किया। उसके सेवक ने भी यह जानकर कि अमात्य को पता लग गया है उसके बाद से वह कर्म करने का साहस नही किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मै ही वाराणसी-राजा था। वह अमात्य भी, राजा ने शास्ता को कह दिया जान तब से वह कर्म नही कर सका।

२२६. कोसिय जातक

"काले निक्खमणा साधु..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोशल नरेश के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कोशल राजा प्रत्यन्त देश को शान्त करने के लिए गैर मुनासिब समय पर निकल पड़ा। कथा उपरोक्त कथा[1] के सदृश ही है।

ख. अतीत कथा

शास्ता ने पूर्व(-जन्म) की कथा लाकर कहा—महाराज! पूर्वकाल में वाराणसी नरेश ने नामुनासिव समय निकल उद्यान में पड़ाव डलवाया। उसी समय एक उल्लू बाँसो के झुण्डो में घुस कर छिप रहा। कौओ की सेना ने आकर उसे घेर लिया कि निकलते ही पकडेगे। उसने सूर्य्यास्त तक बिना रुके, समय रहते ही निकल भागना आरम्भ किया। कौओ ने उसे घेर चोचो से ठोगे मार मार कर गिरा दिया। राजा ने बोधिसत्त्व को बुलाकर पूछा—तात! यह कौवे उल्लू को क्यो मार गिरा रहे है? बोधिसत्त्व ने उत्तर दिया—महाराज! अपने निवास-स्थान से असमय बाहर निकलने वाले इस प्रकार का दुःख अनुभव करते ही है। इसलिए नामुनासिव समय पर अपने स्थान से नही निकलना चाहिए। यह बात कहते हुए ये दो गाथाएँ कही—

काले निक्खमणा साधु नाकाले साधु निक्खमो,
अकालेनहि निक्खम्म एककम्पि बहूजनो;
न किञ्चि अत्थं जोतेति धंकसेनाव कोसियं॥

---

[1] देखें कळाय मुट्ठि जातक (१७६)

धीरो च विधिविधानञ्ञू परेसं विवरन्तगू,
सब्बामित्ते वसीकत्वा कोसियोव सुखी सिया॥[1]

[समय पर (घर से बाहर) निकलना अच्छा है। असमय निकलना अच्छा नहीं। असमय पर निकलने से किसी लाभ को प्राप्त नहीं करता। अकेले को भी बहुत जन (मार देते हैं) जैसे कौओं की सेना ने उल्लू को।

[धीर विधि-विधान को जानने वाला, तथा दूसरों के मार्ग पर चलने वाला सभी शत्रुओं को वशीभूत कर (पण्डित) उल्लू की तरह सुखी होवे]

काले निक्खमणा साधु महाराज निष्क्रमण का मतलब है निकलना वा पराक्रम करना, यह उचित समय पर ही अच्छा होता है। **नाकाले साधु निक्खमो** असमय अपने निवासस्थान से दूसरे स्थान पर जाना—निकलना वा पराक्रम करना—ठीक नहीं। अकालेनहि इत्यादि चारों पदों मे पहले में तीसरे और दूसरे से चौथे का सम्बन्ध जोडकर इस प्रकार अर्थ जानना चाहिए। अपने निवासस्थान से असमय निकलकर आदमी **न किञ्चि अत्थ जोतेति** अपनी कुछ भी उन्नति नहीं कर सकता। **सो एककम्पि बहुजनो** बहुत से भी वे शत्रु इसे अकेला निकला वा जाता देख मारकर महाविनाश को पहुँचा देंगे। यह उपमा है—**धंकसेनाव कोसियं** जिस प्रकार यह कौओ की सेना इस असमय पर निकले, जाते उल्लू को चोच से ठोंगे मारती है, महाविनाश को प्राप्त करती है, वैसे ही। इसलिए पशु-पक्षियो तक को भी—किसीको भी असमय पर अपने निवास्स्थान से नही निकलना चाहिए, नही चल पडना चाहिए।

दूसरी गाथा में **धीर** का मतलब है पण्डित। **विधि** पुराने बुद्धिमान लोगों द्वारा स्थापित परम्परा। **विधानं** हिस्सा या क्रम। **विवरन्तगू** भेद को जानते हुए। **सब्बामित्ते** सभी शत्रु। **वसी कत्वा** अपने वश मे करके। **कोसियोव** इस मूर्ख उल्लू से भिन्न किसी दूसरे बुद्धिमान उल्लू की तरह।

---

[1] गाथाओ का टीकाकार ने जो अर्थ किया है वह ठीक नहीं है। प्रतीत होता है कि कथा अन्यथा हो गई है।

मतलब यह है कि जो बुद्धिमान 'इस समय निकलना चाहिए, पराक्रम करना चाहिए, इस समय नही निकलना चाहिए, नही पराक्रम करना चाहिए' पुराने पण्डितो द्वारा स्थापित परम्परा नामक जो यह विधि है उसके विभाग नामक विधान को, अथवा विधि के विधान, क्रम वा अनुष्ठान को जानता है, वह विधि-विधान को जानने वाला पराए और अपने भेद को जानकर जैसे बुद्धिमान उल्लू रात्रि को अपने समय पर निकल, पराक्रम कर, जहाँ तहाँ सोए हुए कौओ के सिरो को छेदता हुआ उन सभी शत्रुओ को वश मे कर सुखी होता है, इस प्रकार बुद्धिमान आदमी समय पर निकल, पराक्रम कर, अपने शत्रुओ को वश मे कर, सुखी होवे, दु खरहित होवे ।

राजा बोधिसत्त्व का कहना सुन रुका ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय राजा आनन्द था । पण्डित अमात्य तो मै ही था ।

२२७. गूथपाणक जातक

"सूरो सूरेन सगम्म ..." यह शास्ता ने जेतवन मे रहते समय एक भिक्षु के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय जेतवन से गव्यूति[1], आधे योजन की दूरी पर एक निगम-ग्राम था। वहाँ से बहुत शलाका-भोजन[2] मिलता था। वहाँ एक प्रश्न पूछने वाला ठिगना व्यक्ति रहता था। वह शलाका-भोजन तथा पाक्षिकभोजन लेने के लिए गए तरुण भिक्षु तथा सामणेरो से 'कौन खाते है? कौन पीते है? कौन भोजन करते है?' आदि प्रश्न पूछता। उत्तर न दे सकने पर उन्हे लज्जित करता। वे उसके भय से शलाका-भोजन तथा पाक्षिक-भोजन लेने उस गाव न जाते।

एक दिन एक भिक्षु शलाका बाटने के स्थान पर जाकर बोला—भन्ते! क्या अमुक गाँव मे शलाका-भोजन वा पाक्षिक-भोजन है?

"आयुष्मान! है, किन्तु वहाँ एक ठिगना व्यक्ति है जो प्रश्न पूछता है। उत्तर न दे सकने पर गाली देता है, अपशब्द कहता है। उसके भय से कोई नही जा सकते है।"

"भन्ते! वहाँ का भोजन मेरे जिम्मे करे। मै उसका दमन कर, उसे निर्विष करके ऐसा बना दूगा कि आगे से तुम्हे देख कर भागे।"

भिक्षुओ ने 'अच्छा' कह वहाँ का भोजन उसके जिम्मे कर दिया।

उसने वहाँ ग्राम-द्वार पर पहुँच चीवर पहना। उसे देख ठिगने ने चण्डमेढे की तरह जल्दी से आकर कहा—श्रमण! मेरे प्रश्न का उत्तर दे।

---

[1] गव्यूति=१/४ योजन।

[2] शलाक भत्त—गृहस्थो के घर से शलाका से प्राप्त होने वाला भोजन।

"उपासक ! गाँव से भिक्षा माँग कर, यवागु लाकर आसनशाला लौट आने दे।"

उसने उसके यवागु लेकर आसन-शाला लौट आने पर भी वैसे ही कहा। उस भिक्षु ने भी अभी यवागु पीने दे, फिर आसन-शाला वुहार लेने दे, फिर शलाका-भात ले आने दे कह शलाका-भात ला उसीको पात्र पकडा कर कहा—आ। तेरे प्रश्न का उत्तर दूँगा। इस प्रकार उसे गाँव के वाहर ले जा चीवर को इकट्ठा कर कधे पर रख, हाथ से पात्र ले खडा हुआ। वहाँ भी वह वोला—श्रमण ! मेरे प्रश्न का उत्तर दे। उसने 'तेरे प्रश्न का उत्तर देता हूँ' कह एक ही मार से गिरा हड्डियो को चूर चूर करते हुए पीटा। फिर मुह मे गूँह डाल धमका कर गया—अब से यदि इस गाव मे आने वाले किसी भिक्षु से प्रश्न पूछा तो खवर लूगा। उसके वाद से वह भिक्षु को देखकर ही भाग जाता।

आगे चलकर उस भिक्षु की वह करनी धर्मसभा मे प्रकट हो गई। एक दिन धर्मसभा में वातचीत चली—आयुष्मानो ! अमुक भिक्षु ठिगने के मुह में गूँह डाल कर गया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ ! यहाँ वैठे क्या वातचीत कर रहे हो? "अमुक वातचीत" कहने पर "भिक्षुओ ! उस भिक्षु ने केवल अभी उसे गन्दगी नही लगाई, पहले भी लगाई है" कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में अङ्गमगध वासी एक दूसरे के राष्ट्र को जाते हुए, एक दिन दोनो राष्ट्रो की सीमा के वीच एक तालाव के पास वैठ, शराव पी, मत्स्य-मास खा प्रात-काल ही गाडियो को जोत चल पडे। उनके चले जाने पर एक गूँह खाने वाला कीडा गूँह की दुर्गन्ध से वहाँ आ, उनकी छोडी शराव को पानी समझ पी मस्त होकर गूँह के ढेर पर चढा। गीला गूँह उसके चढने मे थोडा नीचे को दवा। वह चिल्लाया—पृथ्वी मेरा वोझ नही उठा सकती है। उसी समय एक मस्त हाथी उधर आया। गूँह को दुर्गन्ध सूँघ घृणा कर चल दिया। कीडे ने उसे देख सोचा—यह मेरे भय से ही भागा जा रहा है। मेरा इसका युद्ध होना चाहिए। उसने उसे ललकारते हुए पहली गाथा कही—

सूरो सूरेन संगम्म विक्कन्तेन पहारिना,
एहि नाग निवत्तस्सु किन्नु भीतो पलायसि;
पस्सन्तु अंगमगधा मम तुय्हञ्च विक्कम॥

[तू शूर है। लड़ने में, प्रहार करने में समर्थ शूर के सम्मुख होने पर हे नाग रुक, डर कर भाग क्यों रहा है। जरा अङ्गमगध के लोग मेरा और तेरा पराक्रम देखें।]

तू सूरो मुझ सूरेन साथ आकर वीर्य्य-विक्रम से विक्कन्तेन प्रहार करने की सामर्थ्य होने से पहारिना किस कारण से बिना लड़े ही जाता है। एक प्रहार तो देने दे। इसलिए एहि नाग निवत्तस्सु इतने से ही मरने से भयभीत हो किन्तु भीतो पलायसि। यह इस सीमा में रहने वाले पस्सन्तु अगमगधा मम तुय्हञ्च विक्कम हम दोनों का पराक्रम देखें।

उस हाथी ने ध्यान देकर उसकी बात सुन, रुक कर उसके पास जा उसे अप्रसन्न करते हुए दूसरी गाथा कही—

न त पादा वधिस्सामि न दन्तेहि न सोण्डिया,
मिळ्हेन तं वधिस्सामि पूति हञ्ञतु पूतिना ॥

[न तुझे पाँव से मारूँगा, न दाँतों से, न सूण्ड से। तुझे गूँह से मारूँगा। गन्दगी गन्दगी से ही मरे।]

तुझे पाँव आदि से नहीं मारूँगा। तेरे योग्य गूँह से ही तुझे मारूँगा।

ऐसा कह 'गन्दगी में रहने वाला कीडा गन्दगी से ही मरे' (करके) उसके सिर पर बडा सा लेण्डा गिरा कर जल छोड उसे वहीं मार क्रौञ्चनाद करता हुआ अरण्य में गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय गूँह का कीडा ठिंगना था। हाथी वह भिक्षु था। उस बात को प्रत्यक्ष देखने वाला, उस वन-खण्ड में रहने वाला देवता मैं ही था।

२२८. कामनीत जातक

"तयो गिरिं. . ." यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय **कामनीत** ब्राह्मण के बारे मे कही। वर्तमान कथा तथा अतीत-कथा बारहवें परिच्छेद की **काम जातक**[1] मे आएगी।

उन दोनो राजपुत्रो मे ज्येष्ठ भाई वाराणसी का राजा हुआ। छोटा भाई उपराजा। राजा की काम भोगो से तृप्ति न होती थी। वह धन का लालची था।

तब बोधिसत्त्व शक्र देवेन्द्र राजा था। उसने जम्बूद्वीप पर नजर डालते हुए उस राजा को दोनो प्रकार के भोगो में अतृप्त जान उसका निग्रह कर उसे लज्जित करने के उद्देश्य से ब्राह्मण-ब्रह्मचारी का रूप बना आकर राजा को देखा। राजा ने पूछा—

"ब्रह्मचारी! किस मतलब से आया?"

"महाराज! मुझे तीन नगर ऐसे दिखाई देते है जो शान्त है, धनधान्य से पूर्ण है, जहाँ हाथी, घोडे, रथ और पैदल बहुत है, तथा जो हिरण्य, स्वर्ण के अलकारो से भरे है। उन नगरो को थोडी ही सेना से जीता जा सकता है। मै तुम्हें वे नगर जीत कर देने के लिए आया हूँ।"

"ब्रह्मचारी! कब चलेंगे।"

"महाराज! कल।"

"तो जा, प्रात काल ही आना।"

"अच्छा महाराज! जल्दी से सेना तैयार कराएँ" कह शक्र अपने स्थान को चला गया।

अगले दिन राजा ने मुनादी करवा सेना तैयार करवाई और अमात्यो को बुलाकर कहा—"कल एक ब्राह्मण-तरुण ने उत्तर-पाञ्चाल, इन्द्रप्रस्थ तथा केकय

---

[1] काम जातक (४६७)

इन तीन नगरों के राज्य को जीत कर देने के लिए कहा है। उस तरुण को लेकर तीनों नगरो का राज्य जीतेगे। उसे जल्दी से बुलाओ।"

"देव! उसे निवासस्थान कहाँ दिलवाया है?"

"मैंने उसे निवास-गृह नहीं दिलवाया।"

"उसे भोजन-खर्च दिया?"

"वह भी नहीं दिया।"

"उसे कहाँ ढूंढें?"

"नगर की गलियो मे ढूंढो।"

उन्होंने ढूंढा। न मिलने पर कहा—

"महाराज! दिखाई नही देता।"

माणवक को न देखने से राजा को महान शोक हुआ—अरे! इतना वडा ऐश्वर्य जाता रहा। हृदय गर्म हो गया। रक्त प्रकुप्त हो गया। रक्तातिसार हो गया। वैद्य चिकित्सा न कर सके। तव तीन चार दिन गुजरने पर शक्र ने ध्यान देकर उसके रोग को जान उसकी चिकित्सा करूँगा सोच ब्राह्मण-रूप धारण कर दरवाजे पर खडे हो कहलाया—वैद्य-ब्राह्मण तुम्हारी चिकित्सा के लिए आया है।

राजा ने उसे सुन कहा—वडे वड़े वैद्य भी मेरा इलाज नही कर सके। इसे खर्चा देकर विदा करो। शक्र बोला—मुझे न भोजन की आवश्यकता है, न खर्चे की। वैद्य की फीस भी नही लूंगा। उसकी चिकित्सा करूँगा। राजा मुझे मिले। राजा ने यह सुनकर कहा—तो आ जाए।

शक्र प्रविष्ट हो जय वुलाकर एक ओर खडा हुआ। राजा ने पूछा—"तू मेरी चिकित्सा करेगा?"

"देव! हाँ।"

"तो चिकित्सा कर।"

"अच्छा महाराज! मुझे रोग का लक्षण वताएँ। किस कारण से रोग पैदा हुआ? कुछ खाने पीने के कारण हुआ वा कुछ देखने सुनने के?"

"तात! मेरा रोग सुनने से पैदा हुआ।"

"तूने क्या सुना?"

"तात! एक तरुण ने आकर कहा कि मै तीन नगरो का राज्य जीत कर दूँगा।

मैंने उसे निवासस्थान वा भोजन-खर्च नही दिलवाया। वह मुझसे क्रुद्ध होकर दूसरे राजा के पास चला गया होगा। इस प्रकार 'मेरा इतना बड़ा ऐश्वर्य्य जाता रहा' सोचते रहने के कारण यह रोग पैदा हो गया है। यदि कर सकते हो तो कामना रोग की चिकित्सा करो।" इस अर्थ को प्रकट करते हुए पहली गाथा कही—

तयोगिरिं अन्तरं कामयामि
पञ्चाला कुरयो केकये च;
ततुत्तरिं ब्राह्मण कामयामि
तिकिच्छ मं ब्राह्मण कामनीतं ॥

[तीनो नगर और वे जिनकी राजधानी है उन पाञ्चाल, कुरु तथा केकय देश की इच्छा करता हूँ। उससे अधिक भी इच्छा करता हूँ। हे ब्राह्मण! मुझ कामना-ग्रस्त की चिकित्सा कर।]

तयोगिरिं का मतलब है तीन गिरि। अथवा **तयोगिरी** को ही पाठ समझें। जैसे 'यह सुनर्शनगिरि के द्वार को प्रकाशित करता है' यहा सुदर्शन देवनगर को युद्ध करके ग्रहण करना कठिन होने से, अस्थिर करना कठिन होने से, सुदर्शन-गिरि कहा गया। इसी प्रकार यहाँ भी तीनो नगरो से मतलब है तीनो गिरि इसीलिए यही अर्थ है कि तीनो नगर और उनके अन्दर तीनो प्रकार के राष्ट्र की इच्छा करता हूँ। **पञ्चाला, कुरयो केकये** च यह उन राष्ट्रो के नाम है। उनमे **पञ्चाला** से मतलब है **उत्तर पञ्चाल**, जहाँ **कम्पिल्ल** नगर है। कुरयो का मतलव है, कुरुराष्ट्र, उसमें **इन्दपत्त** नाम का नगर है। **केकये** प्रथमा विभक्ति के अर्थ मे द्वितीया है। इससे केकय राष्ट्र का मतलव है। वहाँ केकय राजधानी ही नगर है। ततुत्तरि मैंने यहाँ वाराणसी राज्य तो प्राप्त कियाहै और तीन राज्य कामयामि। तिकिच्छ म ब्राह्मण कामनीत, इन वस्तु-कामनाओ तथा भोग कामनाओ मे ले जाए गए, मारे गए मुझको, हे ब्राह्मण! यदि सामर्थ्य है तो अच्छा कर।

शक्र ने 'महाराज! जड़फूल की औषधियों से तेरी चिकित्सा नही हो सकती, ज्ञानौषध से ही तेरी चिकित्सा हो सकती है' कह दूसरी गाथा कही—

कण्हाहिदिट्ठस्स करोन्ति हेके
अमनस्सवद्धस्स[1] करोन्ति पण्डिता;
न कामनीतस्स करोति कोचि
ओकवन्तसुक्कस्स ही का तिकिच्छा॥

[कोई कोई काले सांप से डसे की चिकित्सा करते है, कोई कोई पण्डित भूत-प्रेतादि अमनुष्यो से अभिभूतो की चिकित्सा करते है, लेकिन कामनाओ के जो वशीभूत हुआ है उसकी कोई चिकित्सा नही करता। जो शुक्लधर्म की मर्य्यादा को लांघ गया, उसकी क्या चिकित्सा ?]

कण्हाहिदिट्ठस्स करोन्ति हेके कुछ चिकित्सक घोर विषैले सर्प, काले सर्प से डसे हुए की मन्त्रो से तथा औषधियो से किचित्सा करते हैं। **अमनुस्सवद्धस्स करोन्ति पण्डिता** दूसरे पण्डित भूतवैद्य, भूतयक्षादि अमनुष्यो द्वारा मारे गए, अभिभूत, ग्रहण किए गए, लोगो की बलिकर्म, परित्तकर्म, औषध तथा भावना आदि से चिकित्सा करते है। **न कामनीतस्स करोति कोचि** कामनाओ के वशीभूत आदमी की पण्डितो को छोड दूसरा कोई चिकित्सा नही करता। यदि करे भी, तो कर नही सकता। किस कारण से ? **ओकवन्तसुक्कस्स ही का तिकिच्छा** जिन्होने कुशल-धर्म को पार कर लिया, जिन्होने कुशलधर्म की मर्य्यादा लॉघ दी, जो अकुशल धर्म मे प्रतिष्ठित हो गए, ऐसे आदमियो की मन्त्र वा औषध से क्या चिकित्सा होगी ? ऐसे मूर्ख को दवाइयो से अच्छा नही किया जा सकता।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने राजा को यह बात समझाते हुए आगे यू कहा—"महाराज ! यदि तू इन तीनो राज्यो को प्राप्त करेगा, तो इन चारो नगरो पर राज्य करता हुआ क्या तू एक ही साथ चार चार वस्त्र पहनेगा ? अथवा चार चार सोने की थालियो में भोजन करेगा। अथवा चार चार पलँगो पर सोएगा ? महाराज ! तृष्णा के वशीभूत न होना चाहिए। यह विपत्ति का मूल है। यह बढने पर अपने को बढाने वाले आदमी को आठ महा-निरयो मे, सोलह उस्सद-निरयो में तथा शेष नाना प्रकार के अपायो मे जा गिराती है।"

---

[1] 'अमनुस्सविद्धस्स' पाठ अच्छा है।

इस प्रकार राजा को निरय आदि के भय से धमका कर बोधिसत्त्व ने धर्मोपदेश दिया। राजा भी धर्म सुनकर शोकरहित हुआ। उसी समय उसका रोग जाता रहा। शक्र भी इसे उपदेश दे, शीलो में प्रतिष्ठित कर, देवलोक को ही चला गया।

वह भी उस समय से लेकर दानादि पुण्यकर्म करके यथाकर्म (परलोक) गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा कामनीत ब्राह्मण था। शक्र तो मैं ही था।

२२९. पलासी जातक[1]

"गजग्गमेघेहि ..." यह शास्ता ने जेतवन मे रहते समय पलासी परिव्राजक के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

वह शास्त्रार्थ करने के उद्देश्य से सारे जम्बुद्वीप मे घूमा। कोई शास्त्रार्थ करने वाला न मिला। घूमता घूमता वह श्रावस्ती पहुँचा। वहाँ जाकर लोगो से पूछा कि मेरे साथ कोई शास्त्रार्थ कर सकता है? मनुष्यों ने इस प्रकार बुद्ध गुणो की प्रशसा की—"तेरे जैसे हजार हो तो उनके साथ भी शास्त्रार्थ कर सकने वाले, सर्वज्ञ, मनुष्यो मे श्रेष्ठ, धर्मेश्वर, दूसरे वादो का जीतने वाले महान् गौतम है। सारे जम्बुद्वीप मे भी उत्पन्न हुआ विरोधी-मत उन भगवान् को नही हरा सकता। सभी मत उनके चरणो में आने पर इस प्रकार चूर्ण विचूर्ण हो जाते हैं जैसे लहरें किनारे पर पहुँच कर।"

परिव्राजक ने पूछा—इस समय वह कहा है? उत्तर मिला—जेतवन

---

[1] पलायि जातक

मे। उसने सोचा—अब उसके साथ शास्त्रार्थ करूँगा। बहुत से आदमियो के साथ उसने जेतवन जाते समय, नौ करोड खर्चे से जेत राजकुमार द्वारा वनाया हुआ जेतवन-द्वार देखा। उसने पूछा—यही श्रमण गौतम के रहने के प्रासाद हैं?

"यह तो ड्योढी है।"

"यदि ड्योढी ऐसी है तो निवासस्थान कैसा होगा?"

"गन्धकुटी तो असीम है।"

उसने सोचा ऐसे श्रमण से कौन शास्त्रार्थ करेगा! वह वही से भाग गया। शोर मचाते हुए कुछ मनुष्यो ने जेतवन मे प्रवेश किया। शास्ता ने पूछा—क्यो असमय आए? उन्होने वह समाचार कहा। शास्ता ने कहा—उपासको! केवल अभी नही, यह पहले भी मेरे निवासस्थान की ड्योढी को ही देख कर भाग गया था। उनके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल मे गन्धार राष्ट्र मे तक्षशिला मे बोधिसत्त्व राज्य करते थे। वाराणसी मे था ब्रह्मदत्त। उसने तक्षशिला पर अधिकार करने की इच्छा से वडी सेना के साथ जाकर , नगर के समीप पहुँच, सेना को यह आज्ञा देते हुए कि 'इस तरह से हाथियो को भेजो, इस तरह से घोडे, इस तरह से रथ, इस तरह से पैदल, इस तरह दौड कर शस्त्रो से प्रहार करो तथा इस प्रकार बादलो की घनी वर्षा की तरह वाणो की वर्षा वरसाओ' ये दो गाथाएँ कही—

गजग्गमेघेहि हयग्गमालिहि
रथूमिजातेहि सराभिवस्सहि;
थरुग्गहावट्टदळहप्पहारिहि
परिवारिता तक्कसिला समन्ततो॥

अभिधावथा च पतथा च
विविधविनदिता च दन्तिहि;
वततज्ज तुमुलो घोसो
यथा विज्जुता जलधरस्स गज्जतो॥

[श्रेष्ठ हाथियो रूप बादलो से, उत्तम घोडो की पक्तियो से, रथो की लहरो से, शरो की वर्षा से, तलवार-धारी चारो ओर प्रहार करने वालो से, तक्षशिला को चारो ओर से घेर लो।

दौडो, उछलो तथा नाना प्रकार के नाद करने वाले हाथियो द्वारा आज तुमुल घोष करो, जैसे विजली गर्जना करने वाले मेघो के साथ उछलती कूदती है।]

गजग्गमेघेहि श्रेष्ठ हाथियो रूप मेघो द्वारा। क्रौञ्चनाद गर्जना करने वाले, मस्त हाथियो रूप बादलो द्वारा, यही अर्थ है। **हयग्गमालिहि** श्रेष्ठ घोडो की पक्ति द्वारा। श्रेष्ठ घोडो की पक्ति के समूह के द्वारा, अश्वो की सेना के द्वारा, यही अर्थ है। **रथूमिजातेहि** लहरो के वेग वाले, सागर के जल की तरह रथो की लहरो वाले—रथसेना यही मतलब है। **सराभिवस्सहि** उन रथ-सेनाओ से मूसलाधार बरसने वाले मेघ की तरह तीरो की वर्षा बरसाते हुए। **थरुग्गहावट्ट दळ्हप्पहारिहि** इधर उधर मे घूम कर दृढ प्रहार करने वालो से, तलवार के दस्ते पकडे हुए, पैदल योद्धाओ से। **परिवारिता तक्कसिला समन्ततो**, जिस प्रकार यह तक्षशिला चारो ओर से घिर जाए, वैसा करो।

अभिधावथा च पतथा च जल्दी मे दौडो तथा कूदो। **विविध विनदिता च दन्तिहि** श्रेष्ठ हाथियो के साथ नाना प्रकार से शोर मचाने वाले होओ। सीटी बजाने, गरजने, बाजे बजाने आदि के नाना प्रकार के शब्द करो। **वत्ततज्ज तुमुलो घोसो** आज बिजली के सदृश महान घोष हो। **यथा विज्जुता जलधरस्स गज्जतो** जैसे गरजते हुए बादल के मुँह से निकली हुई बिजलियाँ विचरण करती है, उसी प्रकार विचरते हुए, नगर को चारो ओर से घेर कर, राज्य छीन लो, यही अभिप्राय है।

वह राजा गरज कर सेना को आज्ञा दे नगर-द्वार के समीप गया। वहाँ ड्योढी को देखकर उसने पूछा कि क्या यह राजा के रहने का स्थान है? यह 'ड्योढी है' सुन उसने सोचा—जब ड्योढी ऐसी है तो राजा का निवासस्थान कैसा होगा? उत्तर मिला—वैजयन्त-प्रासाद जैसा। इस प्रकार के ऐश्वर्यशाली राजा के साथ युद्ध न कर सकूगा, सोच ड्योढी देख कर ही रुक, भाग कर वाराणसी चला आया।

शास्ता ने यह धर्म देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय बाराणसी राजा पलासी परिब्राजक था। तक्षशिला-राजा तो मैं ही था।

२३०. दुतियपलासी जातक

"धजमपरिमितं " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, एक पलासी परिब्राजक के ही बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

इस कथा मे वह परिब्राजक जेतवन मे दाखिल हुआ। उस समय जनसमूह से घिरे हुए, अलकृत धर्मासन पर बैठे हुए, शास्ता मनोशिला तल पर सिहनाद करते हुए, सिह-वच्चे के समान धर्म्म-देशना कर रहे थे। परिब्राजक दशबलधारी के ब्रह्म-शरीर जैसे रूप, पूर्ण चन्द्र जैसी शोभा वाले मुंह तथा स्वर्णपट जैसे ललाट को देख कर, 'इस प्रकार के उत्तम पुरुष को कौन जीत सकेगा ?' सोच रुका और दूसरी मण्डली मे घुस कर भाग गया। जनता ने उसका पीछा कर, रुक, शास्ता से वह वृत्तान्त कहा। शास्ता बोले—"न केवल अभी वह परिब्राजक मेरे स्वर्ण-वर्ण मुख को देख कर भाग गया है, वह पहले भी भागा है।" इतना कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बोधिसत्त्व वाराणसी मे राज्य करते थे। तक्षशिला मे एक गन्धार राजा था। उसने बाराणसी जीतने की इच्छा से चतुरगिणी सेना के साथ आकर , नगर घेर लिया। फिर नगर-द्वार पर खडे हो अपनी सेना को देखते हुए 'इतनी सेना को कौन जीत सकेगा' सोच अपनी सेना की प्रशसा करते हुए पहिली गाथा कही —

धजमपरिमित अनन्तपारं
दुप्पसह धङ्केहि सागरमिव;
गिरिमिव अनिलेन दुप्पसहो
दुप्पसहो अहमज्ज तादिसेन ॥

[मेरी असीम ध्वजाएँ हैं, अनन्त सेना है। जिस प्रकार कौवों के द्वारा सागर दुर्लंघ्य होता है (अथवा) हवा के द्वारा पर्वत दुर्जेय होता है, उसी प्रकार मैं आज वैसे शत्रु द्वारा दुर्जेय हूँ।]

धजमपरिमित यह मेरे रथों में मोरपंखों में लगा कर ऊँची की हुई ध्वजाएँ अपरिमित हैं, बहुत हैं, सैकड़ों हैं। **अनन्तपारं** मेरी सेना भी, इतने हाथी हैं, तथा इतने घोड़े हैं इस प्रकार गिनी नहीं जा सकती।

दुप्पसह शत्रुओं द्वारा जीती नहीं जा सकती। जैसे क्या ? **धङ्केहि सागरमिव** जैसे सागर बहुत कौवों द्वारा भी अतिक्रमण नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार दुर्धर्ष। **गिरिमिव अनिलेन दुप्पसह** यह मेरी सेना, दूसरी सेना के सामने उसी तरह स्थिर रहती है जैसे हवा के सामने पर्वत। **दुप्पसहो अहमज्ज तादिसेन** इस सेना के साथ मैं आज वैसे (शत्रु) से दुर्जेय हूँ। महल पर खड़े बोधिसत्त्व के बारे में कहता है।

उसने उसे अपना पूर्ण चन्द्र की सी शोभा वाला मुख दिखला कर धमकाया—मूर्ख, बकवास मत कर, जिस प्रकार मस्त हाथी सरकण्डे के वन को नष्ट कर देता है उसी प्रकार अभी तेरी सेना को विध्वंस करूँगा। और दूसरी गाथा कही—

मा बालिय विप्पलपि न हिस्स तादिस
विळय्हसे नहि लभसे निसेधकं;
आसज्जसि गजमिव एकचारिनं
यो तं पदा नळमिव पोथयिस्सति ॥

[मूर्खता की बात मत बक। ऐसा नहीं हो सकता, 'मुझे रोकने वाला नहीं मिलेगा' सोच उबलता है। तू एकचारी हाथी के सामने आया है जो तुझे वैसे ही पांव से कुचल देगा जैसे सरकण्डे को।]

मा वालियं विप्पलपि अपनी मूर्खता मत वक। **न हिस्स** तादिस अथवा न **हिस्स तादिसो** पाठ है। मेरी मेना अनन्त है, इस प्रकार विचार कर राज्य जीत सकने वाला तेरे जैसा न होवे वा नहीं होता है। **विळय्हसे** तू केवल राग, द्वेष, मोह तथा मान से जलकर उवल रहा है। **नहिलभसे निसेधकं** मेरे जैसे को जीत कर फिर और रुकावट डालने वाला तुझे न मिलेगा। जिस रास्ते से तू आया है उसी से भगाऊँगा। **आसज्जसि** प्राप्त हुआ है। **गजमिव एकचारिनं** एक चारी मस्त हाथी की तरह। **यो तं पदा नळमिव पोथयिस्सति** जो तुझे उसी तरह कुचल देगा जिस तरह मस्त हाथी पाँवों से सरकण्डे को कुचलता है, अच्छी तरह पीस डालता है। तू उसे प्राप्त हुआ, यह अपने वारे में कहा।

इस प्रकार धमकाते हुए का कहना सुन, गन्धार राजा उसके स्वर्ण-पट सदृश महा-ललाट को देख, भयभीत हो, रुक, भाग कर अपने नगर ही चला गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय गन्धार राजा पलासी परिव्राजक था। वाराणसी राजा तो मैं ही था।

दूसरा परिच्छेद

९. उपाहन वर्ग

२३१. उपाहन जातक

"यथापि कीता   " यह शास्ता ने वेळुवन मे रहते समय, देवदत्त के वारे में कही।

क. वर्तमान कथा

धर्मसभा में भिक्षुओ ने वातचीत चलाई—आयुष्मानो! देवदत्त आचार्य्य को छोड, तथागत का विरोधी शत्रु वन विनाश को प्राप्त हुआ। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, यहाँ वैठे क्या वातचीत कर रहे हो? 'अमुक वातचीत'। शास्ता ने, 'भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त आचार्य्य को त्याग, मेरा विरोधी वन, महाविनाश को प्राप्त हुआ, वह पहले भी हुआ है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व हथवानो के कुल मे पैदा हो, वडे होने पर हस्ति-शिल्प में पारङ्गत हो गए।

काशी के एक गामडे के माणवक ने आकर उनसे विद्या सीखी। वोधिसत्त्व शिल्प सिखाते हुए आचार्य्य-मुट्ठी[1] नही रखते। जो जो जानते है, वह सव सिखा देते है। उस माणवक ने वोधिसत्त्व की सारी विद्या सीख चुकने पर कहा—"आचार्य्य! अव मै राजाओ की सेवा मे रहूँगा।" वोधिसत्त्व ने 'तात! अच्छा' कह महाराजा से कहा—

---

[1] विद्या को छिपा कर रखना।

"महाराज ! मेरा शिष्य आपकी सेवा मे रहना चाहता है।"

"अच्छा ! रहे।"

"तो उसका वेतन कह दे।"

'आपका शिष्य आपके वरावर नही पा सकता। आपको सौ मिलने पर उसे पचास मिलेगे, दो (सौ) मिलने पर एक (सौ)।'

उसने घर जाकर शिष्य से कहा। शिष्य वोला—

"आचार्य्य ! मै आपके वरावर शिल्प जानता हूँ। यदि जितना आप पाते है उतना ही वेतन मिलेगा तो राजा की सेवा मे रहूँगा, नही तो नही रहूँगा।"

वोधिसत्त्व ने वह वृत्तान्त राजा से कहा। राजा वोला—यदि वह तुम्हारे जितना शिल्प जानता है तो तुम्हारे वरावर शिल्प दिखा सकने पर उसे तुम्हारे वरावर मिलेगा। वोधिसत्त्व ने अपने शिष्य से वह वात कही। उसने कहा 'अच्छा, मै दिखाऊँगा।' वोधिसत्त्व ने राजा से कहा। राजा वोला, तो कल शिल्प दिखा। शिष्य ने कहा—दिखाऊँगा, नगर मे मुनादी करा दे। राजा ने मुनादी करा दी कि कल आचार्य्य और उनका शिष्य हस्तिशिल्प दिखाएँगे। जो देखना चाहे वे राजाङ्गण मे इकट्ठे होकर देखे। आचार्य्य ने यह सोच कि मेरा शिष्य उपाय-कुशल नही है एक हाथी ले उसे एक ही रात मे 'उल्टीबात' सिखाई —चल कहने पर पीछे हटना, पीछे हटो कहने पर चलना, खडा हो कहने पर लेटना, लेट कहने पर खडा होना, पकड कहने पर रखना तथा रख कहने पर पकडना। इस प्रकार सिखा, अगले दिन वह उस हाथी पर चढ राजदरबार में पहुँचा। शिष्य भी एक सुन्दर हाथी पर चढा। जनता इकट्ठी हुई। दोनो ने बराबर शिल्प दिखाया। वोधिसत्त्व ने अपने हाथी से (हाथी) वदल लिया। वह चल कहने पर पीछे हटा। पीछे हट कहने पर आगे दौडा। खडा हो कहने पर लेट गया। लेट कहने पर खडा हुआ। (उसने) पकड कहने पर रख दिया। रख कहने पर पकडा।

जनता बोली—अरे दुष्ट शिष्य ! तू आचार्य्य के साथ झगडा करता है। अपनी सामर्थ्य नही जानता। समझता है कि मै आचार्य्य के बरावर जानता हूँ। फिर जनता ने उसे ढेले और डण्डे की मार से वही मार डाला।

बोधिसत्त्व ने हाथी से उतर राजा के पास जाकर कहा—महाराज ! विद्या अपने को सुखी बनाने के लिए सीखी जाती है। लेकिन किसी किसी के

लिए शिल्प विनाश का कारण होता है जैसे ठीक से न बनाया हुआ जूता। इतना कह ये दो गाथाएँ कहीं—

यथापि कीता पुरिसस्सुपाहना
सुखस्स अत्थाय दुखं उदब्बहे;
घम्माभितत्ता तलसा पपीलिता
तस्सेव पादे पुरिसस्स खादरे॥
एवमेव यो दुक्कुलीनो अनरियो
तम्हाकविज्जञ्च सुतञ्च मादिय;
तमेव सो तत्थ सुतेन खादति
अनरियो वच्चति पानदूपमो॥

[जिस प्रकार सुख के लिए खरीदे गए जूते गर्मी से तप्त होकर तथा पादतल से पीडित होकर उसी आदमी के पैर को काट खाते है, उसी प्रकार जो नीचकुल का अनार्य होता है वह जिस (आचार्य) से विद्या तथा श्रुत ग्रहण करता है उसी को वह अपने ज्ञान (श्रुत) से खाता है। अनार्य्य आदमी खराब जूते के समान समझा जाता है।]

उदब्बहे, कष्ट दे। घम्माभितत्ता तलसा पपीलिता घाम से अभितप्त और पैर के तलुवे से पीडित। तस्सेव जिसने वह खराब जूते सुख की आशा से खरीद कर पाँव मे डाले उसीके। खादरे जखम करते है वा पाँव खाते है।

दुक्कुलीनो खराब जाति का, कुलहीन पुत्र। अनरियो लज्जा-भय रहित असत्पुरुष। तण्हाकविज्जञ्च सुतञ्च मादिय उस उसको सिखाता है इसलिए तमाको की जगह तम्हाको। मतलब है उस उसको हुनर का अभ्यास कराता है, उसमें लगाता है। आचार्य्य ही उसका अर्थ है, इसलिए तम्हाका। गाथा-बन्धन को सरल करने के लिए ह्रस्व किया गया है। विज्ज, अठारह विद्याओं में से कोई। सुतं जो कुछ श्रुतशास्त्र। आदिय, लेकर। तमेव सो तत्थ सुतेन खादति अपने ही आपको वह अर्थात् जो दुष्टकुल का अनार्य्य आचार्य्य से विद्या और ज्ञान ग्रहण करता है वह वहाँ ज्ञान से खाता है अर्थात् उनके पास से श्रुतज्ञान से वह अपने को ही नष्ट करता है।

अट्ठकथा[1] में **तेनेव सो तत्थ सुतेन खादति** भी पाठ है। उसका भी 'वह वहाँ ज्ञान से अपने को खाता है' ही अर्थ है। **अनरियो वुच्चति पानदूपमो** अनार्य्य (आदमी) खराव जूते जैसा कहा जाता है। जिस प्रकार खराव जूते आदमी को खाते हैं, उसी प्रकार यह ज्ञान से खाता है तो अपने आप अपने को ही खाता है। अथवा जूते से जख्मी **पानदू**। जूते से पीडित, जूते से खाए गए पैर से मतलब है। इसलिए अपने आपको जो ज्ञान से हानि पहुँचाता है, वह उस ज्ञान से खाया जाने के कारण अनार्य्य कहलाता है। पानदूपमो का यही अर्थ है कि जूते से पीडित पाँव की तरह।

राजा ने सन्तुष्ट हो बोधिसत्त्व को महान् सम्पत्ति दी।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शिष्य देवदत्त था। आचार्य्य तो मैं ही था।

२३२. वीणथूण जातक

"**एकचिन्तितोव अयमत्थो**" यह शास्ता ने जेतवन में विचरते समय एक कुमारी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती के एक सेठ की लडकी थी। उसने अपने घर में वृषभराज का सत्कार होते हुए देख दाई से पूछा—माँ, यह कौन है जिसका इस प्रकार सत्कार होता है?

"बेटी, यह वृषभराज है।"

एक दिन उस लडकी ने प्रासाद पर खडे होकर गली में एक कुबडे को देखा। उसने सोचा—बैलों में जो ज्येष्ठ होता है उसकी पीठ पर एक ककुध होता है, मनुष्यों

---

[1] पुरानी सिंहल अट्ठकथा।

मे जो वडा हो उसकी पीठ पर भी होना चाहिए। यह मनुष्यो मे वृषभराज होगा। मुझे इसकी चरणसेविका वनना चाहिए। उसने दासी को भेजकर उसे कहलवाया कि सेठ की लडकी तेरे साथ जाना चाहती है। तू अमुक स्थान पर जाकर ठहर। वह कीमती चीजे ले, भेष वदल, महल से उतर उसके साथ भाग गई। आगे चलकर वह वात नगर मे और भिक्षुसघ में प्रकट हो गई। धर्मसभा में भिक्षुओ ने बात चलाई—"आयुष्मानो! अमुक सेठ-लडकी कुवडे के साथ भाग गई।"

शास्ता ने आकर पूछा—'भिक्षुओ, इस समय वैठे क्या वातचीत कर रहे हो?' 'अमुक वातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ, न केवल अभी यह कुवडे को चाहती है, इसने पहले भी कुवडे की ही इच्छा की है।" इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी मे राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय वोधिसत्त्व ने एक निगम-ग्राम में सेठ के कुल मे पैदा हो, गृहस्थी वसाते हुए, पुत्र-पुत्री के साथ वढते हुए अपने पुत्र के लिए वाराणसी-सेठ की लडकी पक्की कर दिन का निश्चय किया। सेठ की लडकी ने अपने घर पर वृषभ का सत्कार-सम्मान होते देख दाई से पूछा—यह कौन है? उसने कहा—यह वृषभ है। तव सेठ की लडकी ने गली में जाते हुए एक कुवडे को देखकर समझा कि यह पुरुषो मे वृषभ होगा। उसने कीमती सामान लिया और उसके साथ भाग गई।

वोधिसत्त्व भी सेठ की लडकी को घर लाने की इच्छा से वडी वारात के साथ वाराणसी जाते हुए उसी रास्ते पर हो लिए। वे दोनो सारी रात रास्ता चलते रहे। रात भर सर्दी खाने के कारण अरुणोदय होने पर कुवडे के शरीर का वायु कुपित हो गया। वडी पीडा होने लगी। वह रास्ते मे हट, पीडा से वेहोश होने के कारण वीणा के दण्डे की तरह मुडकर पड रहा। सेठ की लडकी भी उसके चरणो में वैठ रही। वोधिसत्त्व ने सेठ की लडकी को कुवडे के चरणो में वैठे देख, पहचान कर, पास आ, सेठ की लडकी से वार्तालाप करते हुए पहली गाथा कही—

एकचिन्तितोव अयमत्यो वालो अपरिनायको,
नहि खुज्जेन वामेन भोति सगन्तुमरहसि॥

[यह (कुवडे के साथ भागने की वात) एक-देशी चिन्ता है। (कुवडा) मूर्ख है, जाने मे असमर्थ है। कुवडे वौने के साथ आपका जाना उचित नही।]

एकचिन्तितोव अयमत्थो, अम्म! यह जो तू सोचकर इस कुवडे के साथ निकल भागी यह वात तेरी अकेली की ही सोची होगी। **बालो अपरिनायको** यह कुवडा मूर्ख है, दुर्बुद्धि होने से वूढा होने पर भी वाल ही है। दूसरा पकड कर ले जाने वाला न होने पर जाने मे असमर्थ होने से अपरिनायक। **नहि खुज्जेन वामेन भोति सगतुमरहसि,** इस कुवडे के साथ, वामनरूप होने से वौने के साथ, तुम्हे जो महान् कुल मे उत्पन्न हुई हो, सुन्दर हो, दर्शनीय हो जाना योग्य नही।

उसकी इस वात को सुनकर सेठ की लडकी ने दूसरी गाथा कही—

पुरिसूसभ मञ्ञमाना अह खज्जमकामयिं,
सोयं संकुटितो सेति छिन्नतन्ति यथा थुणा॥

[मैंने कुवडे को पुरुषों मे वृषभ समझ कर उसकी इच्छा की। यह तार टूटी वीणा की तरह सुकडा हुआ पडा है।]

आर्य! मैंने एक साँड को देखकर सोचा कि वैलो मे जो ज्येष्ठ होता है उसकी पीठ पर एक ककुव होता है। इसकी पीठ पर भी यह है। इसलिए यह पुरुषो मे वृषभ होगा। इस प्रकार मैंने इस कुवडे को पुरुष-वृषभ मान कर इसकी इच्छा की। यह तो जैसे, भग्न-तार तूमडी सहित वीणा-दण्ड हो वैसे मुडा हुआ पडा है।

वोधिसत्त्व यह जान कि वह अज्ञान के ही कारण घर से निकल पडी, उसे नहला, अलकृत कर, रथ पर चढा घर ले गये।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल वैठाया। उस समय यही सेठ की लडकी थी। वाराणसी-सेठ तो मै ही था।

२३३. विकण्णक जातक

"काम यहिं इच्छसि तेन गच्छ. . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उत्कण्ठित भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह धर्मसभा मे लाया गया। शास्ता ने पूछा—भिक्षु, क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है? 'सचमुच' कहने पर पूछा—किस कारण उत्कण्ठित है? बोला—कामुकता के कारण। शास्ता ने उसे कहा—"भिक्षु, कामुकता तीखे शल्य की तरह है। एक बार हृदय में प्रतिष्ठित होने पर तीर लगे मगरमच्छ की तरह मार ही डालती है।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बोधिसत्त्व वाराणसी में धर्म से राज्य करते हुए एक दिन उद्यान में जाकर पुष्करिणी के किनारे बैठे। नृत्यगीतादि मे जो चतुर थे उन्होंने नाचना गाना आरम्भ किया। नृत्यगीतादि से आकृष्ट होने के कारण मच्छ कछुवे इकट्ठे होकर राजा के ही साथ साथ चलते। ताड के तने के समान इकट्ठे हुए मच्छो को देखकर राजा ने अमात्यों से पूछा—यह मच्छ मेरे साथ साथ ही क्यों चलते है? अमात्यों ने उत्तर दिया—यह देव की सेवा मे है। राजा ने 'यह मेरी सेवा मे है' सन्तुष्ट हो उनके लिए नित्य-भोजन बाँध दिया। रोज अम्मण[1] भर चावल पकता। भात खिलाने के समय कोई मच्छ आते, कोई न आते। भात नष्ट होता। राजा से वह बात कही गई। राजा ने कहा—अब से नगाडा बजाकर नगाड़े की आवाज पर मच्छों के इकट्ठे होने पर उन्हें भात दिया जाए। तब से भात का प्रबन्ध करने वाला नगाड़ा बजवा कर, आए हुए मच्छो को भात देता। वे भी

---

[1] एक अम्मण = १ करीस = ११ द्रोण।

नगाडे की आवाज पर इकट्ठे हो कर खाते। उनके इस प्रकार इकट्ठे होकर भात खाने के समय एक मगर मच्छ आकर उन्हे खा जाता। भोजन-प्रवन्धक ने राजा से कहा। राजा ने उसे सुनकर कहा—जिस समय मगर-मच्छ मच्छो को खाता हो उसे तीर से वीध कर पकड लो। उसने 'अच्छा' कह, जाकर नौका पर खडे हो मच्छ खाने के लिए आए मगरमच्छ पर तीर चलाया। वह उसकी पीठ मे घुस गया। मगरमच्छ पीडा से व्याकुल हो उसे लेकर ही भाग गया। भोजन-प्रवन्धक ने उसका विन्धना जान उसे सम्वोधित कर पहली गाथा कही—

काम यहिं इच्छसि तेन गच्छ
विद्धोसि मम्मम्हि विकण्णकेन;
हतोसि भत्तेन सवादितेन
लोलो च मच्छे अनुवन्धमानो॥

[जहाँ इच्छा हो वहाँ जा। तीर से मर्म-स्थान मे विधा है। स्वादिष्ट भोजन के कारण मच्छो का पीछा करता हुआ लोभवश मारा गया है।]

काम निश्चय से। **यहिं इच्छसि तेन गच्छ** जहाँ चाहे वहाँ जा। **मम्मम्हि** मर्म-स्थान मे। **विकण्णकेन** उल्टी नोक वाले शल्य से। **हतोसि भत्तेन सवादितेन लोलो च मच्छे अनुवन्धमानो** तू नगाडा वजाकर भात दिए जाते समय लोभी बन खाने के लिए मच्छो का पीछा करता हुआ उस स्वादिष्ट भोजन द्वारा मारा गया। जाने की जगह भी तू जीवित नही रहेगा।

वह अपने वासस्थान पर पहुँच कर मर गया। शास्ता ने यह वात कह, अभिसम्बुद्ध होने पर दूसरी गाथा कही—

एवम्पि लोकामिसं ओपतन्तो
विहञ्ञती चित्तवसानुवत्ती;
सो हञ्ञति ञातिसखानमज्झे
मच्छानुगो सोरिव सुंसमारो॥

[इस प्रकार लौकिक लाभ के पीछे भागता हुआ, अपने चित्त के वशीभूत

आदमी मारा जाता है। वह रिश्तेदारो और दोस्तो के वीच वैसे ही मारा जाता है जैसे मच्छो का पीछा करने वाला मगरमच्छ।]

लोकामिस पाँच विषय। उन्हे ससार इष्ट, कान्त तथा सुन्दर समझ ग्रहण करता है, इसलिए लोकामिस कहलाते है। **ओपतन्तो** उन लौकिक चीजो के पीछे भागता हुआ राग के वशीभूत आदमी **विहञ्ञति** कष्ट पाता है **सो हञ्ञति** इस प्रकार का वह आदमी रिश्तेदारो तथा मित्रो के वीच में भी सो तीर से विधे **मच्छानुगो सुसुमारो विय** पाँच विषयो को सुन्दर मानकर **हञ्ञति** कष्ट पाता है, महाविनाश को प्राप्त होता है।

इस प्रकार शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, (आर्य-) सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के प्रकाशन के अन्त में उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय वाराणसी राजा मै ही था।

२३४. असिताभू जातक

"त्वमेवदानिमकर " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक कुमारी के वारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती मे दोनो प्रधान शिष्यो की सेवा करने वाले एक कुल मे एक कुमारी थी—सुन्दर, सौभाग्यशाली। वह वडी होने पर अपनी वरावर की जाति के कुल में गई। उसका स्वामी उसे कुछ न समझ किसी दूसरी जगह ही आसक्त रहता। वह उसके अनादर का कुछ ख्याल न कर, दोनो श्रावको को निमन्त्रित कर, महादान दे धर्मोपदेश सुनती हुई स्रोतापत्तिफल मे प्रतिष्ठित हुई। उसके बाद से वह

मार्ग-सुख तथा फल-सुख का आनन्द लेती हुई सोचने लगी कि स्वामी भी मुझे नही चाहता और गृहस्थी मे भी मुझे प्रयोजन नही। मै प्रव्रजित होऊँगी। वह माता-पिता को कह, प्रव्रजित हो अर्हत्व को प्राप्त हुई। उसकी वह करनी भिक्षुओ को ज्ञात हो गई।

एक दिन भिक्षुओ ने धर्मसभा मे बातचीत चलाई—आयुष्मानो! अमुक कुल की लड़की सदर्थ की खोज करने वाली है। उसने यह जान कि स्वामी उसे नही चाहता है, प्रधान शिष्यो का धर्मोपदेश सुन, स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हो, फिर मातापिता की आज्ञा ले, प्रव्रजित हो अर्हत्व प्राप्त किया। ऐसी है वह सदर्थ की खोज करने वाली लड़की। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ, वह कुलकुमारी केवल अभी सदर्थ की खोज करने वाली नही है, वह पहले भी सदर्थ की खोज करने वाली ही रही है।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ऋषियो के ढंग से प्रव्रजित हो अभिज्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर हिमालय प्रदेश मे रहने लगे। उस समय वाराणसी नरेश ने यह देख कि उसके पुत्र ब्रह्मदत्त कुमार के साथ बहुत लोग है उससे आशंका होने के कारण उसे राष्ट्र से बाहर करवा दिया। वह असिताभू नामक अपनी देवी को साथ ले, हिमालय मे प्रविष्ट हो, मछली, मास, फलमूल खाता हुआ पर्णशाला में रहने लगा। एक किन्नरी को देख, उसके प्रति आसक्त हो उसने सोचा कि इसे अपनी भार्य्या बनाऊँगा और असिताभू का ख्याल न कर उसके पीछे पीछे गया। उसने उसे किन्नरी के पीछे जाता देख सोचा यह मुझे छोड किन्नरी के पीछे जाता है, मुझे इससे क्या? उसने उसके प्रति विरक्त हो बोधिसत्त्व के पास जा, प्रणाम कर, अपने योग्य कसिन पूछ, कसिन की भावना कर अभिज्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त की। फिर बोधिसत्त्व को प्रणाम कर आकर स्वय पर्णशाला-द्वार पर खडी हुई। ब्रह्मदत्त भी किन्नरी का पीछा करता हुआ घूमता रहा। उसे उसके जाने का मार्ग तक न दिखाई दिया। वह निराश होकर पर्णशाला के सामने आया। असिताभू ने उसे आते देख आकाश में उठ, मणि वर्ण के गगनतल में खडी हो 'आर्यपुत्र! तेरे कारण मुझे यह ध्यान सुख प्राप्त हुआ' कह पहली गाथा कही—

त्वमेवदानिमकर य कामो व्यगमा तयि,
सो य अप्पटिसन्धिको खरा छिन्नव रेरुकं॥

[यह तो तेरे प्रति आसक्ति जाती रही, यह अब तूने ही किया है। आरी मे कटे हाथीदांत की तरह यह अब जुड नही सकती।]

त्वमेवदानिमकर आर्यपुत्र! मुझे छोड कर किन्नरी का पीछा करते हुए तूने ही यह किया है। **य कामो व्यगमा तयि** जो मेरी तेरे प्रति आसक्ति जाती रही, विपकम्भन-प्रहाण द्वारा प्रहीण हो गई, जिसके प्रहीण होने से मुझे यह विशेप-अवस्था प्राप्त हुई। **सोय अप्पटिसन्धिको** वह आसक्ति अब विना जुड सकने वाली हो गई, फिर जोडी नही जा सकती। **खरा छिन्नव रेरुक** खर कहते हैं आरी को और रेरुक कहते है हाथीदांत को। जैसे आरी मे कटा हुआ हाथीदाँत फिर जुड नही सकता, फिर पहले की तरह से नही मिलता। इसी प्रकार मेरा तेरे साथ फिर चित्त का संयोग नही हो सकता।

यह कह उसके देखते हुए ही ऊपर उठकर दूसरी जगह चली गई। उसने उसके जाने पर रोते हुए दूसरी गाथा कही—

अत्रिच्छा अतिलोभेन अतिलोभमदेन च,
एवं हायति अत्यम्हा अहव असिताभुया॥

[जहा तहाँ इच्छा करने से, अति लोभ से तथा अति लोभमद से आदमी इसी प्रकार अपने लाभ को गवा देता है जैसे मैंने असिताभू को।]

अत्रिच्छा अतिलोभेन अत्रिच्छा कहते है जहाँ तहाँ पैदा होने वाली असीम तृष्णा को। अतिलोभ कहते हैं सीमा लाँघने वाले लोभ को। **अतिलोभमदेन च** पुरुष-मद पैदा होने से अतिलोभ मद हो गया। भावार्थ यह है कि जहाँ तहाँ इच्छा करने वाला आदमी अतिलोभ से तथा अतिलोभमद से अह व **असिताभुया** जैसे मै असिताभू राजकन्या से जुदा हो गया वैसे वह अपने लाभ को गँवा देता है।

उसने यह गाथा कह रोते रहकर, अरण्य मे अकेला ही विचर, पिता के मरने पर जाकर राज्य ग्रहण किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल वैठाया। उस समय राजपुत्र और राजकन्या यही दो जने थे। तपस्वी तो मै ही था।

२३५. वच्छनख जातक

"सुखा घरा वच्छनख . " यह शास्ता ने जेतवन मे रहते समय रोजमल्ल के वारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह आयुष्मान् आनन्द का गृहस्थी-काल का मित्र था। उसने एक दिन स्थविर के पास आने के लिए सन्देश भेजा। स्थविर शास्ता से आज्ञा लेकर गए। उसने स्थविर को नाना प्रकार के बढिया भोजन खिला, एक ओर वैठ, स्थविर के साथ कुशल क्षेम वतियाते हुए स्थविर को गृहस्थ-भोगो तथा पाँच विषयो का निमन्त्रण दिया। वह वोला—भन्ते आनन्द! मेरे घर मे बहुत सी जडचेतन सम्पत्ति है, इसे बीच मे से आधी वॉटकर तुम्हे देता हूँ। आएँ दोनो घर मे रहें।

स्थविर ने उसे कामभोगो के दुष्परिणाम कहे और आसन से उठकर विहार चले गए। शास्ता ने पूछा—आनन्द! तूने रोज को देखा?

"हाँ, भन्ते।"

"उसे क्या कहा?"

"भन्ते! मुझे रोज गृहस्थ होने का निनन्त्रण देता था। मैंने उसे गृहस्थ जीवन के तथा विपयो के दोष वताए।"

शास्ता ने कहा—आनन्द! रोजमल्ल केवल अभी प्रब्रजितो को गृहस्थ होने का निमन्त्रण नही देता। इसने पहले भी निमन्त्रण दिया है। उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व एक निगम-ग्राम में किसी ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर ऋषियों के प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रजित हो हिमालय में रहने लगे। वहाँ चिरकाल तक रहकर निमक-खटाई खाने के लिए वाराणसी पहुँच, राजा के बाग में रह, अगले दिन वाराणसी में प्रवेश किया। वाराणसी का सेठ उनकी चालढाल से प्रसन्न हुआ। उसने उन्हें घर ले जाकर भोजन खिलाया। फिर उद्यान में रहने का वचन ले सेवा करते हुए उद्यान में बसाया। उनमें परस्पर स्नेह पैदा हो गया।

बोधिसत्त्व के प्रति प्रेम और विश्वास होने के कारण वाराणसी-सेठ एक दिन इस प्रकार सोचने लगा—प्रव्रजित रहना दुःखकर है। मैं अपने मित्र वच्छनख परिव्राजक को गृहस्थ बना सारा धन बीच में से आधा आधा बाँट कर उसे दे दूँ। दोनों मिलकर रहें। उसने एक दिन भोजन के अनन्तर उनके साथ मधुर बातचीत करते हुए कहा—'भन्ते वच्छनख! प्रव्रजित रहना दुःख है। गृहस्थ रहने में सुख है। आएँ दोनों मिलकर विषयों का भोग करते हुए रहें।' यह कह पहली गाथा कही—

सुखा घरा वच्छनख सहिरञ्ञा सभोजना,
यत्थ भुत्वा च पीत्वा च सयेय्याथ अनुस्सुको ॥

[वच्छनख! सोने और खाद्य पदार्थों से भरपूर घर सुख-कर है, जहाँ खा पीकर आदमी निश्चिन्त सोता है।]

सहिरञ्ञा सात रत्नों से युक्त। **सभोजना** बहुत खाद्य भोज्य पदार्थों से युक्त। **यत्थ भुत्वा च पीत्वा च** जिन सोने और भोजनों से युक्त घरों में नाना प्रकार के बढ़िया भोजन खाकर और नाना प्रकार के पान पीकर। **सयेय्याथ अनुस्सुको** जिन (घरों) में अलंकृत शयनासनों पर निश्चित होकर सोएगा, उससे घर बहुत ही सुखकर है।

उसकी बात सुन बोधिसत्त्व ने कहा—सेठ! तू अज्ञान के कारण काम-भोगो मे आसक्त होकर गृहस्थी का गुण और प्रव्रज्या का अवगुण कह रहा है। अब तू सुन, मै गृहस्थी के दोष बताता हूँ। यह कह दूसरी गाथा कही—

घरा नानीहमानस्स घरा नाभणतो मुसा,
घरा नादिन्नदण्डस्स परेस अनिकुब्बतो;
एव छिद्द दुरभिभव को घर पटिपज्जति॥

[(नित्य) मेहनत न करने वाले की गृहस्थी नही चलती। झूठ न बोलने वाले की गृहस्थी नही चलती। दूसरो को न ठगते हुए को गृहस्थी नही चलती। दण्डत्यागी की गृहस्थी नही चलती। इस प्रकार की छिद्रो से पूर्ण, मुश्किल से चलने वाली गृहस्थी को कौन करता है।]

घरा नानीहमानस्स नित्य कृषि गोरक्षा आदि करने मे परिश्रम न करने वाले की गृहस्थी नही (चलती)। गृहस्थी स्थिर नही होती। **घरा नाभणतो मुसा,** खेत, वस्तु, हिरण्य, स्वर्ण आदि के लिए झूठ न बोलने वाले की भी गृहस्थी नही। **घरा नादिन्नदण्डस्स परेस अनिक्कुब्बतो** जिसने दण्ड नही लिया, जिसने दण्ड ग्रहण नही किया, जिसने दण्ड रख दिया वैसे दूसरो को न ठगने वाले की भी गृहस्थी नही। जो दण्डधारी होकर दूसरो के दासो तथा नौकर-चाकर आदि को उस उस अपराध के लिए अपराध के अनुसार वध करना, बाँधना, (अङ्ग-) छेद करना, ताडना आदि करता है उसी की गृहस्थी ठहरती है। **एव छिद्द दुरभिभव को घर पटिपज्जति** सो अब इस प्रकार ढोग आदि के न करने पर अनेक हानियाँ होने के कारण छिद्र-पूर्ण, करने पर नित्य ही करना पडने के कारण कठिन, मुश्किल से निभने वाली, नित्य करने पर भी दुरभिसम्भव तथा मुश्किल से पूरा पडने वाले घर को मै चिन्ता-रहित होकर करूँगा? (ऐसा बोलकर) गृहस्थी को कौन करे?

इस प्रकार बोधिसत्त्व गृहस्थी के दोष कह उद्यान ही चले गए। शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय वाराणसी-सेठ रोजमल्ल था। वच्छनख परिव्राजक तो मै ही था।

२३६. वक जातक

"भद्दको वतय पक्खी " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते हुए एक ढोंगी के बारे में कही।

उसे ले जाने पर शास्ता ने देखकर कहा—"भिक्षुओ, यह न केवल अभी ढोंगी है, यह पहले भी ढोंगी रहा है।" और पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व हिमालय प्रदेश के एक तालाब में बड़े परिवार सहित मच्छ होकर रहते थे। मच्छों को खाने की इच्छा से एक बगुला तालाब के पास सिर गिरा कर तथा पंखों को पसार कर मछलियों की प्रमादावस्था को धीरे धीरे देखता हुआ खड़ा था। उसी समय मच्छों के समूह से घिरे हुए बोधिसत्त्व शिकार पकड़ते पकड़ते वहाँ पहुँचे। मच्छों के गण ने उस बगुले को देख पहली गाथा कही—

भद्दको वतय पक्खी द्विजो कुमुदसन्निभो,
वूपसन्तेहि पक्खेहि मन्द मन्दोव झायति ॥

[कुमुद सदृश यह पक्षी बहुत अच्छा है। शान्त परों से यह शनै शनै ध्यान करता है।]

मन्दसन्दोव झायति अशक्त की तरह से, कुछ न जानता हुआ सा अकेला ही ध्यान करता है।

उसे देख बोधिसत्त्व ने दूसरी गाथा कही—

नास्स सील विजानाथ अनञ्ञाय पसंसथ,
अम्हे द्विजो न पालेति तेन पक्खी न फन्दति ॥

[इसके स्वभाव को नही जानते। विना जाने प्रशसा करते हो। यह पक्षी हमार. रक्षा नही करता। इसीलिए पर नही फडफडाता।]

अनञ्ञाय—न जानकर। **अम्हे द्विजो न पालेति** यह पक्षी हमारी रक्षा नही करता, हमे नहीं सँभालता। यह सोचता है कि मैं इनमें से किसे खाऊँगा ? **तेन पक्खी न फन्दति** इसीसे पक्षी न फडफडाता है, न चलता है।

ऐसा कहने पर मच्छो के समूह ने पानी मे क्षोभ पैदा करके बगुले को भगा दिया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल वैठाया। उस समय बगुला (यह) ढोगी था। मच्छराज तो मैं ही था।

२३७. साकेत जातक

"**को नु खो भगवा हेतु** ..." यह शास्ता ने साकेत के समीप विहार करते समय साकेत ब्राह्मण के वारे मे कही।

अतीत कथा और वर्तमान कथा भी **एकक निपात** (पहले परिच्छेद) की **पूर्वोक्त साकेत जातक**[1] में आ ही चुकी है। हाँ, तथागत के विहार जाने पर भिक्षुओ ने पूछा—भन्ते ! यह स्नेह कैसे स्थापित हो जाता है ? यह पूछते हुए उन्होने पहली गाथा कही—

को नु खो भगवा हेतु एकच्चे इध पुग्गले,
अतीव हृदय निब्बाति चित्तञ्चापि पसीदति ॥

---

[1] **साकेत जातक** (१ ७ ६८)

[भगवान ! इसका क्या कारण है कि किसी किसी आदमी के प्रति हृदय अति शान्त हो जाता है और चित्त प्रसन्न हो जाता है।]

अर्थ—इसका क्या कारण है कि किसी किसी आदमी को देखते ही हृदय अति शान्त हो जाता है, सुगन्धित शीतल जल के हजारों घटों से सींचे हुए की तरह शीतल हो जाता है, किसी के प्रति नहीं होता ? किसी को देखते ही चित्त प्रसन्न हो जाता है, कोमल पड़ जाता है, प्रेम से जुड़ जाता है, किसीसे नहीं जुड़ता ?

शास्ता ने उन्हें प्रेम का कारण बताते हुए दूसरी गाथा कही—

पुब्बेव सन्निवासेन पच्चुप्पन्नहितेन वा,
एव त जायते पेमं उप्पलव यथोदके ॥

[पूर्व जन्म के सम्बन्ध से वा इस जन्म के उपकार से प्रेम पैदा होता है जैसे जल मे कमल।]

भिक्षुओ, प्रेम इन दो कारणो से ही पैदा होता है। पूर्व जन्म मे चाहे माता, चाहे पिता, चाहे पुत्र, चाहे भाई, चाहे बहिन, चाहे पति, चाहे भार्य्या, चाहे सहायक, चाहे मित्र होकर जो कोई जिस किसी के साथ एक स्थान मे रहता है उससे इस **पुब्बेव सन्निवासेन वा** दूसरे जन्म मे भी वह स्नेह नही छूटता। इस जन्म में किए गए **पच्चुप्पन्नहितेन वा एव त जायते पेम**। इन दो कारणो से प्रेम पैदा होता है। जैसे क्या ? **उप्पलव यथोदके** 'व' का ह्रस्व कर दिया। समुच्चय अर्थ में ही इस का प्रयोग है। इसलिए उत्पल तथा जल मे पैदा होने वाले शेष जितने भी पुष्प हैं वे दो ही कारणो से पैदा होते हैं—जल से और गारे से। उसी प्रकार इन दो ही कारणों से प्रेम पैदा होता है।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय के ब्राह्मण और ब्राह्मणी यही दो जन थे। पुत्र तो मैं ही था।

२३८. एकपद जातक

"इंघ एकपदं तात " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक कौटुम्बिक के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

यह कौटुम्बिक श्रावस्ती निवासी था। एक दिन गोद मे बैठे हुए पुत्र ने अर्थ का द्वार नामक प्रश्न पूछा। उसने सोचा यह प्रश्न बुद्ध का ही विषय है। इसका उत्तर अन्य कोई नही दे सकेगा। वह पुत्र को लेकर जेतवन गया और शास्ता को प्रणाम करके कहा—भन्ते! इस बालक ने गोद मे बैठे बैठे अर्थ का द्वार प्रश्न पूछा है। मै उसको नही जानता था। इसलिए यहाँ आया हूँ। भन्ते! इस प्रश्न को कहे।

शास्ता ने कहा—"उपासक! यह बालक केवल अभी अर्थ की खोज करने वाला नही है। इसने पहले भी अर्थ-खोजी होकर पण्डितो से यह प्रश्न पूछा है। पुराने पण्डितो ने इसे यह कहा भी है। किन्तु जन्मान्तर की बात होने से अब इसे उसका ध्यान नही।" इतना कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की बात कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने सेठ के कुल मे पैदा हो, बडे होने पर पिता के मरने के बाद सेठ का स्थान ग्रहण किया। उसके पुत्र ने जब वह बच्चा ही था गोदी मे बैठे बैठे पूछा—तात! मुझे अनेकार्थ वाला एक कारण, एक बात कहें। यह पूछते हुए उसने यह गाथा कही—

इंघ एकपद तात अनेकत्थपदनिस्सितं,
किञ्चि संगाहिकं ब्रूहि येनत्थे साधयामसे॥

[तात ! अनेक अर्थपदो से युक्त कोई एक सदग्राहक पद कहे, जिससे अर्थ की प्राप्ति हो।]

इध याचना के वा प्रेरणा के अर्थ मे निपात है। एकपद एक पद वा एक बात से युक्त पद। अनेकत्थपदनिस्सित अनेक अर्थों वा बातो से युक्त। किञ्चि सगाहिक ब्रूहि कोई एक बहुत से पदो का सद्ग्राहक पद कहे। अथवा यही पाठ है। येनत्थे साधयामसे जिस अनेकार्थ युक्त एक पद से ही हम अपनी वृद्धि सिद्ध करें, वह हमे कहे—यही पूछता है।

उसके पिता ने कहते हुए दूसरी गाथा कही—

दक्खेय्येकपद तात अनेकत्थपदनिस्सित,
तञ्च सीलेन सयुत्त खन्तिया उपपादित;
अल मित्ते सुखापेतु अमित्तानं दुखाय च॥

[तात ! दक्षता अनेक अर्थपदो से युक्त एक पद है। वह शील और क्षमा के सहित हो तो मित्रो को सुख तथा शत्रुओ को दुख देने के लिए पर्य्याप्त है।]

दक्खेय्येकपद दक्षता एक पद है। दक्षता कहते है लाभ उत्पन्न करने वाले, हुशियार कुशल आदमी का ज्ञानपूर्ण प्रयत्न (=वीर्य्य)। अनेकत्थपदनिस्सितं इस प्रकार कहा गया वीर्य्य अनेक अर्थ पदो से युक्त। किनसे ? शीलादि से। इसीलिए तञ्च सीलेन सयुत्तं आदि कहा। उसका अर्थ है कि वह वीर्य्य आचारशील तथा सहनशक्ति से युक्त। मित्ते सुखापेतु अमित्तानञ्च दुक्खाय अल, समर्थ है। कौन है जो लाभ उत्पन्न करने वाले, ज्ञानपूर्ण कुशल वीर्य्य से युक्त हो, आचारशील तथा क्षमा से युक्त हो और मित्रो को सुख देने तथा शत्रुओ को दुख देने में समर्थ न हो ?

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने पुत्र के प्रश्न का उत्तर दिया। वह भी पिता के कथनानुसार अपनी उन्नति कर यथाकर्म परलोक गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-)सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल वैठाया। सत्यो के प्रकाशन के अन्त मे पिता पुत्र स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुए। उस समय पुत्र यही था। वाराणसी सेठ तो मै ही था।

२३९. हरितमात जातक

"आसिविस मम सन्त " यह शास्ता ने वेळुवन मे रहते समय अजातशत्रु के वारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

कोशलराज के पिता महाकोशल ने राजा विम्विसार को अपनी लडकी देने के समय लड़की का स्नान-मूल्य काशीगॉव दिया। अजातशत्रु द्वारा पिता मार दिये जाने से वह राजा के प्रति स्नेह होने के कारण शीघ्र ही मर गई। माता के मर जाने पर भी अजातशत्रु उस गॉव का उपभोग करता ही था। कोशलराज उससे लड़ता था कि मै पिता की हत्या करने वाले चोर को अपने कुल का गॉव न दूँगा। कभी मामा विजयी होता, कभी भानजा। जब अजातशत्रु जीतता तब रथ पर ध्वजा वँधवा वडी शान के साथ नगर मे प्रवेश करता। जब पराजित होता तव दुखी मन से चुपचाप विना किसी को खवर किए प्रवेश करता।

एक दिन भिक्षुओ ने धर्मसभा मे वातचीत चलाई—आयुष्मानो, अजातशत्रु मामा को हराकर प्रसन्न होता है हारने पर चिन्तित होता है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, वैठे क्या वातचीत कर रहे हो ? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ, केवल अभी नही, यह पहले भी जीतने पर प्रसन्न होता था, हारने पर दुखी होता था।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व नीले मेण्डक होकर पैदा हुए। उस समय मनुष्यो ने नदी कन्दरा आदि मे जहाँ तहाँ मछलियाँ पकडने के लिए जाल' फैलाए थे। एक जाल मे बहुत सी मछलियाँ दाखिल हुई। एक जल-सर्प भी मछलिया खाता हुआ उसी जाल मे फँसा। बहुत सी मछलियो ने इकट्ठे हो उसे खा लहू-लुहान कर दिया। जब उसे कही शरण न दिखाई दी तो मृत्यु से भयभीत हो वह जाल से निकल वेदना से बेहोश हो पानी के किनारे जा पडा। नील मेण्डक भी उस समय उछल कर जाल के सिरे पर आ पडा था। सर्प को कोई दूसरा निर्णायक न दिखाई दिया तो उसने उस मेण्डक को वहाँ पड़े देख पूछा—"सौम्य नील मेण्डक! क्या तुझे इन मछलियो की यह करतूत अच्छी लगती है?" उसने यह पहली गाथा कही—

आसीविस मम सन्त पविट्ठ कुमिनामुखं,
रुच्चते हरितामाता य म खादन्ति मच्छका॥

[हे हरी माता वाले! यह जो जाल में दाखिल होने पर मुझ सर्प को मछलियाँ खाती है, क्या यह तुझे अच्छा लगता है?]

आसिविस मम सन्त सर्प को। रुच्चते हरितामाता य म खादन्ति मच्छका कहता है कि हे हरे मेण्डकपुत्र क्या यह तुझे अच्छा लगता है?

हरे मेण्डक ने उत्तर दिया—हाँ, मित्र अच्छा लगता है। किस कारण से? यदि तू अपने प्रदेश मे आने पर मछलियो को खाता है तो मछलियाँ भी तुझे अपने प्रदेश मे आने पर खाती है। अपने अपने प्रदेश मे, विषय मे, गोचर-भूमि में कोई कमजोर नही होता। यह कहकर दूसरी गाथा कही—

विलुम्पतेव पुरिसो यावस्स उपकप्पति,
यदा चञ्ञे विलुम्पन्ति सो विलुत्तो विलुम्पति॥

' मछलिया पकडने का बांस का फन्दा।

[जब तक सामर्थ्य होती है आदमी (दूसरो) को लूटता ही है। जब दूसरे लूटते है, तो वह लूटने वाला लुटता है।]

विलुम्पतेव पुरिसो यावस्स उपकप्पति जब तक पुरुष का ऐश्वर्य्य रहता है तब तक वह दूसरो को लूटता ही है। **या व सो उपकप्पति** यह भी पाठ है। जितने समय तक वह आदमी लूट सकता है, अर्थ है। **यदा चञ्ञे विलुम्पन्ति** जब दूसरे ऐश्वर्य्यशाली होकर लूटते है। **सो विलुत्तो विलुम्पति** वह लुटेरा लूटा जाता है। **विलुम्पते** भी पाठ है। अर्थ यही है। **विलुम्पनं** भी पढते है। उसका अर्थ ठीक नही बैठता। इस प्रकार लूटने वाला फिर लूटा जाता है।

बोधिसत्त्व के मुकद्दमे का निर्णय देने पर मछलियो ने जल-सर्प की दुर्बलता जान, शत्रु को धर पकडने के लिए जाल से निकल उसे वही मार डाला और चली गई।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय जल-सर्प अजातशत्रु था। नील-मेण्डक तो मै ही था।

२४०. महापिंगल जातक

"सब्बो जनो ..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

देवदत्त के शास्ता के प्रति वैर बाँध लेने के नौ महीने बाद जेतवन के द्वार-कोठे पर (उसके) पृथ्वी द्वारा निगल लिए जाने पर जेतवनवासी तथा सकल नगर के निवासी यह सोच कि बुद्ध के मार्ग का कण्टक देवदत्त पृथ्वी के द्वारा निगल लिया गया और अब सम्यक सम्बुद्ध का शत्रु मर गया बड़े सन्तुष्ट हुए। उनसे परम्परा-घोष' से सुनकर सारे जम्बूद्वीपवासी तथा यक्ष भूत और देवगण भी बड़े हर्षित हुए।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो, देवदत्त के पृथ्वी द्वारा निगल लिए जाने पर महा-जन-समूह यह सोचकर कि बुद्ध का विरोधी देवदत्त पृथ्वी द्वारा निगल लिया गया हर्षित हुआ। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त के मरने पर जन-समूह हर्षित होता है और प्रसन्न होता है, पहले भी हर्षित हुआ है और प्रसन्न हुआ है।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में महापिङ्गल नाम का राजा अधर्म से, अनुचित तौर पर राज्य करता था। छन्द आदि के वशीभूत हो पापकर्म करता हुआ दण्डबलि जङ्घ-कार्षापण आदि ले जनता को ऐसे पीड़ता था जैसे ऊख-यन्त्र ऊख को। वह

' एक से दूसरा और फिर उससे तीसरा सुने।

रौद्र स्वभाव का था, कठोर था और दुस्साहसी था। उसमे दूसरो के लिए तनिक भी दया नही थी। घर मे स्त्रियो का, लडके लडकियो का, अमात्य ब्राह्मणो का तथा गृहपति आदि का भी अप्रिय था। वह ऐसा था मानो आँख मे धूल हो, भात के कौर मे ककर हो, अथवा ऐंडी को वीध कर काँटा घुस गया हो।

उस समय वोधिसत्त्व महापिङ्गल का पुत्र होकर पैदा हुए। महापिङ्गल चिरकाल तक राज्य करके मर गया। उसके मरने पर सभी वाराणसी वासियो ने हर्षित हो, सन्तुष्ट हो, खूव प्रसन्न हो एक हजार गाडी लकडी से महापिङ्गल को जलाकर अनेक सहस्र घडो से आग वुझाई। फिर वोधिसत्त्व को राज्य पर अभिषिक्त कर 'हमे धार्मिक राजा मिला' सोच (वे) प्रसन्न हो नगर मे उत्सव-भेरी वजवा, ऊँची ध्वजाओ तथा पताकाओ से नगर को अलङ्कृत कर, दरवाजे दरवाजे पर मण्डप वनवा, खील-पुष्प विखरे, सजे हुए मण्डपो मे वैठ कर खाने पीने लगे।

वोविसत्त्व भी अलङ्कृत महान् तल पर (विछे) श्रेष्ठ आसन के वीच मे, जिस पर श्वेत छत्र छाया हुआ था वैठे। अमात्य, ब्राह्मण, गृहपति, राष्ट्रिक तथा द्वारपाल आदि राजा को घेर कर खडे थे। एक द्वारपाल थोडी ही दूर पर खडा हो आश्वास-प्रश्वास लेता हुआ रोने लगा। वोधिसत्त्व ने उसे देख पूछा—सौम्य! मेरे पिता के मरने पर सभी प्रसन्न हो उत्सव मना रहे है। लेकिन तू खडा रो रहा है। क्या मेरा पिता तुझे ही प्रिय था? यह पूछते हुए पहली गाथा कही—

सब्बो जनो हिंसितो पिगलेन
तस्मि मते पच्चयं वेदयन्ति,
पियो नु ते आसि अकण्हनेत्तो
कस्मा नु त्वं रोदसि द्वारपाल॥

[पिङ्गल ने सव जनो को कष्ट दिया। उसके मरने पर सभी आनन्द का अनुभव करते है। हे द्वारपाल! क्या वह तेरा ही प्रिय था? तू क्यो रोता है?]

हिंसितो नाना प्रकार के दण्ड वलि आदि से पीडा दी। **पिङ्गलेन** पिङ्गल आँख वाले ने, उसकी दोनो आँखें एकदम पिङ्गल वर्ण की, बिल्ली की आँखो के

समान थी। इसीसे उसका नाम पिङ्गल हुआ। पच्चय वेदयन्ति प्राणि अनुभव करते है। अकण्हनेत्तो पिङ्गल आँख वाला। कस्मा नु त्वं तू किस कारण से रोता है? अट्ठकथा मे कस्मा तुव पाठ है।

उसने उसकी बात सुन उत्तर दिया—"मै उस शोक से नही रोता हूँ कि महा-पिङ्गल मर गया। मेरे सिर को तो सुख हुआ है। पिङ्गल राजा प्रासाद से उतरते हुए और चढते हुए हथौडी से चोट लगाने की तरह मेरे सिर पर आठ आठ टोके लगाता था। वह परलोक जाकर भी जैसे मेरे सिर मे टोके लगाता था उसी तरह निरय-पालको तथा यमराज के सिर मे भी टोके लगाएगा। 'वह हमे बहुत कष्ट देता है' सोच वह इसे फिर यहाँ लाकर छोड जा सकते है। वह मेरे सिर मे फिर टोके मारेगा। मै इस भय के कारण रोता हूँ।" यह अर्थ प्रकट करते हुए दूसरी गाथा कही—

> न मे पियो आसि अकण्हनेत्तो
> भायामि पच्चागमनाय तस्स,
> इतो गतो हिंसेय्य मच्चुराज
> सो हिंसितो आनेय्य पुन इध॥

[मुझे पिङ्गल नेत्र प्रिय न था। मुझे डर है कि वह फिर न लौट आए। यहाँ से जाकर वह यमराज को कष्ट दे। और (कही) यमराज कष्ट पाकर उसे फिर यहाँ ले आए।]

बोधिसत्त्व ने उसे आश्वासन दिया—वह राजा लकडी के हजार भारो से जला दिया गया है। सैकडो घडो से (चिता) बुझा दी गई है। जिस जगह जलाया गया, वह जगह चारो ओर से खन दी गई है। जो परलोक जाते है उनका यह स्वभाव है कि वह दूसरी जगह जन्म ग्रहण करते है। फिर उसी शरीर मे नही आते है। इसलिए तू मत डर।

यह गाथा कही—

> दड्ढो वाहसहस्सेहि सित्तो घटसतेहि सो,
> परिक्खता च सा भूमि मा भायि नागमिस्सति॥

[हजार भारो से जला दिया गया है। सैकडो घड़ो से (चिता) ठडी कर दी गई है। वह भूमि खन दी गई है। मत डर, वह नही आएगा ।]

तब द्वारपाल को सन्तोष हुआ। बोधिसत्त्व धर्म से राज्य करके दान आदि पुण्य कर यथाकर्म (परलोक) गए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय पिङ्गल देवदत्त था। पुत्र तो मै ही था।

दूसरा परिच्छेद

१०. सिगाल वर्ग

२४१. सब्बदाठ जातक

"सिगालोमानत्यद्धो..." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

अजातशत्रु को प्रसन्न कर देवदत्त ने जो लाभ सत्कार पैदा किया था वह उसे देर तक स्थिर न रख सका। नालागिरि (हाथी) का प्रयोग करने के समय जो आश्चर्य देखा गया उस समय से वह लाभ-सत्कार नष्ट हो गया।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो, देवदत्त लाभ-सत्कार पैदा करके चिरकाल तक स्थिर न रख सका। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त ने अपने लाभ-सत्कार को नष्ट किया है, पहले भी नष्ट किया ही है। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उसका पुरोहित था, तीनों वेदों तथा अठारह शिल्पों में पारङ्गत। वह पृथ्वीजय मन्त्र जानता था। पृथ्वीजय मन्त्र जापमन्त्र है।

एक दिन बोधिसत्त्व उस मन्त्र को सिद्ध करने की इच्छा से एक खुली जगह में एक पत्थर पर बैठ कर मन्त्र जाप करने लगा। वह मन्त्र किसी दूसरे विधि-रहित व्यक्ति को नहीं सुनाया जा सकता था, इसीलिए वह वैसी जगह जाप करने लगा था।

उसके पाठ करने के समय एक गीदड ने एक विल मे पडे पडे उस मन्त्र को सुनकर अभ्यास कर लिया। वह अपने पूर्व-जन्म मे पृथ्वीजय मन्त्र का अभ्यासी एक ब्राह्मण था। वोधिसत्त्व ने पाठ कर चुकने पर कहा—मुझे इस मन्त्र का अभ्यास हो गया। गीदड ने विल से निकल कर कहा—भो ब्राह्मण! मुझे इस मन्त्र का तुझमे भी अधिक अभ्यास है। इतना कह वह भाग गया।

वोधिसत्त्व ने यह सोच कि यह गीदड वहुत खरावी करेगा 'पकडो पकडो' कहते हुए उसका पीछा किया। गीदड भागकर जगल में जा घुसा। वहाँ जाकर उसने एक गीदडी के शरीर मे थोडा सा वुरका भरा। वह वोली—स्वामी! क्या है? 'मुझे पहचानती है वा नही?' उसने कहा—स्वामी! पहचानती हूँ।

उसने पृथ्वीजय मन्त्र का जाप कर सैकडो गीदडो को आज्ञा दे सव हाथी, अश्व, सिंह, व्याघ्र, सूअर, मृग आदि चौपायो को अपने पास वुलाया। सब को अपने अधीन कर स्वय **सव्वदाठ** नामक राजा वन एक गीदडी को पटरानी बनाया। दो हाथियो की पीठ पर सिंह वैठता। सिह की पीठ पर पटरानी सहित **सब्बदाठ** राजा वैठता। वडी शान थी।

वह ऐश्वर्य-मद मे चूर हो, अभिमान के मारे वाराणसी राज्य जीतने की इच्छा से सव चौपायो को ले वाराणसी से कुछ ही दूर पर आ पहुँचा। वारह योजन की परिषद् थी। उसने कुछ ही दूर से ही राजा के पास सन्देश भेजा—राज्य दे अथवा युद्ध करे। वाराणसी निवासियो ने भयभीत हो डर के मारे नगर के द्वार वन्द कर लिए।

वोधिसत्त्व ने राजा के पास आकर कहा—महाराज। मत डरे। सव्वदाठ गीदड के साथ युद्ध करने की जिम्मेदारी मेरी है। मेरे अतिरिक्त और कोई उससे युद्ध नही कर सकता। उसने राजा तथा नगर वासियो को आश्वासन दे सव्वदाठ क्या करके राज्य जीतेगा पूछने की इच्छा से नगर-द्वार की अट्टालिका पर चढकर पूछा—सव्वदाठ! क्या करके इस राज्य को लेगा?

"सिंहनाद कराकर, जनसमूह को शब्द से भयभीत कर राज्य लूगा।"

वोधिसत्त्व ने "यह है" जान अट्टालिका पर चढ मुनादी करवा दी कि सारी वारह योजन वाराणसी के नगर निवासी अपने अपने कानो के छिद्रो को माष (की दाल) के आटे से लेप ले। जनता ने मुनादी सुन विल्लियो से लेकर सभी

जानवरो के तथा अपने कानो के छिद्र माष के आटे से इस प्रकार लेप लिए कि दूसरे का शब्द न सुन सके।

बोधिसत्त्व ने फिर अट्टालिका पर चढकर पुकारा—

"सब्बदाठ!"

"ब्राह्मण! क्या है?"

"इस राज्य को कैसे ग्रहण करेगा?"

"सिंहनाद करवाकर, मनुष्यो को डराकर, जान मरवा कर ग्रहण करूँगा।"

"सिंहनाद नही करवा सकेगा। जाति-सम्पन्न, लाल हाथ पाँव वाले, केशर सिंह राज तेरे जैसे नीच गीदड की आज्ञा नही मानेंगे।"

गीदड ने अभिमान से चूर हो कहा—दूसरे सिंह रहें। जिस सिंह की पीठ पर मै बैठा हूँ उसीसे सिंहनाद करवाऊँगा।

"यदि सामर्थ्य है तो सिंहनाद करवा।"

जिस सिंह पर बैठा था उसने उसे पाँव से इशारा किया कि सिंहनाद कर। सिंह ने हाथी के सिर पर मुँह रख तीन बार ऐसा सिंहनाद किया, जैसा कोई न कर सके। हाथियो ने डरकर गीदड को पैरो मे गिरा पाँव से उसके सिर को कुचल चूर्ण विचूर्ण कर दिया। सब्बदाठ वही मर गया। वे हाथी भी सिंहनाद सुनकर भय के मारे एक दूसरे से भिडकर वही मर गए। सिंहो को छोड कर शेष जितने भी खरगोश और बिल्लो से लेकर मृग सूअर आदि थे सभी जानवर वही मर गए। सिंह भाग कर अरण्य मे चले गए। बारह योजन में मास का ढेर लग गया।

बोधिसत्त्व ने अटारी से उतर नगरद्वारो को खोल मुनादी करा दी कि सभी अपने कानो मे से माष के आटे को निकाल दे और जिन्हें मास की जरूरत हो मास ले जाएँ। मनुष्यो ने गीला मास खाया और बाकी का सुखा कर वल्लूर[1] बना लिया। कहते है उसी समय से मास सुखाना आरम्भ हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला यह अभिसम्बुद्ध गाथाएँ कह जातक का मेल बैठाया—

---

[1] वल्लूर=सूखा मास।

सिगालो मानत्थद्धोव परिवारेन अत्थिको,
पापुणी महांत भूमि राजासि सब्बदाठिनं॥
एवमेवं मनुस्सेसु यो होति परिवारवा,
सो हि तत्थ महा होति सिगालो विय दाठिन॥

[गीदड अभिमान मे चूर था। उसे और भी "परिवार" चाहिए था। वह महान् पद को प्राप्त हो गया—सभी चौपायो का राजा हो गया। इसी प्रकार मनुष्यो मे भी जिसका "परिवार" बडा होता है वह भी महान् हो जाता है जैसे गीदड जानवरो मे।]

मानत्थद्धो अनुचरो के कारण उत्पन्न अभिमान से चूर। **परिवारेन अत्थिको** और भी "परिवार" की इच्छा वाला होकर। **महांत भूमि** महासम्पत्ति को। **राजासि सब्बदाठिन** सब चौपायो का राजा था। **सो हि तत्थमहा होति** जो परिवार युक्त आदमी है वह उन परिवारो में महान् होता है। **सिगालो विय दाठिन** जैसे गीदड चौपायो मे महान् हुआ उसी प्रकार महान् होता है। वह उस गीदड की तरह प्रमाद के कारण विनाश को प्राप्त होता है।

उस समय गीदड देवदत्त था। राजा सारिपुत्र था। पुरोहित तो मैं ही था।

२४२. सुनख जातक

"**बालो वताय सुनखो** " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय अम्बल-कोष्ठक आसनशाला में भात खाने वाले कुत्ते के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उसके जन्म के समय से ही कहारो ने उसे वहाँ पोसा था। वह वहाँ भात खाता हुआ आगे चलकर मोटा गया। एक दिन एक ग्रामवासी वहाँ आया।

उसने कुत्ते को देखा और कहारो को चादर तथा कार्षापण दे कुत्ते को चमडे के पट्टे से बाँध कर ले गया। वह ले जाने के समय भौका नही। जो जो दिया गया, खाता हुआ पीछे पीछे गया।

तब उस आदमी ने सोचा कि अब यह मुझसे प्रेम करता है और पट्टा खोल दिया। वह छूटते ही एक दौड मे आसनशाला आकर पहुँचा। भिक्षुओ ने उसे देख और उसका किया जान शाम को धर्मसभा मे बातचीत चलाई—आयुष्मानो! आसनशाला का कुत्ता बन्धन से मुक्त होने मे चतुर है। छूटते ही फिर आ गया है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ, वह कुत्ता केवल अभी बन्धन से मुक्त होने में चतुर नही है, पहले भी चतुर ही था।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व काशी राष्ट्र के एक बडे सम्पन्न घराने मे पैदा हुए। बडे होने पर गृहस्थी बसाई।

उस समय वाराणसी मे एक आदमी के पास एक कुत्ता था। वह भात के कौर खा खाकर मोटा गया। एक ग्रामवासी वाराणसी आया। उस कुत्ते को देख, उस आदमी को चादर और कार्षापण दे, कुत्ते को चमडे की डोरी से बाँध डोरी के एक सिरे को पकड कर ले चला। चलते चलते जगल के द्वार पर एक शाला मे दाखिल हो कुत्ते को बाँध एक तख्ते पर लेट कर सो गया। उस समय बोधिसत्त्व ने किसी काम से उस जगल मे प्रवेश होते वक्त उस कुत्ते को चमडे की डोरी से बँधे बैठे देख पहली गाथा कही—

बालो वताय सुनखो यो वरत्तं न खादति,
बन्धना च पमुञ्चेय्य असितो च घरं वजे॥

[यह कुत्ता मूर्ख है जो चमडे की डोरी को नही खाता है। (यदि खा डाले) तो बन्धन मे छूट जाए और भरे पेट ही घर चला जाए।]

पमुञ्चेय्य मुक्त करे, अथवा **पमोच्चेय्य** ही पाठ है। **असितो च घर वजे** भरे पेट ही अपने निवास-स्थान पर चला जाए।

उसे सुन कुत्ते ने दूसरी गाथा कही—

अद्ठितं मे मनस्मि मे अथो मे हदये कतं,
कालञ्च पतिकंखामि याव पस्सुपतु जनो॥

[यह मेरा अधिष्ठान था, यह मेरे मन मे था, और यह (तुम्हारा) कहना भी हृदय मे रख लिया। मै समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ जबकि लोग सो जाएँ।]

अद्ठितं मे मनस्मि मे जो तुम कहते हो वह पहले से मेरा सकल्प है, वह मेरे मन ही मे है। **अथो मे हदये कत** तुम्हारा वचन भी मैने हृदय मे कर लिया है। **कालञ्च पतिकङ्खामि** समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। **याव पस्सुपतु जनो** जब तक यह लोग सो जाते है, इन्हे नीद आ जाती है, तब तक मै समय की प्रतीक्षा करता हूँ। नही तो हल्ला हो जाएगा कि यह कुत्ता भाग रहा है। इसलिए रात को जब सब सो जाएँगे चमडे की डोरी खाकर भाग जाऊँगा।

यह कहकर वह लोगो के सो जाने पर चमडे की डोरी खा, पेट भर कर, भागा और अपने स्वामी के ही घर गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का कुत्ता इस समय का कुत्ता है। पण्डित पुरुष तो मै ही था।

२४३. गुत्तिल जातक

"सत्ततन्तिं सुमधुरं . . ." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय भिक्षुओ ने देवदत्त से पूछा—आयुष्मान् देवदत्त! सम्यक् सम्बुद्ध तेरे आचार्य्य है। तूने सम्यक् सम्बुद्ध के कारण तीनो पिटक सीखे, चारो ध्यान प्राप्त किए, अब आचार्य्य का विरोधी बनना उचित नही। देवदत्त ने आचार्य्य का प्रत्याख्यान करते हुए कहा—आयुष्मान श्रमण गौतम मेरे कैसे आचार्य्य है? क्या मैंने अपनी सामर्थ्य मे ही तीनो पिटक नही सीखे है तथा चारो ध्यान नही प्राप्त किए है।

भिक्षुओ ने धर्मसभा मे बातचीत चलाई—आयुष्मानो! देवदत्त अपने आचार्य्य का प्रत्याख्यान कर सम्यक् सम्बुद्ध का विरोधी बन महाविनाश को प्राप्त हुआ। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त आचार्य्य का प्रत्याख्यान कर मेरा शत्रु बन नष्ट होता है, पहले भी विनष्ट हुआ ही है।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व गन्धर्व कुल मे पैदा हुआ। उसका नाम हुआ गुत्तिल कुमार। वह बड़े होने पर गन्धर्व-शिल्प में ऐसा पारङ्गत हुआ कि सारे जम्बूद्वीप मे गुत्तिल गन्धर्व ही सब गन्धर्वों मे बढ गया। वह स्त्री का पालन न कर अपने अन्धे मातापिता का पालन करता था।

उस समय वाराणसी निवासी बनियों ने व्यापार के लिए उज्जेनि जाकर उत्सव घोषित होने पर चन्दा करके बहुत सा माला गन्ध विलेपन आदि तथा खाद्य भोज्य ले क्रीडा-स्थान पर इकट्ठे हो कहा कि वेतन देकर एक गन्धर्व को लाओ। उस समय उज्जेनि मे मूसिल नामक ज्येष्ठ गन्धर्व था। उन्होने उसे बुलवाकर अपना गन्धर्व बनाया।

मूसिल वीणा भी बजाता था। उसने वीणा को स्वर चढाकर बजाया। गुत्तिल गन्धर्व के गन्धर्व मे परिचित उन लोगो को मूसिल का बजाना चटाई खुजलाने जैसा प्रतीत हुआ। कोई भी कुछ न बोला। उन्होने अपनी प्रसन्नता न प्रकट की। मूसिल ने उनकी प्रसन्नता न देखी तो सोचा—मालूम होता है

मैं बहुत तीखा बजाता हूँ। उसने मध्यम स्वर चढा मध्यम स्वर से बजाया। वे तब भी उपेक्षावान् ही रहे। उसने सोचा—मालूम होता है यह कुछ नही जानते। स्वय भी कुछ न जानने वाला बन उसने वीणा के तारो को ढीला कर बजाया। उन्होने तब भी कुछ न कहा।

मूसिल बोला—भो व्यापारियो! क्या आप लोग मेरे वीणा-वादन से प्रसन्न नही होते?

"क्या तू वीणा बजाता था? हम तो समझते रहे कि तू वीणा को कस रहा है।"

"क्या तुम मुझसे बढकर आचार्य्य को जानते हो? अथवा अपने अज्ञान के कारण प्रसन्न नही होते हो?"

"वाराणसी मे जिन्होने गुत्तिल गन्धर्व का वीणा-वादन सुना है उन्हे तुम्हारा वीणा बजाना ऐसा ही लगता है जैसे स्त्रियाँ बच्चो को सन्तुष्ट कर रही हो।"

"अच्छा, तो आपने जो खर्चा दिया है उसे वापिस लें। मुझे यह नही चाहिए। लेकिन हाँ, वाराणसी जाते समय मुझे साथ लेकर जाएँ।"

उन्होने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। जाते समय उसे साथ वाराणसी ले गए। वहाँ 'यह गुत्तिल का निवासस्थान है' बताकर अपने अपने घर चले गए।

मूसिल ने बोधिसत्त्व के घर मे प्रवेश कर वहाँ टँगी हुई बोधिसत्त्व की बहुत ही अच्छी वीणा देख उतारकर बजाई। बोधिसत्त्व के माता पिता अन्धे होने के कारण उसे न देख सके। वे समझे चूहे वीणा खा रहे हैं। इसलिए उन्होने कहा—सू सू चूहे वीणा खा रहे हैं।

उस समय मूसिल ने वीणा रखकर बोधिसत्त्व के माता पिता को प्रणाम किया। उन्होने पूछा—"कहाँ से आया?"

"उज्जेनी से आचार्य्य के पास शिल्प सीखने आया हूँ।"

"अच्छा।"

"आचार्य्य कहाँ है?"

"तात! बाहर गया है। आज आ जाएगा।"

यह सुन मूसिल वही बैठ गया। बोधिसत्त्व के आने पर, उसके द्वारा कुशल समाचार पूछे जा चुकने पर उसने अपने आने का कारण कहा। बोधिसत्त्व

अङ्गविद्या के जानकार थे। वे जान गए कि यह सत्पुरुष नही है। उन्होने अस्वीकार किया—तात! जा तेरे लिए शिल्प नही है।

मूसिल ने वोधिसत्त्व के माता पिता के चरण पकडे। उन्हे अपनी सेवा से सन्तुष्ट कर उसने उनसे याचना की कि मुझे शिल्प सिखलवा दें। वोधिसत्त्व ने माता पिता के वारवार कहने पर उनकी आज्ञा का उल्लघन न कर सकने के कारण उसे शिल्प सिखा दिया।

वह वोधिसत्त्व के साथ राजदरवार जाता। राजा ने उसे देखकर पूछा—आचार्य्य! यह कौन है?

"महाराज! यह मेरा शिष्य है।"

वह शनै शनै राजा का विश्वासी हो गया। बोधिसत्त्व ने बिना कुछ छिपाए अपना जाना सारा शिल्प सिखाकर कहा—तात! शिल्प समाप्त हो गया। उसने सोचा—मैंने शिल्प सीख लिया। यह वाराणसी नगर सारे जम्बू-द्वीप मे श्रेष्ठ नगर है। और आचार्य्य भी बूढे हो गए है। मुझे यही रहना चाहिए। उसने आचार्य्य से कहा—आचार्य्य! मै राजा की सेवा करूँगा। आचार्य्य वोला—अच्छा तात! मै राजा से कहूँगा। उसने राजा से जाकर कहा—"महाराज! हमारा शिष्य देव की सेवा मे रहना चाहता है। उसको जो देना हो, जाने।"

राजा वोला—"आपको जितना मिलता है, आपके शिष्य को उसका आधा मिलेगा।" उसने मूसिल को वह वात कही। मूसिल वोला—"मुझे आपके वरावर ही मिलेगा तो सेवा करूँगा, नही मिलेगा तो सेवा नही करूँगा।"

"क्यो?"

"क्या आप जितना शिल्प जानते है वह सब मैं नही जानता?"

"हाँ जानते हो।"

"यदि ऐसा है तो मुझे आधा क्यो देता है?"

वोधिसत्त्व ने राजा से कहा। राजा वोला—यदि आपके समान शिल्प दिखा सकेगा तो वरावर मिलेगा। वोधिसत्त्व ने राजा की वात उसे सुनाई। वह वोला—अच्छा, दिखाऊँगा। राजा को कहा गया। उसने कहा—दिखाए। यह पूछने पर कि किस दिन मुकावला होगा, उसने उत्तर दिया—महाराज आज से सातवें दिन।

राजा ने मूसिल को वुलवाकर पूछा—क्या तू सचमुच आचार्य्य के साथ मुकाबला करेगा ?

"देव ! सचमुच।"

"आचार्य्य के साथ मुकावला करना उचित नही। मत कर।"

"महाराज ! आज से सातवे दिन मेरा और आचार्य्य का मुकावला होने ही दे। एक दूसरे के ज्ञान को जानेगे ।"

राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार कर मुनादी करा दी—आज से सातवे दिन आचार्य्य गुत्तिल तथा उनका शिष्य मूसिल राजदरवार मे एक दूसरे के मुकावले अपना शिल्प दिखाएँगे। नगर निवासी इकट्ठे होकर शिल्प देखे।

वोधिसत्त्व सोचने लगे—यह मूसिल आयु मे कम है, जवान है। मै वूढा हो गया हूँ, शक्ति घट गई है। बूढे आदमी से काम नही हो सकता। शिष्य हार गया तो इसमे मेरी कुछ विशेपता नही, लेकिन शिष्य जीत गया तो उस लज्जा से तो अच्छा है जगल मे जाकर मर जाना। वह जङ्गल मे जाते, लेकिन मृत्यु-भय से लौट आते। फिर लज्जा के मारे (जगल) मे जाते।

इस प्रकार उसे आना जाना करते ही छ दिन वीत गए। तृण मर गए। रास्ता चलने का निशान बन गया। उस समय शक्र का आसन गरम हुआ। शक्र ने ध्यान लगा कर देखा तो उसे मालूम हुआ कि गुत्तिल गन्धर्व शिष्य के भय मे जगल मे महान् दुख भोग रहा है। 'मुझे इसका सहायक होना चाहिए' मोच शक्र ने जल्दी से आकर बोधिसत्त्व के सामने खडे हो पूछा—

"आचार्य्य ! जगल मे क्यो दाखिल हुए हो ?"

"तू कौन है ?"

"मै शक्र हूँ ।"

वोधिसत्त्व ने उसे 'देवराज ! मै शिष्य के भय से जगल मे दाखिल हुआ हूँ' कह पहली गाथा कही—

सत्ततन्ति सुमधुर रामणेय्य अवाचयि,
सो म रंगम्हि अव्हेति सरणम्मे होहि कोसिय ॥

अर्थ—हे देवराज ! मैने मूसिल नाम के शिष्य को सात तारो वाली सुमधुर

रमणीक वीणा जितनी मैं जानता था उतनी सिखाई। अब वह मुझे रंगमंच पर ललकारता है। हे कोसिय गोत्र (इन्द्र)! तू मुझे शरण में ले।

शक्र उसकी बात सुन बोला—डरे मत। मैं तुम्हारा त्राण करूँगा। मैं तुम्हें शरण दूँगा। यह कह उसने दूसरी गाथा कही—

अहं ते सरणं सम्म अहमाचरियपूजको,
न तं जयिस्सति सिस्सो सिस्समाचरिय जेस्सति॥

[सौम्य! मैं तेरा शरणदाता हूँ। मैं आचार्य्य की पूजा करने वाला हूँ। शिष्य तुझे नहीं जीतेगा। आचार्य्य ही शिष्य को जीतेगा।]

अहं ते सरणं मैं शरण (-दाता हूँ), सहायक होकर, प्रतिष्ठा देकर त्राण करूँगा। सम्म प्रिय वचन है। सिस्समाचरिय जेस्सति आचार्य्य! तू वीणा बजाता हुआ शिष्य को जीतेगा।

शक्र ने और भी कहा—"तुम वीणा बजाते हुए एक तार तोडकर छ: बजाना। वीणा से स्वाभाविक स्वर निकलेगा। मूसिल भी तार तोड देगा। उसकी वीणा से स्वर न निकलेगा। उसी क्षण पराजित हो जाएगा। उसका पराजित होना जान दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी और सातवीं तार भी तोड कर केवल वीणा-दण्ड ही बजाना। तार रहित खूटियों से स्वर निकल कर सारी बारह योजन की वाराणसी नगरी को ढक लेगा।" इतना कह कर शक्र ने बोधिसत्त्व को तीन गोटियाँ दी और कहा—"सारे नगर पर वीणा शब्द के छा जाने पर इनमें से एक गोटी आकाश में फेंकना। तुम्हारे सामने तीन सौ अप्सराएँ उतर कर नाचने लगेंगी। उनके नाचने के समय दूसरी फेंकना। दूसरी तीन सौ उतर कर वीणा के सिरे पर नाचने लगेंगी। तब तीसरी भी फेंकना। और तीन सौ उतर कर रङ्ग-मण्डप में नाचेंगी। मैं भी तुम्हारे पास आऊँगा। जाएँ। डरें मत।"

बोधिसत्त्व पूर्वाण्ह समय घर गए। राजदरबार में भी मण्डप बनाकर राजासन तैयार कर दिया गया। राजा प्रासाद से उतर सजे मण्डप में आसन के बीच में बैठा। दस हजार अलंकृत स्त्रियों तथा अमात्य ब्राह्मण राष्ट्रिक आदि ने राजा को घेर लिया। सभी नगरवासी इकट्ठे हो गए। राजाङ्गण में चक्रों के साथ

चक्के तथा मञ्चो के साथ मञ्च वँध गए। वोधिसत्त्व भी स्नान करके, लेप कर, नाना प्रकार के श्रेष्ठ भोजन खा, वीणा ले, अपने लिए विछे आसन पर वैठे। शक्र गुप्त रूप से आकाश मे आकर ठहरा। केवल वोधिसत्त्व ही उसे देख सकते थे। मूसिल भी आकर अपने आसन पर वैठा। जनता घेर कर खडी हुई। आरम्भ में दोनो ने वरावर वरावर वजाया। जनता ने दोनो के वजाने से सन्तुष्ट हो हजारो हर्ष-नाद किए।

शक्र ने आकाश में ठहर कर वोधिसत्त्व को ही सुनाते हुए कहा—एक तार तोड दे। वोधिसत्त्व ने भ्रमर-तार तोड दी। वह टूटने पर भी टूटे हुए सिरे से स्वर देती थी। देवगन्धर्व का सा स्वर निकलता था। मूसिल ने भी तार तोड दी। उसमे से स्वर न निकला। आचार्य्य ने दूसरी, तीसरी करके सातो तारें तोड दी। केवल दण्डे के वजाने से जो स्वर निकला उसने सारे नगर को छा लिया। हजारो वस्त्र फेके गए तथा हज़ारो हर्षनाद हुए। वोधिसत्त्व ने एक गोटी आकाश मे फेकी। तीन सौ अप्सराएँ उतर कर नाचने लगी। इस प्रकार दूसरी और तीसरी गोटी के फेकने पर जैसे कहा गया उसी तरह नौ सौ अप्सराएँ उतर कर नाचने लगी।

उस समय राजा ने जनता को इशारा किया। जनता ने उठकर 'तू आचार्य्य से विरोध कर उसकी वरावरी का प्रयत्न करता है। अपनी सामर्थ्य नही देखता' कहते हुए मूसिल को डरा, जो जो हाथ मे आया पत्थर डण्डे आदि से चूर चूर कर, जान मार, पैरो से पकड कूडे के ढेर पर फेंक दिया। राजा ने सन्तुष्ट हो घनी वर्षा वरसाते हुए की तरह वोधिसत्त्व को वहुत धन दिया। नगरवासियो ने भी वैसे ही किया।

शक्र ने भी उससे विदा लेते हुए कहा—"पण्डित! मैं सहस्र घोडो वाले आजानीय रथ के साथ मातली को भेजूँगा। तू सहस्र घोडो वाले श्रेष्ठ वैजयन्त रथ पर चढकर देवलोक आना।" उसके वहाँ जाकर पाण्डुकम्वलशिलातल पर वैठने पर देवकन्याओ ने पूछा—महाराज! कहाँ गए थे? शक्र ने उनको वह वात विस्तार से वताई और वोधिसत्त्व के सदाचार तथा प्रज्ञा की प्रशसा की। देवकन्याएँ वोली—महाराज! हम आचार्य्य को देखना चाहती है। उसे यहाँ लाएँ।

शक्र ने मातली को वुलाकर कहा—तात! देवप्सराएँ गुत्तिल गन्धर्व को देखना चाहती है। जा उसे वैजयन्त रथ मे विठाकर ला। उसने 'अच्छा' कहा और

जाकर बोधिसत्त्व को ले आया। शक्र ने बोधिसत्त्व का कुशल क्षेम पूछ कहा—"आचार्य्य! देवकन्याएँ तुम्हारा गन्धर्व सुनना चाहती है।"

"महाराज! हम गन्धर्व लोग शिल्प से ही जीविका चलाते है। मूल्य मिले तो गाऊँगा।"

"वजाएँ। मै तुम्हें मूल्य दूँगा।"

"मुझे और मूल्य की जरूरत नही। यह देवकन्याएँ अपना अपना सुकृत कहें। ऐसा होने से मै वजाऊँगा।"

देवकन्याएँ वोली—"आचार्य्य! हम अपने किए सुकृत पीछे सन्तुष्ट होकर कहेंगी। गन्धर्व करें।"

बोधिसत्त्व ने सप्ताह पर्य्यन्त देवताओ को गन्धर्व सुनाया। वह दिव्यवाद्य से भी वढ गया। सातवें दिन आरम्भ से देवकन्याओ का सुकृत पूछा।

काश्यप वुद्ध के समय एक भिक्षु को उत्तम वस्त्र देकर शक्र की परिचारिका होकर उत्पन्न हुई, हजारो अप्सराओ से घिरी, एक उत्तम देवकन्या से पूछा—तू पूर्व जन्म में क्या कर्म करके (यहाँ) उत्पन्न हुई?

उससे पूछा गया प्रश्न तथा उसका उत्तर विमानवत्थु[1] में आया है। वहाँ कहा है—

"अभिक्कन्तेन वण्णेन या त्वं तिट्ठसि देवते,
ओभासेन्ती दिसा सब्बा ओसधी विय तारका॥
केन ते तादिसो वण्णो केन ते इध मिज्झति,
उप्पज्जन्ति च ते भोगा ये केचि मनसो पिया॥

पुच्छामि तं देवि महानुभावे
मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं,
केनासि एवं जलितानुभावा
वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती॥"

[हे देवते! यह जो तेरा कान्तिपूर्ण वर्ण है, यह जो सारी दिशाएँ इस प्रकार प्रकाशित है जैसे औपधि तारा हो, सो यह तेरा ऐसा वर्ण किस कारण से है? तू

---

[1] खुद्दक निकाय का एक ग्रन्थ।

किस कारण से यहाँ ऋद्धिमान् है ? जो भोग तुझे प्यारे लगते हो, वह किस कारण से प्राप्त होते है ? हे महानुभाव देवि ! मैं तुझसे पूछता हूँ कि मनुष्य योनि मे तूने क्या पुण्य कर्म किया ? किस कर्म के प्रभाव से तू प्रज्वलित प्रताप की है ? और तेरा वर्ण सव दिशाओ को प्रकाशित करता है ।]

"वत्युत्तमदायिका नारी पवरा होति नरेसु नारिसु,
एवं पियरूपदायिका मनाप दिब्ब सा लभते उपेच्च ठानं ।।
तस्सा मे पस्स विमानं अच्छरा कामवण्णिनीहमस्मि,
अच्छरासहस्साहं पवरा पस्स पुञ्ञानं विपाकं ।।
तेन मेतादिसो वण्णो तेन मे इध मिज्झति,
उप्पज्जन्ति च मे भोगा ये केचि मनसो पिया,
तेनम्हि एव जलितानुभावा
वण्णो च मे सब्बदिसा पभासति ।।"

[उत्तम वस्त्र देने वाली नारी नरो मे और नारियो में श्रेष्ठ होती है। इस प्रकार प्रिय रूप देने वाली वह (नारी) मरकर सुन्दर दिव्य स्थान को प्राप्त करती है। मेरे विमान को देखो। मैं इच्छित रूप धारण करने वाली अप्सरा हूँ। मैं हजार अप्सराओ मे श्रेष्ठ हूँ। यह पुण्य का फल है, देखो। इसी से मेरा ऐसा वर्ण है। इसीसे मैं ऋद्धिमान् हूँ। इसीसे मन को जो प्यारे लगते है ऐसे भोग मुझे प्राप्त होते है। उसीसे मैं प्रज्वलित प्रताप वाली हूँ। उसीसे मेरा वर्ण सव दिशाओ को प्रकाशित करता है।]

दूसरी ने भिक्षा माँगते हुए भिक्षु को पूजने के लिए पुष्प दिए। दूसरी ने चैत्य मे पञ्चड्गुलि चिन्ह लगाने के लिए सुगन्धि दी। दूसरी ने मधुर फलमूल दिए। दूसरी ने उत्तम रस दिया। दूसरी ने काश्यप बुद्ध के चैत्य पर सुगन्धित पञ्चड्गुलि चिन्ह लगाया। दूसरी ने रास्ते चलते भिक्षुओ तथा भिक्षुणियो के घर मे वास ग्रहण करने पर धर्म सुना। दूसरी ने नौका मे वैठ भोजन किए भिक्षु को पानी मे खडे हो पानी दिया। दूसरी न गृहस्थ मे रह क्रोधरहित चित्त से सास ससुर की सेवा की। दूसरी ने अपने को मिले हिस्से में से भी बाँट कर ही खाया और शीलवान रही। दूसरी ने पराए घर मे दासी होकर क्रोध-रहित मान-रहित रह अपने हिस्से को बाँट कर खाया। इसीसे वे देवराज की परिचारिका होकर पैदा हुई।

इस प्रकार गुत्तिलविमानवत्थु में आई सैंतीस देवकन्याओं ने जो जो कर्म करके वहाँ जन्म ग्रहण किया वह सब बोधिसत्त्व ने पूछा। उन सब ने भी अपना कर्म गाथाओं में ही कहा। यह सुन बोधिसत्त्व ने कहा—"मुझे बड़ा लाभ हुआ। मुझे बड़ी प्राप्ति हुई। मैंने जो यह यहाँ आकर अल्पमात्र कर्म से भी प्राप्त सम्पत्तियों की बात सुनी। अब यहाँ से मैं मनुष्यलोक जाकर दानादि कुशल कर्म ही करूँगा।" यह कह उसने यह हर्ष-वाक्य कहा—

स्वागत वत मे अज्ज सुप्पभातं सुवुट्ठितं,
य अद्दसामि देवतायो अच्छरा कामवण्णियो॥
इमासाहं धम्म सुत्वान काहामि कुसलं बहुं,
दानेन समचरियाय सञ्ञमेन दमेन च;
सोहं तत्थ गमिस्सामि यत्थ गन्त्वा न सोचरे॥

[आज मेरा आना शुभ है। आज का प्रभात शुभ है। आज का उठना शुभ है। आज मैंने इच्छित रूप धारण कर सकने वाली अप्सरा देवियों को देख लिया। इनसे धर्म सुनकर मैं बहुत कुशल कर्म करूँगा। दान से, समचर्य्या से तथा संयम के प्रताप से मैं वहाँ जाऊँगा जहाँ जाकर आदमी सोचता नहीं है।]

सप्ताह के बाद देवराज ने मातली सारथी को आज्ञा दे बोधिसत्त्व को रथ पर बिठा वाराणसी ही भेज दिया। उसने वाराणसी पहुँच देवलोक में जो देखा था वह मनुष्यों को बताया। उस समय से मनुष्यों ने उत्साहपूर्वक पुण्य-कर्म करना स्वीकार किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मूसिल देवदत्त था। शक्र अनुरुद्ध था। राजा आनन्द था। गुत्तिल गन्धर्व तो मैं ही था।

२४४. वीतिच्छ जातक

"यं पस्सति न त इच्छति " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक पलासिक परिव्राजक के वारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उसे सारे जम्वूद्वीप मे कोई शास्त्रार्थ करने वाला न मिला। उसने श्रावस्ती पहुँचकर पूछा—मेरे साथ कौन शास्त्रार्थ कर सकता है? उत्तर मिला—सम्यक् सम्वुद्ध। उसने वहुत से आदमियो के साथ जेतवन पहुँच कर चारो प्रकार की परिपद को धर्मोपदेश देते हुए तथागत से प्रश्न पूछा। शास्ता ने उसके प्रश्न का उत्तर दे उससे प्रश्न पूछा—एक (चीज) क्या है? वह उत्तर न दे सकने के कारण उठकर भाग गया। वैठी हुई परिपद वोली—भन्ते! एक ही शब्द से परिव्राजक को हरा दिया। शास्ता ने कहा—"उपासको! न केवल अभी मैंने उसको एक ही पद से हराया है, पहले भी हराया है।" यह कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व काशी राष्ट्र मे ब्राह्मण कुल मे पैदा हुआ। वडे होने पर कामभोगो को छोड ऋषियो के प्रव्रज्या क्रम से प्रव्रजित हो दीर्घकाल तक हिमालय मे रहा। वह पर्वत से उतर एक निगम-ग्राम के पास गङ्गा के मोड पर पर्णशाला मे रहने लगा।

एक परिव्राजक को सारे जम्वूद्वीप मे शास्त्रार्थ करने वाला न मिला। उसने उस निगम में पहुँच पूछा—मेरे साथ शास्त्रार्थ कर सकने वाला कोई है? पता लगा—है। वह वोधिसत्त्व की प्रशसा सुन अनेक आदमियो के साथ उनके निवास-स्थान पर पहुँच, कुशल क्षेम पूछ कर वैठा। वोधिसत्त्व ने पूछा—वनगन्ध से सुगन्धित गङ्गाजल पीएगा? परिव्राजक ने शास्त्रार्थ आरम्भ करते हुए कहा—कौनसी गङ्गा? वालू गङ्गा है? जल गङ्गा है? इधर का किनारा गङ्गा है? अथवा

उधर का किनारा गङ्गा है ? बोधिसत्त्व ने उसे उत्तर दिया—परिव्राजक ! उदक, वालू, इधर के किनारे और उधर के किनारे के अतिरिक्त और गङ्गा कहाँ है ? परिव्राजक को कुछ उत्तर न सूझा। वह उठकर भाग गया। उसके भाग जाने पर बोधिसत्त्व ने बैठे हुए लोगो को उपदेश देते हुए यह गाथाएँ कही—

यं पस्सति न तं इच्छति
यञ्च न पस्सति त किर इच्छति,
मञ्ञामि चिरं चरिस्सति
न हि त लच्छति यं सो इच्छति ॥१॥
यं लभति न तेन तुस्सति
यं पत्थेति लद्ध हीळेति,
इच्छा हि अनन्तगोचरा
वीतिच्छानि नमो करोमसे ॥२॥

[जिसे देखता है उसकी इच्छा नही करता, जिसे नही देखता है उसकी इच्छा करता है। मैं समझता हूँ कि यह चिरकाल तक भटकेगा। जिसकी इच्छा करता है वह इसे नही मिलेगा ॥१॥ जो मिलता है उससे सन्तुष्ट नही होता। जिसकी इच्छा करता है वह मिलने पर उसका अनादर करता है। इच्छा की गति अनन्त है। जो वीतिच्छा है, उन्हे हम नमस्कार करते है ॥२॥]

यं पस्सति जिस उदक आदि को देखता है, उसे गङ्गा नही मानता है। **यञ्च न पस्सति** जिस उदक आदि से रहित गङ्गा को नही देखता उसकी इच्छा करता है। **मञ्ञामि चिरं चरिस्सति** मै ऐसा मानता हूँ कि यह परिव्राजक इस प्रकार की गङ्गा को खोजते हुए चिरकाल तक भटकेगा, अथवा जैसे उदक आदि से रहित गङ्गा को उसी तरह रूप आदि से रहित आत्मा को भी खोजते हुए ससार में चिरकाल तक भटकेगा। न हि त लच्छति चिरकाल तक विचरते हुए भी वह जो इस प्रकार की गङ्गा वा आत्मा की इच्छा करता है उसे न प्राप्त कर सकेगा।

य लभति जो उदक वा रूप आदि मिलता है उससे सन्तुष्ट नही होता। **यं तत्येपि लद्धं हीळति** इस प्रकार प्राप्त से असन्तुष्ट हो जिस जिस सम्पत्ति को प्राप्त करता है, उस उस को प्राप्त करके 'इमसे क्या' कहकर उसका अनादर करता है,

उसकी अवमानना करता है। **इच्छा हि अनन्तगोचरा** जो जो प्राप्त हो उसका अनादर कर दूसरी दूसरी चीज की इच्छा करने के कारण यह इच्छा, यह तृष्णा अनन्त गति वाली है। **वीतिच्छानिं नमो करोमसे** इसलिए जो इच्छा रहित बुद्ध आदि हैं उनको हम नमस्कार करते हैं।

शास्ता ने यह धर्मदेशनाला जातक का मेल बैठाया। उस समय का परि-व्राजक ही इस समय का परिव्राजक है। तपस्वी तो मैं ही था।

२४५. मूलपरियाय जातक

"**कालो घसति भूतानि** . ." यह शास्ता ने उक्कट्ठा के पास सुभगवन में विहार करते हुए मूलपरियाय सुत्त[1] के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय तीन वेदो मे पारङ्गत पाँच सौ ब्राह्मणो ने (बुद्ध-) शासन में प्रव्रजित हो तीनो पिटक सीख कर अभिमान मे चूर हो सोचा—सम्यक् सम्बुद्ध भी तीन पिटक ही जानते है। हम भी जानते है। तव हमारा उनका क्या अन्तर है? उन्होने बुद्ध की सेवा मे जाना छोड दिया। शास्ता की बरावरी के होकर घूमने लगे।

एक दिन शास्ता ने उनके आकर पास बैठे रहने के समय आठ भूमियो से सजाकर **मूलपरियय सुत्त** का उपदेश दिया। उनकी कुछ समझ मे नहीं आया। तव उनको विचार हुआ—हम अभिमान करते हैं कि हमारे समान पण्डित नही। लेकिन अव कुछ नहीं समझते। बुद्ध के सदृश पण्डित नही है। अहो बुद्ध-गुण! उस समय से वह नम्र बन गए, वैसे जैसे सर्प के दाँत उखाड दिए गए हो, विप जाता

---

[1] मज्झिम-निकाय का प्रथम सुत्त।

रहा हो। शास्ता ने उकट्ठा में यथाभिरुचि रहकर वेशाली जा वहाँ **गोतमक** चेतिय में **गोतमकसुत्त** का उपदेश दिया। हजार लोकधातु काँप गई। उसे सुनकर वह भिक्षु अर्हत्व को प्राप्त हुए। **मूलपरियाय सुत्त** के उपदेश के अन्त में, जिस समय शास्ता उक्कट्ठा मे ही विहार करते थे, भिक्षुओ ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो! अहो बुद्धो की शक्ति! वे ब्राह्मण प्रव्रजित वैसे अभिमानी थे। उन्हे भगवान् ने मूलपरियाय सुत्त से मान-रहित कर दिया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, न केवल अभी इन अभिमानी सिर वालो को मान रहित किया है, पहले भी किया है। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ। बडे होने पर तीनो वेदो में पारङ्गत हो प्रसिद्ध आचार्य्य बन पाँच सौ माणवको को मन्त्र बँचवाता था। वे पाँच सौ (माणवक) शिल्प सीखकर, उसका अभ्यास कर सोचने लगे—'जितना हम जानते है, आचार्य्य भी उतना ही। उसमे कुछ विशेप नही।' यह सोच वह अभिमान से चूर हो आचार्य्य के पास न जाते, उसकी सेवा शुश्रूषा न करते। एक दिन जब आचार्य्य वेर के वृक्ष के नीचे बैठा था, उन्होने उसे ठगने की इच्छा से वेर के वृक्ष को नाखून से खुरच कर कहा—यह वृक्ष निस्सार है। बोधिसत्त्व ने यह जान कि यह मुझे ठग रहे है कहा—शिष्यो! एक प्रश्न पूछता हूँ। उन्होने प्रसन्नता पूर्वक कहा—पूछें, उत्तर देंगे। आचार्य्य ने प्रश्न पूछते हुए पहली गाथा कही—

कालो घसति भूतानि सब्बानेव सहत्तना,
यो च कालघसो भूतो स भूत पचनिं पचि॥

[काल सभी प्राणियो को खाता है, अपने को भी (खाता है)। जो काल को खाने वाला प्राणी है वह सब प्राणियो को जलाने वाली को जलाता है।]

कालो पूर्वाण्ह समय तथा अपराण्ह समय आदि। **भूतानि** प्राणी। काल प्राणियो का चर्म मास आदि नोच नोच कर उन्हे नही खाता किन्तु उनकी आयु,

वर्ण, वल को नष्ट कर यौवन को मर्दन कर आरोग्य का विनाश करता हुआ खाता है। इस प्रकार खाता हुआ किसी को नही छोडता। **सब्बानेव** खाता है। केवल प्राणियो को ही नही किन्तु **सहत्तना** अपने को भी खाता है। पूर्वाण्ह अपराण्ह तक नही रहता, इसी प्रकार अपराण्ह आदि भी। **यो च कालघसो भूतो** यह क्षीणास्रव के लिये कहा गया है। वह आर्य्यमार्ग से भविष्य के प्रतिसन्धि-ग्रहण करने के समय को नष्ट करने वाला होने से **कालघसो भूतो** कहलाता है। **सभूत पचनिं पचि** उसने इस तृष्णा को, जो प्राणियो को अपाय मे जलाती है, ज्ञानाग्नि से जला दिया, भस्म कर दिया। इसीसे **भूतपचनिं पचि** कहा जाता है। पजनि भी पाठ है। जननि पैदा करने वाली अर्थ है।

इस प्रश्न को सुनकर माणवको मे एक भी न जान सका। तब वोधिसत्त्व ने कहा—तुम यह मत समझो कि यह प्रश्न तीनो वेदो मे है। तुम यह समझ कर कि जो मै जानता हूँ वह सव तुम जानते हो मुझे वेर का वृक्ष बनाते हो। तुम यह नही जानते कि ऐसा वहुत है जिसे तुम नही जानते और मै जानता हूँ। जाओ, सात दिन का समय देता हूँ। इतने समय मे इस प्रश्न पर विचार करो।

वे वोधिसत्त्व को प्रणाम कर अपने अपने निवासस्थान पर गए। वहाँ सप्ताह भर सोचने पर भी न उन्हे प्रश्न का आरम्भ मिला न अन्त। वे सातवे दिन आचार्य्य के पास गए। प्रणाम करके वैठे। आचार्य्य ने पूछा—भद्रमुखो! प्रश्न समझ मे आया? वे बोले—नही जानते। वोधिसत्त्व ने फिर उनकी निन्दा करते हुए दूसरी गाथा कही—

वहूनि नरसीसानि लोमसानि ब्रहानि च,
गीवासु पटिमुक्कानि कोचिदेवेत्थ कण्णवा॥

अर्थ—बहुत आदमियो के सिर दिखाई देते है। वे वालो वाले है। सभी बडे वडे है। गर्दनो पर रक्खे है। ताड के फल की तरह हाथ मे पकडे हुए नही है। इन वातो मे किन्ही मे आपस में भेद नही है। लेकिन यहाँ कोई ही **कानवाला** है। (यह अपने बारे मे कहा) **कण्णवा** प्रज्ञावान्। कान का छेद तो किसको नही है?

इस प्रकार उन माणवको की निन्दा कर कि तुम लोगो को कानो का छेद

मात्र ही है, प्रज्ञा नही है प्रश्न समझाया। उन्होने सुनकर 'ओह! आचार्य्य महान् होते है' क्षमा माँग नम्र हो वोधिसत्त्व की सेवा की।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय पाँच सौ माणवक यह भिक्षु थे। आचार्य्य मैं ही था।

२४६. तेलोवाद जातक

"**हन्त्वा झत्वा वधित्वा च** " यह शास्ता ने **वैशाली** के आश्रय **कूटगार** शाला मे विहार करते समय सिह सेनापति के वारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसने भगवान् (वुद्ध) की शरण जा, निमन्त्रण दे, अगले दिन मास सहित भोजन कराया। निगण्ठो[1] ने उसे सुन कुपित हो असन्तुष्ट हो तथागत को पीडा पहुँचाने की इच्छा से गाली दी—श्रमण गौतम जान वूझ कर अपने लिए वनाए मास को खाता है। भिक्षुओ ने धर्मसभा में वातचीत चलाई—आयुष्मानो! परिपद सहित निगण्ठनाथपुत्र 'श्रमण गौतम जान वूझ कर अपने लिए वना मास खाता है' कह गाली देता हुआ घूमता है। इसे सुन शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ, न केवल अभी निगण्ठनाथपुत्र 'अपने लिए वना मास खाने वाला' कह मेरी निन्दा करता है, उसने पहले भी की है।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए। वडे होने पर ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो निमक-खटाई खाने के लिए हिमालय से वाराणसी आ अगले दिन नगर में भिक्षा के लिए

---

[1] निगण्ठ=निर्ग्रन्थ=जैन सम्प्रदाय वाले साधु।

प्रवेश किया। एक गृहस्थ ने तपस्वी को तग करने के उद्देश्य से उसे घर मे बुला, बिछे आसन पर बिठा मत्स्य मास परोसा। भोजन कर चुकने पर एक ओर बैठ कर कहा—यह मास तुम्हारे ही लिए प्राणियो को मार कर तैयार किया गया है। यह पाप केवल हमे न लगे, तुम्हे भी लगे।

इतना कह पहली गाथा कही—

हन्त्वा झत्वा वधित्वा च देति दानं असञ्ञतो,
एदिसं भत्त भुञ्जमानो स पापेन उपलिप्पति॥

[मारकर, कष्ट देकर तथा बध करके असयमी दान देता है। इस प्रकार के भोजन को खाने वाला पाप का भागी होता है।]

हन्त्वा प्रहार देकर। **झत्वा** क्लेश देकर। **वधित्वा** मारकर। **देति दानं असञ्ञतो** असयमी दुश्शील ऐसा करके इस प्रकार दान देता है। **एदिसं भत्तं भुञ्जमानो स पापेन उपलिप्पति** इस प्रकार उद्देश्य करके बनाए हुए भोजन को खाने वाला श्रमण भी पाप से युक्त होता है।

उसे सुन बोधिसत्त्व ने दूसरी गाथा कही—

पुत्तदारम्पि चे हन्त्वा देति दानं असञ्ञतो,
भुञ्जमानो पि सप्पञ्ञो न पापेन उपलिप्पति॥

[यदि असयमी (आदमी) पुत्र तथा स्त्री को मारकर भी दान देता है, तो भी बुद्धिमान् खाने वाले को पाप नही लगता।]

भुञ्जमानो पि सप्पञ्ञो दूसरे मास की बात रहे। पुत्र स्त्री को भी मार कर दुश्शील द्वारा दिए गए दान को प्रज्ञावान् क्षमामैत्री आदि गुणो से युक्त खाने वाला पाप से लिप्त नही होता।

इस प्रकार बोधिसत्त्व धर्मोपदेश कर आसन से उठकर चले गए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय गृहस्थ निगण्ठनाथपुत्र था। तपस्वी तो मैं ही था।

२४७. पादञ्जली जातक

"अद्धा पादञ्जली सव्वे " यह शास्ता ने जेतवन मे विहरते समय लालुदायी स्थविर के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन दोनो प्रधान शिष्य प्रश्नो पर विचार करते थे। भिक्षु धर्मसभा में सुन स्थविरो की प्रशसा करते थे। परिषद मे बैठे हुए लाल उदायी स्थविर ने होठ चवाए—यह हमारे वरावर क्या जानते है ? धर्मसभा में भिक्षुओ ने बातचीत चलाई—आयुष्मानो, लालुदायी ने दोनो श्रावको की निन्दा कर होठ चवाए। शास्ता ने यह सुन कर कहा—"भिक्षुओ, न केवल अभी, पहले भी लालुदायी होठ चवाना छोड और अधिक कुछ नही जानता था।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्त्व उसके अर्थधर्मानुशासक अमात्य हुए। राजा का पादञ्जली नाम का पुत्र मूर्ख था, आलसी था। आगे चलकर राजा मर गया। अमात्यो ने राजा का क्रिया-कर्म करके, किसे राज्याभिषिक्त करें सलाह करते हुए कहा कि राजपुत्र पादञ्जली को। वोधिसत्त्व ने कहा—यह कुमार मूर्ख है, आलसी है। परीक्षा करके इसे राज्याभिषिक्त करें। अमात्यो ने मुकद्दमा वना कुमार को पास वैठा मुकद्दमे का फैसला करते हुए ठीक फैसला नही किया। उन्होने अस्वामी को स्वामी वना कुमार से पूछा—कुमार! क्या हम लोगो ने ठीक फैसला किया? उसने होठ चवाए। वोधिसत्त्व ने समझा मालूम होता है कुमार पण्डित है। वह समझ गया होगा कि मुकद्दमे का ठीक फैसला नही हुआ। ऐसा मानकर पहली गाथा कही—

अद्धा पादञ्जली सब्बे पञ्ञाय अतिरोचति,
तथाहि ओट्ठं भञ्जति उत्तरिं नून पस्सति॥

[पादञ्जली निश्चय से प्रज्ञा मे सबसे बढकर है। इसीसे होठ चबाता है। निश्चय से इसे दूसरी बात दिखाई देती है।]

निश्चय से पादञ्जली कुमार सब्बे हम पञ्ञाय अतिरोचति तथाहि ओट्ठं भञ्जति नून उत्तरिं दूसरे कारण को पस्सति।

उन्होने दूसरे दिन भी एक मुकद्दमा तैयार कर उस मुकद्दमे का ठीक से फैसला कर पूछा—देव! कैसे क्या यह ठीक से फैसला हुआ है? उसने फिर भी होठ चबाए। उसकी मूर्खता की बात जान बोधिसत्त्व ने दूसरी गाथा कही—

नायं धम्मं अधम्मं वा अत्थानत्थं व बुज्झति,
अञ्ञमत्र ओट्ठनिब्भोग नायं जानाति किञ्चन॥

[यह धर्म-अधर्म वा अर्थ-अनर्थ कुछ नही बूझता है। यह होठ चबाने के अतिरिक्त और कुछ नही जानता है।]

अमात्यो ने पादञ्जली कुमार की मूर्खता पहचान बोधिसत्त्व को राज्याभिषिक्त किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय पादञ्जली लालुदायी था। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

२४८. किंसुकोपम जातक

"सब्बेहि किंसुको दिठ्ठो " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय किंसुकोपमसुत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

चार भिक्षुओ ने तथागत के पास आ कर्मस्थान माँगा। शास्ता ने उनको कर्मस्थान कहा। वे कर्मस्थान ले अपने अपने रात्रि के निवासस्थान तथा दिन के निवासस्थानो को गए। उनमे मे एक ने छ स्पर्श-आयतनो का परिग्रहण कर अर्हत्व प्राप्त किया। एक ने पञ्चस्कन्धो का। एक ने चारो महाभूतो का। एक ने अठारह धातुओं का। उन सबने अपनी अपनी अर्हत्व-प्राप्ति तथागत से निवेदन की। उन भिक्षुओ में मे एक को शका हुई—यह कर्मस्थान तो भिन्न भिन्न है। निर्वाण एक है। सभी को अर्हत्व की प्राप्ति कैसे हुई? उसने शास्ता से पूछा। शास्ता वोले—भिक्षु, क्या तुझे किंसुक देखने वाले भाइयो जैसा भेद (पैदा हुआ है)? भिक्षुओ ने प्रार्थना की भन्ते! यह वात हमे कहें। शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणमी में ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उसके चार पुत्र थे। उन्होंने सारथी को वुलाकर कहा—सौम्य! हम किंसुक देखना चाहते हैं। हमें किंसुक वृक्ष दिखाएँ। सारथी वोला—अच्छा दिखाऊँगा। उसने चारो को एक साथ न दिखा ज्येष्ठ पुत्र को रथ मे विठा जगल मे ले जा ठूठ की अवस्था मे किंसुक दिखाकर कहा कि यह किंसुक है। दूसरे को छोटे छोटे पत्ते निकलने के समय। तीसरे को फूल निकलने के समय। चौथे को फल निकलने पर।

आगे चलकर एक वार जब चारो भाई एक साथ वैठे थे उन्होने बातचीत

चलाई कि किंसुक कैसा होता है? एक बोला—जैसे जला हुआ ठूठ। दूसरा—जैसे न्यग्रोध वृक्ष। तीसरा—जैसे मासपेशी। चौथा—जैसे सिरीप। वे परस्पर एक दूसरे के कथन से असन्तुष्ट हो पिता के पास गए और पूछा—देव! किंसुक कैसा होता है? राजा ने पूछा—तुमने कैसे कैसे बताया? सबने अपना अपना कहने का ढग राजा से कहा। राजा बोला—तुम चारो ने किंसुक देखा है। हाँ, केवल किसुक दिखाने वाले सारथी से इस समय मे किसुक कैसा होता है, इस समय में कैसा होता है यह बॉट कर नही पूछा। उसीसे शक पैदा हुआ है। यह कह पहली गाथा कही—

सब्बेहि किंसुको दिट्ठो किन्त्वेत्थ विचिकिच्छथ,
नहि सब्बेसु ठानेसु सारथी परिपुच्छितो॥

[सभी ने किंसुक देखा है, किन्तु उसमे शका करते हो। सभी अवस्थाओ मे सारथी से नही पूछा।]

नहि सब्बेसु ठानेसु सारथी परिपुच्छितो सभी ने किंसुक देखा है। तुम यहाँ क्या शका करते हो? सब जगह यह किंसुक ही था, किन्तु तुमने सभी अवस्थाओ में सारथी को नही पूछा। उसीसे शका उत्पन्न हुई है।

शास्ता ने यह बात कह कर समझाया कि भिक्षु जैसे वे चार भाई विभाग करके न पूछने के कारण किंसुक के बारे मे सन्देहशील हुए, उस तरह तू भी इस धर्म में शका करता है। यह कह अभिसम्बुद्ध होने पर दूसरी कथा कही—

एवं सब्बेहि ञणेहि येसं धम्मा अजानिता,
ते वे धम्मेसु कंखन्ति किंसुकस्मिव भातरो॥

[सभी विषयो में, जो धर्म के जानकार नही है वह धर्मो के बारे में वैसे ही शका करते है जैसे किंसुक के बारे मे (चारो) भाई।]

जैसे वे भाई सभी अवस्थाओ मे किंसुक को न देखने के कारण सन्देहशील हुए, उसी प्रकार विपश्यना ज्ञान से जिनको सब छ स्पर्शायतन, स्कन्ध, महाभूत,

धातु आदि धर्म अज्ञात है, स्रोतापत्ति धर्ममार्ग को प्राप्त न किए रहने के कारण, ज्ञानी न हुए रहने के कारण ही (वे) उन स्पर्श आयतन आदि धर्मों मे शका पैदा करते है। जैसे एक ही किंसुक मे चारो भाई।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय वाराणसी राजा मैं ही था।

२४९. सालक जातक

"एकपुत्तको भविस्ससि ..." यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक महास्थविर के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह एक कुमार को प्रव्रजित कर उसे कष्ट पहुँचाता रहता था। श्रामणेर ने पीडा न सह सकने के कारण चीवर त्याग दिया। स्थविर जाकर उसे फुसलाता —कुमारक! तेरा चीवर तेरा ही रहेगा। पात्र भी। मेरे पास जो पात्र चीवर है वह भी तेरा ही रहेगा। आ प्रव्रजित हो। 'मैं प्रव्रजित नही होऊँगा' कहते हुए भी वह बार बार आग्रह किए जाने के कारण प्रव्रजित हो गया।

प्रव्रजित होने के दिन से फिर स्थविर उसे तग करने लगा। उसने कष्ट न सह सकने के कारण फिर चीवर त्याग दिया। अब स्थविर के अनेक बार कहने पर भी प्रव्रजित होना स्वीकार नही किया। बोला—मुझे तू सहन भी नही करता। मेरे बिना तू रह भी नही सकता। जा प्रव्रजित नही होऊँगा।

भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो! उस बच्चे का दिल अच्छा था। महास्थविर के आशय को समझ कर वह प्रव्रजित नही हुआ। शास्ता

ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, यह केवल अभी सुहृदय नही है। यह पहले भी सुहृदय ही था। एक बार उसका दोष देखकर उसे फिर ग्रहण नही किया।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व एक गृहस्थ कुल मे पैदा हुआ। बड़े होने पर धान्य बेच कर जीविका चलाने लगा। एक सपेरा भी एक बन्दर को सिखा, औषध ग्रहण करवा, उसे तथा सर्प को खिलाता हुआ जीविका चलाता था।

वाराणसी मे उत्सव घोषित होने पर उसमे खेलने की इच्छा से उस सपेरे ने वह बन्दर उस धान्य के व्यापारी को सौपा और कहा—इसका ख्याल रखना। उत्सव खेल, आकर सातवे दिन उस व्यापारी के पास जाकर पूछा—बन्दर कहाँ है? बन्दर स्वामी की आवाज सुनते ही अनाज की दूकान से जल्दी से निकला। उसने बन्दर को बाँस की छडी से पीठ पर मारा और लेकर उद्यान गया। वहाँ उसे एक तरफ बाँधा और सो गया। बन्दर ने उसे सोया देख अपना बन्धन खोला और भाग कर आम के वृक्ष पर चढ गया। वहाँ उसने पका आम खाकर गुठली सपेरे के शरीर पर गिराई। सपेरे ने उठकर देखा तो सोचा कि मधुर वाणी से उसे ठग वृक्ष से उतार पकड़ूँगा। उसने उसे फुसलाते हुए पहली गाथा कही—

एकपुत्तको भविस्ससि
त्वञ्च नो हेस्ससि इस्सरो कुले,
ओरोह दुमस्मा सालक
एहि दानि घरकं वजेमसे॥

अर्थ—तू मेरा एक पुत्रक होकर रहेगा। मेरे कुल में (भोगो का) स्वामी होकर रहेगा। इस वृक्ष से उतर। आ, अपने घर चले। सालक! यह नाम लेकर सम्बोधन किया है।

उसे सुनकर बन्दर ने दूसरी गाथा कही—

ननु मं हदयेतिमञ्ञसि
यञ्च मं हनसि वेलुयट्ठिया,
पक्कम्ववने रमामसे
गच्छ त्वं घरकं यथासुख ॥

[निश्चय से तू मुझे हृदय से बहुत चाहता है। तभी तो मुझे बाँस की छडी से मारता है। अब हम पके आम्रवन में रहेंगे। तू सुखपूर्वक घर जा।]

ननु म हदयेति मञ्ञसि निश्चय से तू मुझे हृदय मे बहुत मानता है। मतलब है कि तू समझता है कि यह सुहृदय है। **यञ्च मं हनसि वेलुयट्ठिया** इतना अधिक मानता है कि बाँस की छडी से मारता है। इससे प्रकट करता है कि इस कारण से मैं नही आता हूँ। इसलिए हम इस **पक्कम्ववने रमामसे गच्छ त्व घरकं यथा-सुख** यह कह कूद कर वन मे चला गया।

सपेरा भी असन्तुष्ट हो अपने घर गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय बन्दर श्रामणेर था। सपेरा महास्थविर। धान्य का व्यापारी तो मैं ही था।

२५०. कपि जातक

"अय इसी उपसम सञ्ञमे रतो . ." यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक ढोंगी भिक्षु के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उसका ढोंग भिक्षुओं में प्रकट हो गया। भिक्षुओ ने धर्मसभा मे बातचीत चलाई—आयुष्मानो! अमुक भिक्षु कल्याणकारी बुद्धशासन मे प्रव्रजित हो ढोंग करता है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?

'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, यह भिक्षु केवल अभी ढोगी नही है, यह पहले भी ढोगी रहा है। इसने जब यह बन्दर था केवल आग के लिए ढोग किया। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व काशी-देश मे ब्राह्मण कुल मे पैदा हुआ। बडे होने पर पुत्र के भागने दौडने मे समर्थ होने पर, ब्राह्मणी के मर जाने पर पुत्र को गोद में ले हिमालय चला गया। वहाँ ऋषियो के प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रजित हो उस पुत्र को भी तपस्वीकुमार बना पर्णशाला मे रहने लगा। वर्षा ऋतु मे मूसलाधार वर्षा होने के समय एक बन्दर पीडित, दाँत कट-कटाता हुआ, काँपता हुआ भटकता था। बोधिसत्त्व बडे बडे लक्कड लाकर आग बना मञ्च पर लेटा था। उसका पुत्र भी पाँव दबाता हुआ बैठा था। वह बन्दर एक मृत तपस्वी के वल्कल वस्त्र ओढ पहन, एक कन्धे पर अजिनचर्म रख, बैंहगी तथा कमण्डल ले ऋषिवेष बना पर्णशाला के द्वार पर जा आग के लिए ढोग करके खडा हुआ।

तपस्वी कुमार ने उसे देख 'तात! एक तपस्वी शीत से पीडित है। काँप रहा है। उसे यहाँ बुला। सेक लेगा' कहा। उसने पिता से प्रार्थना करते हुए यह गाथा कही—

अयं इसी उपसमसंयमे रतो
सन्तिट्ठति सिसिरभयेन अट्टितो,
हन्द अय पविसतु मं अगारक
विनेतु सीत दरथञ्च केवलं॥

[यह ऋषि उपशमन मे तथा सयम में लगा है। शीतभय से पीडित है। यह इस घर में प्रवेश करे और अपने शीत तथा पीडा को दूर करे।]

उपसमसंयमे रतो रागादि क्लेश के उपशमन मे तथा शीलसयम मे लगा है। **संतिट्ठति,** वह ठहरता है। **सिसिरभयेन** वायु और वर्षा से उत्पन्न शीतभय से। **अट्टितो** पीडित। **पविसतु म,** यहाँ प्रवेश करे। **केवल** सब।

बोधिसत्त्व ने पुत्र की बात सुन उठकर देखते हुए वन्दर का भाव समझ दूसरी गाथा कही—

नाय इसी उपसमसंयमे रतो
कपी अयं दुमवरसाखगोचरो,
सो दूसको रोसकोचापि जम्मो
सचे वजे इमम्पि दूसये घर॥

[यह उपशमन तथा सयम मे लगा हुआ ऋषि नही। यह वृक्षो की शाखा पर घूमने वाला वन्दर है। यह दूषित करने वाला है। यह क्रोध करने वाला है। यह नीच है। यदि घर में आए तो इस घर को भी दूषित करे।]

दुमवरसाखगोचरो वृक्षो की शाखा पर घूमने वाला। **सो दूसको रोसको चापि जम्मो** जहाँ जहाँ जाए उस उस जगह को दूषित करने वाला होने से **दूसक**। झगडने वाला होने से **रोसको**, नीच होने से **जम्मो**। **सचे वजे** यदि इस पर्णशाला में आवे, दाखिल हो तो सब जगह पाखाना पेशाव करके और आग लगा कर खराब कर दे।

यह कह कर बोधिसत्त्व ने जली लकडी ले उसे डरा भगाया। वह कूद कर वन में प्रवेश कर चला ही गया। फिर उस जगह नही गया। बोधिसत्त्व ने अभिज्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर तपस्वीकुमार को कसिन-परिकर्म सिखाया। उसने अभिज्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त की। वे दोनो ध्यान-प्राप्त हो ब्रह्मलोक परायण हुए।

शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी किन्तु पुराने समय मे भी यह ढोंगी ही है', कह यह धर्मदेशना ला (आर्य-) सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के अन्त में कोई स्रोतापन्न, कोई सकृदागामी, कोई अनागामी हुए।

उस समय वन्दर ढोंगी भिक्षु था। पुत्र राहुल। पिता तो मै ही था।